गुरुदेव ने कहा...

संगत समतावाद (रजि०)
समता योगाश्रम
जगाधरी - 135003
हरियाणा

© संगत समतावाद (पं०)

प्रथम संस्करण ... 1991
पांचवाँ संस्करण ... 2010

प्रकाशक : -
संगत समतावाद
समता योगाश्रम, छछरौली रोड,
जगाधरी (हरियाणा)

मुद्रक:-
राजेश प्रिंटर्स,
7321-22, आराम नगर, पहाड़गंज
कुतुब रोड, नई दिल्ली - 110 055

प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी के आधुनिक युग में आज के मानव ने अधिक से अधिक वस्तुओं को प्राप्त करने तथा उपभोग करने में ही अपनी उन्नति समझ रखी है। अपनी चतुराई से ये जीव अपने कल्याण की आशा रखता है और अंदर से सदा डरा और भयभीत रहता है। परंतु चतुराई और ज़रूरतों की अधिकता ने उसको इतना अंधा बना दिया है कि वो शिक्षित होते हुए भी यह विचार करने में असमर्थ है कि भोगों की अधिकता सुख का कारण है या दु:ख का, शांति का कारण है या अशांति का। विज्ञान तथा आधुनिक शिक्षा को प्राप्त करके उसकी बुद्धि इतनी कुंठित हो गयी है कि न तो वहां सही ईश्वर विश्वास रहा और न ही आध्यात्मिक सिद्धांत तथा वैदिक ऋषियों के शास्त्रों को समझने की सामर्थ्य रही। मनुष्य की इस मजबूरी का वर्तमान आधुनिक गुरुओं ने भी लाभ उठाया जिससे धर्म का विकृत रूप समाज में प्रचलित हो गया और आम जिज्ञासु भटकता ही रहा।

जब भी ऐसी कठिन परिस्थितियाँ समाज में पैदा होती हैं प्रभु कृपा से, मनुष्य का सही मार्गदर्शन करने के लिए, कोई न कोई अवतार, ऋषि अथवा सत्गुरु आ ही जाता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु वर्तमान युग में सद्‌गुरुदेव श्री मंगत राम जी का आगमन हुआ। वे परम आत्म स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। उनका अधिकतर जीवन निर्जन वनों और घाटियों में बीता। पच्चीस वर्ष की आयु के बाद वे कभी सोये नहीं। उनका लगभग सारा समय समाधि में ही कटता रहा। फिर भी आम जनता के कल्याण की खातिर उन्होंने समाधि के परमसुख का त्याग किया और वे गांव-गांव, नगर-नगर में विचरने लगे।

गुरुदेव के पास गाँव की भोली-भाली जनता, शहर के शिक्षित लोग, व्यापारी तथा विचारक अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा को शांत करने हेतु तथा अपने जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए प्रात:काल से रात्रि तक आते रहते थे। गुरुदेव उस क्षेत्र की प्रचलित साधारण भाषा में लोगों के प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे। कई जिज्ञासुओं को पत्र द्वारा भी ज्ञान और मार्गदर्शन मिलता रहता था।

प्रस्तुत पुस्तक में गुरुदेव से किए गए प्रश्न और उनके उत्तरों तथा उनके पत्रों को आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। गुरुदेव द्वारा बोली गयी मूल भाषा को ज्यों की त्यों रखने की कोशिश भी की गयी है परंतु कहीं-कहीं उन शिष्यों की अपनी भाषा का भी समावेश हो गया है जो समय-समय पर सत्पुरुष द्वारा बताए गए विचारों को अपनी डायरी में नोट करते रहे। उस प्राकृतिक भाषा को आधुनिक रूप देने का प्रयास नहीं किया गया है ताकि पाठकों को ऐसा प्रतीत हो जैसे गुरुदेव प्रत्यक्ष वार्तालाप और मार्गदर्शन कर रहे हैं।

गुरुदेव के पास हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख इत्यादि हर सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी जिज्ञासा को लेकर आते थे और वह अपने अनुभवी जीवन के आधार पर उनको उत्तर दिया करते थे-इसलिए यह पुस्तक सभी के अज्ञान को दूर करने के लिए उपयुक्त है। इस पुस्तक के अध्ययन द्वारा साधारण गृहस्थ अपने मन की उलझनों को दूर करने का उपाय ढूँढ सकता है। साधक अपने मार्ग में आने वाली साधना-सम्बंधी समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकता है, विचारक गहन आध्यात्मिक गुत्थियों को इन साधारण अनुभवी विचारों द्वारा सुलझा सकता है।

वैदिक विचारधारा तथा शास्त्रों को सरल रूप में समझाने हेतु गुरुदेव के लिखित विचार 'श्री समता विलास' नामक सद्ग्रंथ में उपलब्ध हैं। उनके मुख से उच्चारित देव वाणी सद्ग्रंथ 'श्री समता प्रकाश' के रूप में प्रकाशित हो चुकी है। आम जनता के धार्मिक अंधविश्वास दूर करने के वास्ते तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए इन दोनों ग्रन्थों के कुछ अंश भी इस पुस्तक में दिए गए हैं।

वर्तमान तथा आने वाली पीढ़ियाँ इस पुस्तक में संकलित प्रमाणिक विचारों द्वारा सही आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा प्रेरणा प्राप्त करती रहेंगी।

प्रकाशक

सब संगत यह बूझयो,
करनी जग परवान ।
जैसी-जैसी जो करे,
'मंगत' फल पहचान ।।

गुरु महिमा

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ।।

सतगुरु तो अन्तर रमें, पल-पल करें पुकार ।
आज्ञाकारी होय के, तू घट का पाट उघाड़ ।।

एक बार गुरुदेव ने एक प्रेमी से कहा था-

''प्रेमी, जिस वक्त गुरु को अन्तर में अनुभव करोगे तब गुरु का असली रूप समझ में आवेगा। अभी तो इस खल्लड़ (खाल = शरीर) को तुमने गुरु समझ रखा है। उस समय तुम्हें विसमाद (विस्मय) का ही अनुभव होगा। तू यही सोचता रहेगा कि मैंने समझा क्या था और यह निकला क्या? तेरा रोम-रोम गुरु को धन्यवाद देगा। अभी तो तूने गुरु को खिलौना ही समझ रखा है।''

श्री सद्गुरुदेव मंगतराम जी महाराज

विषय–सूची

पृष्ठ संख्या

	सत्पुरुष का जीवन परिचय	(i)
	प्रश्न–उत्तर	
1.	संसार, शरीर, जीव तथा ईश्वर का स्वरूप	1
2.	आवागवन या पुनर्जन्म	11
3.	कर्म चक्र तथा प्रभु कृपा	14
4.	मन, बुद्धि तथा अहंकार	19
5.	दुःख तथा सुख	30
6.	शान्ति या आनंद	35
7.	मानव जीवन का ध्येय	38
8.	ईश्वर विश्वास और श्रद्धा	41
9.	सत्गुरु की आवश्यकता, प्राप्ति तथा पहचान	48
10.	सत्पुरुषों की सामर्थ्य	58
11.	ईश्वर प्राप्ति या कल्याण का मार्ग	61
12.	ईश्वर परायणता	68
13.	संसार में रहने का तरीका	74
14.	शरीर तथा संसार से मुक्ति का मार्ग	84
15.	मोह, ममता और प्रेम	91
16.	संस्कार और स्वभाव	97
17.	विकारों से छुटकारा	100
18.	धर्म का स्वरूप तथा निष्काम कर्म	105
19.	नाम स्मरण, ध्यान तथा योग	114
20.	कीर्तन	140
21.	निर्गुण तथा सगुण पूजा	141
22.	पाप और पुण्य	147
23.	तीर्थ यात्रा	148
24.	जीव गति	150
25.	भूत–प्रेत तथा रूह	157

पृष्ठ संख्या

26.	निन्दा	158
27.	नम्रता या दीनभाव	159
28.	संगत का असर	162
29.	विरह और वैराग्य	163
30.	गीता तथा अन्य धर्म ग्रन्थों पर विचार	166
31.	गुरुदेव के व्यक्तिगत जीवन सम्बंधी विचार	175
32.	सफलता प्राप्ति का सूत्र	183
33.	महिला सम्बन्धी विचार	185
34.	सदाचार	189
35.	विविध प्रश्न	191
36.	एक प्रेमी का श्री महाराज जी से वार्तालाप	218
37.	महामंत्र की महिमा	223

ग्रन्थ श्री समता विलास से

1.	परम निधान	225
2.	जीवन सार सिद्धान्त	228
3.	गुरुपद का सिद्धान्त	232
4.	मार्ग-धर्म में गुरु शिष्य सम्बंध	240
5.	आस्तिक और नास्तिकपन का विचार	241
6.	तीर्थ यात्रा सिद्धान्त	244
7.	दान का सिद्धान्त	246
8.	मूर्ति पूजा का सिद्धान्त	249
9.	देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धांत	253
10.	(क) भूत-प्रेत व पितर का सिद्धांत	261
	(ख) भूत प्रेत पर विचार	
11.	धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत	268
12.	राम राज्य का स्वरूप	274
13.	स्त्री पुरुष जीवन सम्बंध	
	(1) पतिव्रत धर्म	276
	(2) पुरुष धर्म	277

पृष्ठ संख्या

आध्यात्मिक पत्र

जीवन सम्बंधी पत्र

1.	सत् परायणता का निश्चय दृढ़ करने का आदेश	289
2.	अमली जीवन बनाने की प्रेरणा	281
3.	केवल विचारों द्वारा मानसिक संग्राम से विजय कठिन	281
4.	परमार्थ पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा	283
5.	सत् परायणता में दृढ़ता धारण करने का आदेश	283
6.	ज़िन्दगी का कमाल प्रभु परायण होने से प्राप्त होता है	284
7.	जीवन में मर्यादा को धारण करने का आदेश	285
8.	गुणी पुरुषों का जीवन	286
9.	परम शांति देने वाला बोध	287
10.	फकीरी या ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश अपनी शक्ति अनुसार	287
11.	विश्वास की दृढ़ता से ग्रहस्थ में रहकर धर्म का पालन हो सकता है	288
12.	सत् कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा	288
13.	मानसिक दोषों से निवृत्ति	289
14.	सही जीवन उन्नति का आदेश	289
15.	संसार यात्रा का ध्येय	290
16.	दु:ख को सहन करने का आदेश	291
17.	प्रभु का निश्चय शांति प्राप्ति का साधन है	292
18.	समर्पण बुद्धि से निर्मल संकल्प और निर्मल यत्न प्रकट होता है	292
19.	गुरु आज्ञा को अपनाना ही गुरु भक्ति है	293
20.	परोपकारी जीवन तथा आपस में प्रेम हेतु प्रेरणा	294
21.	सही जीवन कल्याण मार्ग	296
22.	उद्देश्यपूर्ण जीवन की प्रेरणा	298
23.	उच्च जीवन बनाने की प्रेरणा	298
24.	अन्तिम वासना और संग दोष का असर (पुनर्जन्म)	299
25.	मनुष्य की आयु	300
26.	पवित्र आचरण से स्वार्थ और कामना के अन्धकार का नाश होता है	300
27.	सदाचारी जीवन और ईश्वर भक्ति को धारण करने का अनुरोध	301

पृष्ठ संख्या

28. वाद-विवाद करना उचित नहीं 303
29. अपने फर्ज़ को समझ लेने से अशान्ति नाश हो जाती है 303
30. जीवन की रक्षा 304

सत्संग सम्बंधी पत्र

31. सत्संग कायम करने का उपदेश 305
32. सत्संग में सादगी की ज़रूरत 306
33. सत्संग प्रेम और अभ्यास से धर्म की जागृति 306
34. सत्संग में हाज़िरी की आवश्यकता का उपदेश 307
35. सत्संग के लिए प्रेरणा 308

धर्म सम्बंधी पत्र

36. ईश्वर विश्वास और धार्मिक जीवन अपनाने का अनुरोध 309
37. धार्मिक जीवन बनाकर देश व धर्म की रक्षा करें 310
38. धर्म हर जगह सहायता करने वाला है 311

बाल धर्म सम्बंधी पत्र

39. बालकों के लिए शिष्टाचार पर ज़ोर 313
40. समता के बाल मेम्बरों का धर्म 313

योग सम्बंधी पत्र

41. शारीरिक कामना ही अभ्यास में बाधक होती है 314
42. श्रद्धा और समर्पण बुद्धि से सिमरन में सफलता 314
43. निष्कर्म अवस्था में स्थित रहने की प्रेरणा 315
44. क्या आत्मा परमात्मा है 316
45. आत्म ज्ञान में न कोई देश है न कोई काल है 317
46. अभ्यास में स्वांसों की गति और बैठक सम्बंधी विचार 317
47. अभ्यास यानी ईश्वर सिमरन आध्यात्मिक खुराक है 319
48. अभ्यास के लिए मार्गदर्शन 320

पृष्ठ संख्या

49. आत्म सिद्धि प्राप्ति का सही निर्णय 320
50. ब्रह्म और जीव का भेद 322
51. ब्रह्म स्थिति की व्याख्या और सत्मार्ग सम्बंधी आज्ञाएं 323
52. ब्रह्म ज्ञानी की पहिचान 325
53. नाम परायणता ही परम सिद्धि और शांति का मूल है 325
54. आत्म सिमरण की दृढ़ता और जीवन निर्वाह की प्रेरणा 326
55. कथा कीर्तन का निर्णय 327
56. अभ्यास और वैराग्य की दृढ़ता को धारण करने का आदेश (कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की व्याख्या) 328
57. प्रभु प्रेम कब प्रकट होता है 330
58. ओ३म् अक्षर की व्याख्या 331

गुरु शिष्य सम्बंधी पत्र

59. गुरु कृपा और जीवन सम्बंधी संशयों की निवृत्ति 332
60. गुरु शिष्य अन्तर तथा समर्पण बुद्धि का निर्णय 333
61. गुरु वचन विश्वास में दृढ़ता 334
62. गुरुदेव की अपने शिष्यों से अपेक्षा 334
63. गुरु उपदेश द्वारा मानसिक शांति हासिल करो 336
64. अन्दर के हालात बताने की मनाही 337

गुरु दीक्षा (नाम दान) के सम्बंध में मार्गदर्शन

65. गुरु आज्ञा के उलंघन पर दण्ड 338
66. बिना गुरु आज्ञा के दूसरों को नाम दान करने से हानि 340
67. नाम के सम्बंध में गुरुदेव का निर्णय 341

विविध पत्र

68. समर्पण कर्म और नाम सिमरन द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि 342
69. कर्त्तापन से कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति 343
70. जीव की गति 344
71. कर्म विज्ञान 345

		पृष्ठ संख्या
72.	ईर्ष्या के बदले प्रेम का आदेश	345
73.	समता साहित्य का स्वाध्याय करने की प्रेरणा	347
74.	समता के असूलों पर खुद चलें और दूसरों को आगाह करें	348
75.	देह परायणता का त्याग और आत्म परायणता का निश्चय धारण करना	349
76.	लोक सेवा तथा निर्मानता ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन	351
77.	देह की आधार शक्ति ही मालिके कुल है	352
78.	समता के असूलों पर कायम होने की प्रेरणा	352
79.	कर्त्तव्य पथ की याद (समता हिन्दू धर्म की जड़ है)	353
80.	समता ही असली खुशी है।	354
81.	समता की तालीम संगठन पैदा करती है	355
82.	समता की तालीम को अपनाकर देश और धर्म को जागृत करो	356
83.	मानसिक भाव को निर्मल करना ही असली शूरवीरता है	357
84.	परमार्थवादी पुरुष का परम यत्न	358
85.	दृढ़ विश्वास के लिए प्रेरणा	359
86.	शांति तथा अशांति अन्दर से प्रकट होती है	359
87.	जीव की शांति का उपाय	360
88.	भय	360
89.	परम शांति के साधन	361
90.	समतावादी पुरुषों का धर्म	362
91.	ईश्वर विश्वास की दृढ़ता	362
92.	गृहस्थ जीवन या विरक्त जीवन	364
93.	सिनेमा सदाचार का नाशक	366
94.	शिव भक्ति का स्वरूप	367
95.	एक प्रेमी को पत्रिका द्वारा सत् उपदेश	369

वाणी ग्रंथ श्री समता प्रकाश से

1.	ईश्वर महिमा	373
2.	मानव जीवन का उद्देश्य	374
3.	जीव उद्धारक नियम	376
4.	वैराग्य वाणी	378
5.	सत्पुरुषों की समानता	379

सत्पुरुष का जीवन परिचय

सत्पुरुष का जीवन परिचय

विचारशील मनुष्य के अन्दर ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि यह जीवन क्या है ? यह संसार क्या है? यह दिन-रात की हलचल, दौड़-धूप, सुख-दुःख की झाँकियाँ, परिवर्तन और जन्म-मरण का चक्कर यह सब क्या अर्थ रखते हैं ? मनुष्य की मानसिक इच्छा क्या है? इच्छा की तृप्ति किस तरह हो सकती है ? ईश्वर किसको कहते हैं ? उसका स्वरूप क्या है? और उसको कैसे जाना जा सकता है? जीवन के इन प्रारम्भिक प्रश्नों पर समय-समय पर आने वाले महापुरुषों ने अपने-अपने ढंग से प्रकाश डाला है। इन महापुरुषों के पवित्र जीवन और अनमोल वचन सदियों तक सांसारिक मनुष्यों को ठण्डक पहुँचाते रहे हैं।

सत्य एक है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के निर्माताओं, अवतारों और महापुरुषों ने उसी सत्य को ब्रह्म, निर्वाण, अल्लाह, एक ओंकार और समता-तत्त्व आदि शब्दों से पुकारा है और उस तत्त्व को अनुभव करने के लिए जीवन की पवित्रता पर ज़ोर दिया है। लेकिन प्रत्येक सुधारक सत्पुरुष ने सत्य की ठीक व्याख्या के अतिरिक्त अपने समय की सामाजिक कुरीतियों और उस समय की बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारने के नाना प्रकार के यत्न बतलाए हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता है क्रियात्मिक जीवन से हीन और स्वार्थी लोगों के द्वारा यह शिक्षा विकृत हो जाती है। जीवन के बाहरी या दिखावटी ढंग के आधार पर पक्षपात आ जाता है, धर्म का ग़लत रूप सामने रखा जाता है और इस कारण सामाजिक ढाँचा कमज़ोर हो जाता है। धर्म तथा महापुरुषों के नाम की आड़ में राक्षस-वृत्ति लोग भोली-भाली जनता को धोखा देते हैं, और अपनी नीच वासनाओं को पूर्ण करने के लिए जनता का शोषण करते हैं। इससे अंत में उपद्रव पैदा होते हैं तथा संसार में क्लेश का वातावरण निर्मित हो जाता है। जब-जब इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और जनता को इससे बचने का कोई रास्ता दिखलाई नहीं पड़ता तब तब महापुरुष इस संसार में आकर जनता को मार्ग दिखलाते हैं। जैसा कि महापुरुषों का कथन है: ''जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ।''(गीता)

''जब समता धर्म का प्रकाश लोप हो जाता है उस वक्त फिर सत्पुरुष आकर अमली ज़िन्दगी द्वारा प्रकाश दिखलाते हैं।'' (समता विलास)

सत्पुरुष महात्मा मंगतराम का जन्म इन्हीं परिस्थितियों में रावलपिण्डी ज़िले के गंगोठियाँ नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में 24 नवम्बर, 1903 को हुआ था। इनका बचपन और यौवन इसी स्थान में गुज़रे। इसकी घाटियों और जंगलों में आपने अपने दिन काटे तथा रातें बिता दीं। भूख, प्यास और नींद से बेसुध होकर, अपने शरीर से बेखबर रहकर घने पेड़ों की छाया में आपने उम्र काट दी। चाहे आंधी हो या तूफान, चाहे अंधेरी रातें हों या चांदनी-उनकी रातें एकान्त जंगलों में ही बीतती रहीं। आगे-पीछे की चिन्ता से मुक्त होकर वे अपने-आप में ही मस्त रहे। जीव-जन्तु भी अपने बिल बना लेते हैं, पक्षियों के भी नीड़ होते हैं, लेकिन इस ईश्वर के प्यारे ने आकाश को ही अपनी छत बना लिया था और धरती ही उसका बिछौना थी। किसी ने भी उन्हें सोचते नहीं देखा कि वह क्या खाएंगे और क्या पहनेंगे।

इनके पिता का नाम पं० गौरी शंकर और माता का नाम श्रीमती गणेशी देवी था। पिता रावलपिंडी के सुप्रसिद्ध धनिक सरदार सुजान सिंह के कारमुख़्तार थे। सत्य, अपरिग्रह और पूजा-पाठ ही इनके माता-पिता की वास्तविक सम्पत्ति थी। इनके दादा पं० सुन्दरदास जी तो सही अर्थ में संत थे। उनके जीवन का एक बड़ा भाग काश्मीर के घने जंगलों में तपस्या करके बीता। चार वर्ष की अवस्था में मंगत-राम जी के पिता का देहान्त हो गया। मरने से पहले उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रों से कहा था कि मंगत का भविष्य महान होगा। पं० गौरीशंकर जी ज्योतिषविद्या के ज्ञाता थे।

बालक मंगत में शिशु-सुलभ चंचलता का अभाव था। आप न तो चीखते-चिल्लाते थे और न ही हंसते-खेलते। चार-पांच वर्ष की आयु में ही आप आधी रात्री के समय जब माँ सो जातीं तो उठकर चारपाई पर बैठ जाते और ध्यान मग्न हो जाते। पांच वर्ष की आयु में स्कूल जाना प्रारंभ किया। एक दिन माँ ने नया कोट पहनाया। शाम को लौटने पर माँ देखती हैं कि स्वयं तो फटा कोट पहने हैं और अपना कोट किसी को दे दिया। इसी प्रकार अपना

सामान और अच्छा भोजन तो स्कूल में ग़रीब बच्चों को दे दिया करते और उनकी सूखी रोटी खाकर स्वयं पलते रहे।

जब आप सातवीं कक्षा में थे तब आपने चालीस दिन का कठिन तप किया। पढ़ाई की तरफ से आपका ध्यान हट चुका था, अधिकतर समय ईश्वर चिंतन में ही व्यतीत होता था परंतु फिर भी कक्षा में प्रथम आते थे। सन् **1916** के अन्तिम दिन थे। उस वक्त उनकी आयु **13** वर्ष की थी। एक रात ईश्वर याद में तल्लीन थे कि अचानक अन्तर में कोटि-कोटि सूर्य के समान रोशनी का अनुभव होने लगा। छत्तीसों प्रकार के राग-रागनियां सुनाई पड़ने लगीं। पल-पल में अनेक रूपों का अनुभव होने लगा। बाहर की कोई सुध न रही। इस प्रकार **13** वर्ष की आयु में योग-मार्ग का गुप्त रहस्य खुल गया तथा ईश्वर का साक्षात्कार हुआ। इस रात्री के तीसरे दिन घर के पास पीर ख़्वाजा के जंगल में (यह जंगल इतना भयानक था कि दिन में भी लोग वहाँ जाने से डरते थे) जब ईश्वर ध्यान में मस्त थे तो अन्दर से 'ओ३म् ब्रह्म सत्यम्' शब्द प्रकट हुए। दूसरे दिन 'निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा' और तीसरे दिन 'सर्वव्यापक कल्याण मूरत परमेश्वराए नमस्तं' प्रकट हुए। इस प्रकार ईश्वर का पूर्ण स्वरूप सत्पुरुष के मुख से बाल अवस्था में निम्न महामंत्र के रूप में प्रकट हुआ जिसका वर्णन वाणी में ग्रंथ श्री समता प्रकाश में किया गया है:

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा सर्व व्यापक कल्याण-मूरत परमेश्वराय नमस्तं

ईश्वर की अपार महिमा का अनुभव होने के पश्चात् सांसारिक जीवन तथा स्कूल की पढ़ाई उनके लिए निरर्थक थी। परंतु माँ के कारण घर नहीं छोड़ा। जब आठवीं कक्षा में थे एक दिन अंग्रेज इंस्पेक्टर स्कूल का इन्सपेक्शन करने आए। कक्षा में आकर प्रश्न किया, सेवा का क्या अर्थ है? सेवा किसकी करनी चाहिए और इससे क्या फल मिलता है? कक्षा में मंगत के अलावा किसी का हाथ न उठा। पूछने पर उन्होंने उठकर इन्सपेक्टर को पहले नमस्कार किया फिर बोले, ''दुनियाँ की हर वस्तु सेवा कर रही है- सेवा

करने के लिए ही पैदा हुई है। लेकिन इन्सान ग़रज़ रखकर सेवा करता है। ग़रज़ रखकर ही परिवार की, ख़ानदान की, मित्रों की, पीरों-फकीरों और देश की सेवा करता है। ग़रज़ रखता हुआ ईश्वर-खुदा की भी सेवा यानी दान-पुण्यादि करता है। बिना स्वार्थ के इन्सान मुश्किल से ही किसी की सेवा करता है। सबसे बड़ा कर्त्तव्य निष्काम सेवा है। ईसा, मोहम्मद, राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक आदि ने ईश्वर की याद और जीव मात्र की सेवा करने पर ही ज़ोर दिया है।

''अपने से बड़े बुजुर्गों माता-पिता, अध्यापक, गुरु आदि की सेवा करना सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। उसके बाद सम्बन्धियों और मित्रों की और फिर गाँव-शहर वालों की, देश की और सारे संसार की।

''ग़र्ज़ वाली सेवा से दुनियाँ के सुख मिलते हैं, निष्काम सेवा से निष्काम सुख मिलते हैं जो कभी भी समाप्त नहीं होते। ईश्वर हम सबको नफ़रत से परे रखता हुआ हर एक जीव की सेवा करने की अक्ल प्रदान करे जिससे उसके पास पहुँचने का रास्ता मिलता है। सच्ची सेवा उस खुदा की सेवा करना है।''

इतना कहकर आप बैठ गए। इन्सपेक्टर सुनते रह गए। शाम को हैडमास्टर ने घर पर बुलाकर कहा कि वे चाहते हैं कि मंगत एम.ए.तक पढ़े। आपने विनम्रता से कहा, ''आपकी बड़ी मेहरबानी है। अन्दर की हालत आपको समझायी नहीं जा सकती। यह मजबूर हैं।'' परीक्षा में प्रथम आए। हैडमास्टर ने आगे पढ़ने के लिए कहा तो कहने लगे, ''संसारी पढ़ाई काफ़ी पढ़ ली है। इनका मुद्दा पूरा हो जाएगा। असली तालीम को पूरा करना है जिसके लिए संसार में आना हुआ है।''

पढ़ना अक्षर एक का, और सकल है जाल ।
जाँ पढ़ने दुर्मत गयी, परगट भये दयाल ।।

वक्त जात है बावरे, रस्ता है बहु दूर ।
अटपट औखद घाट है, चढ़कर होवें मनूर ।।

पढ़ना एको नाम का, और पढ़न दे त्याग ।
'मंगत' निश्चल चित्त होवे, प्रेम हरी रस लाग ।।

इसके पश्चात् स्कूल जाना बंद कर दिया। अब सारा समय ईश्वर आराधना में ही व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे गाँव में बात फैलने लगी। लोग 'मंगत जी' तथा 'पीर जी' कहकर पुकारने लगे। परंतु माँ की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार पाँच वर्ष और बीत गए। माँ तथा सम्बन्धियों से बहुत आग्रह करने पर एम०ई०एस० के दफ्तर में पेशावर में नौकरी कर ली। वहाँ आपके जीवन का प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा। जब छुट्टी मिलती ज्ञान चर्चा प्रारंभ हो जाती।

राख से ढकी आग भी कभी न कभी चमक उठती है। एक दिन की बात है कि प्रहलाद के जीवन की घटनाओं के सम्बंध में बहस छिड़ गई। दफ्तर के कुछ साथी छुट्टी के दिन प्रेम वश आपसे ईश्वर चर्चा में तल्लीन थे। कुछ कहने लगे कि प्रहलाद जलते लौह-स्तम्भ से चिपटकर कभी नहीं बच सकता था। ये बातें सब मन-गढ़न्त कहानियाँ हैं। आपने उनकी बात सुनकर कहा, ''प्रभु भक्त जानबूझकर कोई चमत्कार नहीं दिखाते। न ही किसी तरह का प्रभाव डालने के लिए ऐसा करते हैं। सहज स्वभाव ही या कभी परीक्षा में पड़ जाते हैं, तो प्रकृति स्वयं ही उनकी सहायता हाज़िर होकर करती है।''

वहाँ उपस्थित कुछ सज्जन सत्पुरुषों के इन विचारों से सहमत न हुए। एक ने कहा कि न तो आजकल ऐसा भक्त है और न ही कोई ऐसा चमत्कार हो सकता है। इस पर उन्होंने उत्तर दिया, ''अगर आपके सामने ऐसी घटना हो भी जाए तो भी आपको सत्विश्वास नहीं आएगा। सिवाय 'वाह-वाह' के कुछ हाथ न लगेगा।'' जहाँ यह बात हो रही थी उसके पास ही एक तन्दूर जल रहा था। एक साथी ने कहा,'' क्या इस तन्दूर में हाथ या पैर डालो तो जलेगा नहीं? ऐसा कभी नहीं हो सकता। आग में पैर डालो तो सारी भक्ति बाहर निकल आये। ये सब गप्पबाज़ी है। हुआ कुछ होता है, लिख कुछ देते हैं।''

अभी यह बात चल ही रही थी कि सबने देखा कि मंगत राम जी का एक पैर तन्दूर में है। सब लोग घबरा गए। एक साथी ने दौड़कर पैर तन्दूर से निकाला। देखा तो एक बाल भी न जला था। सब सज्जन चरणों में गिर पड़े और क्षमा मांगने लगे। अभी तक उनका मंगत राम जी के प्रति मित्र भाव था, लेकिन इस घटना के पश्चात् वह उनसे बहुत दूर हो गए थे। उनकी यह हालत देखकर सत्पुरुष उनसे बोले, ''प्रेमियो! बहुत हठ न किया करो। अपने बुजुर्गों के जीवन से कुछ सीखो। बीती हुई बातों को महज़ गप्प समझकर न उड़ा दिया करो। इस घटना की बाबत किसी से कुछ न कहना। प्रभु आज्ञा से ऐसा ही होना था। शायद तुम्हारा विश्वास इसी तरह दृढ़ हो जाए।''

इस घटना के पश्चात् किसी आदमी को आपसे विवाद करने की हिम्मत न हुई। मना करने के बाद भी इस चमत्कार की बात फैलने से न रही। शहर से अनेक लोग उनसे मिलने लगे। चमत्कार का यह प्रभाव उनके लिए मुसीबत बन गया। इस कारण उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। कुछ दिन पश्चात् माँ तथा सम्बन्धियों के कहने पर हथकरघे का काम शुरू कर दिया परन्तु ईश्वर प्रेम के सामने यह संसारी धन्धा चौपट हो गया।

आपके दिन और रात वैसे ही पीर-ख़्वाजा के बन में, या ऊँची-नीची घाटियों में बहती तरेल नदी के किनारे कटने लगे। दिन बीते और रातें बीतीं, पक्ष बीते, मास बीते, ऋतुएं आ-आकर लौट गईं। कभी अंधेरी रातें आतीं, कभी चांदनी छिटक जाती। कभी बारिश आती, आंधी और तूफान आते लेकिन इस फ़कीर का नियम न बदलता। दुनियां से सब सम्बन्ध टूट चुका था। परन्तु माँ के कारण घर से जुड़े हुए थे। माँ ने कहा, ''मंगत, कुछ करो बेटा। ऐसे कैसे निभेगा?'' उत्तर दिया, "माँ! चिन्ता न करो, आपके लिए कुछ न कुछ किया जाएगा । जब तक आप हैं, घर में ही रहेंगे।''

कुदरत का करना, आपका ध्यान सहज में ही जड़ी-बूटियों की ओर जाने लगा। धीरे-धीरे रोगियों का इलाज प्रारंभ कर दिया। देखने में हिकमत का कार्य जीविका का साधन था, लेकिन वास्तव में यह उनकी उत्कृष्ट साधना थी समभाव की प्राप्ति के लिए, संसार और आत्मा को एक रूप देखने के लिए।

अत्यधिक सेवा भाव तथा प्रेम के कारण हिकमत खूब चलने लगी। इसको देखकर माँ ने विवाह का प्रस्ताव इनके सामने रखा। इस पर इन्होंने कहा, ''तेरी सेवा की खातिर यहाँ हैं। ज्यादा तंग किया तो छोड़कर कहीं चले जाएंगे।'' उस दिन के बाद माँ ने शादी के लिए न कहा। मार्च सन् 1929 को माता परलोक सिधार गईं।

माता के देहावसान के बाद आप अधिकतर समय एकांत में तथा धर्म प्रचार में बिताने लगे। खाना-पीना घटता जा रहा था। दिन में केवल दो तोले आटे की एक चपाती छाछ में पके साग से ग्रहण की जाती थी। अर्थात् महीने में केवल तीन पाव आटा खाते थे। हिकमत से जो पैसा आता था उससे समाज में सेवा भाव जागृत करने के लिए वार्षिक यज्ञ प्रारंभ कर दिया, जिसमें अन्न तथा विचारों की सेवा होती थी। धीरे-धीरे हिकमत का कार्य भी 1935 में समाप्त हो गया। अब महात्मा मंगत राम जी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के वास्ते अहमदाबाद, इन्दौर, बम्बई, काशी, हरिद्वार और लाहौर की यात्रा पर निकले। इनके एक शिष्य महन्त रत्नदास जी, जो कि अहमदाबाद में कबीर गद्दी के महंत थे, ने पहली बार उनके द्वारा उच्चारित **''योग चिन्तामणि''** वाणी लिपिबद्ध की। इस यात्रा के पश्चात् आपका अधिकतर समय घोर तप में व्यतीत होता रहा। काश्मीर के जंगलों तथा पहाड़ों पर काफी समय व्यतीत किया। उनके एक अन्य शिष्य भगत बनारसी दास जी ने, जो कि अंत समय तक उनके साथ रहे, तप के दौरान अंधेरी तथा बर्फीली रातों में जंगलों में बैठकर सत्पुरुष के मुख से निकली अमर वाणी को लिखा। धर्म के प्रत्येक पहलू पर वाणी प्रवाहित हुई। यह सम्पूर्ण वाणी ग्रंथ 'श्री समता प्रकाश' में संग्रहीत है। देश के बंटवारे के पश्चात् आप भारत में आ गए। बंटवारे के सम्बंध में आपने 16 जनवरी 1949 को काहनूवान में कहा था- ''जिन मुसीबतों को तुमने देखा है, वे नई नहीं हैं। पहले भी ऐसा होता आया है। ऐसी घटनाऐं शिक्षा देने वाली होती हैं। संसार में सिवाय अशांति के कुछ नहीं। स्वार्थी लोग सदा से ऐसा करते आए हैं। पिछली लापरवाहियों ने यह समय दिखाया है। अब भी समय है, आपस में अधिक से अधिक प्रेम पैदा करो। धर्म को समझो और धारण करो। अपना

आहार, व्यवहार, आचार और संगत शुद्ध करो। भ्रष्टाचार, माँस और शराब की ही यह कृपा है। यह आहार बुद्धि को जड़ बना देता है और ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि आपस में मिलकर बैठना असम्भव हो जाता है। इस कारण न सही सत्संग किसी से बन सकता है, न सही विचार। भ्रष्ट आहार और व्यवहार से विचार भ्रष्ट हो जाते हैं और आचार गिर जाता है। आपस में कट-कट कर मरने की लोग सोचने लगते हैं। खान-पान पहनावे और विचार की सादगी जब तक नहीं होती तब तक विचारों की एकता कभी नहीं हो सकती। ईश्वर सबको आपस में प्रेम बख्शें।''

इन विचारों से स्पष्ट है कि उन्होंने उस समय की अशांति को देखकर यह नतीजा निकाला था कि देश में ग़रीबी, दुःख तथा क्लेश का कारण चरित्रहीनता है। इसलिए उन्होंने देश की बिगड़ी हुई हालत को देखकर योग-मार्ग की शिक्षा पर अधिक ध्यान न देकर शुद्ध आचरण और सदाचारी जीवन पर अत्यधिक ज़ोर दिया तथा उत्तरी भारत में जगह-जगह घूमकर सदाचारी जीवन बनाने के लिए निम्नलिखित पांच नियमों को पालन करने की प्रेरणा दी।

1. सादगी, 2. सत्य, 3. सेवा, 4. सत्संग और 5. सत् स्मरण

इन नियमों को अपनाने से व्यक्ति तथा देश कैसे प्रगति कर सकता है तथा इनका यथार्थ स्वरूप क्या है, इसके बारे में उन्होंने केवल देशवासियों के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए लिखित रूप में ज्ञान हमको दिया है। यह सभी विचार 'समता विलास' नामक ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। इस ग्रंथ में सम्पूर्ण वैदिक दर्शन के गूढ़तम सूत्रों का सरल शब्दों में वर्णन है जिनको पढ़कर धर्म को व्यवहारिक जीवन से जोड़ने में प्रत्येक मानव सफल हो सकता है और अंधविश्वासों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। पूर्ण सिद्ध पुरुष होने के पश्चात् भी वह सुधारक के रूप में समाज के सामने आए। देश तथा व्यक्ति सुधार के प्रति वे कितने समर्पित थे यह उनके शिष्यों से हुई निम्न वार्ता से पता लगता है :

''प्रेमियों, तुम्हारे अन्दर यह पर-उपकार और देश-सेवा की तड़प चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर दुखियों के दुःख का अहसास चाहते हैं, तुम्हारे अन्दर एकता और सत्संग चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर अपने प्राचीन बुजुर्गों का आदर्श चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर ईश्वर-भक्ति और ईश्वर-परायण जीवन चाहते हैं। क्या तुम प्रेमी, सच्चे अधिकारी हमारी इस प्यास को पूर्ण करोगे?''

इस भाव को साकार रूप देने के लिए तथा देशवासियों का सदाचारी जीवन बनाने के लिए उन्होंने जगाधरी में 'समता योग आश्राम' तथा 'संगत समतावाद' की स्थापना की।

वह युगपुरुष एक बार पुनः मानव जगत को शांति, धर्म तथा उन्नति का वास्तविक मार्ग दर्शाकर 4 फरवरी सन् 1954 को परम सत्ता में विलीन हो गए।

प्रश्नोत्तर

संसार, शरीर, जीव तथा ईश्वर का स्वरूप

प्रश्न 1 : देह और जीव का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर : जीव और देह का सम्बन्ध मालिक और मकान के मुताबिक (अनुसार) है, अर्थात् शरीर रूप मकान में जीव रूप मालिक है। गीता में अधिभूत, अधिदेव, अध्यात्म स्वरूप प्रकृति का मालिक अधियज्ञ स्वरूप जीवन शक्ति का बयान है। इसका विचार करें।

प्रश्न 2 : देह और संसार का क्या भेद है ?

उत्तर : देह और संसार का भेद कोई नहीं है अर्थात् देह धारण करने से संसार का निर्वाह चलता दिखाई देता है। देह के नाश होने पर जाहिरी (प्रत्यक्ष) संसार लोप हो जाता है। देह और संसार का एक ही रूप है। देह करके संसार है। असलियत में संसार कोई चीज नहीं है। जैसी जिसकी देह है वैसा ही उसका संसार है। इसलिए देह पर काबू पाने से संसार पर काबू पाया जाता है। यह निश्चय करें।

प्रश्न 3 : महाराज जी, संसार क्या है ?

उत्तर : संसार शकूक (शंकाओं) का समुद्र है।

प्रश्न 4 : मेरा इस संसार से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर : अज्ञानता वश जीव अहं बुद्धि धारण करता है। इस कारण ही संसार में फैला हुआ है। जब बुद्धि साधन करते-करते नि:संग अवस्था को प्राप्त होती है तो आत्म स्थिति द्वारा संसार गायब (लोप) हो जाता है। सब शकूक नाश को प्राप्त हो जाते हैं। जीव परम सत्य में लीन हो जाता है।

प्रश्न 5 : महाराज जी, रामायण में भगवान राम के लिए आया है कि "चिदानन्दमय देह तुम्हारी" । कृपया इसे साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, अवतारों और महापुरुषों का शरीर भी पांच तत्वों का होता है। यहां यह भाव नहीं है कि उनका शरीर सत्-चित् आनन्दमय था। इस भाव को आगे खोला गया होगा।

प्रश्न 6 : प्रभु, कई विद्वान लोग कहते हैं कि अवतारों का शरीर पांच तत्वों का नहीं था। उनका शरीर दिव्य था या चिन्मय था?

उत्तर : प्रेमी, ऐसा नहीं है। सबका शरीर जो इस संसार में आया (पीरों अवतारों का भी) पांच तत्वों का था। लेकिन उनमें इतनी शक्ति होती है कि अगर चाहें तो शरीर को लोप कर सकते हैं।

प्रश्न 7 : दशरथ के पुत्र राम जी हुए हैं। क्या उनका सिमरन करने से भी कल्याण हो सकता है?

उत्तर : एक राम घट-घट बोले, एक राम दशरथ घर डोले।
एक राम का सकल पसारा, एक राम सब ही से न्यारा।।

बताओ प्रेमी, कौन से राम की भक्ति करना चाहते हो? पहले माया के चक्कर से छूटने की राह विचार करो।

प्रश्न 8 : भवसागर क्या है?

उत्तर : शरीर के भोग ही भवसागर हैं।

प्रश्न 9 : माया का क्या स्वरूप है ?

उत्तर : हर एक का शरीर ही माया है। आकारमई चीजें माया का स्वरूप हैं। माया ही भ्रम है।

प्रश्न 10 : ग्रंथों में मतभेद क्यों है? कोई कहते हैं कि वास्तव में संसार नहीं है। दूसरे कहते हैं कि संसार परमात्मा का ही विकास है?

उत्तर : स्कूल या कॉलेज में एम०ए० तक क्लासें हैं। इल्म ही हर जगह पढ़ाया जा रहा है। दसवीं वाले भी इल्म पढ़ते हैं। कायदे (नर्सरी क्लास) वाले भी इल्म पढ़ रहे हैं। अपनी अपनी बुद्धि के विस्तार के मुताबिक सत्पुरुषों ने संसार के मुतल्लिक (बारे में) बयान किया है। आखिरी फैसला एक ही है। एक ही परमेश्वर हर जगह व्याप्त है। किसी ने कहा है कि हर चीज में ब्रह्म ही विचर रहा है। किसी ने कहा है कि मैं ही ब्रह्म हूं। यह तर्जे बयान (वर्णन शैली) में फर्क है। असलियत एक ही है। जितना बुद्धि को ऊंचा किया जावे उसी कदर ज्यादा अनुभव होता है। जैसे कृष्ण ने कहा है कि मैं ही सब प्राणियों को चला रहा हूं। फिर एक जगह गीता में कहा गया है कि न मेरे में कोई है और न मैं किसी में हूं। बल्कि मैं असंग हूं, निर्लेप हूं। यह बुद्धि की स्थितियां हैं।

जितनी-जितनी बुद्धि आगे बढ़ती है उतनी-उतनी ही समझ आप से आप आती जाती है।

प्रश्न 11 : महाराज जी ईश्वर क्या है?

उत्तर : प्रेमी, कुल कायनात (संसार) में जो जीवन शक्ति चेतन सत्ता है, जिस करके हर शय (वस्तु), हर वजूद जिंदा है उसे ईश्वर कहते हैं।

प्रश्न 12 : जीवात्मा यानी जीव किसको कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, निश्चय शक्ति यानी बुद्धि जो सारे शरीर रूपी संसार के निज़ाम की देखभाल कर रही है, जीव कहलाती है। इस शरीर में ही कर्म इन्द्रियां, ज्ञान इन्द्रियां और मन से बढ़कर परम तत्व बुद्धि को ही माना गया है। बुद्धि से परे आत्मा सबसे श्रेष्ठ सत्तत्व है। इस वास्ते उसको इन्द्रिय-अगोचर महापुरुषों ने कहा है। प्रेमी, इस तरह तत्व ज्ञान का वर्णन किसी समय हुआ करता था। यह तालीम ही चित्त के खेद को हरण करने वाली है। इसी तरह विचार करते रहा करो।

प्रश्न 13 : महाराज जी, ईश्वर का स्वरूप क्या है?

उत्तर : प्रेमी जी, ईश्वर एक स्थिति का नाम है जो ख्वाहिश और फेल यानि वासना और कर्म से न्यारी है यानी गुणातीत है।

प्रश्न 14 : महाराज जी, भगवान् जो अजन्मा है, निराकार है- उसका कोई स्वरूप, शक्ल और सूरत नहीं, कोई जिस्म नहीं, कोई हाथ नहीं, आदि आदि। लेकिन आपके ग्रंथ में जगह-जगह वाणी में चरण कंवल का अक्षर आया है। इस पद से आपका क्या तात्पर्य है?

उत्तर : प्रेमी, अन्दर जो सत्स्वरूप विराजमान है, जिसको तुम अभ्यास और सिमरण करते-करते अनुभव करोगे, उसको आदर भाव लिए हुए अपने आप को समर्पण करने की भावना से जो कहा जाता है, उसको चरण कंवल की तशबीह (उपमा) देकर समझाया गया है। परमात्मा का सिर तो आज तक किसी ने देखा नहीं, तो चरण कहां से होंगे? यह एक आजज़ी (नम्रता) का भाव है कि उस महान् सत्ता के सामने अपने आप को झुका डालना। जब जीव झुकता है तब चरण की तरफ ही पहले दृष्टि जाती है। इस वास्ते भगवान के प्रति जो कुछ भी विचार वाणी में प्रकट हैं वे आजज़ी और आदर के भाव को लेते हुए चरण कंवल

के नाम से कहे गए हैं। इस असत् शरीर में जो सत् अविनाशी तत्त्व है, उसको संत लोगों ने चरण कंवल के नाम से पुकारा है। दूसरे भावों में इस दु:ख रूपी शरीर में जो पूर्ण सुख रूपी तत्त्व है, उसी को संतों ने चरण कंवल का नाम दिया है।

प्रश्न 15 : महाराज जी, ईश्वर का क्या स्वरूप है? मेहरबानी करके इस मसले को साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, तुम्हें बहुत थोड़े में इसको साफ कर देते हैं। तसल्ली व नातसल्ली हालत से अबूर (मुक्ति) पाकर अपने आप के निज स्वरूप में स्थित होना ही ईश्वर है, दूसरा बुद्धि की निश्चल हालत ही ईश्वर है।

प्रश्न 16 : महाराज जी, शास्त्रों में एक तरफ आत्मा को कर्त्ता मानकर सारी जिम्मेदारी उसके ऊपर डाल दी जाती है और दूसरी तरफ यह भी कहा गया है कि वह अकर्ता है। ये दोनों बातें एक दूसरे की विरोधी हैं, आप इस बारे में जरा साफ करने की कृपा करें?

उत्तर : प्रेमी, आत्मा के ही ये दोनों स्वरूप एक दूसरे के मुकाबले में जीवों की समझ के मुताबिक सत्पुरुष बयान करते आये हैं। असलियत में न वह कर्त्ता है न अकर्ता। जब तुम इस अवस्था तक पहुंचोगे तो सारा भेद तुम्हारे सामने खुल जावेगा। आत्मा को कर्त्ता मानना और अपने आपको निमित्त मात्र उसकी आज्ञा में देखना, अपने आप को निर्बन्धन करने का एक उपाय है। दूसरी तरफ ऐसा करते-करते बुद्धि जब उस अवस्था तक पहुंचती है, तब सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व को समझने लगती है और वह देखती है कि गुण-गुण में बरत रहे हैं, आत्मा निर्लेप है, अकर्ता है। इससे और ऊपर जब बुद्धि पहुंचती है तो उसका स्थान और तवाज़ुन (संतुलन) इतना सूक्ष्म हो जाता है कि वह कर्त्ता और अकर्ता के टण्टे (झगड़े) से उठकर एक ऐसी स्थिति में पहुंचती है जिसका बयान नहीं किया जा सकता। यह स्थिति गूंगे का गुड़ है, जो स्थिति प्राप्त करके ही जाना जा सकता है।

प्रश्न 17 : महाराज जी, जीवात्मा और आत्मा में क्या भेद है?

उत्तर : प्रेमी, जो बुद्धि अनानियत (अहंकार) में गिरफ्तार है उसको सत्पुरुषों ने जीवात्मा कहकर पुकारा है और आत्मा के बारे में जो कृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय में वर्णन किया है, वह यथार्थ है। उन्होंने कहा है कि आत्मा

पृथ्वी के समस्त प्राणियों में व्याप्त है, तू इसको अविनाशी करके जान। इस अविनाशी तत्त्व का नाश नहीं होता, न ही यह पैदा होता है न मरता है, ऐसा भी नहीं है कि अब है और आगे नहीं होगा या नहीं हुआ था। इस आत्मा को न शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न वायु सुखा सकती है और न जल गीला कर सकता है। यह मन तथा इन्द्रियों की पहुंच से परे है। यह सदा अजन्मा, नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है। आत्मा अव्यक्त है और विकार रहित है। जैसे एक सूर्य सारी पृथ्वी को प्रकाशित करता है वैसे ही आत्मा संपूर्ण शरीर को प्रकाशित करती है।

प्रश्न 18 : महाराज जी, सत् असत् का किस तरह विचार किया जावे?

उत्तर : दृष्टा दृश्य जिस कदर भास रहा है इस सारे प्रपंच को क्षणभंगुर विचार करो, क्योंकि यह नाना प्रकार का नाम रूप जगत जो देखने में आ रहा है हर घड़ी हर लम्हे बदल रहा है। यह सब असत् है। वक्त पाकर यह सब नाश को प्राप्त हो जाता है।जो चीजें दूसरे के आधार पर हैं सब असत् हैं। जो चीज स्वभाव सहित है वह असत् है। यह पांच तत्व की प्रकृति जो गुण सहित है, यह ही माया का रूप है, सदा बदलती रहती है इस वास्ते यह सब असत् है। यह दृश्यमान संसार तृखावंत और अशान्त स्वरूप है। अज्ञानता के कारण जीव असत् को सत् मान रहा है और दिन रात भटक रहा है। इसे कोई तसल्ली का रास्ता दिखाई नहीं देता। प्रेमी, तुम्हें सत् की खोज की क्या पड़ी है तुम्हारी सेहत अच्छी है, धन दौलत में कमी दिखाई नहीं देती। स्त्री बच्चे और भी सुख भोग मौजूद हों तो वह सत् की तलाश नहीं कर सकता। पहले सब सुख को तिलांजली दो तब सत् का पता लगेगा। सत् को ईसा ने समझा, मंसूर ने जाना, मुहम्मद ने पाया, मोरध्वज, राम, हरीशचन्द्र, गुरु गोबिन्द सिंह, मीरा आदि सत्पुरुषों, गुरु अवतारों ने समझा। इस देश में अनगिनत सत् के मुतलाशी (जिज्ञासु) हुए हैं। यह जितने वेद शास्त्र ग्रंथ आदि आज के भंडार देखते हो सब सतवादी पुरुषों की रचना है।

सत् का मंडन पाखंड खंडन सतपुरुष जग आए।
पाप विखाद का नाश करन ते केते दुख उठाए ।।

सत् की खोज करने वालों के सम्बंध में जितना कुछ सुना समझा जावे उतना ही थोड़ा है। उद्यम धारण करो। सत् को सिमरो तो सत् को पा

सकोगे। आम जीवों की तरह पच पच कर मत मरो। संसारी सुखों की प्राप्ति के लिए जीव चिरकाल से यत्न करते चले आ रहे हैं, किसी को आज तक तसल्ली नहीं हुई। हाय हाय करके खत्म हो गए, उनके नामों निशान मिट गए। जिन्होंने सच्चाई का रास्ता इख्तियार (धारण) किया वह खुद अमर हो गए और आने वालों के लिए रास्ता बना गए। आपको चाहिए कि गुणी पुरुषों का जीवन विचार करके अपने आप को सच्चाई के मार्ग पर दृढ़ करें। शारीरिक सुखों से ऊपर उठो। इस समय तुमको मौका मिला है इसका लाभ उठाओ, फिर शायद आने वाले समय में तेरे रास्ते में कई रुकावटें आ जाएं। आज बहुत सुखी है कल दुख भी आ सकते हैं, कभी एक जैसा समय नहीं रहता।

प्रश्न 19 : महाराज जी, ब्रह्म किसे कहते हैं? उसे कैसे जाना जा सकता है?

उत्तर : तेरी अपनी ही एक स्थिति यानी हालत का नाम ब्रह्म है। जब तू उस स्थिति को सिमरण अभ्यास एवं योग द्वारा जान जाएगा, तू ही ब्रह्म स्वरूप हो जाएगा और तुझे सारे भेद का पता लग जावेगा। प्रेमी, जब प्राचीन काल में ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों से कोई ऐसा प्रश्न कर देता था तो वे केवल खामोश रहते थे, कोई उत्तर नहीं देते थे, क्योंकि इन्द्रियों द्वारा जिस हालत का बोध न हो सके, और जो मन-बुद्धि से परे हो, ऐसे परम तत्व के बाबत कोई जबान द्वारा क्या बयान करे? जो केवल अनुभव मात्र का विषय है उसे कैसे समझा जा सकता है। बुद्धि जब आत्मा में लीन होती है तब स्वयं ही ब्रह्म स्वरूप हो जाती है।

प्रश्न 20 : महाराज जी, चतुर्भुज भगवान नारायण शेषनाग पर विराजमान हैं-इस से क्या भाव है?

उत्तर : प्रेमी, यह सब अन्दरूनी (आन्तरिक) अवस्था का वर्णन है। नाभि कंवल को शेषनाग करके दर्शाया गया है और नाद् शब्द को नारायण का रूप दिया गया है क्योंकि शब्द स्वरूप भगवान् की अनुभवता नाभि कंवल से होती है।

प्रश्न 21 : महाराज जी, शब्द का खुलासा करने की कृपा करें।

उत्तर : प्रेमी, शब्द ही जीवन शक्ति है। उसी को आत्मा, ब्रह्म, नाद इत्यादि नाम करके वर्णन किया गया है। शब्द आत्मा का स्वरूप है। वह अगोचर है।

प्रश्न 22 : महाराज जी, ईश्वर का असली नाम क्या है?

उत्तर : प्रेमी, ईश्वर के नाम सत्पुरुषों ने ग्रन्थों में कई तरह बयान किए हैं। जैसी-जैसी प्रभु की महिमा विचार में आई वैसा-वैसा नाम धरते गए। वास्तव में असली नाम कोई नहीं। वह अनामी है।

प्रश्न 23 : ईश्वर और जीव में क्या भेद है?

उत्तर : पहले शरीर को समझोगे तब इस नुक्ते का हल होगा। जिस वक्त शरीर को कष्ट होता है, उसमें से वाणी उठती है कि मुझे तकलीफ है। अगर कोई शरीर का अंग टूट जाता है तो कहता है मेरा अंग टूट गया है। इससे मालूम हुआ कि शरीर में एक चीज है जो इस शरीर को मेरा-मेरा कहती है, जैसे मेरी आंखे, मेरे हाथ, मेरे रिश्तेदार, मेरा कुनबा वगैरा। इससे साबित हुआ कि मेरा कहने वाला दरअसल शरीर से अलैहदा है। वरना वह कहता कि वही शरीर है, न कि 'शरीर मेरा है'। जो शक्ति शरीर के कर्मों की अभिमानी है उसको जीव कहा गया है। जो शरीर के कर्मों दुखों-सुखों को महसूस करती है वह ही जीव है। जब तक बुद्धि शरीर की ममता में है तब तक ईश्वर का बोध नहीं हो सकता। सत्पुरुषों की वाणी और शास्त्रों को पढ़कर मानता है मगर अन्दर से न प्रीत है, न प्रतीत। जब तक अन्तर विखे (अंतर्गत) बुद्धि शरीर के दु:खों में गिरफ्तार है, उसको अनुभव नहीं कर सकती। लेकिन जब बुद्धि गंभीर हो जाती है और शरीर के दु:खों और सुखों से अबूर (छुटकारा) पा जाती है, तब उसको बोध हो जाता है कि शरीर तत्वमयी है, मैं शरीर से भिन्न हूं, शरीर किसी खास शक्ति पर चल रहा है।

जब शरीर और शरीर की ममता से अलैहदा (विलग) होता है तब वह परम तत्व अन्दर प्रगट हो जाता है। वास्तव में ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं है। विज्ञान को पहुंचा हुआ ईश्वरवादी है। संसार को जीतने वाला वही है जो शरीर को जीतने वाला है। शरीर की ममता से आज़ाद होना ही सही मार्ग है। जब इस पर पूरा कण्ट्रोल हो गया, तब वह सब दुनिया का मालिक हो गया। चक्रवर्ती राजा भी ऐसे गुणी पुरुष की गम्भीर अवस्था को देखकर उसके चरणों में झुकते हैं।

प्रश्न 24 : महाराज जी, समता का असली अर्थ क्या है?

उत्तर : 'समता' का असली अर्थ यह है कि हर हालत में एक रस रहना, ग्रहण और त्याग की कामना से मुक्ति हासिल करनी.......। समता ईश्वरीय

शक्ति का यथार्थ स्वरूप और गुण है। समता स्वरूप ईश्वरीय सत्ता सदैव काल एकरस होकर विचरती है। किसी वस्तु का विखेप (विक्षेप) उसको स्पर्श नहीं कर सकता– यानी त्रिकाल आनन्दसरूप है। इसी समताभाव को जब जीव अन्तरविखे अनुभव करता है, तब उसके सब बन्धन कर्म नाश हो जाते हैं और अचल शाँति को प्राप्त होता है।

प्रश्न 25 : महाराज जी, कैसे यकीन किया जाए कि आत्म–शक्ति सब जगह मौजूद है। शरीर में वह शक्ति काम करती हुई आंखों से नज़र नहीं आती। कृपा करके इसे ऐसे तरीके से समझायें कि यह समझ आ जाए?

उत्तर : प्रेमी, रोज़ाना तुम्हारे तजुर्बा में यह बात आ रही है कि यह दूध जिसे तुम देखते हो, क्या उसमें घी दिखाई देता है? दूसरे मेहन्दी के पत्ते शायद तुमने सूखे या हरे देखे होंगे, क्या उनमें लाली नज़र आती है? चकमक एक किस्म का पत्थर होता है, उसमें या माचिस या दियासलाई में क्या आग दिखाई देती है? गन्ना तुमने देखा होगा क्या उसमें मिठास यानि गुड़ दिखाई देता है? चीनी भी इसमें से निकलती है। अनुभव द्वारा समझने वाली इन सब चीजों में घी, लाली, अग्नि, मिठास इन आंखों से नहीं देखी जा सकती है लेकिन अंतरविखे बुद्धि, ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हर घड़ी इन कोटों चीज़ों में विचार कर रही है। कभी भी ग़लती नहीं लग सकती। इसी तरह ज्ञानी संसार में हर समय ईश्वर को ज्ञान नेत्रों द्वारा अनुभव कर रहा है। अज्ञानी को जहां पत्थर दिखाई दे रहा है, भक्त को उसमें भगवान नजर आता है। पंडित ने धन्ना भक्त से मख़ौल किया, तोलने वाला पत्थर दे दिया कि इसकी पूजा किया कर। धन्ने ने उसमें भगवान को पा लिया। मतलब यह कि जिस कद्र दृढ़ विश्वास हो जाए तो हर चीज़ में वह उस परम शक्ति का विचार करते हुए चलेगा। ऐसा समझकर कि वह जीवन शक्ति उसी तरह हर शरीर के अंदर रोम–रोम को शक्ति दे रही है, वह उसे अनुभव करेगा। जिन्होंने इस शरीर के अन्दर उस परम सत्ता को अनुभव किया, उनको ही भक्त, ऋषि, मुनि, गुरु कहा जाता है। जिस तरह साधन द्वारा घी, अग्नि, लाली, मिठास प्राप्त होती है, उसी तरह शरीर के अंदर भी वैसे ही साधन द्वारा उस परम ज्योति का साक्षात्कार होता है। तुम जिस समय सही कोशिश करोगे, अपने अंतर विखे आत्म सत्ता को अनुभव कर सकोगे।

प्रश्न 26 : महाराज जी, ऐसा कहा गया है–
'ईश्वर अंश जीव अनिवाशी, चेतन अमल सहज सुखरासी'
अर्थात् जीव शुद्ध ब्रह्म है। वह अज्ञानी कैसे हो गया ?

उत्तर : [यदि ब्रह्म को सर्वज्ञ मानें तो यह मानना पड़ेगा कि अज्ञान जीव में है, न कि ब्रह्म में। तब कमी जीव में मानी जायेगी, न कि ब्रह्म में। उस स्थिति में जीव और ब्रह्म के भेद को मानना पड़ेगा। उस हालत में ब्रह्म की अनन्तता न रह पायेगी। यदि ब्रह्म को परिपूर्ण मानें तो जीव और प्रपंच की सत्ता के अभाव का प्रसंग आता है। परन्तु जीव और संसार की अनुभूति हो रही है, इसलिये इनकी नितान्त असत्ता का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि जीव और संसार को भ्रम रूप मानें तो प्रश्न उठता है कि यह भ्रम किसे हुआ–जीव को या ब्रह्म को ? यह पुरातन काल से चली आ रही बहस है। इस बहस के सम्बन्ध में गुरुदेव ने उत्तर दिया।] यह सब दलीलबाज़ी है। जब तक अपना अनुभव न हो तब तक यह भ्रम निकल नहीं सकता। आख़िरी फैसला यह है कि भ्रम स्वरूप सब संसार है। वास्तव में एक ही शक्ति कई सूरतों में दिखाई देती है।........ अज्ञान में ये सूरतें दिखाई देती हैं। जब अज्ञान दूर हो गया सब भेद नाश हो गया।....... दलील–बाज़ी सब व्यर्थ है। हस्ती (अस्तित्व, सत्ता) की तलाश करो और हस्ती के विश्वासी बनो। 'ब्रह्म को भ्रम हुआ, या जीव का भिन्न रूप है', यह सब वहम है। फ़नाह (मृत्यु) और बक़ा (जीवन) की तहक़ीकात (खोज) करो। बक़ा में फ़नाह न पाओगे, लेकिन फ़नाह में बका को हासिल कर सकोगे। यह ही आश्चर्य है। माया में ब्रह्म परिपूर्ण है लेकिन ब्रह्म में माया का भेद नहीं है। इस मसले (समस्या) को हल करते–करते सब मर गये, मगर बुद्धि और विचार की दौड़ से इसका हल नहीं मिला ।.........

"सब चक्र फ़ाइलियत (कर्तृत्वभाव) का चल रहा है और फ़ाइलियत (कर्त्तापन) कर्म की कैद में खड़ी है। असलियत में न कर्त्तापन है और न ही कर्म है।[1]" अज्ञान यानी अहंकार की दो सूरतें हैं। मन जब कर्म की क़ैद में आया तब कर्त्ता (फ़ाईल) होकर उत्पत्ति और प्रलय[2] को देखा, जब कर्त्तापन को छोड़ा, तब न कर्म (फ़ेल) रहा, न सज़ा न जज़ा– [दुःख–सुख रूप कर्मफल]। इस वास्ते कर्त्तापन कर्म करके और कर्म कर्त्तापन करके हैं। साक्षी

1 मूल में अधिकतर 'फ़ाइलियत' और 'फेल' शब्द प्रयोग किये गये थे। पाठकों की सुविधा के लिए 'कर्त्तापन' और 'कर्म' शब्दों को यहाँ प्रतिस्थापित किया जा रहा है।

2 आग़ाज और इख़्तताम।

शक्ति इससे अलहदा (भिन्न) है, जो कर्म और कर्त्तापन को महसूस कर रही है। कर्म और कर्त्तापन का नाम ही अज्ञान यानी भ्रम है। जब अपने असली स्वरूप को जान लिया तब सब छाया ग़ायब हो गई। इस मसले को कोई हल न कर सका कैसे कर्त्ता हुआ क्यों हुआ और कौन हुआ। महापुरुषों ने अपने-अपने विचार द्वारा इन हालात को ब्यान किया है। आख़िर सबने हस्ती (सत्ता) को माना, किसी ने उसे कर्त्ता माना, किसी ने अकर्त्ता माना, किसी ने उसे इनसे अलग (अलहदा) करके माना। हर सूरत में एक ही सूरत का करिश्मा (चमत्कार) है। उसी में सब कुछ है और सब कुछ वही है-इस मसले में आकर सब ग़र्क हो गये।

"अपनी कल्पना से संसार है, अपने अकल्पित होने से खुद आप ही है। इस वास्ते अकल्पित होने के साधन करें.......। जिस्म और जान का विचार करें कि तुम्हारा रूप जिस्म (शरीर) है कि जान (जीवनशक्ति)। अगर जिस्म है तो तुम एक बाल भी नहीं बना सकते, अगर जान मानो तो उसे पहचान नहीं सकते। इस वास्ते अपनी असलियत की तहक़ीक़ात करो कि तुम क्या हो और सब वहमों को छोड़ दो। इस जुस्तुजू (प्रयास) से सब हालत को पाओगे।......."

"अगर ईश्वर को मानो तो वह एक बात है, अगर अपनी तलाश करो तो वह ही बात है। एक ही असलियत हर रंग में है। तड़प ही ज़िन्दगी है, बेतड़प मुर्दा है। सच्चाई की तलाश ही सच्चाई और शान्ति है, सच्चाई का भूलना ही गफ़लत (अविद्या) और अज़ाब (दु:ख) है।"

आवागमन या पुनर्जन्म

प्रश्न 27 : आवागमन क्या है?

उत्तर : बुद्धि नाशवान दु:ख रूप इन्द्रियों के भोगों में अविनाशी सुख प्रतीत करती हुई नित ही इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होकर नाना प्रकार के भोग भोगती है। मगर नित ही अशांत और भयभीत रहती है। आखिर शरीर विनाश को प्राप्त होता है और बुद्धि अधिक संकट लेकर इस शरीर से जुदा होती है। फिर वासना अनुसार दूसरे शरीर को धारण करती है। इसी तरह शारीरिक भोगों की आसक्ति को धारण करके अनेक योनियों में विचरती है और दु:ख-सुख में भरमती रहती है। यह ही आवागमन रूप संसार है।

प्रश्न 28 : पैदायश (उत्पत्ति) का क्या कारण है, अर्थात् जीव को देह क्यों कर मिली?

उत्तर : जीव के देह धारण करने का कारण कामना है। जिस वक्त कामना अन्त:करण से प्रकट हुई उस वक्त देह की कैद में आ गया अर्थात् देह स्वरूप को धारण करके जीव अपनी कामना पूर्ण करने की कोशिश करने लगा। इस कामना का नाम ही माया भ्रम है।

प्रश्न 29 : देह के नष्ट होने पर जीव की क्या हालत होती है?

उत्तर : देह के नाश होने से जीव दूसरी देह को धारण करता है, उसी क्षण में अपनी ख्वाहिश के मुताबिक। यह उपदेश अर्जुन को श्रीकृष्ण ने समझाया है कि जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतारकर नये धारण कर लेता है, उसी तरह एक देह से दूसरी देह में जीव प्रवेश करता है। नग्न हालत अर्थात् बगैर योनि प्रवेश के एक लम्हा (क्षण) भी अलग नहीं रह सकता।

प्रश्न 30 : शरीर छोड़ने के बाद क्या रूह को उसी समय फिर चोला मिल जाता है या किसी दूसरी जगह और हालत में भी रूहें रह सकती हैं?

उत्तर : जब तक भोग वासनायें चित्त में उत्पन्न होती रहती हैं, जीव चाहे जिस हालत में भी रहे भटकन बनी रहती है, जीव का सफ़र ख़त्म नहीं हो सकता यानि ठिकाने नहीं लग सकता। शारीरिक यात्रा का सफ़र खत्म हो जाने से इसकी खुलासी नहीं हो जाती। एक शरीर छोड़ने के बाद दूसरा शरीर धारण करने तक

कोई देर नहीं लगती। जिस तरह जोंक चल रही है, (इशारा जोंक की तरफ करते हुए) अगला मुंह जब तक तिनका पकड़ नहीं लेता तब तक पिछला हिस्सा उठाकर आगे नहीं बढ़ती, यह ही हर एक जीव का हाल है। जिस भी शरीर में जीव रहे हर तरह की शारीरिक कैद दुख का ही स्वरूप है। भोग वासनायें बार-बार जीव को जन्म-मरण के चक्कर में ले जाती हैं। राजा, राना, अमीर, गरीब, भिखारी, पशु, पक्षी या जल में विचरने वाले या आकाश में उड़ने वाले सब भोग वासना को पूर्ण करने में लगे हुए भटक रहे हैं। किसी भी आकारमई हालत में हो किसी को आराम नहीं। बग़ैर तत्व ज्ञान के कभी भी जीव इस जीवन संग्राम में शांति नहीं पा सकता। न ही इसका सफ़र पूरा होता है। पशु, पक्षी, जमीन के अन्दर रहने वाले कीड़े मकोड़े, सांप, लाखों किस्म के शरीरधारी जीव जो हैं, अपनी-अपनी प्रकृति का ज्ञान सबको है। मगर तत्व ज्ञान इस मनुष्य देह में ही पाकर बन्धन से जीव निर्बन्धन हो सकता है। दूसरी रूहों को छोड़ो। अपनी रूह की बन्धन अवस्था को पहले जानो और फिर बन्धन से निर्बन्ध होने की सोचो।

प्रश्न 31 : महाराज जी, क्या शरीर के जीवित रहने की खास उम्र (निश्चित अवधि) होती है?

उत्तर : प्रेमी जी, शरीर की कोई खास उम्र नहीं होती। कर्म के मुताबिक शरीर बनता है और कर्म के मुताबिक बिगड़ता है। कोई खास मियाद बिगड़ने की नहीं होती है। वास्तव में शरीर ही कर्म रूप है। इसको क्षणभंगुर कहा गया है अर्थात् एक पलक में नाश होने वाला। इस वास्ते जो भी समय जीवन-यात्रा का गुज़रे, पवित्र भाव से गुजारना चाहिए। यह ही लाभ इस नाशवान शरीर का है।

प्रश्न 32 : वेदों में आया है कि मैं सौ साल तक जीवित रहूं, मेरी आयु दीर्घ हो?

उत्तर : प्रेमी जी! भावार्थ तो यह है कि मेरी इतनी लम्बी उम्र हो कि मैं अपने निज स्वरूप की प्राप्ति कर सकूं और फिर बाकी ज़िन्दगी जनता की सेवा में गुजार सकूं। और लाल जी! यह शरीर तो तीन काल नश्वर है। सौ साल उम्र प्राप्त कर भी ली तो खोखले पिंजर को रखकर क्या करोगे। इसलिए जल्दी-जल्दी आवागमन के चक्र से निकलने का उपाय करो।

प्रश्न 33 : क्या अकाल मृत्यु कोई चीज है?

उत्तर : अकाल मृत्यु कोई चीज नहीं है, सिर्फ तीन तापों से शरीर का नाश होता है:-

(1) आधि अर्थात् मन के अत्यधिक खेद से।

(2) व्याधि अर्थात् शारीरिक रोग से।

(3) उपाधि अर्थात् बाहर के किसी हादसा (दुर्घटना) से।

ये तीनों ताप कर्मानुसार प्राप्त होते हैं और लाज़मी (अनिवार्य) हैं। शरीर का मृतक होना इन्हीं कारणों से है। यह संसार अधिक कठिन है। एक प्रभु के परायण होकर ही तमाम तोहमात (भ्रमों) से छुटकारा मिलता है और जीवन-यात्रा के सही मकसद (उद्देश्य) को हासिल कर सकता है। शरीर का नाश होना लाज़मी (अनिवार्य) है ख्वाहे (चाहे) किसी वक्त भी होवे। इस वास्ते इस क्षणभंगुर शरीर से जो कार्य परमार्थ अनुकूल होवे जल्दी कर लेना चाहिए।

प्रश्न 34 : महाराज जी, जीवात्मा के आवागमन के बारे में आपका क्या ख्याल है?

उत्तर : प्रेमी, कुरान शरीफ में दिया हुआ है या नहीं, कि आकबत के दिन रूहें उठेंगी और उनको उनके एमाल के मुताबिक दोज़ख (नरक) या जन्नत (स्वर्ग) मिलेंगे।

प्रेमी : जी हां, ऐसा दिया हुआ है।

श्री महाराज जी : अच्छा प्रेमी जी, अब यह बतलाइये कि एक इन्सान बड़ा परहेज़गार है, उसके एमाल (कर्म) बहुत नेक हैं, मगर उसका जिस्म बड़ा नाकिस है, किसी जगह से टेढ़ा, लंगड़ा, काना और भी जिस्म में कई नुक्स हैं। क्या उसको उसके नेक एमाल के मुताबिक बहिश्त मिलेगी या नहीं? अगर मिलेगी तो बतलाइये कि किस जिस्म में मिलेगी। अगर इसी नाकिस जिस्म में मिलती है तो खुदा बे-इन्साफ हो गया, उसे क्या बहिश्त मिली? अगर नया जिस्म मिलता है तो यह आवागमन नहीं तो और क्या है?

कर्म चक्र तथा प्रभु कृपा

प्रश्न 35 : महाराज जी, वाणी में एक जगह आया है–
कल्याण स्वरूप जीव ब्रह्मचारी ।
आयु दीरघ अरोग पधारी ।।
फिर यह तकलीफ़ आपके पास कैसे आ गई?

उत्तर : प्रेमी, पहले अच्छी तरह शब्द पढ़ा करो। जिस बात का पता न होवे पहले पूछ लेना चाहिए। शरीर तो नित्य ही रोग रूप है, चाहे सन्त का हो, चाहे संसारी का। कल्याणकारी जीवन उन ही सत्पुरुषों का है जिनकी बुद्धि नित्य ही परम तत्व आत्मा में स्थित है, आत्मा की खोज में लगी हुई है, आत्म परायण होने का यत्न कर रही है। पारब्रह्म परमेश्वर के ही रूप में जिनकी बुद्धि अन्तर्गत नित्य लीन हो रही है, इन नौ द्वारों के कोट गढ़ में विचरती हुई इसके दु:ख सुख से उपरस है और हर समय ब्रह्मानंद में विचरने वाली है, वह ही असल में ब्रह्मचारी है। उनको ही अरोगी समझो। शरीर तो मियादी है और नित्य ही रोगी है। जो इन नौ द्वारों के भोग पदार्थों को प्राप्त करके क्षणभंगुर रसों में फंसा हुआ है वह ही नित्य तृष्णा रूपी रोग में ग्रसा हुआ है। जिसने शब्द स्वरूप में स्थिति पाई है वह ही असली ब्रह्मचारी है। वैसे तो हर शरीरधारी जीव की बुद्धि पलक–पलक विखे शारीरिक लालसा में फंसी रहती है एवं शारीरिक मानसिक रोगों में जकड़ी हुई युग–युग तक भटकती रहती है। ब्रह्म तत्व का विचार करने वाले, उसका रूप हो जाने वाले, दीर्घ आयु वाले (हमेशा की शान्ति) को प्राप्त कर लेते हैं। जिनके अन्दर से इस बात का अभाव हो गया है कि मैं मर जाऊंगा, मैं दु:खी हूं, सुखी हूं वह ब्रह्मचारी नित्य ही अपने आप को अजर–अमर अविनाशी जानते हुए अरोग रहते हैं। शारीरिक रोग आते–जाते रहते हैं । शरीर एक मियादी चीज है। समय पर इसके तत्त्व बदल जाते हैं, चाहे कितनी ही इसकी हिफ़ाजत (रक्षा) क्यों न की जाए। गुरु शंकराचार्य और गोरखनाथ को भगंदर ने घेर रखा था, रामकृष्ण परमहंस को कण्ठमाला ने। कर्मगति अपार और गहन है। प्रारब्ध कर्म सबको भोगने पड़ते हैं।

प्रश्न 36 : महाराज जी, शरीर में विकार भरे पड़े हैं। किसी समय भी एक हालत में नहीं रहता। क्या कारण है?

उत्तर : बच्चू, शरीर रोग रूप ही है। नौ द्वारों से हर समय ही गंदगी झड़

रही है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा सब ही दुखदाई अवस्थाएं हैं। बचपन में जवानी छिपी हुई है, जवानी में बुढ़ापा, अरोग में रोग और ज़िन्दगी में मौत छिपी हुई है। जी-जी कर आखिर इस शरीर को गिरना है। चाहे सौ नहीं हजार वर्ष तक भी इसे रख लो, फिर मौत माई ने आकर गिरा ही देना है। जायज़ (मर्यादा में) ख्याल रखना ज़रूरी है। इतना परहेज़ रखते हुए भी फिर तकलीफ़ का आ जाना कर्म रोग है। सबको कर्म दण्ड भोगना पड़ता है।

प्रश्न 37 : आपका जीवन इतना पवित्र है कि तमाम उम्र में आपने तीव्र त्याग धारण कर रखा है और कड़ी तपस्या के द्वारा इस परम पद को प्राप्त किया है। फिर आपको इतना दु:ख क्यों हुआ है?

उत्तर : कई जन्मों के कर्मों के फल भोगने होते हैं। शायद किसी जन्म के कर्म का फल भोगना पड़ गया हो जिसे भोगना जरूरी हो। महापुरुष, जो निर्वाण अवस्था को प्राप्त कर चुके होते हैं, वे अपना सब हिसाब बेबाक करके चोला छोड़ते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस को कण्ठमाला के आर्ज़े (रोग) ने बहुत दुखी कर रखा था। स्वामी रामतीर्थ को संग्रहणी का आर्ज़ा (रोग) हो गया था, वगैरह। लेकिन उन्होंने प्रभु के हुक्म को नहीं तोड़ा। बाज़ औकात (प्राय:) महापुरुष अपने शिष्यों के क्रूर कर्मों की सजा को अपने ऊपर ले लेते हैं और शिष्यों के तमाम ताप हरण कर लेते हैं। यह उनकी बड़ी उदारता और दयालुता है, यानि बाज़ दफ़ा महापुरुषों ने संसार के सुधार की खातिर बड़े कष्ट अपने शरीर पर उठाए। यह उनकी परम उच्च अवस्था का लक्षण है। इस वक्त के शारीरिक कष्ट को संसार के कल्याण का मूजब (हेतु) समझें।

प्रश्न 38 : महाराज जी, अगर हर एक कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है तो मेरा क्या बनेगा। पाकिस्तान से उजड़कर आया हूं। वहां पर मेरी छोटी सी दुकान थी। एक अनाज के ढेर में गधे ने मुंह मारा। मैंने उसे ऐसा पीटा कि उसकी कमर टूट गई और कुछ दिनों के बाद मर गया। उसका भोग कैसे चुकाऊंगा?

उत्तर : प्रेमी, बदला तो देना ही पड़ेगा ।

प्रश्न 39 : महाराज जी, कोई बचाव का उपाए बताओ।

उत्तर : छोटी चोरी के लिए प्रायश्चित में बड़ा दान करना पड़ता है। जैसे कतरा जहरीले पानी में सेरों मीठा डालोगे तब कहीं कड़वाहट जावेगी। जीवों

की सेवा और भजन बंदगी की जावे तो अजाब (दुख) की पीड़ा की तुरशी कम हो सकती है।

प्रश्न 40 : महाराज जी, ऐसा कहते सुना है–

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं सन्ता। सतसंगति संसृति कर अन्ता।।
बिनु सतसंग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।
होवहिं विवेक मोह भ्रम भागा । तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।

उत्तर : प्रेमी जी, सन्तों का मिलना बड़ा मुश्किल है। फिर उनके पास बैठकर उनकी शिक्षा व विचार सुनकर सब समझ में आ जावे, यह बड़ा दुर्लभ है। उसके बाद यह और भी दुर्लभ है कि इस समझी हुई शिक्षा पर चला जावे। जब तक सिख्या (शिक्षा) पर चला नहीं जाता, सन्तों के मिलने और न मिलने का कोई मतलब नहीं। क्योंकि यह सब दुर्लभ ही है, इसलिए यह दुर्लभता करके बात कही गई है:

बिन हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता। सतसंगति संसृति कर अन्ता ।।

प्रश्न 41 : कौन से कर्म बन्धन का कारण होते हैं और कौन से मुक्ति का ?

उत्तर : गर्ज़ (स्वार्थ) करके जो काम किया जाता है, वह बन्धन का कारण होता है और फर्ज़ करके किया हुआ काम आज़ादी देता है।

प्रश्न 42 : महाराज जी, पिछले जन्मों के फलस्वरूप इस जन्म में भी जीव अच्छे या खोटे कर्म करता है तो कैसे उनसे छुटकारा मिले?

उत्तर : प्रेमी, पिछले कर्मों के अनुसार ही यह मौजूदा जिस्म और इसकी आदतें बनती हैं। उन आदतों के ज़ेरेअसर (प्रभावित) होकर ही जीव कर्म करता है। घबराना नहीं चाहिए। हिम्मत करके सत्पुरुषार्थ में लगे रहना चाहिए। हर इन्सान के अन्दर अच्छे और बुरे तरह के संस्कार रहते हैं। अगर सत्संग सेवन करके अच्छे संस्कारों को जाग्रत कर लेवे तो बुरे संस्कारों पर वे हावी हो जाते हैं। इस तरह से जीव अपने कर्मों का सुधार कर सकता है। सत्संग का इसलिए बड़ा प्रभाव है। मनुष्य योनि में एक खसूसियत (विशेषता) है कि जीव अपने नुक्स और कर्मों को समझ सकता है और उस नुक्स (कमी) पर अबूर पाने की कोशिश कर सकता है और अबूर (छुटकारा) पा सकता है। यहां तक भी मुमकिन है कि इस आवागमन से हमेशा के वास्ते मुख्लसी (मुक्ति) हासिल कर सकता है।

प्रश्न 43 : महाराज जी, आपका एक अमुख सेवक बहुत कष्ट में है। आप उस पर कृपा करेंगे ताकि उसका कष्ट निवृत्त हो?

उत्तर : प्रेमी, कर्म चक्र अमिट है। फ़कीर खुद इस समय कर्म चक्र की लपेट में डेढ़ मास से आये हुए हैं। यह अपनी तकलीफ़ दूर नहीं कर सकते और किसी का क्या इलाज करेंगे। जिस विश्वास और प्रेम से इतनी दूर चलकर आए हो, प्रभु सहायता करने वाले हैं। अमुख प्रेमी तो वैसे भी इनको प्यारा है। न जाने किस कर्म चक्र ने इसे इस समय लपेट रखा है। जन्म-जन्मान्तर के शुभ-अशुभ कर्म सुख-दु:ख देने वाले बन जाते हैं। इस जगह इस जन्म में तो प्रेमी ने कोई ऐसा कर्म नहीं किया जिस करके ऐसी तकलीफ़ मिल रही है। प्रभु कृपा करें, जल्दी खुलासी मिल जावे। प्रेमी, और भी अस्पताल में सैकड़ों बीमार पड़े होंगे। उनके वास्ते तुम क्यों नहीं प्रार्थना करते हो? मोह वश होकर तुमको इधर आना पड़ा। प्रभु भावी को कौन मेट सकता है?

प्रश्न 44 : महाराज जी, सन्तों के पास बड़ी शक्ति होती है। रेख में मेख मार सकते हैं। कृपा दृष्टि करें, भिखारी बनकर आपके द्वार पर आए हैं।

उत्तर : प्रेमी, तुम बच्चों वाली बात करते हो। प्रभु आज्ञा को नहीं मानते। छुटकारा शुभ कर्म करने में ही है। तुम आए हो, तुम्हारा आना कुछ न कुछ लाभकारी ही रहेगा। मगर जितनी देर दु:ख भोगना है, भुगतना ही पड़ेगा।

प्रश्न 45 : महाराज जी, दिल की तख्ती पर जो अंकित हो जाता है, क्या वह साफ हो सकता है? हमने बड़े-बड़े उपद्रव किये हैं। वे जब किसी समय याद आते हैं बेचैनी का बायस (कारण) बनते हैं!

उत्तर : प्रेमी, दिल की तख्ती तो खुदा की बन्दगी के बगैर साफ होनी बड़ी मुश्किल है। जो भी अच्छा या बुरा फेल (कर्म) हो गया है, उसका इवजाना (फल) दुख अथवा सुख जरूर मिलेगा, चाहे इस मौजूदा खाकी वजूद में या किसी और वजूद में मिले।

प्रश्न 46 : महाराज जी, मौलाना रूम ने लिखा है कि मैं कई दफा घास हुआ, पत्ते बना, चरिंद परिंद बना और कई किस्म के जिस्म मिले, अब आकर असल में मिला हूं, दिल की तख्ती साफ हो गई है, न अच्छे कर्म

से प्यार, न ही बुरे से द्वेष और न मौत का गम है। उसकी रजा में रहकर बड़ा खुश हूं। आपका इस बारे में क्या विचार है?

उत्तर : हां प्रेमी, यह आखिरी मंजिल पर पहुंचने वाले का संदेश है। जो कोशिश करेगा वह ही मौलाना रुम बन सकता है। जितने उलटे कर्म किए हैं उससे दुगने अच्छे फेल (कर्म) करो। जिस तरह खुदा की मखलूक (जीव सृष्टि) को दुख दिया है, अब उसकी खलकत (जीव सृष्टि) की खिदमत (सेवा) करो। सही तरीका से दूसरों के दुख को दूर करने वाले पीर बनो।

प्रश्न 47 : महाराज जी, जिस-जिस प्रेमी पर आपकी कृपा हो चुकी है उनका क्या बनेगा?

उत्तर : प्रेमी, जिस-जिस के अन्दर इनके विचार चले गए हैं, जो सिख्या ग्रहण कर चुका है, उनका उद्धार जरूर होगा। ऐसे प्रेमी, दो, चार, दस जन्मों के बाद किसी न किसी समय जरूर अपनी कल्याण का यत्न करेंगे। गुरु ने तो महावाक्य रूपी बीज हजारों के अंदर डाल दिया है। कभी न कभी उगेगा। उचित यही है कि इसी जन्म में आत्म साक्षात्कार करे। जिसके अन्दर जिज्ञासा है उसे कोई न कोई रास्ते में डालने वाला मिल जाता है। फकीरों की सेवा भी खाली नहीं जाती, हर एक के वास्ते इनका आशीर्वाद है। बाद के यह कोई ठेकेदार नहीं। वक्त के गुरु शिष्यों के वास्ते हर समय भलाई ही चाहते हैं। गृहस्थी, विरक्ति जो कोई होवे, श्रद्धा विश्वास से एकान्त में बैठकर प्रभु की भक्ति करेगा वह तर सकता है। बिना यत्न के दोनों ही हैरान परेशान हैं। जो बात करो, पक्के इरादे से करो। वह ही सफलता दिया करती है।

मन, बुद्धि तथा अहंकार

प्रश्न 48 : मन क्या है?

उत्तर : मनन करना। ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा को मनन करने वाली शक्ति को मन कहते हैं।

प्रश्न 49 : महाराज जी, मन को वश में करने का तरीका क्या है?

उत्तर : प्रेमी, पहले जीवन के सही और गलत हालात को समझो। जीवन के हालात को हरएक समझता है। मगर सही नहीं समझ रहा है और सही न समझने के कारण गलत हालात को पकड़ रहा है। मन एक ऐसी चीज है कि जब तक गलत और सही का निर्णय न समझे यह सही की तरफ नहीं जाएगा। मन को पकड़ने का तरीका ईश्वर के परायण होना है। इस तरीका को किसी महात्मा से प्राप्त करके हृदय से धारण करो, सही निश्चय से इसे पकड़ो। उसी तरीका को धारण करते-करते मन बस में हो जाएगा।

प्रश्न 50 : महाराज जी, मन सत् परायण कैसे होता है?

उत्तर : प्रेमी, भय से मन सत् परायण होता है। इस वास्ते मौत का भय या गुरु का भय या ईश्वर का भय मानुष के वास्ते होना लाज़मी है। ऐसे भय की दृढ़ता से भाव पैदा होता है, यानि अपनी जीवन उन्नति का विचार प्रकट होता है। भाव से भक्ति और भक्ति से निर्मल प्रेम प्राप्त होता है। यह ही दृढ़ता मानसिक शांति के देने वाली है।

प्रश्न 51 : महाराज जी, ऐसी कौन-सी युक्ति है जिससे मन ठिकाने लग जावे?

उत्तर : हां प्रेमी, यह बड़ा ज़रूरी है। इसे अच्छी तरह समझो। मन को ठिकाने लगाने के लिए चार बातें जरूरी हैं। इनके प्राप्त होने पर मन ठिकाने लग जाता है। मगर यह बात बड़ी जरूरी है कि तुम्हारे अन्दर यह भाव पैदा होना चाहिए कि मैंने अपने मन को ठिकाने लगाकर रहना है- (1) निश्चय दुरुस्त, (2) रास्ता दुरुस्त, (3) गुरु दुरुस्त, (4) कोशिश दुरुस्त।

प्रश्न 52 : महाराज जी, मन चंचल तो पवन से भी अधिक है। बड़ी कोशिश की जाती है, एक धारा पर नहीं आता। आसान युक्ति कृपा करके फरमाएं जिससे चित्त ठहर जावे?

उत्तर : प्रेमी, जिन्होंने सिर पर छाई डाल रखी है, बड़ी जटा बढ़ा रखी है, धूनियां तापते हैं, उल्टे लटकते हैं, पानी में खड़े होकर तप करते हैं, तब भी उनका मन रास्ते पर नहीं आता। मन बड़ा विकराल है। साहिब से प्रेम बनाओ। संसार की प्रीति बिल्कुल खत्म कर दो। शरीर रूपी पिंजर को सुखा दो। तब जाकर तार अन्तर- विखे खड़केगी। मालिक की कृपा तो रग-रग में हो रही है। अन्तर्मुख होकर सुनो। मन, बुद्धि, इन्द्रियों का विषय नहीं। इन आंखों से देखा नहीं जाता, यह कान श्रवण नहीं कर सकते, रसना चाख नहीं सकती, कर्म इन्द्रियों द्वारा महसूस होने वाला नहीं जो तुम्हें पकड़ कर दिखा दिया जावे। यह अपने स्वयं के अनुभव का मार्ग है।

नाम प्रभु हिरदे बसे, मन पवन कीजे इक ठौर।
अन्तर माहीं शब्द परगासे, सुरत भयी मखमूर ।।
रोम रोम में नित गुंजारे, शब्द पुरख निर्वान।
प्राण उपान को समकर राखे, निरखे अनहद तान ।।

पिंड ब्रह्माण्ड की सोझी पावे, मन वच कर्म कीजे इक ठौर।
गगनगुफा बहती अमृत धारा, पीवे कोई गुरुमुख सूर ।।
आशा तृष्णा जेबड़ी, बांधे चराचर भूत।
माया प्रभु की असचरज है, साध के पाएं वस्त अनूप।।

जन्म-जन्म का टूटा गांडे, पाए चित्त परतीत।
निर्मल कर्म को धार के, चलियो भवजल जीत।।
काची काया में अमृत भरया, नित बोले नित बानी।
नित-नित ध्यान धरो प्रभाती, कटे कर्म की खानी।।
भाग होए अन्तर चानन होया, पाई गत निर्वास ।
'मंगत' सरब का ठाकुर पायो, आदि निरंजन अविगत अविनास ।।

प्रेमी, उसके बगैर कोई दूसरा हो तो उसे समझाया जावे। सब जियाजन्त उस मालिक का रूप हैं। रास्ता तुमको पता ही है। जिस प्रेम से संसार की तरफ दौड़ते हो, इससे दुगने प्रेम से यदि मालिक के चरणों में मन चित्त दो तो काम बन जावे। निर्मोह होकर चलना बड़ा ही कठिन है-

चलो चलो सब कोई कहे,
बिरला पहुंचे कोय।
जां को सत्गुरु मिलनगे,
तां को मालुम होये ।।

फिर कभी आना हुआ तो और पूछ लेना। इतने दिन इधर ठहरे रहे, क्या सोचते रहे हो? जाओ, अब आराम करो। फकीरों के पास ज्यादा न बैठा करो–

घर फूंका जिन अपना, लिया चोहाता हाथ।
अब फूंकेंगे उसका, जो चले हमारे साथ।।

प्रश्न 53 : महाराज जी, मन बड़ा विकराल है। इससे किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है?

उत्तर : प्रेमी, मन ही इसका मित्र है। चाहे इसको विषयों की तरफ लगा दो, चाहे करतार की तरफ। यह एक समय में एक ही काम करेगा। दोनों हालतों में मन, इन्द्रियां, बुद्धि ये ही रहती हैं। सिर्फ इनका स्वभाव बदल जाता है। स्वभाव बदलने के वास्ते वैराग्य और अभ्यास है, और कोई भी साधन ऐसा नहीं है जिसके द्वारा ठिकाने पर पहुंच सके। इस तरह विचार करते रहा करो, किसी ठिकाने पर पहुंचना है तो।

प्रश्न 54 : महाराज जी, मेरे मन की स्थिति कभी-कभी इस प्रकार हो जाती है कि किसी काम में तथा किसी भी अवस्था में तबीयत नहीं लगती। मन उचाट हो जाता है और बड़ी बेचैनी प्रतीत होती है। क्या आप कृपा करके इसका कारण बतलाऐंगे? और साथ ही इसका उपाय भी जानना चाहता हूं।

उत्तर : प्रेमी जी, अपने जीवन का सही लक्ष्य और उसके पहुंचने का प्रोग्राम न बनने के कारण ऐसी हालत का सामना करना पड़ता है, सो निश्चय करके जानो।

प्रश्न 55 : महाराज जी, यदि ऐसा ही है तो वह अवस्था हर समय रहनी चाहिए। परन्तु यह देखा गया है कि ऐसी अवस्था कभी-कभी आती है। कृपा करके इसे समझाएं।

उत्तर : हां, यह मन बड़ा चालाक है। कोई न कोई उम्मीद खड़ी कर ही लेता है और उसी आशा में, जो उसने निश्चय कर ली है, अपने आप

को लगाए रखता है। और उसी आशा को पूर्ण करने की खातिर यत्न भी करता है तथा बड़े जोश के साथ उसी उधेड़-बुन में लगा रहता है। इसी कारण पता नहीं चलता। वास्तव में इस शरीर में तीन गुण मौजूद हैं। जब सतोगुण प्रधान होता है तो बुद्धि शान्त होकर कुछ सुख अनुभव करती है। जब रजोगुण प्रधान होता है तो बुद्धि चंचलता को धारण करके सांसारिक क्रियाओं में प्रवृत्त होती है और एक लम्हा भर शान्ति से नहीं बैठ सकती। जब तमोगुण प्रधान होता है तो यह अवस्था आ जाती है जैसा कि तुम्हारा प्रश्न है अर्थात् बुद्धि हर समय डांवाडोल रहती है और बड़ी बेचैनी महसूस होती है। आलस्य तथा प्रमाद की प्रधानता हो जाती है। ऐसा ही यह अद्‌भुत खेल माया चक्र संसार है। तुमको चाहिए कि अपने जीवन का एक लक्ष्य निश्चित करो और फिर उसके प्राप्त करने के लिए अपनी ज़िन्दगी का प्रोग्राम बनाओ और फिर कमर कसकर उस पर चल पड़ो, तो फिर इन सब अवस्थाओं से अबूर (छुटकारा) पा जाओगे।

प्रश्न 56 : वैसे तो मन चंचल होने जैसा कोई पदार्थ नहीं, किन्तु इससे हटकर क्या और भी कुछ है?

उत्तर : हां प्रेमी, धन, उम्र और जवानी-यह कमल पर जिस तरह पानी की बूंद ठहरती है, केवल मात्र उसी तरह स्थिर दृष्टि होते हैं।

प्रश्न 57 : महाराज जी, हम ग्रन्थ साहब की वाणी का पाठ करते हैं परन्तु मन की बेचैनी दूर नहीं होती। कृपया हमें मन की शान्ति का सही रास्ता दिखाएं।

उत्तर : प्रेमी रोजाना गुरु वाणी में पढ़ते हो-

जां का हिरदा शुद्ध है, खोज शब्द में ले।

इसका क्या मतलब है? वाणी का पाठ करते-करते कितनी आयु बीत गई क्या इस बात का पता नहीं लगा है?

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेडन दांव ।

बाबे की वाणी गलत नहीं है तुम आगे की खोज नहीं करना चाहते। शब्द स्वरूप परमेश्वर घट-घट में प्रकाश कर रहा है। गुरुओं ने कहा है नाम रूपी मदिरा पीओ, तुम ठूठे चढ़ाने लगे हो।

'नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात'।

बार-बार सारे ग्रंथ में नाम की महिमा गाई गई है। इसलिए इस

सत्नाम का जब तक लगातार चिन्तन-मनन न करोगे, प्रेमी, शब्द का पार नहीं पा सकते। तुमने मांस को झटका करके खाना प्रधान कर रखा है, मुसलमानों ने हलाल करके खाना जायज़ मान रखा है। कौन सी आप लोगों ने गुरुओं की बात मान रखी है। किसी भी सत्पुरुष ने भक्षा-भक्ष्य खाने की इजाज़त नहीं दी है। खाली कच्छा-कड़ा धारण करने से क्या बुद्धि निर्मल होती है? सत् विश्वास रूपी केश धारण करो, ज्ञान रूपी कंघी से अज्ञानता दूर करो, प्रेम रूपी पुंगी सिर पर बांधो। महापुरुषों ने परोपकार रूपी कड़ा पहनाया था ताकि यह सत् भाव कभी न भूले। लज्जया, शर्म-पत का कच्छा धारण करें। जत (यतिपन) का खण्डा हाथ में ले तब गुरु का सच्चा शिष्य कहलाने का हकदार है। धर्म मार्ग में अहिंसा रूपी तप बहुत जरूरी है। मन, वचन द्वारा भी सख्त अक्खर (कठोर वचन) न सोचने बोलने की आज्ञा जहां सत्पुरुष देते हैं वहां वह बे जवान जीवों का गला काटने की तालीम कैसे दे सकते हैं। अब तो आम लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है। जन्म-जन्मान्तर की भरमना गुरु कृपा से ही दूर होती आई है। सच्चा सिख वही है जो सब पाखण्डवाद को छोड़कर गुरु वचन में भेंट हो जावे। जब तक कर्म निर्मल नहीं होते, बोल स्वच्छ नहीं होता और मन चित्त का साधन जुगति (युक्ति) अनुकूल नहीं बनता तब तक कैसे उस अलख पुरुष को पा सकते हो। जब कमाई करके शब्द प्रगट होगा तब असली गुरु के द्वारे (गुरुद्वारों) की भी समझ आ जावेगी और तभी जाकर मन शान्त होगा।

प्रश्न 61 : बुद्धि क्या है?

उत्तर : निश्चय करना। मन के दोषों को अच्छा या बुरा समझने वाली शक्ति को बुद्धि कहते हैं।

प्रश्न 62 : महाराज जी, बुद्धि के आगे परदे कौन-कौन से हैं?

उत्तर : प्रेमी, बुद्धि के आगे परदे हैं कर्ममई सृष्टि, वासनामई सृष्टि, गुणमई सृष्टि। इनको आधिभौतिक सृष्टि, आधिदैविक सृष्टि और आध्यात्मिक सृष्टि भी कहते हैं। यह ही त्रिलोक है। इन परदों को दूर करने वाला ही त्रिलोकीनाथ है। गुण से वासना प्रगट होती है, वासना से कर्म और कर्मफल। शरीर, मन, बुद्धि यह ही तीन लोक हैं।

प्रश्न 63 : महाराज जी, बुद्धि वासना रहित कैसे होती है?

उत्तर : शरीर वासना का समुद्र है। आत्मा वासना व कर्म से न्यारा है। बुद्धि शरीर को समझ रही है और इसकी वासना को भी समझ रही है। जब तक आत्मा को नहीं समझती, वासना रहित नहीं होती। जो साधन सत्पुरुषों ने आत्म अनुभवता को प्राप्त करने के बतलाये हैं, उन्हें धारण करो। तब बुद्धि वासना रहित हो जावेगी।

प्रश्न 64 : महाराज जी, यह कैसे समझा जाए कि हम सत् स्वरूप की तरफ बढ़ रहे हैं। हमारा तो हर कार्य प्रकृति की फैलावट में ही रहता है और उसके इकट्ठा करने के लिए दिन-रात लगे रहते हैं। कृपा करके समझावें कि यह क्या बात है?

उत्तर : प्रेमी जी, तुम ठीक कह रहे हो। प्रकृति में ही सब कर्म होते हैं और तुम्हारी बुद्धि अहंकार में स्थित होकर कर्मों की कर्त्ता बनती है। जब बुद्धि आत्म-तत्त्व में लीन हो जाती है तो प्रकृति शरीर द्वारा जो कर्म करवाती है, वह स्वयं उसे भोगती है और बुद्धि निःकर्म अवस्था को प्राप्त हो जाती है। इस हालत में शरीर प्रकृति द्वारा सहज कर्म करता हुआ चलता रहता है। शरीर का समय पूरा होने पर शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है। निःकर्म बुद्धि का इससे कोई ताल्लुक नहीं रहता। मिसाल के तौर पर यह समझो कि जैसे आंख का काम है देखना, वह देखेगी ज़रूर परन्तु उसमें अच्छा बुरा अनुभव नहीं करेगी। जीभ खायेगी भी परन्तु किसी प्रकार का रस ग्रहण नहीं करेगी। ऐसी हालत में जब बुद्धि हो जावे तब ही निःसंग हालत प्राप्त हुई समझो। जैसे-जैसे बुद्धि आत्म तत्त्व में स्थित होती जाएगी वैसे-वैसे सब सुख-भोग, जो शरीर की इन्द्रियों द्वारा प्रतीत होते हैं, उनमें उसे बेलागपन, बेरसपन पैदा हो जाएगा। तब समझना कि तुम उस आत्म-तत्त्व की तरफ बढ़ रहे हो।

प्रश्न 65 : महाराज जी, जब जीव सत् स्वरूप में स्थित हो जाता है तो उसकी बुद्धि की क्या स्थिति होती है?

उत्तर : प्रेमी जी, बुद्धि नाम की चीज सत् स्वरूप में स्थित होने पर रहती ही नहीं। सब एक आत्मस्वरूप ही भासता है। उस स्थिति में तमाम प्रकार के तर्क-वितर्क खत्म हो जाते हैं। अगर-मगर, क्यों-क्या अगर बनी रहे तो फिर सत् स्वरूप की स्थिति नहीं है। वह कोई बुद्धि की अपूर्ण हालत है।

प्रश्न 66 : महाराज जी, बुद्धि का क्या काम है?
उत्तर : प्रेमी, बुद्धि का काम है सोचना, निर्णय करना और खोज करना।

प्रश्न 67 : महाराज जी बुद्धि की क्या खुराक है?
उत्तर : प्रेमी, बुद्धि विचार की खुराक खाती है। जिस प्रकार के विचार इसको खाने के लिए मिलेंगे वैसा ही असली मानों में बुद्धि का स्वरूप बन जावेगा। इसलिए सत्पुरुष हमेशा विचार की पवित्रता पर जोर देते हैं।

प्रश्न 68 : महाराज जी, अक्ले सलीम या उत्तम बुद्धि किसे कहते हैं?
उत्तर : जिस बुद्धि का ऐसा निश्चय पक्का हो जाता है कि एक ईश्वर सत् है और बाकी जो कुछ भी नाम रूप संसार है वह फ़नाह (नाशवान) है तो उसी कुल होश बुद्धि को 'अक्ले सलीम' कहते हैं। बुद्धि की चार अवस्थाएं हैं, वह भी सुन लो।

(1) बेहोश बुद्धि
(2) मदहोश बुद्धि
(3) बाहोश बुद्धि
(4) कुल होश बुद्धि- यानि 'अक्ले सलीम'

बेहोश बुद्धि-बिना सोचे विचारे जो बुद्धि देखा-देखी चलती है और संसार में विचरती है-जिसको कुछ पता ही नहीं। कुछ बस ऐसे ही अपने काम में लगी हुई है। ऐसी बुद्धि वाले मनुष्य तुम्हें आम मिलेंगे।

मदहोश बुद्धि-बुद्धि यह जानती है कि क्या ठीक है और क्या गलत है परन्तु जानबूझकर वह गलत काम करती है। ऐसी बुद्धि वाले मनुष्य तुम्हें काफी मिलेंगे।

बाहोश बुद्धि- जो बुद्धि ठीक समझती है और ठीक उसके अनुसार सही आचरण भी करती है। ऐसी बुद्धि वाले मनुष्य 'बाहोश' होते हैं। ये बहुत कम नज़र आते हैं और होते भी थोड़े हैं।

कुलहोश बुद्धि- यह आखिरी मंज़िल (अन्तिम स्थिति) है ऐसी बुद्धि वाले पुरुष को 'अक्ले सलीम' रखने वाला पुरुष कहा गया है, उसने ही असल में सही तौर से जाना है और समझा है और अपने आप को इस त्रयगुणी नाम-रूपात्मक संसार से असंग करके केवल अखण्ड अविनाशी शब्द में पूर्ण निश्चय से स्थिति प्राप्त की है।

प्रश्न 69 : मनुष्य को विद्या, ज्ञान की चाह क्यों बनी रहती है? भौतिक जगत की जितनी खोज बुद्धि करती है उतनी ही क्लेश को प्राप्त होती है। महाराज जी, ऐसा क्यों, कृपया इसे स्पष्ट करें।

उत्तर : बुद्धि का स्वभाव तहकीकात (छानबीन) करना है। जब तक पूर्ण बोध आत्म स्वरूप का प्राप्त नहीं होता तब तक इसकी तहकीकात-दर-तहकीकात की इच्छा बनी रहती है।

'माया परस्ती' की तहकीक़ात अधिक से अधिक रंज व गम (संताप) और खोज दर खोज को बढ़ाने वाली है अर्थात् ठहराव या पूर्ण शान्ति कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। यह ही खेद स्वरूप संसार है। जब बुद्धि सत् तत्व आत्म स्वरूप की खोज में लगती है तब पूर्णता को प्राप्त होती है अथवा पूर्ण बोध, पूर्ण सूझ को प्राप्त करके शान्त हो जाती है। इस अवस्था को 'निर्वाण' कहा गया है। सत् की खोज के बिना जितनी भी कोशिश है वह शोक और संताप को देने वाली है जैसी कि प्राय: विद्वानों की अवस्था होती है।

प्रश्न 70 : महाराज जी, बुद्धि की 'जड़' और 'जागृत' अवस्था को समझावें।

उत्तर : लाल जी, जितनी बुद्धि जड़ होती है, अहंकार वाली होती है, वह शरीर को अच्छा और भला करके देखती है। अथवा शरीर के इन्द्रिय सम्बंधी सुखों को अपना सार साधन मानकर उनको ही मुहैया (प्राप्त) करने में अपना समय व्यतीत कर देती है, लेकिन जागृत बुद्धि जब मनुष्य की होती है तो उसे यह दीखने लगता है कि यह शरीर नाशवान है। इस शरीर में कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसमें दिल लगाया जावे। ऐसा विचार जब इसका परिपक्व होता है तो उस समय प्रभु प्रेम पैदा होता है और वह बुद्धि विचार करती है कि जिस महान शक्ति ने उसे बनाया है क्यों न उसकी बन्दगी (याद) की जावे। फिर प्रभु के याद करने से जितना प्रेम इस शरीर से है उससे अधिक प्रेम से परमात्मा की तरफ लग जाता है। महापुरुषों की यह ही निशानी है कि वह अपनी चेष्टा शरीर में न रखकर शरीर की प्रकाशक शक्ति में रखते हैं-

अमृत छोड़कर बिख को खावे, यह देखा संसार।
बिख को छोड़ जो अमृत खावे, सो बिरला बलहार।।

प्रश्न 71 : अहंकार क्या है?
उत्तर : कर्म का कर्त्ता बनना।

प्रश्न 72 : महाराज जी, यह कर्त्तापन या अभिमान 'मैं करता हूं' ऐसा भाव किधर से आया। ईश्वर को क्या जरूरत पड़ी थी इतनी लम्बी चौड़ी सृष्टि बनाने की?
उत्तर : प्रेमी, कर्त्तापन कहां से आया, इसका कारण आज तक किसी ने नहीं बताया। यह भाव तो ऐसे पैदा हुआ जैसे जल में तरंग पैदा होती है। इसका कारण कौन बताए? जिस प्रकार तरंग और जल भिन्न नहीं एक ही वस्तु हैं तथा सूक्ष्म रूप से देखने से तरंग का स्वरूप लोप हो जाता है और जल ही जल रह जाता है उसी प्रकार संसार का भी आत्म सत्ता के अलावा अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं है। इसी को भ्रम, अन्धकार, अविद्या, अज्ञान कहते हैं जिसका न शुरू है, न आखिर। दरम्यान में आश्चर्यजनक फैलाव दिखाई दे रहा है। बाकी जब उस परम सत्ता आत्मानन्द में बुद्धि प्रवेश करती है, उस अवस्था में संसार का नामो-निशान नहीं रहता। यह आश्चर्य अवस्था है। जब तक आंख खुली है इसमें जीव ग्रस्त है। जन्म से लेकर मरण काल तक किसी चीज की प्राप्ति-अप्राप्ति से असली खुशी समता शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक ग्रहण-त्याग, रग़बत नफ़रत (लगाव व घृणा) का सिलसिला जारी है तब तक दुखी रहता है। राजा से लेकर रंक तक, ब्रह्मा से लेकर चींटी तक, हर एक जीव भयभीत है। जब तक एकाग्र चित्त से इस मोहमाया के जाल का विचार न किया जाए, तब तक असलियत का पता नहीं लग सकता।

प्रश्न 73 : महाराज जी, यह कर्त्तापन कहां से और क्यों पैदा हो जाता है?
उत्तर : 'मैं' रूपी अहंकार या कर्त्तापन के पैदा होने का कोई कारण नहीं है। बगैर कारण के ही यह खेल हो रहा है। यह ही उपाधि जीव को लगी हुई है। इसे ही अनवर-चित् माया कहा गया है जो विस्माद स्वरूप है। कर्म का जीव अभिमानी होकर भोगों की इच्छा लेकर अनेक तरह के यत्न-प्रयत्न में दिन रात लगा हुआ है। जब कर्म करके फल प्राप्त होता है तब उसके राग द्वेष में अग्नि की तरह पल-पल विखे तपायमान होता रहता है। यह ऐसा आश्चर्य खेल है। एक पलक के वास्ते भी जीव उसे छोड़ना नहीं चाहता, न

छूट सकता है। अनेक तरह के यत्न करने पर भी कर्त्तापन नहीं जाता। विकारों की मूल जड़ यह ही है। जब तक बुद्धि यह समझ रही है, मैं और मेरा शरीर, तब तक विकार साथ ही हैं।

प्रश्न 74 : महाराज जी फायलियत और अनानियत किसे कहते हैं?
उत्तर : प्रेमी, फायलियत कर्त्तापन को कहते हैं और अनानियत अहंकार को कहते हैं।

प्रश्न 75 : महाराज जी, अहंकार का क्या स्वरूप है?
उत्तर : प्रेमी, द्वन्द्व को महसूस करने वाली चीज अहंकार है।

प्रश्न 76 : महाराज जी, क्या हम अंधमति हैं?
उत्तर : प्रेमी, जब तक जीव कर्त्तापन के चंगुल में फंसा हुआ है यानि हौमें के रोग में मुबतला (ग्रस्त) है तब तक तृष्णा की अग्नि से शीतल नहीं हो सकता। तृष्णा द्वारा हर समय शुभ अशुभ कर्म हो रहे हैं। इस द्वन्द्व विकार कर्म जड़ से तब ही छुटकारा होगा जब मन से सत्नाम का उच्चारण करेगा। द्वन्द्व विकार से राग द्वेष पैदा होते हैं। राग द्वेष, ग्रहण, त्याग, प्राप्ति, अप्राप्ति से जीव लाचार होता है। इस भ्रम की फांसी में मुबतला हुआ जीव सत्नाम के बिना खुलासी (छुटकारा) नहीं पा सकता। सत्नाम सत्श्रद्धा, दृढ़ विश्वास से लिया जाता है। नाशवान दुख भरे संसार से तब ही जाकर छुटकारा प्राप्त होता है जब किसी महापुरुष के चरणों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हो और नम्र भाव से उनसे शिक्षा ग्रहण करे। फिर बड़े यत्न, प्रयत्न द्वारा चिरकाल के बाद विवेक बुद्धि पैदा होती है, तब जाकर द्वन्द्व चक्कर से आजाद होता है। पूर्ण यत्न द्वारा ही भरम का नाश होता है। सच्ची प्रीति ही मुक्ति प्रदान करती है, तब जाकर कर्म के बंधन से छुटकारा पाकर निष्कर्म अवस्था में प्रवेश करता है। बस फिर आगे जाने का रास्ता खुल जाता है। लेकिन यत्न यानि त्याग, वैराग्य, अभ्यास के बगैर कुछ नहीं बन सकता। मैं पन यानी अभिमान गंवाना आसान बात नहीं।

जंगल बेले ढूंढत फिरी, बहु विध जतन कमानी।
'मंगत' खाक खलक सर डारी, तब वा घर भेद पिछानी।।

बिन गुरु भेद न पाया, लखी न नाम तत् सार।
'मंगत' जब सत्पुरुष भेंटया, गई त्रिखा संसार।।
अंतर शब्द परगासया, भेंट हुई भगवान।
'मंगत' उपरस मनवा भया, पाया पद निर्वान।।
कहता हूं कह जात हूं, परसो नाम तत्सार।
'मंगत' सत् यत्न सत् विश्वास से, परगट हुए मुरार।।

दु:ख तथा सुख

प्रश्न 77 : महाराज जी, इस दुनिया में दु:ख क्या है?

उत्तर : लाल जी, जिस वस्तु की यह मन इच्छा करता है एवं उसमें सुख प्राप्त करने की कल्पना बना लेता है, जब वह पूर्ण नहीं होती तो दु:ख का जन्म हो जाता है अर्थात् मन की चाह की अपूर्ण हालत का नाम ही दु:ख है। वैसे दु:ख का अपना असली स्वरूप कोई नहीं है। मन की कल्पना करके ही दु:ख है, मन की कल्पना करके ही सुख।

प्रश्न 78 : महाराज जी, दु:ख का कारण क्या है?

उत्तर : शरीर और शरीर से सम्बंधित पदार्थों में ममता ही दु:ख का मूल कारण है।

प्रश्न 79 : महाराज जी, इस जीव को दिन रात सुखों की चाहना रहती है और इसी चाहना के वशीभूत होकर ही वह संसार में नाना प्रकार के कर्म करता है। तदनुसार आवागमन के चक्कर में फंस जाता है। महाराज जी, अगर यह ठीक है तो इसका क्या इलाज है?

उत्तर : महापुरुषों ने कहा है कि सुखों की इच्छा ही मनुष्यों की असली बीमारी है तथा तमाम अशान्ति का कारण है। प्रेमी जी, यह कथन सही है कि मनुष्य इस सुख की इच्छा करके ही आवागमन के चक्कर में फंसता है। इसके लिए तुम्हें अपने मन को यह कहकर समझाना चाहिए-हे मन, जो सुख बदलने वाला है, वही दु:ख का रूप है और इन सुखों को प्राप्त करके भी जो तुमने अपने मन में निश्चय किए हैं उनसे तसल्ली और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। मिसाल के तौर पर, अगर तू जरा ध्यान से सोचे तो पहले के सुख जो तू भोग चुका है उनके भोग लेने के पश्चात् तेरी क्या अवस्था रही। इससे सबक ले सकता है।

प्रश्न 80 : महाराज जी, यह जीव मरने से बड़ा डरता है। हमेशा जीता रहूं, कोई दु:ख न आए, सुख के वास्ते ही यत्न करता रहता है?

उत्तर : ज्ञान समान कोई धन नहीं, समता समान नहीं सुख।
जीवन सम आशा नहीं, लोभ समान नहीं दुख ।।

मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े, मकोड़े जितने भी शरीरधारी जीव हैं, सबके सब जिन्दा रहना चाहते हैं। कोई शरीर छोड़ने के वास्ते तैयार नहीं। अगर किसी से विचार किया जाए तो जीते जी कौन मरना चाहता है, सिवाय आत्मज्ञानी पुरुष के जिसने शरीर को तुच्छ समझ रखा है। अपनी मर्जी से कोई नहीं जाना चाहता। काल चक्कर के आगे किसी की चाल कारगर नहीं होती। शरीर खत्म न हो तो भी गन्द पड़ जाए। प्रभु आज्ञा से जो शरीर तब्दीली का नियम बना हुआ है, उससे मर्यादा कायम रहती है। जब वृद्धावस्था आती है तब बाज़ (कई) हाथ जोड़ते हैं-ईश्वर कृपा कर, जान छुड़ा।

असल में जीव प्राण छोड़ना चाहता ही नहीं है। एक हिर्स (लालसा) ही इसको मजबूर करती रहती है, वरन् शरीर के बहुत देर तक रहने में क्या सुख है? हां, वह ही शरीरधारी जीव सुखी रह सकता है जिसके अंतर्गत कुछ रोशनी हो चुकी है। इस मस्ती में चाहे हजारों वर्ष गुज़र जायें, गुज़ारकर सुखी रह सकता है। इन्द्रियों की लालसा में पड़ा हुआ जीव शारीरिक अवस्था कमजोर हो जाने पर हर तरफ से लाचार हो जाता है। मजबूरी से मौत को आवाजें लगाता है। अति लोभी, अति मोहवादी लोगों को चोला छोड़ना अच्छा नहीं लगता। तहसील कहोटा, जिला रावलपिंडी में एक साहूकार था। पुत्र-पोते वाला था। अन्दर अशर्फियों के सन्दूक भरे पड़े थे। पुत्रों-पौत्रों को हाथ नहीं लगाने देता था। जब उसके मरने का वक्त आया, उसकी जान न निकले। पुत्र कुछ दान-पुण्य आखिरी समय करवाने के लिए चावल ले आये। आकर कहने लगे-लाला जी, कुछ इसमें नकद रखकर हाथ लगावें। उठकर लाला जी कहने लगे, मैं मरने वाला थोड़े ही हूं जो मैं दान करूं। तुम तो मेरे सामने ही घर को उजाड़ने लगे हो। ले जाओ चीजों को अन्दर रखो। मैंने जिस तरीके से कमाया हुआ है, मुझे पता है। तुमको क्या कद्र है। इतना कहते लाला जी सरहाने पर गिर पड़े। श्वास निकल गई। पुत्रों ने सरहाने से चाबियां निकालकर उसी घड़ी पहले अन्दर पड़ी दौलत बांटी, फिर लाला जी के मरने की ख़बर शहर में की।

सब जीव सुख चाहते हैं। कोई दुःखी नहीं रहना चाहता। संसार में कौन ऐसा जीव है जिसने हमेशा सुख पाया हो, दुःख को न देखा हो। इसके अख्तियार में है कुछ नहीं। केवल कर्म की इच्छाओं को लेकर नतीजे में फंसा हुआ है। सब कर्म के नतीजे में फंसकर जन्म-जन्मान्तर तक

भटकते रहते हैं। जो प्रभु के परायण हो जाते हैं उनकी सुख-दुःख, लाभ-हानि में समान बुद्धि हो जाती है। वे सदा सुखी रह सकते हैं, चाहे शरीर रहे या न रहे। ऐसी बुद्धि विरले जीव को ही सत्संग द्वारा मिला करती है। संसार में जीने जैसी आशा से बड़ी आशा कोई है ही नहीं। विष्ठा के कीड़े को इस गन्दगी से अलग करके रखो, वह भी तड़पने लगता है। ईश्वर कृपा से जीव को यदि ज्ञान मिले, तब संतोष रूपी धन द्वारा तृप्त हो सकता है। संसार की कोई चीज इस मन को तृप्त करने वाली नहीं। ईश्वर जीवों को लोभ, मोह की कीचड़ में न फंसायें। तृष्णा ही वैतरणी नदी है। कोई विरला ही ज्ञान रूपी नौका पर सवार होकर इस वैतरणी नदी से पार होता है।

प्रश्न 81 : महाराज जी, जीव को बंधन किस बात का है?

उत्तर : जीव को बंधन अज्ञान का है। जब अज्ञान गायब होगा तब पता चलेगा कि कोई बंधन वास्तव में है ही नहीं। यह ऐसा मसला है जो मुतालया (अध्ययन) से नहीं बल्कि अनुभव से जाना जाता है। स्थूल शरीर में आत्मा उसी प्रकार मौजूद है जैसे दूध में घी मौजूद है, लेकिन नज़र नहीं आता।

आत्मा का ज्ञान होने पर ज्ञानी की सृष्टि का अभाव हो जाता है। इसलिए महापुरुषों ने कहा है कि वह अवस्था बयान से बाहर है बल्कि अनुभव से जानी जाती है। इसलिए अनुभव करो। तब तू स्वयं जान जाएगा कि अज्ञान रूपी बंधन कहीं था ही नहीं।

प्रश्न 82 : जमाने की गर्दिश (गति) का चक्कर कैसे चलता है और कैसे उससे छुटकारा प्राप्त होता है?

उत्तर : जमाने की गर्दिश का चक्कर हमेशा और हर वक्त चलता रहता है। फकीर हमेशा इस गति को दृष्टि में रखते हुए उस चक्कर से आजाद रहते हैं। परन्तु साधारण जीव इस चक्कर में आए हुए कोशिश में लगे रहते हैं। और कई दफा आध्यात्मिक बातें भी सुनना गवारा (पसन्द) नहीं करते। लेकिन जब गति का चक्कर मुसीबतों में फंसाता है उस समय तो कई गुणी पुरुष फकीरों की आवाज़ सुनकर उस चक्कर से निकलने की चेष्टा करते हैं और उससे शिक्षा प्राप्त करके सत् मार्ग की ओर प्रवृत्त होते हैं और उसकी खोज करते हैं। दुनिया एक मुसीबत-खाना है। उसमें दुख ही

दुख है। जिसने ऐसा नहीं जाना वह पशु है। यदि बहुत फैलाव फैलाया तो उसे समेटने में और आगे फैलाने में बहुत कष्ट झेलना पड़ता है। इसलिए जिंदगी में कोई नियम बनाना चाहिए और जीवन उस नियम के अनुसार व्यतीत करना चाहिए ताकि दिल को शान्ति प्राप्त होवे। जीव को पहली कैद कर्त्तापन अर्थात् अहंकार की है, दूसरी कर्म की और तीसरी कर्मफल की। यही "होमें" रोग अर्थात् तृष्णा की बीमारी जीव को लगी हुई है। सत्पुरुषों ने इस चक्कर से निकलने का सहज उपाय बतलाया है कि कर्त्तापन अर्थात् अहंकार की जड़ में कुल्हाड़ा मारो अर्थात् आपामती को त्याग, और होना न होना प्रभु आज्ञा पर छोड़। ऐसा करते-करते जब बुद्धि निर्मल हो जावेगी तो सत् तत्त में लीन हो जावेगी। तब उसे पता लग जाएगा कि आत्मा सत् है और संसार मिथ्या है। ऐसी अनुभव गति की अवस्था को ज्ञान कहते हैं। अर्थात् बुद्धि इस हालत में सत् और असत् का पूर्ण निर्णय अन्तर्गत अनुभव करती है। ऐसी स्थिति वाला ज्ञानी यदि किसी वक्त मानसिक संकल्प में कैद हो भी जावे तो ऐसा समझे जैसे नदी के तट पर बैठा हुआ कोई पुरुष तपश (गरमी) लगने पर नदी में गोता लगाकर ठण्डक पाता है। ऐसी स्थिति वाला पुरुष उस लगन की अवस्था में डुबकी लगाकर संकल्प की तपश से ठण्डक प्राप्त कर लेता है। जब बुद्धि आत्मयोग में आरूढ़ होकर अपने आपको सत् शब्द आत्मा में लीन कर देती है और शारीरिक विकारों से बिल्कुल असंग होती है, उस समय केवल अपना आप ही सर्व जगत में "मुहीत" (आवृत्त) देखती है। ऐसी अवस्था को ही ज्ञानस्थिति कहा गया है। ऐसी अवस्था में प्राप्त हुए योगीजन केवल आनन्द स्वरूप में ही मगन रहते हैं।

प्रश्न 83 : शारीरिक दु:खों से छूटने का क्या उपाय है?

उत्तर : शारीरिक रोग ही तमाम खेदों (दु:खों) के देने वाला है और मानुष जन्म की उच्चता यही है कि इस भोग क्रीड़ा के संग्राम से अधिक से अधिक पवित्रता प्राप्त की जावे। यानी आहार, व्यवहार, आचार और संगत की अधिक से अधिक पवित्रता प्राप्त की जावे। तमाम मुनश्यात से, मांस आदि से परहेज़ रखना आहार की शुद्धि है। अपने वचन और कर्म को सत् के आधार पर कायम करना आचार की शुद्धि है। नित ही श्रेष्ठ आचारी और सत्-ग्रही पुरुषों की संगत करनी, यह संगत की पवित्रता है। ऐसी नित की पवित्रता जब प्राप्त होती है तब बुद्धि परम आसक्ति से जागृत होकर सत्

मार्ग कल्याण स्वरूप में निश्चल होती है। प्रथम जीवन उन्नति का साधन सार यही है।

प्रश्न 84 : सुख और दु:ख का क्या स्वरूप है?

उत्तर : वासना की गिरफ्तारी ही परम दु:ख है और वासना की पूर्ति यानी निवृत्ति ही परम सुख है। तमाम जीव वासना की पूर्ति की खातिर ही नए से नए कर्म करके अपने आप को जकड़ रहे हैं, परन्तु वासना की निवृत्ति नहीं हो सकती है। यह ही माया भ्रमजाल असगाह है। जो मनुष्य कर्मफल द्वन्द्व भोग में वासना की पूर्ति चाहते हैं वे महज़ एक मूढ़ से भी मूढ़ हैं क्योंकि कर्मफल द्वन्द्व की तबदीली ही वासना को फैलाती है।

इच्छा रहित होना ही परम सुख है और इच्छा सहित होना ही परम दुख है। जब तक इच्छा का कारण कर्त्तापन (अहंभाव) का अभाव नहीं होता है तब तक कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति जो इच्छा का विस्तार है, इससे असंग होना अति कठिन है।

प्रश्न 85 : असली सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

उत्तर : ख्वाह (चाहे) कोई गृहस्थी है या विरक्ती है, असली सुख आत्म परायण होने से ही प्राप्त होता है जो खुशी गमी से ऊंचा है। मालिके कुल का कानून सबके वास्ते बराबर है। जो सत् मार्ग की तरफ जाएगा वह शान्ति को प्राप्त होगा और जो अभिमान वश होकर उपद्रव करेगा वह परम दु:खी होवेगा। यह सार सिद्धान्त है।

शान्ति या आनन्द

प्रश्न 86 : महाराज जी, कृपया शान्ति वाला पहलू भी साफ करें। व्यक्ति जब कुछ सुख या आराम कभी थोड़ी देर के वास्ते महसूस करता है तो वह कहता पाया गया है कि मुझे बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। क्या यही वह शान्ति है या इसका भी कुछ और स्वरूप है?

उत्तर : लाल जी, यह तो लोगों ने अपना मन पसन्द नाम दे रखा है। तुम उसे असली शान्ति का मुलम्मा (नकली नाम) कह सकते हो। असली शान्ति शरीर में नहीं है। शरीर में तो सुख और दु:ख है। शांति का कोई ताल्लुक (सम्बंध) सुख और दु:ख से नहीं है। वह इनसे भिन्न वस्तु है। जब यह बुद्धि उस प्रकाश स्वरूप चेतन सत्ता को जान कर उसमें लय हो जाती है, जिसके द्वारा यह शरीर प्रकाशमान है, तो यह अवस्था पूर्ण शान्ति कहलाती है।

प्रश्न 87 : महाराज जी, यह समझ में नहीं आया कि जब बुद्धि लय हो जाती है, तो अनुभव कौन करता है और कैसे अनुभव करता है? कृपया इसे खोलें।

उत्तर : प्रेमी, अब तुम्हें क्या बतलावें कि कौन अनुभव करता है और कैसे अनुभव करता है। जरा हिम्मत करो, दूर नहीं है। जब पा जाओगे तो आप से आप पता चल जाएगा। एकमात्र जीवन शक्ति के बिना और कुछ है ही नहीं। नमक समुद्र की थाह लेने गया, मगर आप ही खोया गया। अशान्त बुद्धि चली अपने उद्‌गम स्थान की खोज में, पता ही नहीं चला कि कहां गई और कैसे गई, रह गई चेतन सत्ता मात्र।

प्रश्न 88 : महाराज जी, जिस आनन्द में महात्मा लोग रहते हैं उसकी महिमा क्या है? क्या इसे आंखों से देखा जा सकता है, वाणी से कहां तक व्यक्त कर सकते हैं?

उत्तर : जां सरूप को अखै गत कहिए ।
तां की उस्तत एह विध लहिए ।।
कहे कोई जन परम तत् ऐसा ।
जो-जो बूझे सो होय वैसा ।।
कहत सुनत कुछ अचरज बाता ।

सदा इस्थिर नहीं दोष को खाता ।।
तन मद्ये सो रहे समायो ।
बिना स्वभाव नित रमनायो ।।
तन की ममता मन को भरमावे ।
मन की अस्थिरता देह वंजावे ।।
तन मन दोनों शब्द में लीना ।
"मंगत" तब भेद तत्वज्ञान का चीन्हा ।।

देवता जी! कहते बनता ही नहीं, क्या कहा जाए । जिसने प्राप्त कर लिया उसी का रूप हो गए। कहने-सुनने में परम तत्व आ ही नहीं सकता। इन्द्रिय अगोचर इसीलिए इसको कहा गया है। उस आनन्दमय अवस्था का बयान किसके आगे किया जाए? कौन इन बातों पर ध्यान देता है। पहले वक्तों में संत-मंडलियां बैठकर नित्य तत्वज्ञान का आपस में विचार करती थीं। आज वह समय आ गया है कि जहां चार संत इकट्ठे हो गये तम्बाकू की खैर नहीं। बड़े भाग जो आप गुरुमुखों के दर्शन हो गए। जिस सुख के वास्ते जीव दिन रात यत्न-प्रयत्न कर रहा है, वास्तव में वह सुख तो साधु-संगत और सत्संग में है। न ही जीव से मोह छूटता है और न सत्मार्ग पर आता है। शरीर तो समय पर नाश हो जाने वाली चीज है। यह इसका धर्म है। मूर्ख जीव इसमें मुस्तग़र्क (लीन) होकर असली सुख से दूर रहते हैं। कोई ही बड़भागी जीव सत्संग से प्रीत रखता है। अब तो लेखा ही खत्म है। साधु समाज ने ही जब अपना नियम-धर्म छोड़ दिया है तब जनता क्या करे? तप तेज द्वारा ही जीवों के अन्दर श्रद्धा विश्वास पैदा हो सकता है। ईश्वर सबको सुबुद्धि देवे।

प्रश्न 89 : महाराज जी, असली आनन्द किसे कहते हैं?

उत्तर : लाल जी, इसके लिए एक ही बात काफी है कि तू शरीर और शरीर से सम्बंधित किसी भी पदार्थ की चाहना अपने अन्दर न रखे। यानी अपनी तमाम इच्छाओं से जब तू अबूर पा जावेगा और तेरे अपने आपको ही तसल्ली मिल जावेगी तो आनन्द के सही स्वरूप का तुझे पता चल जावेगा। यह बात बयान से बाहर की है।

प्रश्न 90 : असली शान्ति कैसे प्राप्त होती है ?

उत्तर : बड़ी से बड़ी कोशिश करके परम पिता परमेश्वर के चरणों से

प्रीति लगाने से ही असली शान्ति मिलती है। सब जीवों की अन्दरूनी चाहना निर्मल शान्ति की प्राप्ति है, जो तमाम जरूरतों यानी कामनाओं के त्याग करने से प्राप्त होती है। कामनाओं का त्याग देह परायणता के त्याग करने से और ईश्वर परायण होने से प्राप्त होता है।

देह परायणता का त्याग सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत्-स्मरण आदि नियमों की धारणा के बल से प्राप्त होता है। यानी तमाम सुखों की मुनास्बत हासिल करके गैर-ज़रूरी ज़रूरतों का त्याग करना, और अपने आपको ईश्वर आज्ञा में निश्चित करना - यह भावना देह अभिमान और स्वार्थ यानि खुदगर्जी से निजात (मुक्ति) के देने वाली है, और असली कल्याण का स्वरूप है।

अपनी तमाम खुदगर्जी और स्वार्थ का त्याग कर देना और केवल प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों की कल्याण करनी और कल्याण चाहनी, अपनी शक्ति के मुताबिक, यह भावना ईश्वर परायणता है। यानी एक ईश्वर के दृढ़ परायण होने से देह की शुद्धि, खानदान यानी कुल की शुद्धि, समाज की शुद्धि या उन्नति और देश की उन्नति या पवित्रता गुणी पुरुष कर सकता है और इसी ईश्वरीय नियम के अनुकूल चलकर अपने आप का भी सुधार कर सकता है। यानी तमाम खुदगर्जी को त्याग करके अपने फर्ज़ को समझते हुए निराभिमान होकर यथाशक्ति तमाम जीवों का कल्याण करना ही असली शान्ति प्राप्ति का साधन है।

प्रश्न 91 : क्या इस शरीर में शान्ति प्राप्त हो सकती है?

उत्तर : नहीं प्रेमी। शरीर में तो सुख-दु:ख ही होते हैं। शान्ति केवल मात्र उस प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के अनुभव में ही है जिस द्वारा यह मुर्दा शरीर प्रकाशवान है। उस परम शक्ति परमात्मा के अनुभव के लिए औलियाओं (सिद्ध पुरुषों) के पास बैठना सीख। औलियाओं के पास बैठने से खुदा के पास बैठना तुमको आ जावेगा।

मानव जीवन का ध्येय

प्रश्न 92 : मनुष्य जीवन का ध्येय क्या है?

उत्तर : मनुष्य जीवन का मकसद (ध्येय) निर्भय शान्ति है अर्थात् ऐसी खुशी जिसमें तबदीली (परिवर्तन) का डर न हो। यह तब ही हासिल हो सकती है जब जिस्म की तहकीकात (छानबीन) करके उसके अन्दर जो जीवन शक्ति है उसे मालूम किया जावे। यह जीव अज्ञान की वजह से हक़ीकत (वास्तविक) शान्ति की तलाश अपने अन्दर करने के बजाए संसारी पदार्थों में कर रहा है। चूंकि संसार की सब चीजें फ़ानी और नापायदार (नश्वर एवं क्षणिक) हैं इसलिए उनसे मिलने वाले सुख भी फ़ानी और नापायदार होने की वजह से दुःख और अशान्ति का मूजब (कारण) बन जाते हैं। जो जीव सुख चाहता है उसे चाहिए कि अपना सुख दूसरों पर निसार (न्योछावर) करे। इससे उसे सुख मिल जावेगा।

प्रश्न 93 : मनुष्य जीवन की सार क्या है?

उत्तर : सत् स्वरूप की तलाश ।

प्रश्न 94 : मनुष्य शरीर धारण करने का परम लाभ क्या है?

उत्तर : शरीर रूपी संसार को धारण करके हरएक जीव शारीरिक भोगों की आसक्ति में विचर रहा है। जैसे-तैसे भी भोग प्राप्त किए जाते हैं, उतनी ही अशान्ति बढ़ती जाती है। इन्हीं हालात के मुताबिक जैसे एक चक्रवर्ती निरासा और प्यासा है, ऐसे ही एक दलिद्री भी अपनी अशान्ति में विचर रहा है। यानी जो भी शरीरधारी देखने में आ रहा है वह अपने आप में नित ही अधीर और अशांत है। ऐसे अन्धकारमयी जीवन के पूर्ण भेद को समझ करके सत्-शान्ति प्राप्ति का निर्मल प्रयत्न धारण करना ही मानुष देह का परम लाभ है।

प्रश्न 95 : महाराज जी, कामयाबी किस तरह मिल सकती है? मतलब यह कि संसार में विचरते हुए नित नई फिक्र चिंताए बनी रहती हैं, और भी कई विकार खड़े हैं।

उत्तर : पहले अपनी बीमारी की अच्छी तरह जांच कर लो, फिर उसका इलाज भी हो जाता है। जो अपनी बीमारी को समझता ही नहीं वह

उसे कैसे ठीक कर सकता है। इस बीमारी में सब शरीरधारी खड़े हैं। तुम सब ईश्वर विश्वासी बनो। बच्चों वाले विचार छोड़कर, नेक अमल,सत्कर्म धारण करें। जिन कर्मों से मन की अशांति बढ़ती है उनको छोड़ दें। इस मानुष देह का असली मकसद जानें। जब जान लोगे तब कहीं सही सोच वाले बनोगे। इस मानुष देह को धारकर सिर्फ भोग प्राप्ति के वास्ते यत्न करते रहना, यह सही यत्न नहीं है। इस जामे की विशेषता यह ही है कि अपने आप की पहचान करे। यह जाने कि कहां से आया है, किधर जाना है और क्या कर रहा है। ईश्वर क्या है, संसार क्या है, आत्मा क्या है, जिस्म क्या है। आत्मा, शरीर का सम्बन्ध कितनी देर चलेगा। अन्तर विखे जो वासना उमड़ रही है, यह किधर ले जा रही है। इसकी निवृत्ति कैसे होगी। प्रेमी बहुत से विचार सोचते समझते हैं। पहले क, ख पढ़ो। मतलब यह कि सादगी धारण करो। सत्य बोलो, सेवा करो। सत्संग में आया करो, और फिर आहिस्ता-आहिस्ता किसी गुरु, पीर, अवतार का आधार पकड़ो। आलस छोड़कर सत् पुरुषार्थ धारण करो। इसकी कल्याण एक दो बातों से नहीं हो जाती। इसके सुधार के वास्ते बड़े दिल की जरूरत है। यह मन सांसारिक सुखों की तरफ जल्दी दौड़ता है। जो बात मन में पक्की हो जाती है उधर ही बुद्धि, शरीर भी लग जाते हैं।

चोर कुत्तिया मिल गए पहरा किसका दे

हर वक्त कल्याण के वास्ते सोचते रहो। अंतर विखे जो चोर बैठे हुए हैं पलक-पलक विखे इनसे बचाव करना है। बार-बार सोचो ज़िन्दगी किस वास्ते मिली हुई है। बगैर ईश्वर की खोज के ममता का गुबार खत्म नहीं हो सकता। इस संसार की अश्चर्ज रचना से अबूर (छुटकारा) पाना कोई आसान नहीं। जिन्होंने अपने आप पर काबू पा लिया है उनकी नजदीकी हासिल करो, तब ही तृष्णा रूपी नदी को पार कर सकोगे। इतनी बातें समझाने वाला कोई मुश्किल से ही मिलेगा। ईश्वर नित सत् है, संसार नित झूठ और दु:ख रूप है।

प्रश्न 96 : महाराज जी, संसारी जीवन में तो ईश्वर की याद नहीं हो सकती है, इसके वास्ते जिज्ञासु को क्या कदम उठाना चाहिए?

उत्तर : 'परमेश्वर ते भुलयां व्यापन सभै रोग', मूल वस्तु को भूल जाना एक महान भूल है। अगर कोई साहूकार मूल धन को भूल जाए तो

सूद या ब्याज उसे कोई क्या देगा। परमात्मा उसकी मदद करता है जो उसका ध्यान करता है। जब तुमको मूल का ही पता नहीं, ईश्वर की याद कैसे बन सकती है। प्रेमी, जीवन में सबके साथ मिलजुल कर रहना, खाना, पीना, उठना, बैठना और धन वगैरा कमाकर शारीरिक भोगों को भोगना ही महाकार्य नहीं है। जीवन के लक्ष्य का विचार करना चाहिए। इसका विचार करके परम पदार्थ की प्राप्ति का पूर्ण यत्न करना चाहिए। सत्संग में आया करो। जो श्रवण करो उस पर अच्छी तरह विचार करो और उसे धारण करो।

ईश्वर विश्वास और श्रद्धा

प्रश्न 97 : ईश्वर के साथ मेरा क्या सम्बंध है? क्या मेरे कसूर या गुनाह केवल उसकी खुशामद से बख्शे जा सकते हैं। अगर नहीं, तो ईश्वर से क्या मांगना चाहिए? अगर की गई गलती का फल भुगतना है तो ईश्वर से डरना तो ज़रूरी है। उससे प्रेम क्यों?

उत्तर : ईश्वर एक शक्ति है जो हर वक्त आनन्द स्वरूप है और हर एक सिफ्त (गुण) में पूर्ण है और शाश्वत है। वह दुनियावी राहत और रंज से मुबर्रा (अलग) असली खुशी है। हर एक ताकत का मखज़न (स्रोत) है। इसके मुकाबले में जीव माया की गिरफ्तारी में आकर हर एक तकलीफ में मुब्तला (ग्रस्त) रहता है यानी किसी हालत में भी रंजोग़म से छूट नहीं सकता। पैदायश से लेकर मरने तक असली खुशी की तलाश करता रहता है मगर आखिर सब रायगाँ (व्यर्थ) ही जाता है। दुनिया से बेकरार और बेज़ार ही जाता है। इस बेज़ारी और बेकरारी से अबूर पाने की खातिर ईश्वर की भक्ति और रियाज़त है।

जब तक ईश्वर का विश्वास न धारण किया जावे तब तक झूठी दुनिया की तमन्ना कम नहीं होती बल्कि बढ़ती जाती है और दिन-रात बड़ी से बड़ी कोशिश करके ग़फ़लत (अज्ञान) की गिरफ्तारी में आ जाता है। अज्ञानवश होकर वह असली खुशी को पहचान नहीं सकता। यह ही दुनिया की बेज़ारी है। राजा-भिखारी, त्वांगर-कंगाल सबकी बेज़ारी (व्याकुलता) एक जैसी है यानी ख्वाहिशात (कामनाओं) की आग हर एक को जलाती है। इच्छित वस्तु को हासिल करके भी जीव शान्ति को नहीं पाता और उसके नाश होने से जीव अधिक दुखी होता है। इस वास्ते दुनिया एक रंजोगम की जगह है। ज्यों-ज्यों दुनियापरस्ती में गिरफ्तार होता जाता है त्यों-त्यों अति क्लेशवान होता है। आखिर कालिबे अन्सरी (नश्वर शरीर) को छोड़कर फिर दूसरे कालब (शरीर) की गिरफ्तारी में आ जाता है।

यही हालत बनी रहती है जब तक कि अविनाशी खुशी यानी ईश्वरीय शक्ति के साथ मिलाप न कर लेवे। जीव ईश्वर शक्ति का जुज्व (अंश) है। इस वास्ते यह अपने कुल स्वरूप के जाने बगैर कभी भी ख्वाहिश के अजाब से छूट नहीं सकता। मन की इस बेकरारी को दूर करने

की खातिर अपने कुल स्वरूप यानी ईश्वर की प्रस्तिश (पूजा) है। जिस वक्त ईश्वर का विश्वास दृढ़ हो जाता है, उस वक्त फ़नाह (नाशवान) जाल से मुख्लसी हासिल करता है। पैदायिश और फ़नाह (जन्म और मृत्यु) से छूटने की खातिर ईश्वर भक्ति है। बाकी दुनियावी पदार्थों की खातिर जो भक्ति करता है वह जहालत (अज्ञान) है। जो कुछ भी जीव ने नेकी-बद (शुभ-अशुभ) कर्म किया है उसका इवजाना (फल) जरूरी मिलता है, ख्वाहे (चाहे) इबादत करे ख्वाहे न करे। ईश्वर की भक्ति विशेष रूप से इस वास्ते की जाती है कि आर्ज़ी दुख-सुख में समता बनी रहे। हर हालत में धीरजवान रहे और ख्वाहिश के अज़ाब से छूट मिले। यही दर्जा निजात (मुक्ति की स्थिति) का है।

जिन लोगों ने ईश्वर की बन्दगी की उनका जीवन विचार कर सकते हो कि किस तसल्ली में उन्होंने राहत व रंज (सुख और दुख) को बरदाश्त किया। यही हालत असली खुशी की है जिसमें आर्ज़ी खुशी व ग़मी की मदाखलत (हस्तक्षेप) नहीं। इसी शान्तिमय हालत को हासिल करने की खातिर भक्ति है। जब तक इस हालत को आप प्राप्त न कर लेवें तब तक खुशी व गमी यानी पैदायिश व फ़नाह के दायरे से नहीं निकल सकते।

ईश्वर शक्ति काल और कर्म से मुबर्रा (मुक्त) है यानी हर हालत में पूर्ण आनन्दस्वरूप है। जीव हर हालत में काल और कर्म की गिरफ्तारी से भयभीत रहता है। इस अज़ाब से छूटने की खातिर अपने कुल-स्वरूप से प्रेम और उसकी प्राप्ति की जरूरत है। वह ही हालत परमानन्द की है।

दुनियावी सुख (इन्द्रिय भोग) असल में अज़ाब (दुख) हैं। न भोग स्थिर रहते हैं, न मन, इन्द्रियां स्थिर रहती हैं। इस वास्ते झूठा लालच हर वक्त बेसबरी और लाचारी के देने वाला है यानी अधिक भोग पदार्थ हासिल करके भी सबर (संतोष) नहीं होता, ज्यादा ही दुखी होता है। इस घोर दुख को विचार करके महापुरुषों ने उस परम शक्ति का आसरा लिया है जो हमेशा दायम व कायम है और आनन्दस्वरूप है।

जीव देह के सुखों को सत् जानकर हर वक्त मुस्तगर्क (लवलीन) रहता है। जब देह नाश हो जाती है तब सुख कहां? बेज़ारी ही बेज़ारी है। इस दु:ख को महसूस करके यानी फ़नाह के दायरे से निकलने की खातिर ईश्वर की प्रस्तिश है।

जीव देह के भोगों में ग़लतान है मगर देह का एक बाल भी नहीं बना सकता। बताओ जो चीज दूसरी ताकत के सहारे है, वह कहां तक सुख दे सकती है। इस वास्ते इस ख्वाबे-गफ़लत (अज्ञानता) को छोड़कर अपने असली हक़ीकी मालिक की तलाश आशिकों ने की। वजूद (शरीर) एक फ़नाह (नाश) होने वाली चीज है। उसका मोह अधिक दुःख रूप है। इस वास्ते वजूद को जो जिन्दा रखने वाली ताकत है उसको हासिल करना असली खुशी है। जिस ताकत के सहारे यह अनासर (तत्वों) का वजूद चलता है और रंग-रंग के अजायबात (स्वरूप) दिखाता है, उस ताकत की तलाश करना ही असली मकसद (ध्येय) है।

ईश्वर सत् है और दुनिया मिथ्या है। इस वास्ते सत् की तलाश असली खुशी है और झूठ की मुहब्बत असली रंज है। ईश्वर से मांगना सिर्फ धीरज और शान्ति चाहिए जो इस अजाब से निजात देवे, और मादी (भौतिक) पदार्थ जीव अपनी कल्पना से हासिल कर सकता है। मगर यह सख्त रंज के देने वाले हैं। गौर करके विचार करें। तमाम कायनात (प्रकृति) का जो आधार है उसकी तहकीकात (खोज) कायनात के रंजोगम से छुड़ाने वाली है। इस वास्ते उस मालिक की बन्दगी की जाए।

असली खुशी जो हमेशा एकरस है वह ईश्वर का स्वरूप है जो हर एक के अन्दर चमक रहा है। इस वास्ते देह के भोगों से आजाद होकर उस ईश्वर की तलाश करनी चाहिए, जिससे सब शरीर की कला का काम चलता है।

जीव बज़ाते खुद (अपने आप) रंज के असबाब (कारणों) में मुस्तग़र्क (डूबा) रहता है। अपने मालिके-कुल की बन्दगी से उस अज़ाब से छूटकर हमेशा की खुशी हासिल कर लेता है। मनुष्य जन्म का यही अधिक लाभ है:-

सत ठाकर मन ध्याओ, सम्पत यह तत् सार ।
"मंगत" पावे परम गत, काल से भयो छुटकार ।।

प्रश्न 98 : महाराज जी, ईश्वर को मानने से क्या आराम मिलता है और न मानने से क्या तकलीफ मिलती है?

उत्तर : प्रेमी, ईश्वर के मानने से इन्सान विकारी जीवन से बचकर सदाचारी जीवन को अपनाता है और असली दायमी (स्थायी) शान्ति को

हासिल करता है। ईश्वर को न मानने से यह जीव संसारी सुख-दुःख में फंसकर नित ही अशांत और अधीर रहता है।

प्रश्न 99 : महाराज जी, आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप हमें अपना सत् विश्वास बख्शें। आप हर पत्र में लिखा करते हैं प्रभु तुम्हें सत्विश्वास देवे। परन्तु महाराज जी बात कुछ बन नहीं रही। कहीं त्रुटि अवश्य है।

उत्तर : हां प्रेमी, त्रुटि अवश्य है। इसके वास्ते नानक देव की बताई हुई कुरबानी देनी पड़ेगी। बाबा नानक जी कहते हैं:

जिसकी वस्तु तिस आगे राखे ।
प्रभु की आज्ञा माने माथे ।।

प्रश्न 100 : महाराज जी, ईश्वर विश्वास की कसौटी क्या है?

उत्तर : प्रेमी, बड़ी गम्भीर परीक्षा है। ईश्वर विश्वास में पक्का इन्सान लाभ और हानि में एक बराबर रहता है। मालिक की मर्जी में (राजी-ब-रजा) रहने की आदत पूर्ण और पक्की हो जाती है। चाहे वह राज पर बैठे, वहां भी वह हर्षित नहीं होगा और यदि गहरी मुसीबतों को प्राप्त हो जावे तो वहां भी उसे दुःख नहीं होगा।

प्रश्न 101 : महाराज जी, ईश्वर में दृढ़ विश्वास कैसे पक्का हो?

उत्तर : प्रेमी, दृढ़ विश्वास तीन प्रकार से पक्का हो सकता है:

(1) संसार के कष्ट कर्म-चक्र वश तुझ पर ऐसे आ जावें कि कहीं से भी तुझे किसी सहारे की सूरत नज़र न आवे, तो उस समय ईश्वर पर निश्चय पूरा बैठता है।

(2) यदि बुद्धि पवित्र हो अर्थात् विकारों की अग्नि से कुछ आर्जी तरीके से ठंडक पाई हो अर्थात् पक्की न हो, तो संत, सत्पुरुषों द्वारा यह दृढ़ निश्चय में पक्की हो सकती है।

(3) किसी प्रकार से शरीर के नाश होने का निश्चय तबीयत में बैठ जावे। जिसके अंदर शरीर के नाश होने का निश्चय बैठ गया है वह दुनिया की शान व शौकत और उसके स्वादों से उपरस हो जाता है।

प्रेमी, तमाम श्रुति, स्मृति, वेद, शास्त्र, धर्म मज़हब, पंथ को पढ़ने और जानने का सार यह है कि बुद्धि अपने इस शरीर रूपी मकान की कैद

से छुटकारा पाने की कोशिश करे। लाल जी! ये दुनिया के रोग कभी समाप्त नहीं होंगे और न ही दुनिया के काम समाप्त होंगे। तुम्हें पहले अपना इलाज करना चाहिए। सारे संसार का कल्याण इसी में छुपा हुआ है। चाहे कैसी भी मुसीबत या परेशानी आवे, चाहे दुनिया का कुछ भी क्यों न हो जावे यानी दुनिया उलट-पुलट क्यों न हो जावे, तुम्हें चाहिए कि दुनियावी कामों के लिए अपना समय निश्चित करो। उस समय के अतिरिक्त कभी भी दुनियावी कर्मों में अपने आपको न फंसाओ। बाहर एक फट्टा लगा दो कि अमुक समय तक मिल सकते हैं, अमुक समय से अमुक समय तक किसी अवस्था में भी नहीं मिल सकते। तब प्रेमी, कुछ कल्याण की सूरत बनेगी।

प्रश्न 102 : महाराज जी, यकीन (विश्वास) के बारे में ज़रा खोल कर समझावें?

उत्तर : प्रेमी जी, विश्वास की पांच अवस्थायें होती हैं। पहली अवस्था में मनुष्य अपने शरीर के भोगों पर एकमात्र विश्वास करता है। अर्थात् भोगों के सामान को एकत्र करने के वास्ते हर प्रकार की खोज धारण करता है और तमाम जीवन उचित और अनुचित को एक तरफ रखकर भोगों के साधन इकट्ठा करने में ही लगा देता है। इस प्रकार के मनुष्य अधिकतर मिलेंगे। दूसरे विश्वास की अवस्था यह है कि भोगों की उचित प्राप्ति पर विश्वास किया जाता है। अर्थात् भोगों की प्राप्ति तो मनुष्य चाहता ही है परन्तु उसकी बुद्धि जायज़ और नाजायज़ (उचित व अनुचित) को समझती है और अनुचित छोड़कर उचित पर अपने आपको टिकाती है। यह अवस्था विश्वास की पहली हालत से ऊंची है और इस प्रकार के व्यक्ति कम देखने में आते हैं। तीसरी अवस्था विश्वास की यह है कि भोगों को नाशवान समझकर उनसे घृणा करना। इस प्रकार के विश्वास की अवस्था के व्यक्ति सब प्रकार के भोगों से वैराग्य रखते हुए उन से ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति बहुत कम दृष्टि में आते हैं। चौथी अवस्था विश्वास की यह है कि एक मात्र परमात्म-सत्ता पर ही दृढ़ता रहती है। इसके विपरीत और जो कुछ भी नज़र आता है वह उनके विश्वास की सीमा से बाहर होता है। इस प्रकार के व्यक्ति बहुत ही कम नज़र आते हैं। पांचवीं अवस्था विश्वास की यह है कि ऐसा व्यक्ति जो परमात्म-सत्ता पर ही दृढ़

आस्था रखता है, वह होनी, न होनी, सब उसकी आज्ञा में देखता है और देह धर्म करके जो कुछ भी सुख दुःख उस पर आ पड़े वह उसे सहन करता है। इस विश्वास को धारण किए हुए व्यक्ति लाखों में उंगलियों पर गिनने लायक होते हैं। प्रेमी जी, पुख्ता यकीन (दृढ़ विश्वास) अपने जीवन में प्राप्त करो तो तुम्हारा कल्याण अवश्य हो जावेगा।

प्रश्न 103 : महाराज जी, दृढ़ विश्वास कैसे होता है?

उत्तर : प्रेमी, विश्वास या तो बिल्कुल मूर्ख को होता है या पूर्ण उच्च अवस्था वाले को होता है, वरना बीच वाले व्यक्ति असली विश्वास प्राप्त नहीं कर सकते। पक्का विश्वास होना चाहिए। यदि ऐसा विश्वास लेकर सीधे रास्ते पर चल पड़े तो विजय है और यदि उलटे चल पड़े और विजय न भी हुई, तो भी रास्ता सीधा हो जावेगा। परन्तु शर्त यह है कि दृढ़ विश्वास होना चाहिए और विश्वास से चलना अवश्य चाहिए।

प्रश्न 104 : महाराज जी, ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखना आपका मुख्य उपदेश है। क्या अपनी जान बचाने की खातिर एक जगह से दूसरी जगह भागते फिरना इस ईश्वरीय विश्वास में कमी नहीं दर्शाता जबकि यह निश्चित है कि मौत टल नहीं सकती?

उत्तर : प्रेमी जी, ईश्वर का विश्वास रखने वाला हर वक्त निर्भय रहता है और न ही जान बचाने की परवाह करता है। वह सब होना और न होना प्रभु आज्ञा में देखता है और धैर्यवान रहता है।

प्रश्न 105 : सच्ची श्रद्धा क्या है?

उत्तर : यह संसार एक बाजी (खेल) है और बाजीगर इसका सच्चा है। ऐसा जानकर जो इस बाजीगर पर सच्चा निश्चय करता है उस निश्चय को सच्ची श्रद्धा कहते हैं।

जिस मालिक ने इस अद्‌भुत संसार की रचना रची वह ही सब कुछ करन-करावनहार है। इस शरीर का कोई भरोसा नहीं चाहे दस दिन रहे चाहे लाख वर्ष रहे आखिर को नाश हो ही जावेगा। इस वास्ते सब हील-हुज्जत (तर्क-वितर्क) छोड़कर बाजीगर (ईश्वर) से प्रेम करो।

श्रद्धावान होने के लिए श्रद्धावान पुरुषों के चरित्र पढ़ो और विचार करो। पूर्ण श्रद्धावान होने पर गुरुकृपा का अनुभव स्वयं ही होने लगेगा।

प्रश्न 106 : महाराज जी, आस्तिक कौन है?

उत्तर : प्रेमी, जिस वक्त जीव यह समझता है कि शरीर नामुकम्मल (अपूर्ण) है, शरीर के सुख भी नामुकम्मल हैं, इस वास्ते ऐसी चीज प्राप्त की जावे जो मुकम्मल हो, उस वक्त वह आस्तिक है।

प्रश्न 107 : महाराज जी, बाइबिल में लिखा है कि विश्वास से पर्वत भी हिल जाते हैं। क्या मनुष्य अपने संकल्प मात्र से ऐसा कर सकता है?

उत्तर : प्रेमी, ऐसा तभी हो सकता है जब दृश्यमान संसार संकल्प रूप होकर अनुभव में आने लगता है। जब तक संसार स्थूल रूप में अनुभव हो रहा है, तब तक ऐसा होना सम्भव नहीं।

सत्गुरु की आवश्यकता, प्राप्ति तथा पहचान

प्रश्न 108 : महाराज जी, जीव को संसार के सुखों में ज्यादा रुचि रहती है और सत्संग तथा अच्छे कर्मों के करने के वास्ते उत्साह पैदा नहीं होता, क्या प्रारब्ध के कर्मों की वजह से ऐसा होता है?

उत्तर : प्रेमी, बड़ा अच्छा विचार तुमने किया है। जन्म-जन्मान्तर से जीव का रुख संसार की तरफ बना हुआ है। स्वाभाविक सांसारिक सुख-भोगों की तरफ जन्म काल से इसकी रुचि बनी हुई है। जिस तरफ चित्त का लगाव बहुत ज्यादा हो, उसी तरफ यह चित्त दौड़ता है। शुभ अशुभ कर्म जीव से होते रहते हैं। जब तक चित्त के अन्दर प्रभु प्रेम, सत्मार्ग की तरफ लगाव न हो, तब तक जीव सत्संग और अच्छे कर्मों को अपना नहीं सकता। पूर्ण भाग उस जीव के हैं जिसके अन्दर प्रभु चरणों का प्रेम बना हुआ है। वह ही सत्संग की ओर जाएगा। सत्संग में जाने वाले के अन्दर सत् विचार पैदा होते हैं, वरना मूढ़मति कुसंग की तरफ तो लगा हुआ होता है। जब सत् विचार होते हैं तब इसका सत् विश्वास ईश्वर के प्रति बनने लगता है। सत् विश्वास करके गुरु की शरण में जाता है। सच्चाई को तीर्थ, वन, पहाड़, गुफा में ढूंढने लगता है। कहीं से कोई सत्पुरुष मिल जाए तो उससे ज्ञान उपदेश लेकर सत् साधन को धारण करके सिद्धता को प्राप्त कर लेता है। बगैर साधना के साधु नहीं बन सकता। अनेक तरह के यत्न-प्रयत्न करने में लगा रहता है। प्रेम के बिना कोई कारज सिद्ध नहीं होता। जिस काम में इसकी रुचि होती है उसे पूरा कर लेता है।

लाल जी, बार-बार अपने आप को प्रभु में दृढ़ करके इस कर्म रोग से खुलासी पा जाता है। जब तक कर्म की वासना क्षय नहीं होती तब तक संसार के सुख भोगों की तरफ चित्त दौड़ता रहता है। जिस वक्त सुरति सत्नाम में लग जाती है, बाहर की सुधबुध भूलकर केवल निर्वाण हालत में विचरती है, तब भोगमयी वृत्ति गायब हो जाती है। फिर चित्त किधर दौड़ेगा? इस वास्ते निष्काम प्रेम भाव से मालिक के चरणों में दो घड़ी चित्त को लगाया करो। जब तक सत् युक्ति से प्रभु नाम स्मरण में बुद्धि नहीं लगती तब तक वृत्ति दौड़ती रहेगी। किसी गुरु पीर का आसरा लेकर चलने से सफलता मिल जाया करती है। जब संसार के सब कामों को सीखने के

लिए उस्ताद की जरूरत रहती है तो प्रेमी, धर्म के मार्ग में भी सत्‌गुरु की जरूरत है। तुम लोग बड़े व्यापारी हो। सत् का सौदा लेने की ख्वाहिश होगी तब ही तो खरीदोगे। पहले तड़प पक्की बनाओ, फिर यत्न भी बन जाएगा।

प्रश्न 109 : महाराज जी, सत्मार्ग का विचार कैसे किया जावे?

उत्तर : ऐसा ज्ञान विचारो कोई।
सो नर जीवन मुक्ता होई।।
बोलनहार कहां सों हुआ।
कैसे उपजा, कैसे मुआ।।

पवन की गांठ सहज बन आई।
तां पिंगला बिनसिया भाई ।।
खुल गई गांठ खोज नहिं पाया ।
पवन का पुतला, पवन समाया।।

जैसे बादल होत आकारा।
तैसे दरसे यह संसारा।।
मिट गया बादल रहा आकासा।
ऐसे आतम को नहीं बिनासा।।

इस बहुरंगी का पार न पाया।
कहें कबीर गुरु भेद सिखाया।।

प्रेमी, गुरु गोसाईं मिलें तब ही सत् का भेद लखावें। बिना मुर्शिद के विचार (आत्म चिंतन) का तरीका नहीं मिलता। बिना विचार के ज्ञान नहीं होता। जिस तरह संसार की भक्ति यानी प्राप्ति कठिन है, इसी तरह सत् की धार पर चलना भी कठिन है–

चलो चलो सब कोई कहे, विरला पहुंचे कोये।
जां को सत्गुरु मिलनगे, तां घट सोझी होये।।

तरीका पाकर भी बड़ी मेहनत की जरूरत होती है। तुमको अभी क्या इस तरफ की पड़ी है। तुमने अभी संसार को देखना है। प्रेमी, यह आशिकों का मार्ग अलग और संसारियों का अलग है।

ग्राही हो तो भगत कर, ना तो कर वैराग।
वैरागी बन्धन पड़े, ताको बड़ा अभाग।।
तब लग जोगी जगत गुरु, जब लग रहे निराश।
जब जोगी आशा करे, तो जग गुरु जोगी दास।।

बाहोश होकर बुद्धि खोलकर सुना करो। भाई का कड़ाह (हलवा) नहीं जो जल्दी मुंह में डाल लोगे। सत्संग में आया करो। इस तरह शौक बढ़ता है।

साध बड़े परमार्थी, घन ज्यों बरसे आय।
तपन बुझावें और की, अपना पारस लाय।।
नदिया बहती जात है, उठ धोइयो शताबी हाथ।
न जाने किस पलक में, नाथ से होवें अनाथ।।

प्रेमी, किसी के होकर चलोगे तब कुछ न कुछ पा लोगे। मनमुखी जीव लोक-परलोक दोनों सुखों से महरूम (वंचित) रहता है।

प्रश्न 110 : महाराज जी, गुरु की पहचान कैसे करें? जिस संत के पास जाते हैं उनकी तरफ से प्रेरणा यह होती है कि नाम लो, उपदेश ले लो।

उत्तर : प्रेमी, पहले इस बुद्धि को पारखी बनाओ यानि परखने वाली बनाओ, जिससे संत-असंत की पहचान हो जावे। फिर गुरु की अच्छी तरह सार लो। जिस तरह लोहार लोहे की सार लेता है, अच्छी तरह ठकोरना चाहिए। जब दो पैसे की हांडी लेते हो, किस तरह उसे इधर-उधर से देखकर लेते हो। सारी उम्र के वास्ते रहनुमा बनाना है, फिर उसकी जांच न की जाए। सत् बचनी नहीं बनना चाहिए। पहले यह सोचो गुरु की जरूरत भी है या नहीं। गुरु संसारी कामों की मदद के वास्ते चाहिए या रूह की तसल्ली के लिए गुरु धारण करना है। जिन्होंने अपनी तसल्ली कर ली है वह कभी जवानी किसी को उपदेश लेने के वास्ते नहीं कहेंगे। जिज्ञासु को समझदार देखकर सिर्फ उसे सत् विचारों से जागृत करेंगे। जिज्ञासु बुद्धिमान हुआ तो आप ही प्रार्थना करेगा, मुझे किसी रास्ते पर कृपा करके डालो। सत्गुरु को कोई जरूरत नहीं चेले बनाने की, वह तो नित सत् विचार सुनाते हैं। जिसकी बुद्धि हुई आप ही परख लेगा। गुरु की पहचान यह ही है, जिसके पास बैठने

से चित्त को चैन मिले। चित्त अपनी चंचलता छोड़ दे। विचार करने के बाद जब मन के अन्दर कोई हुज्जतबाजी न रहेगी तब समझ लेना यहां कुछ है। फिर वहां सर खम (समर्पण) कर दो। जिस जगह या जिस संत के पास जाकर तसल्ली नहीं होती, आपही मन कह देगा, यहां कुछ बात नहीं बनी।

प्रश्न 111 : बड़े-बड़े महापुरुष बिना उस्ताद (गुरु) के ही स्वयं उद्यम से बड़े ऊंचे पहुंच गए तो क्या हमारा काम इसके बिना नहीं चल सकता, जबकि इस काल में एक कामिल उस्ताद (पूर्ण गुरु) का मिलना बिलकुल नामुमकिन (असंभव) है। चारों तरफ ढोंग एवं पाखंड के अड्डे नज़र आते हैं। मैं इस चक्कर में फंसना न चाहूंगा। पता नहीं और मुसीबत ही मोल न ले लूं।

उत्तर : महापुरुषों की बात छोड़, तू अपनी बात कर। ऐसे महापुरुष बहुत थोड़े होते हैं जो जन्म के सिद्ध हुए हैं। यह उनके पहले (पिछले) जन्मों की कमाई थी। बाकी सबके सब किसी जरिए (साधन) से ही असल कामयाबी (सफलता) को प्राप्त हुए हैं। इस वास्ते किसी भी सिद्धि को प्राप्त करने की खातिर वाकिफकार (परिचित व्यक्ति) की जरूरत रहती है। यह प्रकृति का नियम है। प्रेमी जी, जरा से काम को करने के लिए तो हर कदम-कदम पर, यहां तक कि व्यापार में भी, सहारे की तथा उस्ताद या एक्सपर्ट की ज़रूरत पड़ती है। इतनी बड़ी मंजिल (उच्च लक्ष्य) परमार्थ की पार करना बच्चों का खेल नहीं, जिसकी अभी शुरुआत (आरम्भ) भी नहीं हुई है। हां, यह ज़रूर है कि इस समय पाखंड का बाजार गरम है और कामिल सत्गुरु मिलने मुश्किल (कठिन) हैं पर खोजने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है, बीज नाश नहीं होता।

प्रश्न 112 : आप तो घूमते ही रहते हैं, आप किसी कामिल (पूर्ण) गुरु को बतला सकते हैं? या कम से कम मेरे ख्याल में ऐसी पहचान बतला सकते हैं जिसकी कसौटी पर हम उसे रखकर पहचान लें? मैं तो पाखण्ड तथा गुरुडम का शिकार होने की बजाए बिना उस्ताद के रहना ज्यादा बेहतर समझता हूं। आपकी क्या राय है? शास्त्रों में पहचान दे रखी है। पर आजकल वह किसी में पूरी नहीं उतरती, सो आप कोई आसान-सा उपाय बतलाएं।

उत्तर : लाल जी, यह बिलकुल ठीक है कि पाखंड में फंसने की

बजाए निगुरा (बिना गुरु) ही रहे। परन्तु निरंतर खोज में लगे रहना चाहिए। हां, ये तुम्हें थोड़े से में कामिल गुरु की पहचान बतला सकते हैं। उन पर पूरे उतरे हुए पुरुष से तुम धोखा नहीं खाओगे। तो लो, सुनो या लिख लो–

(1) कहनी और रहनी जिसकी एक है।

(2) जो अपने आप में ही पढ़ा हुआ तो, यानी किताबी ज्ञान का जानने वाला न हो बल्कि मन कि किताब पढ़ा हुआ हो।

(3) मानसिक शान्ति का नमूना (आदर्श) हो।

(4) शरीर के मान और धन के लोभ से जो मुबर्रा (मुक्त) हो।

(5) बैठक जिसकी बहुत हो।

(6) स्त्रियों से तो कतई किनाराकश हो, यानी किसी हालत में भी अकेली स्त्री को पास न बैठाने वाला हो।

(7) निहायत दयालुचित्त हो।

(8) वैराग्यवान जिसकी हर वक्त सीरत (स्वभाव) रहती हो, यानी जो लिप्त न हो।

(9) जो नौ दरवाजों की वासना से अतीत होकर सदा महा आकाश (अविनाशी शब्द ब्रह्म) में विराजमान रहता है। ऐसा आत्मनिष्ठ पुरुष परम गुरु है, क्योंकि उसने त्रैगुणी माया से अबूर (पार) पाकर विश्राम पाया है और वह दूसरों के लिए भी परम शिक्षक है। ऐसे गुरु में तत्काल विश्वास करना चाहिए। विश्वास या श्रद्धा के होते ही गुरु कृपा तेरे अन्दर अपने आप उतरने लगेगी और फिर गुरु कृपा से जो साधन प्राप्त होगा, उसकी कमाई करके तू उस शक्ति को समझने लगेगा जो तेरे शरीर से बिलकुल अलग है। तेरे शरीर में भय, भूख, प्यास, सरदी, गरमी, मरना, जीना इत्यादि विकार हैं, आत्मा इनसे परे है। जब तू उस आत्म स्वरूप में स्थित होगा तो किसी भी हालत में जीकर शान्त रहेगा। यानी जब तू साधन में लग जावेगा तो चाहे कैसी ही हालतों में से क्यों न गुज़रे, शान्त रहेगा। बगैर साधन के तू ऐसा ही है जैसे पानी बिना घड़ा।

प्रश्न 113 : महाराज जी, क्या बगैर उस्ताद के भी किसी और युक्ति से आत्म साक्षात्कार हो सकता है?

उत्तर : नहीं, तुम जैसी अवस्था वालों को नहीं। ठीक साधन का कामिल गुरु की कृपा से ही पता चलता है। इस वास्ते किसी भी कामिल (पूर्ण) गुरु पर पूर्ण विश्वास या ईमान लाने से पहले यह अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख लें कि जो चन्द बातें अभी पहले गुरु में होनी जरूरी बतलाई हैं, वे हैं कि नहीं। अगर नहीं हैं तो कभी ईमान न लाओ। उस गुरु से तेरा कल्याण होने वाला नहीं है। अगर सब सिफ़ात (गुण) वहां मिलती हैं तो हील-हुज्जत छोड़कर विश्वास कर लेना चाहिए। तब वह सत्गुरु कृपा करके ऐसा साधन बतावेगा जिसके द्वारा तू सब दिक्कतों (कठिनाइयों) से अबूर पाकर परम शान्ति को प्राप्त हो जावेगा। वरना प्रेमी जी, डर है कि कहीं तुम्हारा यह सात्विक जीवन उलटा न हो जावे, और ज्यादा परेशानी में न पड़ जावे, क्योंकि इस रज-तमात्मक संसार में तो तू अपने पुराने उज्ज्वल संस्कार करके फंस नहीं सकता लेकिन कामिल रहनुमाई (पूर्ण नेतृत्व) के बगैर पूर्ण विश्वास कठिन है। इस तरफ संसार की गर्दिश में तो तुझको कुछ मिलेगा नहीं, बस तू गहरे अजाब (घने दुःख) में फंस जायेगा। इस करके जल्द ही किसी कामिल उस्ताद (पूर्ण गुरु) की तलाश करने की कोशिश करनी चाहिए।

प्रश्न 114 : महाराज जी, अभी तक हमने कोई गुरु धारण नहीं किया। क्या गुरु के बगैर कुछ समझ नहीं आ सकती? ये आपने जो बड़े-बड़े ऊंचे शब्द उच्चारण किये हैं, हमको कुछ समझ नहीं आए। केवल पहला पद ही समझ में आया है कि जब तक भ्रम मौजूद है तब तक तृष्णा से मुक्ति नहीं हो सकती।

उत्तर : प्रेमी, गाते-गाते ही गुणवन्त हो जाया करते हैं-

ममता माई जन्मत खाई, काम क्रोध दोऊ मामा।
मोह नगर का राजा खायो, तब पहुंच्यो इस धामा।।

लाल जी, गुरु के बगैर न जीवन संसार में चल सकता है न करतार में। परमार्थ-मार्ग तो वैसे ही कठिन है। श्रद्धा-विश्वास के बल द्वारा सत्मार्ग में प्रतीत बन जाया करती है। आगे रंग चढ़ाने वाला कोई मिल जाए

तो करोड़ बरस का पंथ पल में ही चुक जाता है। वैसे जीव भ्रम में ही कई जन्म गुजार देता है। पढ़कर, सुनकर भी मन नहीं मानता, यह ऐसा दुष्ट है। बाकी सारे मदहोशी की हालत में संसार की मोह–माया में फंसकर भटकते हैं। जिस समय कोई राह दिखाने वाला मिल जावेगा तब शब्दों की समझ आने लग जावेगी। किसी रास्ते पर चलने वाले बनो तो सही।

प्रश्न 115 : प्रभु के आशिकों (प्रेमी) की क्या पहचान है?
उत्तर : आशिकों की पहचान बड़ी मुश्किल है। एक जरा सा इशारा मात्र पहचान यह है कि आशिक सदा उदास रहता है। दूध पीने वाले मजनू बहुत होते हैं, मगर अपना खून पिलाने वाला कोई ही लाखों में से एक आध निकलता है।

प्रश्न 116 : महाराज जी, आशिक तो सदा मस्त रहता है, जैसे मन्सूर इत्यादि, और आप फरमाते हैं कि उदास रहता है, यह कैसे?
उत्तर : प्रेमी, आत्म आनन्द करके तो यह (आशिक) मस्त रहता है मगर शरीर करके वह दुनिया से उदास रहता है। बाकी पहचान करनी बड़ी मुश्किल है।

प्रश्न 117 : आत्म आनन्द की क्या पहचान है?
उत्तर : तू भी खूब सवाल करता है। सुन, जब बुद्धि कर्त्तापन को त्यागकर अकर्ता भाव में खड़ी होगी यानि जब बुद्धि शरीर तथा दुनिया की खुशी से मुबर्रा (स्वतंत्र) हो जावेगी और शरीर की खुशियां उसको खुश न कर सकेंगी तो यह बुद्धि आत्म तत्व में स्थित हो जावेगी। यह ही आत्म आनन्द की पहचान है।

प्रश्न 118 : महाराज जी, यदि कोई तत्ववेत्ता सत्गुरु न मिले तो फिर क्या करना चाहिए?
उत्तर : प्रेमी, जिस जिज्ञासु के अन्दर प्रभु प्राप्ति के लिए अति प्रेम और श्रद्धा होती है तथा लगन और तड़प इस प्रकार की हो कि सिवाय भगवद् प्राप्ति के दूसरी कोई कामना चित्त के अन्दर न हो, उसे स्वयं ही भगवान किसी न किसी रूप में आकर दर्शन दे जाते हैं। एक नुक्ता और समझाते हैं। जरूरी नहीं कि तू मठों और गद्दियों में जाकर ख्वार होता

फिरे। अन्तर्यामी घट-घट की जानने वाले हैं। किसी न किसी प्रकार से उसे उपदेश मिल ही जाता है। करने वाला सो ही है।

प्रश्न 119 : संत और असंत में क्या भेद है?

उत्तर : संत गुस्सा (क्रोध) और ख्वाहिशात (कामना) से परे होते हैं और असंत इनमें गलतान (फंसा) होता है। यानि शरीर में फंसा हुआ असंत है और शरीर से ऊपर उठा हुआ संत है। जिस संत के पास पहुंचकर बुद्धि का तर्क-वितर्क समाप्त हो जाए वह पूर्ण संत है।

प्रश्न 120 : अनुभवी सत्पुरुष की क्या पहचान है?

उत्तर : जो किसी पुस्तक का हवाला न देकर अपने ही अनुभव की बात कहे और प्रश्न का उत्तर तुरंत दे (अर्थात् जिसमें सोच-विचार न करना पड़े)। और जो भी बात करे, निर्णायक हो (अर्थात् तर्क-वितर्क से मुक्त हो)। उसके उत्तर में शरणागति का भाव टपकता हो, यानि अहंकार से रहित बात करे, वरना परीक्षा लेने वाले सिर पर आग रखकर भी देख लेंगे कि सन्त शिरोमणि है या मनमुखी।

प्रश्न 121 : सही गुरु कौन है?

उत्तर : गुरुपद अति ही कठिन अवस्था है; कोई ही गुरुमुख प्राप्त होता है। जिसने अपने तमाम शारीरिक भोगों से त्याग हासिल किया हो और हर वक्त आत्मस्वरूप में स्थित रहता है, पर-उपकारी जीवन जिसका हो, हर एक जीव से अधिक प्रेम रखने वाला हो, लाभ व हानि, खुशी व ग़मी, सर्दी व गर्मी, मित्र-शत्रु, भय व भ्रम से जिसकी बुद्धि बिल्कुल न्यारी हो चुकी हो, और शब्द सरूप ब्रह्म में स्थित हो गई हो, वह ही गुरु है। यानी पहले उसने अपना अन्धकार दूर किया है और ईश्वर प्रकाश को प्राप्त हुआ है। उसका उपदेश दूसरों के वास्ते भी कल्याणकारी है।

जो नामुकम्मिल साधु के उपदेश को धारण किया होवे, जिसने खुद अपने अन्धकार को दूर न किया हो, तो उस उपदेश में सफलता होनी कठिन है। क्योंकि इस योगमार्ग में गुरु करनी वाले के बगैर सत्पद की प्राप्ति होनी अति कठिन है। जैसे कि आम बनावटी गुरु घर-घर उपदेश देते फिरते हैं, उसका नतीजा महज़ एक व्यवहार है न कि कल्याण है।

नामुकम्मिल साधु का उपदेश न यथार्थ कल्याण दे सकता है और न ही बुद्धि उस पर पूर्ण निश्चयगत हो सकती है। ऐसा अच्छी तरह से समझना चाहिये।

शिष्य ने गुरु की कुर्बानी को देख करके ही कुर्बानी करनी है, गुरु की पवित्रता को देख करके ही पवित्रता प्राप्त करनी है। गुरु के वैराग, अनुराग और निदिध्यास को देख करके ही शिष्य सर्वमयी गुण को धारण करके अपने तमाम अवगुणों से छूट सकता है। जब गुरु औगुणवादी और महज़ कथनी ही है तो शिष्य भी ऐसी ही गति को प्राप्त कर सकेगा। यह यथार्थ निर्णय समझना चाहिए कि गुरु की सत् स्थिति से ही शिष्य निर्मल हो सकता है।

प्रश्न 122 : सद्गुरु के स्वरूप का वर्णन किस प्रकार करना चाहिए?

उत्तर : ईश्वर के रूप को कोई पूछे तो महामंत्र पढ़कर सुना दिया करो। गुरु के रूप का वर्णन करना हो तो उन महागुणों का वर्णन करना चाहिए जिस पर कोई एतराज न कर सके। शारीरिक स्थिति तो हर ज़माने में हर गुरु की, पीर अवतार की अलग अलग तरह की रही है मगर सबके अन्दर एक जैसे महान गुण निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, नेहचलता और पर उपकार आदि प्रकाश करते हुए पाए जाते हैं। यह महागुण ही अवतारी पुरुष के अन्दर हुआ करते हैं। बाकी प्रारब्ध अनुसार कोई योगी राजा के घर आकर इस प्रकृति को लेकर संसार में विचरते हैं कोई गरीबों के घर पैदा होकर ईश्वर आज्ञा में समय व्यतीत करते हैं। बाद में विचरने पर अपने आप ही लोगों के अन्दर इन महापुरुषों का असर होता चला जाता है। और भी राम कृष्ण से पहले कई राजे महाराजे संसार में हो गुजरे हैं उनका नाम क्यों नहीं लेते? उनके अन्दर यह महागुण अधिक रूप से प्रकाश हो रहे थे। राम का त्याग उदासीनता दिखाई पड़ती है, जब लंका को फतह करके राज तिलक विभीषण को देकर इवज़ (बदला) में कोई नज़राना नहीं लिया केवल फूल की माला द्वारा ही पूजा करवाई। आज तक ऐसा त्याग किसी ने नहीं दिखाया। इसी तरह कृष्ण थे सारी उम्र राजतख्त पर नहीं बैठे। गद्दी पर उग्रसैन नाना ही बैठे रहे। कई राजाओं को ऊपर नीचे किया लेकिन किसी का तख्त नहीं संभाला। क्या यह काफी नहीं? निर्मानता इतनी कि दुर्वासा गुरु को रथ में बिठलाकर रुक्मणी और कृष्ण ने खुद उसे खींचकर सारी

द्वारका की सैर कराई फिर हाथ जोड़कर खड़े हो गए, "महाराज, और सेवा के वास्ते कृपा करें।" यह तो थी निर्मानता। फिर उदासीनता इतनी थी कि दिन में संसारियों की सेवा और रात को जंगल में रहना, अन्दर से किसी चीज में प्रीति नहीं थी। मूर्ख लोग महायोगी को महा भोगी के रूप में दिखाते हैं। नेहचलता, जैसे राज में खुश हैं वैसे ही शेषनाग पर चढ़े और खड़े बंसी बजाकर दिखा रहे हैं। हर वक्त अपने सरूप में स्थित रहना, सब कुछ प्राप्त होने पर मान नहीं। सुदामा जैसे भक्तों के चरण धोकर पी रहे हैं। पांडवों को सब कुछ फतह करके दिलवाया, उनसे कोई गर्ज़ पूरी नहीं की। प्रेम प्यार से, विचार से जो नहीं समझा उसे तलवार से समझाया। नहीं समझा तो उसे खत्म करके फिर अलेप हैं। महापुरुष कपड़े पहनकर नहीं बनते, यह तो श्रद्धालु लोग पीछे बैठकर ऐसा करते आए हैं। तुम भी कल मूर्ति बनाकर ऐसा करने लग जाओ मना कोई थोड़ा करता है। हमेशा उन गुणों का विचार सामने रखना चाहिए और अपने अन्दर भी यह गुण लाने चाहिए। जब - जब जिसके अन्दर यह गुण प्रकाशमान हुए वह ही गुरु, पीर, अवतार कहलाए, चाहे जिस देश विदेश में हों। ऐसी शुभ भावना वाले गुणी पुरुष ही संसार में अन्धकार को दूर करते आए हैं। जब-जब धर्म की हानि होने लगती है कोई न कोई प्रभु आज्ञा से हस्ती आ जाती है। प्रकृति का रूप सदा एक जैसा किसी का नहीं हुआ, न कायम रहा। सब ग्रन्थों में महापुरुषों की महिमा भरी पड़ी है, इन गुणों को दिखा रही है। उनके जीवन देख-देख कर फिर सब जीव सत् धर्म को प्राप्त होने की ख्वाइश करते हैं और प्रेम सरूप में मिल-जुल कर समय व्यतीत करते हैं, फर्ज़ जानते हैं। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। बार-बार ईश्वर आज्ञा में दृढ़ होना, अच्छे विचारों में लगे रहने से ही निष्काम भाव को प्राप्त होते हैं। केवल एक प्रभु सरूप को नित प्रकाश जानना और हर समय शरीर को नाशवान तसव्वर करना यह ही निर्मानता का रूप है। ज्यों-ज्यों अभ्यास में दृढ़ होता जाता है त्यों-त्यों आत्म विश्वास में दृढ़ता बढ़ती है, और आत्म विश्वास ही संसार की असारता यानि उदासीनता की तरफ ले जाता है। आत्म अभ्यास ही उदासीनता और नेहचलता की तरफ ले जाने वाला है। हर समय शरीर और संसार मिथ्या भासना और अनुराग विरह प्रेम सत् सरूप के वास्ते पैदा होना असली उदासीनता है।

सत्पुरुषों की सामर्थ्य

प्रश्न 123 : महाराज जी, धार्मिक पुस्तकों में, जो योग से संबंध रखती हैं, पढ़ा है कि योगीराज अपना दुख निवारण कर सकते हैं, आप क्यों ऐसा नहीं करते?

उत्तर : महापुरुष कुदरत (प्रकृति) के किसी काम में दखल नहीं देते। गो (यद्यपि) वे सब कुछ कर सकते हैं लेकिन ईश्वर इच्छा में शाकिर (संतुष्ट) रहते हैं।

प्रश्न 124 : महाराज जी, प्राय: देखा गया है कि सन्तों के पास लोग खिचे हुए आते हैं जैसे चुम्बक के पास लोहा खिचा आता है। इसी तरह सत्पुरुषों के पास भिन्न-भिन्न वृत्तियों के इन्सान उनके शरणागत होते देखे गए हैं, इसका क्या कारण है?

उत्तर : प्रेमी, तुम्हारी बात दुरुस्त है। इसकी वजह यह है कि चक्रवर्ती राजा तक अपने शरीर की वासनाओं की कैद में है और हर वक्त नातसल्लीबख्श हालत में रहते हैं। बाकी के इन्सानों की गिनती क्या है। हर जीव तसल्ली चाहता है और इस तसल्ली को प्राप्त करने की तलाश में ही दर-दर ठोकरें खाता है। सत्पुरुषों के अन्दर पूर्ण तसल्ली होती है और उनके अंग-अंग से वह तसल्ली नाजल (प्रस्फुटित) होती है, यह ही कारण है कि लोग सत्पुरुषों के पास अपनी नातसल्ली अवस्था को पूर्ण तसल्ली में बदलने के लिए उनकी शरण में आकर अपने आप को सौंप देते हैं और उनके पास खिचे चले आते हैं।

प्रश्न 125 : आत्म स्थिति प्राप्त पुरुष सब कुछ कैसे जान लेता है, क्या आप फरमायेंगे?

उत्तर : इस अवस्था को प्राप्त पुरुष की बुद्धि सूक्ष्म हो जाती है तथा तीव्रता से वह हर विचार के अन्दर तक घुस जाती है और उसको भीतर से समझने की ताकत उसमें आ जाती है, तो सब कुछ जान लेना कौन सी बड़ी बात है। सब प्राणी मात्र में बुद्धि होती है और इस करके शरीर खड़ा है। बुद्धि में जो अहंकार है, यह ही माया है। बुद्धि जिस (तत्व) करके रोशन है

जब यह उस तत्व में स्थित होगी तब यह आत्म तदरूप होकर मुक्त हो जावेगी।

प्रश्न 126 : महाराज जी, आपकी शरण में आने से पहले मुझसे जो कुकृत्य हुए उनका क्या होगा?

उत्तर : लाल जी! आपके पिछले कर्मों के तो ये जिम्मेदार हैं, लेकिन आगे से जिम्मेदारी तुम्हारी होगी।

प्रश्न 127 : समर्थ महापुरुष और संसारियों में क्या अंतर है?

उत्तर : प्रेमी जी, समर्थ पुरुष बृत्तियों को सुकेड़ने व फैलाने की सामर्थ्य रखता है। बाकी संसारी वृत्तियों को फैलाना ही जानते हैं, सुकोड़ना नहीं जानते। यह दोनों में अंतर है।

प्रश्न 128 : महाराज जी, आपकी हम जीवों पर कृपा होनी चाहिए। संत आदिकाल से इस भारतवर्ष की रक्षा करते आए हैं। चन्द दिन आपके विचार सुने हैं। इस तरह के सत्संग, सत् विचार हर जगह हों तो प्रेमी आप ही अपना सुधार शुरू कर देंगे। आप जैसे सत्पुरुषों के होते हिन्दुस्तान के भाग्य खराब नहीं हो सकते।

उत्तर : प्रेमी सुन! ऋषि, मुनि, संत, अवतार शुरू से कृपा करते आए हैं। कृष्ण के जमाने में उसकी चंद ही उंगली पर गिनती वाले सज्जनों ने बात सुनी। हर तरीके से महान हस्ती ने समझाने की कोशिश की। राम के जमाने में उनके साथ कैसी बीती। सतयुग में देवताओं, असुरों के युद्ध होते रहे। हिन्दुस्तान की क्या हालत थी, नौ-सौ हिस्सों में बंटा हुआ था। अब पांच सात साल से लाखों वर्षों के बाद एक हुआ है। अवतारों की कब किसने सुनी, सुनते तो आज यह हालत न होती। फिर भी दूसरे देशों से अधिक भारत में अभी भी सतोगुणी स्वभाव के जीव मौजूद हैं। अध्यात्मवाद का यह मरकज़ था, धर्म को जानने वाले ज्यादातर भारत में ही हुए हैं। दूसरे मुल्कों की क्या हालत थी। जहालत की जिन्दगी गुजारते थे। तीन चार सौ साल से सूझ-बूझ वाले हो रहे हैं। वह भी प्रकृति को असली सुख समझते हैं। ईसा का उपदेश उसके जमाने में किसी ने नहीं सुना। मोहम्मद साहब को मक्का से कई दफा निकलना पड़ा। आखिर मदीना में जाकर रहना पड़ा। दुनियादार कभी भी सत्पुरुषों को उनकी जिन्दगी में अच्छी तरह नहीं जानते। बाद में जब वे संसार से चले जाते हैं तब होश आती है। तब उनकी

मूर्तियां थापकर पूजा शुरू कर देते हैं। इस वक्त ईसाई, बौद्ध, मुसलमानों की ही दुनिया में ज्यादा चलती है। हिन्दू सिर्फ इस कोने में ही टल्ली खड़काते रहते हैं। सैकड़ों किस्म के मत इस हिन्दू जाति में है। सत्पुरुष कितनी-कितनी कुरबानी जनता के वास्ते कर गए हैं, सबमें एक आत्म तत्त देखने का उपदेश मौजूद है, मगर जातिवाद ही खत्म नहीं होता। हर एक जीव का स्वभाव अपना-अपना, अलग चाल-ढाल, मत अलग है। ईश्वर की माया विचित्र है। सत्पुरुषों ने अपनी तरफ से कोशिश करने में कोई कसर नहीं छोड़ी मगर दुनिया इसी तरह चलती आई है और चलती जायेगी। गुरुमुखों को अपना सुधार करके गुरुमुखता फैलानी चाहिए। अपनी तरफ से हर जीव मात्र से प्रेम रखो। तन, मन से जितनी सेवा बन सके करो। दो घड़ी मालिक की याद में समय दिया करो। आहार, व्यौहार की पवित्रता पर खास ध्यान देकर चलोगे तो कभी दुःख नहीं देखोगे। ईश्वर की सत्ता से ही सब जीव मात्र जिन्दगी ले रहे हैं। दीनदयाल ही कृपा करें।

प्रश्न 129 : महाराज जी, क्या संतों के आशीर्वाद से सफलता प्राप्त हो सकती है?

उत्तर : प्रेमी, बगैर पुरुषार्थ के स्वार्थ को पूरा करना चाहते हो। बिना कोशिश के न संसार की सामग्री मिलती है न करतार ही खुश होता है। दुनिया में जितने भी महात्मा, महापुरुष, गुरु, पीर हुए हैं या दूसरे जिन-जिन की संसार में बड़ी महिमा हो रही है मसलन नेहरू, गांधी वगैरा सब बड़ी जद-ओ-जहद (पुरुषार्थ) और तप-त्याग, कुरबानी से इस अवस्था तक पहुंचे हैं। यह आशीर्वाद लेने वाली बीमारी ने जीवों को पुरुषार्थ हीन कर रखा है। यहां क्या लेने आये हो। जब दुनिया के सुख बगैर कोशिश यानि यत्न के प्राप्त नहीं हो सकते, तो परमार्थ मार्ग में बिना कोशिश के कैसे कामयाबी हो सकती है। भगवान कोई ऐसा भोला-भाला नहीं कि झट ही तुम पर मेहरबान हो जायेगा। फकीर भी तो किसी पर जल्दी मेहरबान नहीं होते। वह भी हृदयों को टटोलते रहते हैं और देखते हैं कि संसारी किस वास्ते दौड़ रहे हैं।

ईश्वर प्राप्ति या कल्याण का मार्ग

प्रश्न 130 : ईश्वर को पाने का रास्ता एक है या अनेक?
उत्तर : सिद्धों का रास्ता एक है मगर वकीलों के अनेक। सिद्ध अपनी अनुभवी वाणी बतलाते हैं मगर वकील दूसरों की वाणी सुनाकर वकालत करते हैं।

प्रश्न 131 : महाराज जी, परमात्मा को कैसे पाया जा सकता है?
उत्तर : जब तक आपके ख्यालात संसार में हैं तब तक मुश्किल है। जब संसार को भूलकर ईश्वर के आधीन हो जाओगे उस वक्त आपको कोई रास्ता बताने वाला भी आ जाएगा।

प्रश्न 132 : महाराज जी, क्या सत्गुरु धारण करने से और उनके उपदेश सुनने से मनुष्य का कल्याण हो जाता है?
उत्तर : नहीं प्रेमी, गुरु का काम सही रास्ता बतलाना है, आगे फिर उस रास्ते पर चलना पड़ेगा, तब सिद्धता और कल्याण होगी।

प्रश्न 133 : महाराज जी, किसी चीज को पाने के लिए, विशेषकर इस ब्रह्म ज्ञान को पाने के लिए मुझे क्या करना चाहिए?
उत्तर : जिस चीज को पाना चाहते हो उसके पूर्ण मुतलाशी (जिज्ञासु) पहले बनो। जैसे कि मुसाफिर जब सफर करते हैं तो बड़ी जल्दी से सफर काटने का यत्न करते हैं कि कहीं रात्रि न आ जाए, यानि आराम या आलस्य की तमन्ना छोड़कर चलने का ही यत्न करते हैं कि कहीं शरीर का विनाश न हो जावे। ऐसी धारणा को पक्का करने के बाद तू इस ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकारी बन जावेगा। यानी तीव्र वैराग को धारण करके संसार की तमाम अड़चनों से अबूर (छुटकारा) पाकर अपने निज स्वरूप में स्थित हो जावेगा।

प्रश्न 134 : महाराज जी, इस जन्म में नहीं तो अगले में सही, मुझे तो पक्की आशा है कि पार तो हो ही जाऊंगा।
उत्तर : इस तरह इस शैतान (विकारी) मन को ढील मत दो। ऐसे अधीर हो जाओ कि कल नहीं, आज ही हमें कामिल (पूर्ण) गुरु की तलाश

करनी चाहिए। ऐसी ढील देने से मन को शैतानी का रास्ता मिल जावेगा। शायद यह जो पवित्र संस्कार इस वक्त उदय हुए हैं, कुछ समय के बाद नाश को प्राप्त न हो जावें और फिर तुम अपनी उन्नति की बजाए अपनी तबाही के मार्ग को अख्तियार (धारण) न कर लो। अगर ऐसे वैराग के समय में सही साधन प्राप्त हो जावे तब ही यत्न प्रयत्न करने पर अपना उद्धार कर सकोगे।

प्रश्न 135 : महाराज जी, इस परमार्थ के रास्ते पर चला नहीं जाता, इसका क्या कारण है?

उत्तर : प्रेमी जी, सिदक (विश्वास) की कमी है और फिर यह नाम रूपात्मक संसार में हजारों अजदहा (अजगर) खड़े हैं, वे तुम्हें इस रास्ते पर चलने नहीं देते। अगर प्रेम प्राप्त करने के लिए चलना हो तो बाहोश (चौकस) हो जाओ। एक लम्हा (पल) की देरी न करो।

प्रश्न 136 : क्या आप बतला सकेंगे कि जिस आत्म तत्व का आप अभी बयान कर रहे थे, उसको हासिल करने की क्या तरकीब (ढंग) है?

उत्तर : हां, तरकीब क्यों नहीं है? वह बराबर निदिध्यासन से प्राप्त हो सकता है।

प्रश्न 137 : निदिध्यासन किसको कहते हैं?

उत्तर : जब तू निःसंग, निर्विकल्प तथा चेतन प्रकाश का निरन्तर, एक लम्हा भी न खोते हुए अन्दर और बाहिर एक मुवाफिक ध्यान करेगा, जब उस आत्मस्वरूप के दर्शन करके उसका साक्षी रूप हो जावेगा, इसी को निदिध्यासन कहते हैं। बाकी पढ़ने सुनने से तो विचारों द्वारा रुचि पैदा होती है और अगर यहां पर की तपिश ज्यादा हुई तो वह भी हवा हो जाती है। इसलिए अपने पुराने मलीन संस्कारों को नाश करने के लिए निरन्तर निदिध्यासन की जरूरत है, बिना इसके कुछ नहीं हो सकता।

प्रश्न 138 : महाराज जी, बहुत से सन्त, जिनमें बुल्हे शाह भी हुए हैं, कहते थे कि किसी का होकर मत रहो। इसका क्या मतलब है?

उत्तर : इसके मानी हैं कि अपनी जात (निज स्वरूप आत्मा) को छोड़ कर बाकी सबसे मुनकिर (निर्लिप्त) हो जा और अपने आप में ही विश्वास कर।

प्रश्न 139 : यह कैसे मालूम हो कि हम अपनी जात में निवास करते हैं?

उत्तर : जब तक दुनिया की व शरीर की सूक्ष्म और स्थूल खुशी से तू अपने आप को पवित्र (मुक्त) न कर ले तब तक आत्म तत्व को यानी अपनी जात को नहीं जान सकता। जब तक हानि, लाभ, दुख, सुख, शोक व मोह इत्यादि तुझे चलायमान कर रहे हैं तब तक तू उनका गुलाम (दास) है, और सत् स्वरूप को नहीं पहचान सकता।

प्रश्न 140 : महाराज जी, आत्म साक्षात्कार कितने समय में सम्भव हो सकता है?

उत्तर : प्रेमी, यदि तीव्र लगन हो तो सात से चौदह दिन में यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है, परन्तु बड़े भारी पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

प्रश्न 141 : मनुष्य के कल्याण का मार्ग क्या है?

उत्तर : यह शरीर कर्म का जन्तर (यंत्र) है जिससे नाना प्रकार के कर्म हर पल प्रगट होते हैं और जीव शरीर की ममता को धारण किए हुए तमाम कर्मों के भोगों में आसक्त होकर हर वक्त चलायमान होता रहता है। किसी हालत में भी संतोष को प्राप्त नहीं हो सकता। इस अशान्ति की निवृत्ति का सहज उपाय यही है कि पहले अनर्थक कर्म जो शारीरिक उन्नति की नाश करने वाले हैं उनका त्याग किया जावे। बाद में जो सत्कर्म बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं उनमें दृढ़ निश्चय धारण करके, प्रभु इच्छा को निश्चित करके विचरना ही कल्याण का देने वाला यत्न है।

सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत्-सिमरन आदि गुणों के साधनों को धारण करने से बुद्धि अधिक बलवान होकर तमाम अनर्थक कर्मों का त्याग कर देती है। यानी इन साधनों के बगैर कई प्रकार के अवगुण हर वक्त बुद्धि को भरमाते रहते हैं। अच्छी तरह से विचार करने से सब सार का पता लग जाता है। एक प्रभु विश्वासी होकर तमाम शरीर के दुख व सुख उसकी आज्ञा में निश्चित करना ही असली कल्याण का मार्ग है।

प्रश्न 142 : मनुष्य का उद्धार कैसे हो सकता है?

उत्तर : ईश्वर विश्वास व चिंतन, आखरित की याद (मृत्यु की याद) और परोपकार सेवन, यदि इन बातों को नित्य प्रति याद करें तो कुछ अर्से में मनुष्य देवता बन जाएगा।

प्रश्न 143 : भक्ति के रास्ते में बाधक क्या वस्तु है?

उत्तर : प्रेमी, सूक्ष्म वासना ही भक्ति में बाधक है। तत्ववेत्ता की बुद्धि इतनी तेज़ होती है कि वह वासना को उठने नहीं देते। अगर एक लम्हा (क्षण) भी वासना उनके अंदर उठती है तो भूचाल आ जाता है। वह होने न होने को ईश्वर आज्ञा में समर्पण करते हैं।

प्रश्न 144 : महाराज जी, 'हंसदियां, खेड़दियां, खांदियां, पींदियां होवे जीवन मुक्त' कोई ऐसा तरीका बताऐं कि आसानी से छुटकारा हो जावे।

उत्तर : प्रेम प्याला जो पिये सीस दक्षना दे।
लोभी सीस न दे सके और नाम प्रेम का ले।।

प्रेमी जी, जीभा की रसना को पूरा करने के वास्ते और इन्द्रियों के लवाजमात इकट्ठे करने के लिए किस कद्र यत्न-प्रयत्न रात-दिन करते हो। जो भी रस स्वाद प्राप्त होते हैं सब एक पल में गायब हो जाते हैं। दुखों सुखों को भोगता हुआ आखिरकार संसार से खाली हाथ चल देता है। जरा किसी ऐसे सत्पुरुष का नाम तो लो जिसने हंसदयां, खेड़दयां मुक्ति प्राप्त की हो। सर देकर के जीवन में मुक्ति हासिल हो जाए तो भी सस्ती जानो। अपने आपको भुलेखे में न डाले रखो। जिनका शब्द तुमने पढ़ा है, बारह वर्ष ओड़ नी पर बैठकर तप करते रहे। हर हालत में प्रभु आज्ञा माननी कोई आसान नहीं। जब तक अच्छे-अच्छे भोग रस मिलते रहें तो ठीक, जिस समय उलटा चक्कर चलने लगे फिर उस वक्त भी भाना मानो, तब रोओ, पीटो, कल्पो नहीं, तब जीवन मुक्ति का पता लगे। किसने तुझे उलटी मत दी हुई है। सीधे होकर चलो।

प्रश्न 145 : महाराज जी, शरीर से अलग आत्मा को कैसे जाना जा सकता है? शरीर को सदा सत् समझ रखा है, आत्मा को नहीं। सांसारिक पदार्थ, सब सम्बंधी, परिवार, कारोबार वगैरा को सत् समझकर इससे चिमट रहे हैं। रात दिन शारीरिक सुखों की प्राप्ति में लगे रहते हैं। इस सांसारिक यात्रा को कैसे समझा जावे। बड़ा ही अश्चर्ज मामला है। बड़ा यत्न करने पर भी मन बुद्धि माया में ग़रक हो जाते हैं। आपके बचनों को अच्छी तरह सुनते हैं, मगर फिर भी न मालूम कहां-कहां के विचार सामने आकर खड़े हो जाते हैं। मन खूब चक्कर में पड़ जाता है। ऐसा

उपाय बताएं जिससे अभ्यास के समय मन न दौड़े। जब अभ्यास में बैठते हैं तब यह ज्यादा ही खप खाना डालता है। संसार के कामों में लगे रहने से इसका पता ही नहीं रहता।

उत्तर : प्रेमी जी, जब तक अंतर से संसार को सत् और सुखदाई समझ रहे हो तब तक स्थिरता कहां बन सकती है। जब यह जीव गुज़रे हुए सुखों को याद करता है तब अति बेचैन हो जाता है। वास्तव में जिस धन, स्त्री, पुत्र, कलत्र में यह सुख मान रहा है, यह कहां सुख देने वाले हैं। इन सबके बढ़ जाने पर भी शांति नहीं मिलती। नहीं होते तब भी बेचैन रहता है और होते हैं तब भी बेचैन रहता है। आज तक कोई ऐसा व्यक्ति दुनिया में नहीं हुआ जिसने धन-परिवार को पाकर सुख पाया हो।

एक लख पूत सवा लख नाती। तिस रावण घर दिया न बाती।।

राम को दुनिया क्यों याद करती है। वह कितने बड़े परिवारी थे। विचार करके देखो कैसे ईश्वर परायण और सत् धारणा को धारण करने वाले पुरुष सुख दुख में सम चित्त रहते हैं। राजगृह और जंगल में रहकर दिखा दिया। दोनों हालतों में कैसे सम चित्त रहे। मूर्ख जीव संसार की चहल पहल भोग पदार्थों को देखकर खुश होते हैं। मोह माया को बढ़ाकर कभी सच्ची खुशी, शांति नहीं मिल सकती। बुद्धिमान गुरुमुख जीव हमेशा संसारी पदार्थों को असत्, दुख रूप जानकर इनकी ख्वाहिशात उठने नहीं देते। जरूरियाते जिन्दगी के पूरा होने और न होने पर दोनों हालतों में एकसा रहकर संसार में विचरो, प्रारब्ध वश जो प्राप्त हो उसमें संतोष रखो। जो न प्राप्त हो उसकी इच्छा न करो। इच्छायें बंधन में डालती हैं। राम, कृष्ण आदि राज में रहते हुए भी निर-इच्छुक थे।

दूसरा विचार यह है कि संसार में सब कुछ आत्म रूप ही जानो और इच्छा या ख्वाहिश रहित होकर विचरो व राग द्वेष से रहित हो जाओ। संसार में कर्म करते रहो मगर निर्लेप रहो। ज़रा अवतारी पुरुषों के जीवन पर विचार करो, कैसे राग-द्वेष से रहित उनका जीवन था। ऐसे जीव सदा ही मुक्त होते हैं। वह नित ही आनन्द में रहते हैं। सर्व सांसारिक सुख होने पर भी उनके अन्दर अहंकार नहीं होता। बनवास हो जाए तब दुख नहीं, राज मिल जाए तब खुशी नहीं। बुजुर्गों के आदर्श सामने रखो। खाली राम-राम कर लेने से खुलासी नहीं हो सकती, जब तक उनके त्याग वैराग्य से सबक न लिया जाए।

जिस कृष्ण को बार-बार पुकारते हो ऊंची स्वरों से, वह सारी आयु शाही तख्त पर नहीं बैठे। किनारे रहकर राज का सारा कार्य भी चलाया और संसार में भी विचरे। इसी वास्ते कृष्ण को महायोगी माना जाता है। संसार में रहते हुए हर घड़ी उससे अलग रहे। और भी महापुरुष हुए हैं महाबीर, बुद्ध, भरतरी वगैरह बड़े-बड़े तपस्वी, ऋषि, मुनि, वशिष्ठ, व्यास, अगस्त, भृगु, अंगिरा वगैरह भी हो गुज़रे हैं। वह भी संसार में रहते हुए अन्दर से अति उदासीन रहे। ऐसी हस्तियां हमेशा ज़िन्दा हैं। उन्होंने असली शांति प्राप्त की जिनकी ग्रहण-त्याग में बुद्धि सम रही है।

प्रेमी जी, जो उपदेश आपको इधर से मिला है उसकी कद्र क्या जानो। कुछ किया कराया नहीं मणि हाथ में आ गई। उस उपदेश को नानक के बाद गुरुओं ने समझा और हजूरी में रहकर किस कद्र सेवा, त्याग, सिमरन, भजन में लीन रहे। उन जैसी कमाई करनी पड़ेगी तब जाकर रंग लगेगा। मिट्टी बनना पड़ता है, खाली ज्ञान चर्चा सुनने से कभी काम नहीं बनता। करनी करो। अगर उस उपदेश में गरक होने का यत्न न करोगे, कामयाबी नहीं हो सकती। बल्कि जीव विश्वास हीन हो जाता है। खाली धर्म के नाम लेवा बन जाओगे जिसका कुछ लाभ नहीं। अज्ञानता ही दुख का कारण है। आत्मबोध से ही परम पद प्राप्त होता है और शांति व शीतलता आती है। और सब टेकों को छोड़कर केवल प्रभु को कर्त्ता हर्ता जानकर अंतरमुख होने में ही एकाग्रता है और असली ठंडक है।

प्रश्न 146 : महाराज जी, अब हमको किस तरह चलना चाहिए?

उत्तर : प्रेमी, यदि सही तौर पर यह जीव चलना चाहे तो रास्ता भी मिल जाता है। अपनी बुद्धि तीक्ष्ण होनी चाहिए। विचार लेकर अच्छी तरह इन्हें समझने लगेगा तो फिर ठीक चल सकता है। तुम्हारा कसूर नहीं। तुमको सबक देने वाले भी ऐसे मिल जाते हैं जो पल में ब्रह्म बना देते हैं। दुनिया का मौज मेला भी करते रहें और ईश्वर भी मिल जाये, यह कैसे हो सकता है। ऋषियों, मुनियों को जंगलों में जाकर तप करने की क्या जरूरत थी? बड़े-बड़े राजे, महाराजे राजपाठ छोड़कर घोर जंगलों में क्यों गए? अगर पानी बिलोने से मक्खन निकल आता तो रूखी कोई भी न खाता। माया-मान भी बना रहे और सत् पद भी प्राप्त हो जाए, यह कैसे हो सकता है। ऐसा कोई तरीका, साधन नहीं निकला जिससे दुनिया भी बनी रहे और परम सत्ता को भी जान लिया

जावे। यहां तो पहले मरना कबूल करना पड़ता है। पल में ब्रह्म दिखाने वाले महात्मा भी इधर देहरादून में बहुत हैं। मन्सूर की तरह सूली पर चढ़ने वाला मुश्किल से मिलेगा। तुम ब्रह्म को न ढूंढो, पहले पूछो कि संसार की प्रीति कैसे कम हो? पवित्र जीवन कैसे बने? जब मन को शुद्ध करने वाले साधन इख्तियार (धारण) करोगे, आप चलने का भी पता लग जावेगा। फरीद कहता है:

मन मार के मुंज कर, निक्का करके कुट।
भरे खजाने साहब दे, जो चाहे सो लुट।।

ईश्वर परायणता

प्रश्न 147 : आप फरमाया करते हैं कि सिमरण (स्मरण) तीन तापों से छुड़ाने वाला है। फिर क्यों आकर ये रोग घेर लेते हैं?

उत्तर : प्रेमी, रोग-सोग तो आते ही रहते हैं। यह मन की स्थिति पर मुनहसर (निर्भर) है। जाहरी (बाहर से) तुमको तकलीफ में प्रतीत होते हैं। आंतरिक ज्ञान अवस्था में न रोग है न अरोग। संसारी लोग शारीरिक एवं मानसिक दुखों में संजोग-वियोग होने पर तपते रहते हैं। इनमें कर्त्तापन दृढ़ है। खाली मुंह से ईश्वर आज्ञा कहने से कोई लाभ नहीं तथा न ही मन की शांति प्राप्त हो सकती है। होना न होना, दु:ख-सुख, सारे द्वन्द्व चक्र अन्दर से ईश्वर आज्ञा समझकर यदि अन्दर में दृढ़ हो तो फिर कलह कल्पना नहीं सताती। तुम्हारी बुद्धि बहिर्मुखी रहती है। अन्दर से विचार किया करें। जब तक यह पिंजरा है तब तक खटपट लगी रहेगी। इन बातों से स्थिरता में फर्क नहीं पड़ता। आधि, व्याधि, उपाधि तीन प्रकार के दुखों में जीव पड़ा ही रहता है। ज्ञानी वह ही है जो समस्त क्रिया को ईश्वर आज्ञा में देखता है और हर हाल में उसका शुक्रगुजार रहता है।

प्रश्न 148 : महाराज जी, जीवन आगे नहीं बढ़ रहा है यानी जीवन में आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो रही है, इसका क्या कराण है?

उत्तर : प्रेमी, सत्मार्ग में दृढ़ता से चलना होगा। कोई बच्चों का खेल थोड़े ही है। यहां तो जीवन में ही मृत्यु को कबूल करना पड़ता है। जो ड्यूटी तुम्हें मिली है उसे भी ठीक तौर से न निभाओ तो कैसे सफलता हो? प्रेमियों, राजी-ब-रजा (ईश्वर आज्ञा में खुश रहना) का मंत्र याद रखो।

प्रश्न 149 : महाराज जी, अब तो बहुत हो गया। कृपा करके कुछ चुटकले की तरह बातें बतला दीजिएगा कि मेरा कुछ बन जावे।

उत्तर : प्रेमी जी, ज्यादा जिन्दगी को क्यों नाहक परेशान करते हो? ज्यादा चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं, न ही अधिक सोचने की तथा विचार करने की जरूरत है। बस इन तीन बातों पर चलने से सारा मतलब हल हो जाएगा-

(1) उस मालिके-कुल को हर चीज का कर्त्ता और कारण जाने।

(2) अपने आप को हर वक्त बिना किसी हील व हुज्जत के यह समझे कि मैं उस मालिके-कुल के हुक्म के अन्दर हूं और जो कुछ भी होता है, उसकी मर्जी से होता है।

(3) गुजरान वाले प्रोग्राम से अपनी जिन्दगी बिताए। बस फिर तेरे अहंकार की मां मर जाएगी और उसके नष्ट होते ही फिर कुछ करना-कराना बाकी न रहेगा।

प्रश्न 150 : महाराज जी, आपने बड़ा आसान रास्ता बतलाया पर बड़े कठिन अभ्यास की जरूरत पड़ेगी और पग-पग पर गिरने और विचलित होने का डर है। इसमें और कुछ मदद मिल सकती है?

उत्तर : हां, अगर कामिल उस्ताद हाथ पकड़े और शागिर्द को उस पर पूर्ण श्रद्धा हो और सत्मार्ग का पूर्ण मुतलाशी (जिज्ञासु) हो, तो सब कुछ आसानी से हो सकता है। फिर उस्ताद सब संभाल लेगा।

प्रश्न 151 : महाराज जी, सत्पुरुष कहते हैं कि परमात्मा की मर्जी के अन्दर सब कुछ देखना चाहिए। होना न होना सब उसकी आज्ञा में है, तो हमें हुक्म क्यों दिया जाता है कि नेक काम करो, बुरे मत करो। करने वाले हम कौन होते हैं जब परमात्मा ही सब करन-करावनहार है। और अगर हम करने वाले बनते हैं तो संतों की यह बात कैसे समझ आवे-"हुक्म रजाई चलना, नानक लिख्या नाल।"

उत्तर : प्रेमी, तुम्हारे इस सवाल के तीन पहलू हैं-पहली हालत में जब तक मनुष्यों में ईश्वर विश्वास कम है तो उनसे कहा जाता है कि अच्छे व नेक काम करो और बुरे छोड़ दो। ऐसा करते-करते उनकी बुद्धि निर्मल होती जाती है और वह आगे की हालतों को समझने लगती है। लेकिन इस मिथ्या अभिमान में गलतान (लीन) ही रहती है कि मैं बड़ी हूं। फलां-फलां कर्मों को करने वाली हूं वगैरह-वगैरह। इस करके वह प्राणी जन्म-मरण के चक्कर में तो पड़ता ही है लेकिन इसकी बुद्धि अधिकारी अवस्था तक पहुंच गई होती है। इतना होने पर भी वह इस चक्कर से छूट नहीं सकती। अब सवाल यह उठता है कि वह कैसे निर्बन्ध और निःकर्म अवस्था प्राप्त करे। यानी इस जन्म मरण के गहरे आजाब (दुख) से कैसे छुट्टी मिले? तब सत्पुरुषों ने हुक्म फरमाया है कि इस निष्कर्म

अवस्था को प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि वह दूसरी हालत में अपने नेक कर्म परमात्मा के समर्पण करता जावे तो वह उनके नतीज़ों से छुटकारा पा जावेगा। यानी अपने आप को निर्बन्ध बनाने के लिए, जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाने के लिए और निःकर्म अवस्था प्राप्त करने के लिए वह समर्पण बुद्धि धारण करे। तुम्हारे सवाल का तीसरा और आखिरी पहलू यह है कि ऐसी समर्पण बुद्धि धारण करता हुआ जीव होना, न होना, करना न करना, सब ईश्वर-आज्ञा में देखता हुआ उस परमात्मा का हर घड़ी चिन्तन करता रहे। जब ऐसे निश्चय को बुद्धि प्राप्त होगी तब कर्त्तापन अभिमान से निर्बन्ध होकर अपने निज स्वरूप अखण्ड अविनाशी शब्द में निश्चल हो जायेगी। कर्म और कर्मफल के द्वन्द्व रूपी खेद से निर्बन्ध होकर सत् स्वरूप में निश्चल हो जावेगी। इस स्थिति को ही सम पद निर्वाण शान्ति कहा गया है।

सार विचार यह है कि कर्त्तापन के अभिमान से बुद्धि कर्मफल में आसक्त हुई नाना प्रकार की कामनाओं को धारण करके जन्म-मरण रूपी संसार में फिरती है। इस महा अंधकार कर्त्तापन के नाश करने के वास्ते प्रथम निश्चय प्रभु आज्ञा में समर्पण कर्म यानी प्रभु को कर्त्ता जानना और अखंड प्रेम करके चिन्तन करना ही कल्याण के देने वाला साधन है। इसी को भक्ति कहते हैं। जब समर्पण बुद्धि परिपक्व हो जाती है तब निःकर्म स्वरूप आत्मा में स्थित होकर आनंदित होती है। ईश्वर को कर्त्ता जानना कर्म बन्धन से छूटने के लिए उपाय है। वैसे बुद्धि कर्त्तापन की अभिमानी होकर खुद ही कर्म करके द्वन्द्व रूपी दुःख-सुख धारण करती है। यह ही संसार का चक्र है। वैसे तो प्रकृति तीन गुणों के खेल को आप ही कर रही है। उसमें सिर्फ जीव होमैं (अहम् भाव) करके फंसा हुआ है। इससे छूटने के लिए प्रभु आज्ञा में समर्पण कर्म करने से ही छुटकारा प्राप्त होता है। वैसे प्रभु तो निःकर्म स्वरूप है।

प्रश्न 152 : जब ईश्वर की शक्ति के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता तो फिर अच्छे या बुरे कर्म की जिम्मेदारी इन्सान पर क्यों?

उत्तर : यह सुनी सुनाई बात है, निश्चय में नहीं है, क्योंकि जब ईश्वर को कर्त्ता मान लिया तो अपना आप नहीं रह सकता। दूसरे शब्दों में जब अपने कर्त्तापन को त्यागकर हर काम प्रभु आज्ञा में समझकर किया जाएगा तब ही कर्म की कैद से मुख्लसी (मुक्ति) हासिल हो सकती है। जब तक खुद कर्त्ता बनता है खुद ही भोगना पड़ेगा।

प्रश्न 153 : महाराज जी, कोई भी काम अगर छोड़ दिया जावे तो उसके बिगड़ने का डर रहता है। मेरे दिल में हमेशा शंका बनी रहती है कि जरा सी लापरवाही हुई नहीं कि काम ठीक नहीं बनेगा। लेकिन देखा गया है कि बहुत से आदमी बड़े लापरवाह होते हैं और उन्हें यही कहते सुना गया है कि परमेश्वर के हुक्म के अन्दर सब कुछ होगा, फिकर किस बात की? कृपा करके साफ कीजिए कि यह कब हो सकता है?

उत्तर : लाल जी, जो प्राणी मैं करता हूं, फलाने (अमुक) कर्मों को करने वाला मैं हूं, ऐसा सोचते हैं, वे स्वयं कर्त्तापन के अभिमान में फंसकर सुख, दुख, जिल्लत और परेशानी उठाते हैं और जो प्रभु आज्ञा में लापरवाह रहते हैं उनके सत् संकल्प द्वारा ही ऐसे कारण बन जाते हैं कि वे काम स्वयं पूरे हो जाते हैं। यदि देव इच्छा से कार्य पूरा न भी हो तो उनको दुख या परेशानी नहीं होती। यह बात पक्के और पूर्ण विश्वास वालों की है जिनका बाहर और भीतर एक ही है।

प्रश्न 154 : गुरुदेव, संतों का व्यापक कथन है कि हमेशा प्रभु जो करता है ठीक ही करता है। प्रभु की रज़ा में राजी रहने वाले इन्सान कभी भी दुःखी नहीं होते। आपका इस बारे में क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, यह बात बिल्कुल सत्य है। तुम्हें एक आख्यान (घटना) सुनाते हैं। एक बार की बात है कि एक फकीर औलिया शाहदौला नाम के पंजाब प्रांत के गुजरात इलाके में रहते थे। उसके पास ही दरियाये चिनाब बहता था। साथ ही एक टीले पर एक गांव आबाद था। बरसात के दिन थे अचानक चिनाब दरिया में बाढ़ आ गयी। दरिया गांव के टीले के नीचे से बहने लगा और टीले की मिट्टी कटने लगी। यह देखकर गांव के लोग बड़े चिन्तित हुए और फकीर शाहदौला की शरण में जाकर अर्ज की, हमारी रक्षा करो। फकीर ने पूछा क्या बात है? गांव के मुखिया ने फकीर को सारी बात बता दी। फकीर एक दम उठ खड़े हुए और टीले के पास पहुंचकर सारे सिलसिले को देखा। कहने लगे मेरे मालिक की मर्जी है यह गाँव बहे। हमें अपने मालिक की मर्जी पूरी करनी चाहिए। मेरा पुख्ता यकीन है कि मालिक की मर्जी हमेशा ठीक होती है। वह मस्ती से उठे और फावड़ा लेकर टीले से नीचे मिट्टी काटकर नदी में फेंकने लगे ताकि जल्दी से किनारे टूटें और गाँव बह जाए। कहते हैं फकीर द्वारा फेंकी गई मिट्टी दरिया से कोई दो गज दूर जाकर पड़ी। दरिया ने अपना रूख बदल दिया। वह मिट्टी जहां जाकर पड़ी थी दरिया उस मिट्टी से लगकर बहने लगा

तथा गांव बहने से बच गया। जो लोग निरइच्छित होकर रब की रजा में प्रसन्न रहते हैं उनके लिए कुदरत-कामला अजब किस्म के असबाब (साधन) प्रगट कर देती है। फकीर लोग खुद भी हैरान हो जाते हैं कि यह कैसे हो गया। फकीरों की माया अपरम-अपार है।

प्रश्न 155 : आप विचार करते समय 'ईश्वर आज्ञा' लफ्ज़ बहुत इस्तेमाल करते हैं। हैं तो हम सब उस मालिक के जीव ही। आप उसके ज्यादा नज़दीक होने के कारण ऐसा फरमाते हैं या हर घड़ी आपको ईश्वर की तरफ से आज्ञा मिलती रहती है?

उत्तर : प्रेमी, क्या हर वक्त 'मैं-मेरा' ही कहते जावें। इस कर्त्तापन यानि अहंकार से गाफिल नहीं रहना चाहिए। ईश्वर आज्ञा रूपी शस्त्र से कर्त्तापन अहंकार को दूर करते रहना चाहिए, इससे जीव बंधन में नहीं बंधता। और जितने भी जीव हैं 'मैं और मेरी-तेरी' भावना में ही बंधकर रात-दिन, सब कुछ प्राप्त होने पर भी, गरम-ठंडी फूंके मारते रहते हैं। हर घड़ी मालिक को याद रखने का यह तरीका है, और जीव इस तरह नेहकर्म (निष्काम) अवस्था की तरफ जा सकता है। यह तेरे अन्दर आज्ञा करने वाला कौन है? शायद तू इस कर्त्तापन में आ फंसा हुआ है। सब जीवों ने इस शरीर को सब कुछ समझ रखा है। देह अध्यास से खुलासी पानी है। जब अन्दर बाहर हर तरह से उस मालिक को करता-हरता मानोगे तब छूट पा सकोगे। इनके लिए ईश्वर नित ही अंग-संग है। जबानी जमा खर्च करने वाले हर समय अहंकार में ही स्थित रहते हैं। प्रभु प्रेमी को इस स्थिति में रहना चाहिए कि जो हो रहा है, जो होगा सब उसकी आज्ञा से हो रहा है या होगा। प्रेमी जी, अमल में उतरना बड़ा मुश्किल है। जबानी बहुत ब्रह्म बने फिरते हैं। जब ममतामई वासना यानि मैं-मेरा वगैरा में दृढ़ता हो जाती है, तब राग-द्वेष में फंसकर जीव अनेक सुखों-दुखों को प्राप्त होता है। जब यह वासना दग्ध हो जाती है फिर वह अचेत पुरुष हो जाता है। जब तक अंदर निर्वास, निर्चाह अवस्था नहीं आती जाहरी (बाहरी) बे-ख्वाहिश का भेष और दंभ (बनावट) से दूसरों को प्रभावित करने से कोई लाभ नहीं। आत्मज्ञानी की मैं और संसारी की मैं-पन में बहुत अन्तर है। कहने को तुमको जो दृश्यमान संसार भासता है उसी का स्वरूप है, मगर चित्त की हालत लाभ होने पर और तरह की हो जाती है और हानि होने पर और तरह की। यह मानने वाली बात है। जबानी तुम्हारी व्याख्या के सामने किसी का ठहरना मुश्किल बात ही है।

क्योंकि तुम्हें जबानी जमा-खर्च करने वाले ही मिलते हैं। जिस समय अन्दर बाहर आत्म सत्ता को सर्वव्यापक जानने की असली माइनों में कोशिश करोगे तब पता लगेगा। प्रेमी जी, दो घड़ी के लिए संसार के सुख भोग तो त्यागे नहीं जा सकते, जबानी निर्वास भाव की महिमा करना क्या माइने रखता है।

संसार में रहने का तरीका

प्रश्न 156 : महाराज जी, जिन्दगी कैसे चलानी चाहिए?
उत्तर : प्रेमी जी, फर्ज वाली जिन्दगी बनाओ, गर्ज वाली जिन्दगी न जियो।

प्रश्न 157 : महाराज जी, फर्ज वाली जिन्दगी किसे कहते हैं?
उत्तर : प्रेमी, शरीर और शरीर के सुखों को प्राप्त करके सुख भोगने की लालसा लेकर जो जिन्दगी बिताता है, वह गर्ज वाली जानो। इसके उलट फर्ज वाली जिन्दगी चलाने वाला इन्सान सब कुछ कुर्बान करके दूसरे जीवों के दुखों में अपने सुख अर्पण करता है या यूं कहो कि वह इन्सान जो फर्ज वाली जिन्दगी बिताता है, वह अपने कार्य प्रभु आज्ञा में सौंपता हुआ निमित्त मात्र अपने जीवन की क्रिया करता है और हर वक्त प्रभु विखे (हेतु) अपने आपको समर्पण करता चला जाता है।

प्रश्न 158 : महाराज जी, आध्यात्मिक जीवन को थोड़े से लफ्जों (शब्दों) में बयान करें।
उत्तर : प्रेमी, शरीर के कर्म करता हुआ उनकी आसक्ति से अलग हो जा। इसको निःकर्म होना कहते हैं। यह ही आध्यात्मिक जिन्दगी है। फायलियत (कर्त्तापन) ही इस संसार और संसार से सम्बंधित पदार्थों की जड़ है। ज्ञानी पुरुष फायलियत से पवित्र होकर गैर फाइल (अकर्त्ता) होकर कर्म करता है और अज्ञानी फायलियत को पूर्ण रूप से धारण करके कर्म करता है। यही फर्क ज्ञानी और अज्ञानी का है। सत्पुरुष या ज्ञानी पुरुष जो भी काम (कर्म) करता है वह आसक्ति रहित होकर, फर्ज जानकर करता है। मूर्ख (अज्ञानी) संसारी पुरुष हर काम स्वार्थ भाव को लेकर अपनी गर्ज को मुकद्दम (मुख्य) रूप में सामने रखकर करता है।

प्रश्न 159 : महाराज जी, जब मनुष्य निराश हो जाता है और उसकी समझ में कुछ नहीं आता तो वह बेबस सा होकर परेशानी में पागल हो जाता है। क्या आप बता सकते हैं कि वह ऐसी अवस्था में क्या करे?
उत्तर : महात्मा लोग कहते हैं कि इस संसार में ऐसे चलना चाहिए

कि जैसे किसी बाग में सैर को जाया जाता है। तब सिर्फ सैर का ही मकसद होता है। वहां उन्स (लगाव) किसी से नहीं की जाती। इस तरह दुनिया में चलना चाहिए । सन्तों के चरित्रों से यह भी जाना जाता है कि किस तरह से चलना चाहिए। या जैसा वे कहें, चलना चाहिए।

प्रश्न 160 : महाराज जी, आप क्या समझते हैं? सो कृपा करके फरमाइये।

उत्तर : आदमी को चाहिए कि ऐसा समझे कि कर्त्ता और कारण सब कुछ परमात्मा हैं और अपने आप को उसके हुक्म के अन्दर चलने वाला सेवक समझे और इस संसार में गुजरान वाला प्रोग्राम बनाकर चले।

प्रश्न 161 : महाराज जी, गुजरान वाले प्रोग्राम को साफ कर दीजिए।

उत्तर : हां यह बड़ा जरूरी मसला है। गुजरान वाले प्रोग्राम को गौर से समझ लो। यानी जो प्रोग्राम अपना बनाओ वह जीवन रक्षा की खातिर तथा गैर जरूरी इच्छाओं को त्यागकर, कम खर्च में चलने वाला होवे। अगर प्रारब्धवश ज्यादा धन या माया प्राप्त होवे तो उसे सत्कर्मों में सर्फ (खर्च)करो और दीन-दुखी और अनाथों में बांटो। यह प्रोग्राम बड़ी कोशिश करके निश्चल रहते हुए पालन करना चाहिए। इसमें दलील से काम न लें। बल्कि हर समय अपने बनाए हुए प्रोग्राम के अनुकूल ही चलें। माया तो सबकी महागुरु है, जो हर वक्त सबको सचेत करती रहती है मगर कोई विरला ही इस भेद को समझ सकता है और पतित कर्मों की चोट खाकर बाहोश होता है। वरना लोग ज्यादा मदहोश ही रहते हैं।

प्रश्न 162 : महाराज जी, माया के स्वरूप को कैसे ठीक प्रकार समझा जा सकता है?

उत्तर : परमात्मा को जानने से ही माया के हर पहलू का असली बोध हो सकता है। इस वास्ते परमात्मा को पहले जानने की कोशिश करो तो मायापति की कृपा से माया का बोध आप हो जाएगा। फिर उसे (परमात्मा) जानकर बाकी कुछ जानना नहीं रहता है। वरना अगर पहले माया को जानने की कोशिश करोगे तो एटम बम बनाओगे जो अशांति एवं नाश का स्वरूप है। अगर शांति चाहते हो तो ईश्वर की खोज करो, नहीं तो माया के चक्कर से छूटना मुश्किल है।

प्रश्न 163 : महाराज जी, दुनिया का बुरा हाल है। इसका कोई हल नहीं हो सकता?

उत्तर : तू अपनी निबेड़। पहले अपना सुधार करो। फिर दूसरों का सुधार हो सकेगा। पहले अपनी प्यास बुझाओ फिर तू इस लायक हो जावेगा कि औरों की प्यास बुझा सके।

प्रश्न 164 : महाराज जी, व्यवहार में गृहस्थियों को कुछ न कुछ आडम्बर करना ही पड़ता है, क्या वह न किया जावे?

उत्तर : प्रेमी, अगर इस दुनिया में ठीक चलना चाहते हो तो मुनासबत और मर्यादा की जिन्दगी बिताते हुए जो कुछ भी खाने पीने के बाद बच जावे उसे जरूरतमंदों की सेवा में लगा देना चाहिए। फिर तुम देखोगे कि अगर सौ आदमियों की मदद तुमने की है तो हजारों आदमी तुम्हारे गुण गावेंगे और तुम बुलंदी पर पहुंच जाओगे। मुनासबत की जिन्दगी का यही असूल है और यह ही इसका असली मेराज (ठिकाना) है जिसे सत्पुरुष समता आनन्द की प्राप्ति कहते हैं।

प्रेमी जी, कोई आडम्बर करने की जरूरत नहीं। एक मोटा सा असूल है अगर अपना लिया जाए तो सब परेशानियाँ हल हो जाती हैं। अगर तू अमीर और दौलतमंद है, घर में बड़ी लड़की है तो तू उसका रिश्ता हमेशा गरीब के घर में करके उसे बराबर का बना ले और उसकी हर तरह से इमदाद (सहायता) कर, ताकि गरीब अपनी गुरबत से उठकर अमीर जैसा ही बन जावे। अगर लड़के का रिश्ता करना है तो हमेशा गरीब घर की लड़की घर में लावे, ताकि समाज में किसी तरह की बुराई पैदा न हो। इस तरह लड़की वाले जो गरीब हों उनकी यह बड़ी इमदाद होती है कि उनकी लड़की एक अमीर घर में चली जाए। यह एक ऐसा नुक्ता है कि समाज की काया पलट कर देता है और किसी तरह भी गृहस्थियों को परेशान होने की जरूरत नहीं पड़ती।

एक बार की बात है कि रावलपिण्डी, जो आजकल पाकिस्तान में है, के रहने वाले रईसे आजम सरदार सुजानसिंह अपने चचा के साथ कूरी नामक गांव की तरफ लेन-देन के सिलसिले में जा रहे थे। गांव के बाहिर एक दरख्त के नीचे थकान दूर करने के लिए पड़ाव डाल दिया। आपस में

कुछ घर के विचार चलने लगे कि लड़की बड़ी हो गई है, आगे के वास्ते कुछ सोचना चाहिए। इतने में एक खूबसूरत नौजवान खच्चरों पर समान लादे हुए दिखाई दिया। गरीबी की वजह से सामान किराए पर इधर-उधर ले जाया करता था। झट ही सरदार जी ने कह दिया कि ऐसा लड़का मिल जावे तो अच्छा है। उसी वक्त लड़के को बुलाया और उसके घर का पता पूछ लिया। वहां से उठे और उसके घर जाकर उसके पिता को नाता दे दिया। लड़के के पिता ने बहुत कहा कि मैं गरीब हूं, आपसे मेरा क्या मुकाबला है? मगर सरदार जी ने धन-दौलत देकर उसको अपने साथ मिला लिया। लड़की की शादी करके लड़के को अच्छे काम पर लगा दिया।

प्रेमी जी, इस तरह से अगर किसी अभावग्रस्त प्राणी की मदद करके उसको अपने पैरों पर खड़ा कर दिया जाए तो समाज का सही सुधार हो सकता है।

प्रश्न 165 : महाराज जी, आपने वाणी में उच्चारण फरमाया है कि
शुद्ध करे व्यवहार को नफा लियो समान।
थोड़ी लयो ब्याज नित धन ना पावे हान।।
थोड़ी ब्याज और नफा समान के बारे में रोशनी डालें।

उत्तर : थोड़ा लाभ लेने का मतलब यह समझना चाहिए कि अपने आप को उन अशया (वस्तुओं) का खरीदार बना दे जिसको तू बेचने जा रहा है, तब तू ठीक निश्चय कर सकेगा कि उस पर कितना नफा लगाना चाहिए। फिर तेरे सामने बच्चा, बूढ़ा, जवान, अमीर, गरीब, हाकिम, मुलाजिम, राजा, प्रजा कोई भी क्यों न आवे, तू उनसे एक जैसे दाम ले, यानी किसी के साथ भेदभाव न रख। थोड़ा सूद लेने के बारे में प्रेमी, जो शब्द आया है उसका मतलब यह समझना चाहिए कि सूद थोड़ा जरूर लेना चाहिए क्योंकि इसके बगैर तजारत (व्यापार) में काम करते-करते लेन-देन विच (में) कई रप्पड़ पड़ते हैं, उसी से मूलधन का नाश हो जाता है। सूद खाना एक अच्छी कमाई नहीं है। सूद की तजारत करना कोई अच्छी तजारत नहीं है। अगर मजबूरी में (यह तजारत) करनी ही पड़े तो कम से कम सूद लेना चाहिए क्योंकि सूद खाने वालों का धन नाश को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न 166 : महाराज जी, ऐसा तरीका बताएंगे जिससे सादगी नाल चला जावे?

उत्तर : प्रेमी, आमदनी से कम खर्च रखोगे तब ही सादगी नाल चल सकोगे। बुजुर्गों ने तो यह भी कहा है कि आमदनी का दसवां हिस्सा दान में दे और दसवां हिस्सा राजा को टैक्स दे, बाकी कुछ बचाकर खर्च करोगे तभी सादगी नाल चल सकोगे।

प्रश्न 167 : महाराज जी, दैनिक जीवन किस प्रकार चलाया जावे ताकि आध्यात्मिक जीवन में प्रगति हो सके?

उत्तर : इस जीवन का यही लाभ है कि जब तक तू जीवित है उस परमेश्वर की शरण ले। एकमात्र उसी से प्रेम कर। उसी के वास्ते जी। उसी के लिए काम कर। उसी में तुम्हारी बुद्धि रमण करे, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रेमी, यदि खाना खाओ तो स्वाद के वास्ते नहीं, बल्कि शरीर रक्षा के लिए ग्रहण करो। ऐसी खुराक लो जो शीघ्र पच जावे और उसका बल अधिक समय तक रहे। लिबास (वस्त्र) ऐसे पहनो जो सर्दी गर्मी से बचने के वास्ते काफी हों। तेरी शक्ल जो "कुदरत कामला" ने बना दी है ऐसी ही रहेगी। कपड़ों से तेरी शक्ल नहीं बनेगी। थोड़े पैसे कपड़ों में लगाकर कम खर्च करो। सादे वस्त्र पहनने से मत हिचको। इससे तेरे अन्दर प्रेम बढ़ेगा और कम आमदनी में तेरा गुजारा अच्छा चल जावेगा। अपना व्यवहार गुजरान के अनुकूल बनाओ, धन जमा करके न रख। ऊंचे विचार वालों की संगत कर। प्रभु का सिमरण कर जिससे तेरे अन्दर ठण्डक पैदा हो। यदि इन नियमों पर तू चला तो बहुत कुछ तेरे दिल में खुशी आवेगी और तेरे दिल को असली शान्ति प्राप्त होगी। यह दुनिया एक बड़ी प्यास है, बड़ा मुसीबतखाना है। इससे तू उस प्रभु के नाम का सिमरण करके पार हो सकता है। प्रेमी, सारी रात तुझे मिली है प्रभु की याद करने के लिए और तू उस रात को गुराड़े लेकर गफलत (लापरवाही) की नींद में सोता है। बाहोश हो जा, रात से बढ़कर तू और क्या एकान्त चाहता है? अब भी समझ ले। अब भी समय है। सिमरण, अभ्यास शुरू कर, तेरा अवश्य कल्याण होगा।

प्रश्न 168 : महाराज जी, इस समय संसार की गर्दिश (गति) के अनुसार घोर तमोगुणी वृत्ति के लोग ही चारों ओर दृष्टिगोचर होते हैं।

उनके बीच एक साधारण जिज्ञासु पुरुष को, जिसका ध्येय आत्म तत्व की प्राप्ति है और उसका रास्ता भी उन लोगों से सर्वथा भिन्न है, किस प्रकार से विचरना चाहिए? हालांकि देखा गया है कि प्रकृति का ऐसा नियम है जो जीव जिस प्रकार का होता है वैसी ही संगत पैदा कर लेता है। फिर भी इस समय रजोगुणी और तमोगुणी प्रधान पुरुषों के मध्य रहना, मिलना, बैठना और व्यवहार करना पड़ता है। कृपा करके जरा स्पष्ट करके समझाएं कि वह कैसे बरते और कैसे रहे?

उत्तर : लाल जी, बड़ी गहरी बात तुमने पूछी है, यह आसान सा तरीका तुमको बतावेंगे। अगर अमल में ले आए तो सब आसान हो जावेगा। तुमको चाहिए कि अस्थाई रूप से उनके मध्य रहो और व्यवहार करो अर्थात् बाहिर से तो मिला हुआ रहे पर अन्दर से उनसे अलग थलग रहे, अर्थात् हिले मिले नहीं और अन्य काज में भी अनजान सा बना रहे और कहे कि मुझे तो यह पता नहीं जो ठीक समझें कर लें। वह ही बेहतर (उत्तम) होगा। और अधिकतर चुप रहें। इस चुप रहने करके संसारी लोग तेरे से डरने लगेंगे। डरकर स्वयमेव अलग हो जावेंगे और साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अपनी आत्मिक उन्नति करता जा। एक समय आवेगा तू ऊंचा उठ जावेगा। तेरे आसपास के लोग देखते रह जावेंगे और आप से आप तेरे आगे झुकेंगे और तुझे मानेंगे।

प्रश्न 169 : महाराज जी, आजकल की संसारी चहल पहल किसी तरफ चलने नहीं दे रही, अनेक तरह के रंग तमाशे, सजावट बनावट बढ़ती जा रही है।

उत्तर : अभी तो तुम लोग सब कुछ लुटा-पुटा कर आए हो, इस तबदीली से कुछ सबक सीखो, न कि अपने आप को इस घोर अन्धकार में ले जाओ। रोजाना इधर से यह ही कहा जा रहा है अपना जीवन सादा और सरल बनाओ। कुदरती जीवन वाले बड़े सुखी रहते हैं। अनेक तरह के फिजूल नशे वगैरह खान पान जो लगा रखे हैं, उनसे अति परहेज करो। सिनेमा, थिएटर, राग रंगों की तरफ मत जाओ। जब तक इन चीजों से परहेज नहीं करोगे तब तक कभी भी बुद्धि शुद्ध नहीं हो सकती। अपने मन को दुनिया वाले खुद चंचल कर रहे हैं। उधर पाकिस्तान की तरफ लोगों के स्वभाव कुछ अच्छे बने हुए थे अब वह सब बदलते हुए दिखाई दे रहे हैं।

हया शर्म कोई नहीं रही। किसी की बुद्धि में सादगी वाले विचार नहीं रहे, बाकी तप जप तो बड़े दूर की बात है। अच्छे, बड़े बुजुर्गों के पास जाकर बैठो। उनसे कुछ न कुछ शिक्षा प्राप्त करो। जब महापुरुषों के विचार सुनने वाले बनोगे तब फिर किसी समय अमल भी करने लगोगे। जब किसी बाग में जाते हो तो तुम चाहो न चाहो सुगन्ध आवेगी ही। मन को सेवा, सत्संग में लगाने से तेरे अन्दर से कपट छल, फरेब, झूठ अपने आप दूर होने लगेंगे और इस तरह अनेक तरह के कष्ट और मुसीबतों से बच जावेगा। हरएक अपना मित्र और दुश्मन आप है। जो मनमानी दिन-रात कर रहा है, जिसके अन्दर सत् विश्वास नहीं और न ही ईश्वर प्रेम है, वह गलत काम करेगा ही। यही अपना स्वयं दुश्मन बनना है। तुम्हारी कल्याण कोई दूसरा करने वाला नहीं। तुमने अपनी कल्याण आप करनी है। अपनी ही खराब आदतें दुख का रूप धारण करती हैं। सत्संग और सत् सिमरण से जीव मजबूत और पक्के इरादे वाला बन सकता है और अपनी बड़ी-बड़ी खोटी आदतों पर अबूर पा सकता है, जिससे अपनी गलती को गलती समझने की बुद्धि आ जावेगी। तब ही उनसे (गलती से) नफरत भी करोगे। ईश्वर ही इस समय सत् भाव पैदा करे तब ही कल्याण वाला रास्ता समझ में आ सकेगा।

प्रश्न 170 : खाना किस कदर खाना चाहिए?

उत्तर : ऐसा सवाल ईसा के आगे भी एक सज्जन ने रखा था। उन्होंने कहा था कि शरीर जहर का समुन्दर है, जितना इसमें डालोगे, जहर हो जायेगा। एक दफा मोहम्मद साहब ने मिस्र के बादशाह को खत भेजा कि इस्लाम कबूल कर लो। उन्होंने इस्लाम कबूल न किया। मगर खत यानि पत्र को बड़ी ताजीम (इज्ज़त) से लिया। बड़ी इज्जत से हाथी दांत की डिबिया में बंद करके रख लिया और बहुत से तोहफे देकर कासिद (दूत) को वापिस रवाना किया। तोहफे में बहुत से गुलाम, बांदियां, अशियाएं खुरदनी व कपड़े वगैरा भी रवाना किए। साथ एक हकीम भी रवाना कर दिया। जब सब अशयाएं (वस्तुएं) मोहम्मद साहब के आगे पेश की गई, तो उन्होंने सब चीजें देखकर तक्सीम (बांटना) कर दीं और हकीम को वापिस कर दिया कि उसकी हमें जरूरत नहीं क्योंकि हम खूब भूख लगने पर खाते हैं। जब थोड़ी भूख बाकी रहती है, खाना-खाना बंद कर देते हैं। उनकी एक बांदी से मोहम्मद साहब की शादी हो गई। मतलब यह कि किस कदर मोहम्मद साहब और उस वक्त के लोगों में सादगी और खान-पान की मर्यादा थी।

प्रश्न 171 : महाराज जी, हमें किस तरह सेवा भक्ति करनी चाहिए। जो कर्म किया जावे उसे किस तरह प्रभु के समर्पण करें?

उत्तर : प्रेमी, 'जीव दया और आतम पूजा, तिस समान धर्म नहीं दूजा'। ब्यौहार करते समय जायज मुनाफा लेना हक है। चाहे छोटा आए चाहे बड़ा, सबसे एक जैसा सलूक करे। जब तक ब्यौहार और संगत की पवित्रता नहीं आती तब तक बुद्धि शुद्ध नहीं होती। नित का कर्म पवित्र करो। जो भी तुमसे सौदा लेने आए उसे ईश्वर रूप जानो। उससे नेक बर्ताव करो। उसे ठीक चीज दो, ठीक रकम लो। वह भी खुश जाए और तुम्हारा काम भी हो जाए। खोटी कमाई आती हुई अच्छी लगती है, मगर जब उसके जाने का समय आता है तब बहुत दुख देती है। हक की कमाई तीन काल सुखदाई है। फिर हक की कमाई करके पुण्य दान करो। गरीबों यतीमों की सेवा करो। बिना किसी ख्वाहिश के सेवा करते हुए यानि निष्काम भाव से करके ईश्वर अर्पण कर दो। ऐसा मन का शुद्ध भाव बनाओ। फिर आहार भक्ष्य-अभक्ष न हो। पवित्र सादा दाल रोटी सेवन करे। लाल जी, ऐसा जीवन बनाओ जिससे मन, तन ठंडा रहे। दो घड़ी सुबह व शाम मालिक की याद, जैसी किसी गुरु ने बताई हुई है, प्रेम से करो। किसी का दिल न दुखायें। जबान के पक्के रहना चाहिए। किसी से कोई वायदा करो तो उसे पूरा करो और हर कीमत पर निभाओ। घर में बुजुर्गों की सेवा का लाजमी ख्याल रखो। अपने पुराने ग्रन्थों शास्त्रों का विचार करें। सत्पुरुषों, संत महात्माओं की संगत में समय दें। इस तरह सत्कर्म करते-करते आप ही रंग लग जावेगा। अगर सत् का कुछ चाव हो तो मालिक आप ही राह खोल देता है। प्रेमियों जो कुछ सुना है इसे दिल के कोने में जगह देना। नेक अमल की रत्ती भी भागशाली बना देती है। फकीरों ने ईश्वर का हुक्म सुनाना है, मानोगे तो सफलता प्राप्त कर लोगे।

प्रश्न 172 : हमारे खिलाफ अगर कोई बात कहता है या दुश्मनी रखता है उसके साथ क्या सलूक करना चाहिए।

उत्तर : अगर कोई शख्स बिना वजह तेरे साथ ईर्ष्या बनाए रखता है, तो तू उसका भला ही सोच। फिर भी अगर वह शख्स तेरे खिलाफ़ कोई बात करता है और तू भी मुद्दत तक उसके साथ कपट बनाए रखता है या उसका कत्ल करने की कोशिश करता है, तो गुरुमुख और मनमुख में क्या

फर्क हुआ। जब किसी की झूठी और नाशयस्ता (अनुचित) बातों का इस कद्र असर तेरे मन या चित्त पर होता है, तो जरूरी है कि तेरी सच्ची भावनाओं का असर भी उसके मन पर जरूर होगा बल्कि बढ़कर होगा। तू अपने मन चित्त को साफ रख।

प्रश्न 173 : इस तरनतारन में इतना बड़ा तालाब पानी का बनाकर मुक्ति का कारखाना बना दिया है कि नहाये और मुक्त हो जाये। इसको खुश्क करके अगर अनाज पैदा किया जाए तो कई गरीबों का गुजारा हो जाये। दस परिवार बस जायें। जितने राग कीर्तन आये दिन गाये जाते हैं उतनी ही ज्यादा बद-रीतियां हो रही हैं। गरीबों के रुपये से अमीर ऐश कर रहे हैं । इस तरह से क्या मुल्क व कौम का सुधार हो रहा है?

उत्तर : किसी हद तक तुम्हारा विचार ठीक है। हरएक के साथ एक जैसा सलूक हो। रोटी, कपड़ा, रहन सहन सबका बंदोबस्त हो। मगर अमीरों को लूटकर गरीबों में तकसीम कर देने से न हो सकेगा। बल्कि इखलाकी तालीम (सदाचारी शिक्षा) देने से होगा। जब तक पहले जनता विचारवान नहीं होती तब तक किसी बात को सही न समझ सकेगी। सिर्फ रोटी, कपड़ा मकान सबको मिल जाने से मसला हल नहीं हो जाता। न ही एक जैसा सबको कर सकते हैं। जमीदार, साधारण आदमी एक जैसे नहीं हो सकते। यह हो सकता है कि सबका विचार दुख भरा सुना जाए और उनकी सेवा का बंदोबस्त अच्छे से अच्छा किया जाये। बताओ तुम्हारी कितनी आमदनी है? महीने के बाद उसको कितने आदमियों में बांटते हो? कितनों को तुमने अपने जैसा बनाया है या खाली खुश्क स्कीमें ही हरएक के आगे पेश करते हो?

इस पर वह प्रेमी खामोश हो गया। फिर श्री महाराज जी ने फरमाया, "प्रेमी, पहले अमली जीवन बनाओ फिर कोई तुम्हारी बात सुनेगा।"

प्रश्न 174 : महाराज जी, मनुष्य की तथा देश की आर्थिक उन्नति के बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, किसी कौम और मुल्क की दायमी (स्थायी) तरक्की महज़ (केवल) मानसिक ख्वाहिशात यानी ज़रूरियाते-ज़िन्दगी को निहायत

बढ़ाने से कायम नहीं रहती है-जब तक कि त्याग स्वरूप रूहानी ज़िन्दगी की साथ-साथ तहक़ीकात (खोज) न की जावे। ज़रूरियाते-जिन्दगी की ज़्यादती अक्सर तबाही कर देती है। यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए।

हरएक जीव शारीरिक कैद में अपनी-अपनी आर्थिक हालत में लगा हुआ ही रहता है। इसमें कोई ज़्यादा ग़ौर की ज़रूरत नहीं है। स्वभाव-वश हो करके मानुष को ऐसा ज़रूरी करना पड़ता है। ग़ौर इस बात की करनी चाहिए कि आर्थिक तरक्की किस हद तक होनी चाहिए? और उस आर्थिक उन्नति में मानुष का क्या फर्ज़ होना चाहिए, जिससे वह आर्थिक उन्नति को प्राप्त करके महज़ (केवल) विषयाचारी ही न बन जावे। सो इसके मुतल्लिक ग़ौर करने का न किसी बुद्धिमान को मौका मिला है और न ही कोई ज़रूरत समझते हैं। आम लोग तो महज़ आर्थिक तरक्की करके अपने आपको विषयाचारी बनाने के यत्न में लगे हुए हैं, जो थोड़े ही समय में तमाम उन्नति को नाश के स्वरूप में देखेंगे। यह प्रकृति का खेल है। खास निर्णय यह है कि अध्यात्मवाद के सहित आर्थिक तरक्की कल्याणकारी है। इस वास्ते इन सब हालतों का विचार करके सही आर्थिक उन्नति करना, जिससे अध्यात्मवाद परम पवित्रता का निश्चय बना रहे (कल्याण के देने वाला यत्न है)। सही आर्थिक उन्नति असली कल्याण के देने वाली है और समता के अनुकूल है।

शरीर तथा संसार से मुक्ति का मार्ग

प्रश्न 175 : देह की कैद से मुख्लसी (मुक्ति) कैसे मिलती है?

उत्तर : देह की कैद से जीव को मुक्ति निष्काम कर्म से मिलती है। गीता का लुब्बे लुबाब (सार) यही है। नीज (दूसरे) तमाम ऋषियों और पैगम्बरों का सिद्धांत भी यही है, अर्थात् कामनायुक्त कर्म देह के भोगों में आसक्त करते हैं। निष्काम कर्म देह की कामना से आजाद करते हैं, जैसे तमाम सत्पुरुषों का जीवन।

प्रश्न 176 : महाराज जी, सूर्य और नदियां इत्यादि निष्काम सेवा कर रहे हैं, क्या वे मोक्ष के अधिकारी हैं?

उत्तर : प्रेमी, शरीर और प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड का स्वरूप एक ही है। जैसे शरीर में पांच तत्व काम कर रहे हैं ऐसे ही बाहर यह चक्र चल रहा है। निश्चय शक्ति से मनन शक्ति प्रगट होती है और मनन शक्ति से पांच तत्व प्रगट होते हैं। जब तक निश्चय शक्ति निर्वाण को प्राप्त न होवे तब तक पांच तत्व प्रकृति स्वरूप में प्रगट और लीन होते रहते हैं। ऐसे ही सब खेल चल रहा है। निश्चय शक्ति जब सतस्वरूप में लीन होती है तब संकल्प रूप मन और पांच तात्विक प्रकृति लीन हो जाती है। पांच तत्व बजाते खुद (अपने आप में) निश्चय शक्ति का संकल्प हैं, इस वास्ते तत्वों की मुक्ति निश्चय शक्ति की लीनता से ही होती है। जैसे एक शरीर की गति है ऐसे ही तमाम ब्रह्माण्ड की गति है। चूंकि संसार की गति अद्‌भुत है इस वास्ते केवल सत् स्वरूप का बोध प्राप्त करने का यत्न करें, जिससे अपना ब्रह्माण्ड कल्याण को प्राप्त होवे। एक आत्मा के बगैर तमाम शक्तियां उत्पत्ति और प्रलय के चक्र में फिर रही हैं। आत्मा के साख्यातकार (साक्षात्कार) होने से तमाम शक्तियां लीन हो जाती हैं, यह ही निर्णय तमाम जीवों और तमाम प्राकृतिक शक्तियों पर समान रूप से लागू होता है।

प्रश्न 177 : महाराज जी, शरीर अपूर्ण कैसे है और इस अपूर्णता से अबूर (छुटकारा) पाने का क्या इलाज है?

उत्तर : प्रेमी जी, सबसे पहले अपूर्णता तो यही है कि शरीर हमेशा तबदील होता रहता है यानी लम्हा-व-लम्हा यह शरीर अपने आप बदल रहा है। जो एक वक्त में इसको सुखदायी महसूस होता है, वह ही दूसरे क्षण में

दुखदायी मालूम होने लगता है। दूसरी बात यह है कि हर वक्त जरूरतमंद रहता है। कभी भी तृप्त नहीं होता। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, सुख-दुख, राग-द्वेष, मोह-ईर्ष्या वगैरह (इत्यादि) हर वक्त इसे सताते रहते हैं। इस तरह शरीर बड़ा लाचार है, मजबूर है और नालां (दुखी) है। क्या करे, कुछ समझ में नहीं आता। इसलिए सत्पुरुषों ने कहा कि मन के मते मत चलो, हमेशा इसके उलट चलो। जहां इस मन की खुशी या प्रसन्नता महसूस होवे, आसक्ति होवे, वहां से इसे तरकीब के साथ हटा दे। मगर जबरदस्ती हरगिज (कदापि) न करे इसके सामने सतग्रही पुरुषों के जीवन चरित्र रखे, उनके जीवन का गहरा विचार करे और ताकीद करे (समझावे) अरे मन, देख, उन लोगों ने कैसे अपना जीवन चलाया और अपने आप को शान्तिमय बनाया तू भी उनके नक्शकदम (पदचिन्हों) पर चल। तेरा भी कल्याण हो जायेगा। आखिर सुखों के पीछे चक्कर काटते कितने इन्सानों की जिंदगियां खत्म हो गईं और आखिर को यह देखा गया है कि हाय-हाय करते हुए वे दुनिया से चले गये। कुछ उनका नहीं बना। तू उनसे सबक (शिक्षा) ले और गुणी पुरुषों के रास्ते पर चल। इस जिंदगी में ही अपने आपको शरीर के सुखों से ऊंचा उठा ले। इस तरह का गहरा निश्चय जब परिपक्व हो जाता है तो धीर पुरुष बड़े-बड़े दुखों में भी कष्ट महसूस नहीं करता। उसकी यह भावना पक्की हो जाती है कि प्रभु जो करता है मेरे भले के लिए करता है, और बड़े -बड़े दुख भी उसे सुखदायी महसूस होते हैं। उसके नेक संकल्प द्वारा और प्रभु की रजा में राजी रहने के कारण कुदरत कामला (प्रभुसत्ता) अजीब तरह के खेल उसके लिए रच देती है। लोग देखकर हैरान हो जाते हैं।

प्रश्न 178 : महाराज जी, किन साधनों के अख्तियार (धारण) करने से हम संसार से अबूर पा सकते हैं?

उत्तर : प्रेमी जी, इस बाहरी संसार से छूटने की क्या आवश्यकता है। पहले तो इस पिंजरे के संसार को छोड़ो जो गन्दगी से भरपूर है। इस गन्दगी को अन्दर रखकर बाहरी संसार को छोड़ने का क्या फायदा? इस पिंजरे के संसार को छोड़ने से ही बाहरी संसार छूट सकता है। इस पिंजरे के साथ ही संसार का ताल्लुक (संबंध) है। इससे छूटना ही संसार से छूटना है। इसलिए पहले पिंजरे के संसार को छोड़ दे तो वह बाहरी संसार खुद बखुद ही छूट जाएगा। संसार का छोड़ना निश्चय करके शरीर का छोड़ना है। पिंजरे के संसार से छूटने के लिए

जरूरी है कि पहले शरीर के जो सुख हैं और जिनके लिए मनुष्य हर वक्त दौड़ -धूप कर रहा है, इनसे छुटकारा हासिल किया जावे। इसके लिए ऐसे असूलों पर अमल करना लाजमी है जैसे सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत्-स्मरण। ज्यों-ज्यों इन पर अमल करते जाओगे, तुमको ईश्वर की सत्ता का पता चलेगा और इस संसार के सब सुख नाशवान महसूस करोगे जिससे संसारी भोग पदार्थों से तुम्हें वैराग्य प्राप्त होगा और तुम ईश्वर प्रेम में मगन होकर संसार रहित हो जाओगे।

प्रश्न 179 : वैतरणी नदी किसे कहते हैं और उससे कैसे पार हो सकते हैं?

उत्तर : प्रेमी जी! महाभारत में युधिष्ठर के बनवास के दौरान यक्ष ने इस तरह का सवाल युधिष्ठर से किया था। उन्होंने कहा है कि तृष्णा ही वैतरणी नदी का स्वरूप है। प्रभु नाम स्मरण और निष्काम कर्म की धारणा के सिवाय और कोई दूसरा उपाय इसे पार करने का नहीं है। इसलिए नाम स्मरण परिपक्व होते ही जब तू निष्काम कर्म रूपी नौका पर सवार होगा, तब तू इस वैतरणी नदी को सहज ही पार कर लेगा।

प्रश्न 180 : अगर हरएक मुक्ति में लग जावे तो दुनिया का कारोबार कैसे चले?

उत्तर : मुक्ति की चाहना न हरएक कर सकता है और न किसी को जरूरत है। किसी महापुरुष को ही मुक्ति की चाहना होती है और कोई कोशिश सही करता है और कोई ही हासिल कर सकता है। बाकी तमाम नुमाइश है। दिल में और है और जबान से और कहते हैं, यह दुनिया दुरंगी है। जब तक ख्वाहिशात नफसानी (इन्द्रिय-भोगों) का गुलाम है तब तक मुक्ति बहुत दूर है। हालते-वे-ख्वाहिशी (कामना रहित दशा) को ही मुक्ति कहते हैं। इसे कोई ही हासिल कर सकता है। कायर लोग जबानी बादमुबाद (वाद-विवाद) में वक्त गंवा देते हैं, हासिल कुछ नहीं कर सकते। सही तर्जे जिन्दगी (जीवन पद्धति) को अख्तियार करना ही मुक्ति की शाहराह (सही मार्ग) है। इसके बगैर सब जहालत है।

प्रश्न 181 : क्या आखिर वक्त-बवक्ते मौत (मृत्यु के समय) ईश्वर का नाम लिया जावे तो मुक्ति हासिल हो सकती है? जैसे एक बार एक शख्स

के पास एक साधु आया। उसने उसकी मेहमान निवाजी (अतिथि सत्कार) की। साधु ने नसीहत की कि वह अपने बेटे का नाम नारायण रखे। उसने उसकी हिदायत के अनुसार अपने पुत्र का नाम नारायण रखा। जब उसका आखिरी वक्त नजदीक आया तो उसने नारायण को बुलाया। उसके बाद वह मर गया। यमदूत उसको लेने के वास्ते आये। दूसरी तरफ से स्वर्ग से भगवान ने विमान उसे लेने के वास्ते भेजा। यमदूतों ने यमराज के पास शिकायत की कि उनको भगवान के दूतों ने मारा है और उनको उस शख्स (व्यक्ति) को लाने नहीं दिया। यमराज ने कहा कि वह मुक्त हो चुका है क्योंकि उसने आखिरी वक्त में नारायण का नाम लिया है।

उत्तर : ये दुनियावी कहानियां हैं। ईश्वर के स्वरूप में मिलाप होना मुक्ति है। रोचक बातें दुनिया को पसन्द आती हैं। यथार्थ कोई ही जान सकता है। ईश्वर के नाम से मुक्ति मिलती है मगर बगैर तसल्ली के उसका नाम भी नहीं लिया जा सकता। सही तसल्ली बगैर विचार के नहीं आ सकती। वे मूर्ख लोग हैं जो यह कहते हैं कि आखिरत (अन्त समय) में नाम लिया जावे तब ही भला हो सकता है। आयन्दा की जिन्दगी (भावी जीवन) अच्छी होती है। मगर कर्मों से निजात (मुक्ति) नहीं हो सकती है जब तक कि जीवित में आत्मदर्शन न कर लेवे। जब तक आत्म-निश्चय न होवे सारी दुनिया ही जहालत में है। इस वास्ते बहुत बातों को छोड़कर अपनी बुद्धि को आत्मा में लगाना चाहिए। इसी में कल्याण है।

प्रश्न 182 : महाराज जी, अगर जन्म भर मैंने अच्छे कर्म किए और मृत्यु के समय अवस्था कुछ खराब हो जाए अर्थात् अकस्मात् मन रजोगुणी तथा तमोगुणी हालत में हो जाए तो हमारा सब किया कराया निष्फल गया क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि "अन्त मता सो गता"।

उत्तर : जो वासना तेरी शरीर छोड़ते हुए रहेगी वैसी ही तुझे योनि प्राप्त होगी। मगर तेरे शुभ कार्य व्यर्थ नहीं जाएंगे। उस योनि में भी तुझे प्राप्त होते रहेंगे। मिसाल के तौर पर जो पुरुष मरते हुए सतोगुणी वृत्ति में प्राण छोड़ता है पर उसके कर्म जिन्दगी भर तमोगुणी रहे तो वह मनुष्य योनि लेकर भी महाचण्डाल तथा हिंसक कर्म करने वाला आदमी बनेगा। दूसरी मिसाल यह है कि अगर कोई पुरुष रजोगुणी अवस्था में मरता है, पर उसने सात्विक कर्म जीवन में ज्यादा किए हुए हैं तो वह पशु पंछी (पक्षी) योनियों में जाकर अच्छे नेक

स्वभाव वाले सात्विक पक्षी की योनि में जन्म लेगा जहां से उसके कर्मों का सुखरूप फल उसको अवश्य प्राप्त होगा। जैसे कि कई पशु-पक्षी जानवरों की योनि में होते हुए भी मनुष्योचित गुणों वाले होते हैं और बड़े नेक तथा परोपकारी वृत्ति के सिद्ध होते हैं। अगर कोई तमोगुणी अवस्था में प्राण छोड़ता है तो उसको जड़ योनि, पेड़ वगैरह की प्राप्त होती है। वह वहां रह कर अपने शुभ या अशुभ कर्मों द्वारा लोगों को फायदा तथा नुकसान (हानि) पहुंचाया करता है। कहने का मतलब यह है कि अन्तिम वासना के मुताबिक जैसी-जैसी योनि जिस जीव को प्राप्त होती है उसमें अपने पुरातन कर्म अच्छे या बुरे किए हुए का फल जरूर भोगना पड़ता है यानि कर्म किया हुआ बगैर तत्वज्ञान प्राप्ति के किसी सूरत में नाश नहीं होता है।

प्रश्न 183 : महाराज जी, आत्म कल्याण के लिए किन-किन बातों की जरूरत होती है?

उत्तर : प्रेमी, अगर अन्तःकरण रूपी खेत में वैराग्य की नमी पाई जाए, श्रद्धा का मौसम हो, गुरु रूपी किसान हो और श्रेष्ठ साधना का बीज हो, जो गुरु कृपा द्वारा प्राप्त हो चुका हो, कमाई करने से बेड़ा पार हो जाता है।

प्रश्न 184 : महाराज जी, त्रैगुणी माया का जाल कैसा है?

उत्तर : प्रेमी, जो भी कर्म जीव करता है उसका मानी बन जाता है कि मैंने किया। ऐसा कहना ही जुर्म है। इच्छा से कर्म और कर्म से इच्छा रूपी लहरें नित्य ही चित्त में प्रगट होती चली जाती हैं। यह ही माया भ्रम असगाह है। नित्य ही जीव कर्मफल की आशा रखकर कर्म करता हुआ सुख-दुख, खुशी-गमी, राग-द्वेष को प्राप्त होता रहता है । इस दुविधा से निकलने के वास्ते तेरी जैसी स्थिति के लिए केवल एक ही इलाज है कि मैं कर्त्ता भाव को भूलने की कोशिश कर। बार-बार तू कर्त्ता के सत् भाव में दृढ़ होने का जतन कर। यह सत् भाव जब दृढ़ नहीं होता, तब तक निःकर्म अवस्था प्राप्त नहीं होती। जीव इस तरह अनेक शरीरों को धारण करता हुआ कर्म गति में फंसा रहता है। जब छुटकारे वाले सत्कर्मों को शुरू करता है तब जाकर किसी समय खुलासी को पाता है।

प्रश्न 185 : मोक्ष कब प्राप्त होता है?

उत्तर : प्रेमी! जिस समय तेरी बुद्धि संसार से वीतराग होकर जप तप द्वारा आत्म अनुभव करके उसमें लीन हो जावेगी, उस समय मोक्ष की अधिकारी होगी।

प्रश्न 186 : क्या महाराज जी, गंगा नहाने से मुक्ति हो जाती है?

उत्तर : प्रेमी, गंगा नहाने से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति कर्मों से मिलती है। जहां बैठे हो वहां ही गंगा बन सकती है। यह सिर्फ आचार्यों ने खाने के तरीके बनाये हैं। पंडितों के कहने से जान नहीं छूटेगी। करनी भरनी पड़ेगी। प्रेमी, जब पांडव गंगा स्नान करने जा रहे थे तो कृष्ण ने उनको एक तुम्बी दी थी और कहा था इसको भी गंगा स्नान करवा लाना। पांडवों ने ऐसा ही किया। जब वापिस आए तो कृष्ण ने उनसे पूछा, 'क्यों भई इस तुम्बी को भी स्नान करवा लाये हो?' उन्होंने जवाब दिया, 'हां महाराज, बहुत ज्यादा।'

जब गंगा हवन करने के बाद सब लोग खाने को बैठे तो श्री कृष्ण ने तुम्बी का एक-एक टुकड़ा काटकर सबको दिया और जब खाना खत्म हुआ तो सबसे पूछा, 'क्यों जी, इस तुम्बी का स्वाद कैसा था कड़वा या मीठा?' तो सबके सब कहने लगे, 'कड़वा'। उस वक्त कृष्ण ने उनसे पूछा, 'क्या आपने इसे नहलाया नहीं? यदि अच्छी तरह नहलाया होता तो जरूर इसका स्वाद बदल गया होता।' इसका मतलब यह है कि जब तक अंत:करण शुद्ध नहीं होता, पाप वृत्ति कायम रहती है। अपने लाभ के लिए दूसरे की हानि का भाव मौजूद रहता है। जवान में मिठास नहीं, दूसरों से प्रेम नहीं, तब तक एक नहीं ख्वाहे लाख गंगा स्नान कर लिए जायें, बड़े-बड़े तीर्थों की यात्रा कर ली जावे-सब बे फ़ायदा ही है। इस वास्ते सही कल्याण को प्राप्त करने के लिए अपने आचार-विचार शुद्ध करने चाहिये। सत्पुरुषों से सत् मार्ग प्राप्त करके उनके बताये हुए असूलों और साधनों को अपनाकर ही मुक्ति हो सकती है।

प्रश्न 187 : महाराज जी, माया का बंधन बड़ा अश्चर्ज है। इस नामुराद से किस तरह निकला जा सकता है?

उत्तर : माया का असली रूप कनक और कामनी है। जब तक इन दोनों से सही माइनों में चित्त उपराम नहीं होता तब तक जिज्ञासु से सत्मार्ग में दृढ़ नहीं हुआ जाता। दुनिया के सब साज व सामान इसी मोहिनी माया से सम्बन्ध रखते हैं। जब तक इनसे लगाव कम न होगा, वैराग्य न होगा। जब तक वैराग्य न होगा तब तक अनुराग या असली प्रेम न होगा। यह अवस्था सिमरन अभ्यास से प्राप्त हो सकती है। जब तक यह मन नाम रूप की तरफ लगा रहेगा तब तक यह प्रीतम के निकट नहीं जा सकता। दो तरह के विकार चित्त के अंदर हैं: चंचलता और

मलीनता। जब तक यह मौजूद हैं, अभ्यास में दृढ़ता नहीं आ सकती। बारम्बार इन मन की त्रुटियों पर ध्यान देना चाहिए। जब गल्ती को अच्छी तरह समझोगे तब किसी समय अपने आप पर फतह पा लोगे। दवा और परहेज़ दोनों लाज़ मी हैं।

प्रश्न 188 : महाराज जी, मोक्ष का क्या हेतु है? कुछ लोग कहते हैं कि मोक्ष का कारण जीव का अपना प्रयत्न है; दूसरे ईश्वर कृपा को ही मुक्ति का एकमात्र हेतु मानते हैं।

उत्तर : प्रेमी, जब जीव को परम दु:ख की प्राप्ति होती है तभी वह समझ पाता है कि यहाँ उसका ठिकाना नहीं है। यह गहरी नाउम्मीदी ही उसमें सच्चे आनन्द की जिज्ञासा उत्पन्न करती है। यही वैराग्य भावना देववृत्ति है। तभी जीव किसी सन्त को सही अर्थों में अपना गुरु मानता है और उसकी सीख को अपनाता है। ऐसे सत् जिज्ञासु को ही मुक्ति प्राप्त होती है।

मोह, ममता और प्रेम

प्रश्न 189 : महाराज जी, प्रेम और मोह में क्या फर्क है?

उत्तर : प्रेमी, प्रेम उस हालत को कहते हैं जब परमेश्वर की याद में तन्मय होकर अपने आपको बुद्धि भूल जाती है और मस्ती का आलम उस प्रेमी के चारों तरफ तारी (चारों तरफ से घिर जाता है) हो जाता है। वहां तड़प नहीं होती। यह अवस्था वियोग और संयोग से रहित है, गर्ज और फर्ज से ऊंची है, हर्ष और शोक से न्यारी है। इसके विपरीत जीव की शरीर और शरीर से संबंधित संसार से गहरी पकड़ का नाम ही मोह है। मोह हमेशा स्वार्थवश होता है। संयोग में भी वियोग का भय लगा रहता है। अगर फर्ज करके दिखाई भी दे तो भी सूक्ष्म रूप से उसमें गर्ज छिपी हुई होती है।

प्रश्न 190 : महाराज जी, परमात्मा से प्रेम कैसे होवे?

उत्तर : प्रेमी, उस प्रभु में पूर्ण निश्चय और दृढ़ विश्वास से प्रभु प्रेम पैदा हो जाता है। इसके अलावा आत्म सम्बंधी विचारों के स्वाध्याय और मनन से, सन्तों के संग से और सतग्रही पुरुषों के जीवनचरित्र का गहरा मुताल्या (गहन अध्ययन) करने से, उनकी कहनी, रहनी और सहनी को रोजाना हर समय विचार करने से प्रभु प्रेम का बीज हृदय रूपी जमीन पर उग जाता है।

प्रश्न 191 : महाराज जी, यह ममता किस तरह खत्म हो सकती है?

उत्तर : प्रेमी, पहले इस जीव को अपने शरीर की ममता बड़ी भारी है, फिर जितने शरीर से सम्बंध रखने वाले हैं उनसे इसका खामख्वाह (स्वत:) स्नेह बढ़ जाता है। हर जीव परस्पर एक-दूसरे से सुख चाहते हैं। ज्यों-ज्यों लगाव बढ़ता है, संसारी ममता फैलती जाती है। ममता के नाश करने के वास्ते ही सब नियम धर्म बने हुए हैं। जब तक शरीर की ममता खत्म नहीं होती तब तक प्रभु-महिमा, प्रेम चित्त के अन्दर नहीं आ सकते। जिस समय प्रभु-प्रेम आ जाएगा, ममता का रूप बदल जाएगा। मैं, मेरी की जगह तू ही तू करने लगेगा।

ममता माई जन्मत खाई, काम क्रोध दोय मामा ।
मोह नगर का राजा खायो, तब पहुंचयो इस धामा ।।

समतावाद और ममतावाद दो भेद हैं। जब यह जीव ममतावाद को छोड़ता है, तब इसे असली शान्ति और आनन्द मिलता है। हर समय कारण कर्त्ता उस महान प्रभु को जानना चाहिए। कर्त्ता-हर्ता ज्यों-ज्यों ईश्वर को समझेगा इसका मान खत्म होगा और अपने अन्दर इसको प्रसन्नता मालूम होगी। जन्म जन्मांतर से यह जीव मोह रूपी जेवड़ी में जकड़ा हुआ है। भाग्य से सन्त शरण मिल गई, उसे जाग आ गई।

सत्गुरु दाता भेंटया, साधी कठिन मुहीम ।
पाया राज देह दीप का, मारे पंच गनीम ।।

पहले इसने शरीर का मालिक बनना है, इसकी परायणता छोड़नी है। बार-बार इस शरीर के बनाने वाले का विचार करने से देह-मद से मुक्ति मिल सकती है।

मन के मते न चालिए, मन के मते नहीं चैन।
आठ पहर का भटकना, न कुछ लेन न देन ।।

जिस तरह लकड़ी को घुन अन्दर ही अन्दर खा जाता है इसी तरह जीव को यह पांच दोष काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार चट करते रहते हैं। न शारीरिक सुख इसके पूरे होते हैं, न ममता से निजात मिलती है। हर जीव को इस ममता ने बेचैन कर रखा है। सिर छाई पाई, पानी में खड़े रहे, धूनिया तापीं, उल्टे लटके, फिर भी ममता वहां की वहां ही रही। मैं साधु, मैं सन्यासी, मैं त्यागी इन सबसे बेहतर इलाज इसका दीनता, निर्मानता ही है। जो तेरी आज्ञा, सत् तेरी आज्ञा। ममता को काटने का आसान इलाज इससे बेहतर और कोई नहीं।

प्रश्न 192 : महाराज जी दृश्यमान संसार को देखकर नित्य ही हम सब मोहित होते रहते हैं। मन की ममता को किस तरह से नाश किया जाए। ज्यों-ज्यों मोह बढ़ता है, संसार सुख रूप दिखाई देता है। एक पलक के वास्ते भी संसार के सुखों को भूलने की कोशिश नहीं करते?

उत्तर : प्रेमी, सुन, जिन्होंने सिर में छाई डाल रखी है, सिर मुंडा रखे हैं, कोई नंगा है, कोई जल में खड़ा है, कोई धूनी तापते हैं, कइयों ने

लम्बी-लम्बी जटा बढ़ा रखी है, अनेक तरह से सांगोपान और वेष इस वास्ते धारण कर रखे हैं कि ममता का नाश हो, उनकी ममता तुम संसारियों से भी अधिक बढ़ी हुई है। जिनको गुरु गुसाईं समझकर पूजते हो, वे माया के फेर में पड़े हुए हैं। जो भी संसार में आया है, संसार को देखकर मोहित जरूर हो जाता है। जिन्होंने संसार देखा है और फिर समझने का यत्न किया है, जिन्होंने संसार को बदलने वाला देखकर संसार के बनाने वाले की खोज शुरू की है, ऐसे विवेकी जीव ममता के जाल को समझकर इससे पीछा छुड़ाने की कोशिश करते हैं। मन की ममता का नाश करना कोई आसान नहीं। रोम-रोम में बुद्धि फंसी हुई है। ममता करके संसार के सब जीव हर समय फैलाव कर रहे हैं। ममता रूपी रोग में हरएक जीव ग्रसा हुआ है। मोह करके सब विकार प्रकट होते हैं। बड़ा खुशनसीब वह जीव है जो इस रोग को समझकर इसका इलाज कर ले। माया चक्र से शान्ति हासिल करनी है, तो किसी से रास्ता पूछकर चल दे। सारी उम्र यह सवाल पूछने में ही नहीं गुजार देनी चाहिए। ममता का नाश करने वालों से जाकर पूछ, इस रोग से किस तरह मुख्लसी (मुक्ति) पाई जाए:-

रंग लागत लागत लागत है।
भ्रम भागत भागत भागत है ।।

संसार के सुखों को जब लात मारेगा, दुख रूप समझेगा, शरीर की तबदीली दृढ़ निश्चय से मानेगा, शरीर को किसी दूसरी शक्ति के आधार पर खड़ा होने वाला जानेगा, तब इन सत् विचारों द्वारा बुद्धि के अन्दर उदासीनता आवेगी। जब तक मन फीका नहीं होता तब तक इसका रास्ता बदलता नहीं। स्कूल में एक रोज जाने से सारा सबक नहीं मिल जाता, सत्संग में आया करो। रात नजदीक आ रही है, फिर किसी समय आना। इस तरह बुद्धि खोलकर चलना चाहिए। संतों की खोज करते रहा करो।

प्रश्न 193 : महाराज जी, संसार का मोह कब ख़त्म होगा? एक चीज़ में फंसा हुआ चित्त हो तो उसे हटाकर प्रभु-नाम में लगायें। अनेक तरह के संकल्प-विकल्प समुद्र की लहरों की तरह पैदा होते रहते हैं। बहुत सोच-समझकर कदम उठाते हैं, मगर फिर भी परेशानियाँ उसी तरह खड़ी रहती हैं। बड़े-बड़े सुख के सामान मौजूद हैं, मगर फिर

भी दूसरों का माल हड़प करने के लिए दौड़ रहे हैं। सारा दिन अदालत में गुज़रता है-वहाँ रंग-रंग के हालात देखने में आते हैं। विचार आता है प्रभु की कैसी लीला है यह?

उत्तर : प्रेमी, इस मन की कल्पना का बे-अन्त विस्तार है। मन में ही ऐसी द्वैत-दृष्टि भरी हुई है जिस करके भ्रम-अन्धकार बढ़ता जाता है। एक जीव की ही ऐसी हालत नहीं है; सब संसारी जीवों के अन्दर इच्छा का चक्कर चल रहा है। मन करके ही अपना-पराया नज़र आता है। मन करके ही पकड़ना और छोड़ना यानी ग्रहण और त्याग है। दु:ख-सुख जिस कदर महसूस हो रहा है, मन करके ही है। मन करके पुण्य-दान में प्रवृत्त होता है। मन में अनेक तरह के मनन होते रहते हैं। मन की भटकना ही संसार है। अज्ञानता की फाँसी मन की कल्पना ही है। ज्यों-ज्यों संसार को देखता है, नये से नया रंग नज़र आता है। जिसने मन को अपने हाथ में कर लिया है-यानी प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से प्रभु-सिमरन (स्मरण) में लगा दिया है-उसका मन एकाग्र होकर डोलने से रहित हो जाता है- बार-बार बाहर नहीं दौड़ता। बिना प्रभुनाम सिमरन के मन की तपिश और चंचलता दूर नहीं होती। सारी सृष्टि मनोमात्र है। जब तक मन में संसारी पदार्थों की ममता है-मैं-मेरी की भावनायें अन्दर खड़ी हैं-तब तक जीव जकड़ा हुआ है।

इस बन्धन से छुटकारा पाने के लिए ही ईश्वर भक्ति है। जिस वक्त मौन रूप को समझ जायेगा, निर्मल चित्त से अपने-आपको प्रभु-परायण कर देगा, उस समय सारे संसार का मोह लोप हो जायेगा। संसार की अचरज लीला को कौन नाप-तोल सकता है? दीनदयाल के परायण होने में ही छुटकारा है। अपने छुटकारे का विचार करें। अनन्त जीवों के अनेक तरह के झगड़े कौन निपटा सकता है?

बारम्बार अपना भरम निवारण करने की कोशिश करें। आम दुनिया संसार को सत् मानकर तपायमान हो रही है। मगर ईश्वर को सत् जानने वाले विरले ही होंगे।

असल में सच्ची खुशी मन की लीनताई में है। उस अवस्था को पाकर मन सब द्वन्द्व विकारों से निर्विकार हो जाता है। जिस समय आप शरीर की ममता को तप-ध्यान द्वारा खत्म करेंगे तब जाकर समता शान्ति

अनुभव होगी। तब चित्त ठण्डा हो जायेगा।

एको एक सब माहीं दरसावे,
सरब माहिं देखे एक प्रभुताई।
इक प्रभ चरणी पायो विश्वासा,
जाये निर्भय धाम समाई ।।
कर्म बन्ध सकल भयो पूरा,
धुर मकाम जाये वासा पायो।
'मंगत' पूरण प्रभु के मेल से,
नित ही नित आनन्द समायो ।।
ममता अन्धकार विनासया,
पाये दिव्य दृष्ट अन्तर माहीं।
'मंगत' समतत्त परकाश से,
भय भरम सब जाईं।।

सब ऋषियों, मुनियों ने समभाव की महिमा गाई है। समता बुद्धि जिस समय प्राप्त हो जाती है जीव निर्भय हो जाता है। निर्भयता ही असली जीवन है। ज़रा ग़ौर करके देखो तो पता लगे कि सब जीया-जन्त को तृष्णा ने तपायमान कर रखा है। शरीर खत्म हो जाते हैं, तृष्णा नहीं मरती। असली ममता का रूप तृष्णा ही है।

प्रश्न 194 : महाराज जी, प्रेम और अनुराग की क्या पहचान है?

उत्तर : लाल जी, यह बड़ी गम्भीर बात है। जरा गौर से सुनो। बुद्धि का जब यह पूर्ण निश्चय हो जाएगा कि यह शरीर और इससे सम्बंधित संसार नाशवान और तबदीली युक्त है, अगर कुछ है भी सही तो आर्जी (क्षणभंगुर) है, उसके अन्दर अनुराग उत्पन्न होगा। अनुराग के साथ-साथ प्रेम की परिपक्वता होगी।

प्रश्न 195 : महाराज जी, प्रभु प्रेम किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर : प्रेमी, प्रेम पैदा करने के वास्ते वह विचार करना पड़ेगा कि जैसे रहट की घड़ियां एक आती है, एक जाती है, उसी तरह से यह संसार खात्मा की तरफ जा रहा है। यानी रहट की तरह भरकर आता है और फिर खाली जाता है। इस दुनिया की चमक-दमक से अपने मुंह को मोड़कर अपने अन्दर देखने की कोशिश कर, तो फिर उस प्रभु का प्रेम तेरे अन्दर अपने आप ठाठें मारने लगेगा।

प्रश्न 196 : कृपा करके ईश्वर प्रेम का स्वरूप बतलाएं?

उत्तर : लाल जी, बड़ी औखी (कठिन) मंजिल है। कोई बिरला ही पहुंचता है। अपने आपको पूर्ण स्वरूप से खत्म करना ही ईश्वर प्रेम का पाना है।

प्रश्न 197 : आपने ये तो ठीक कहा लेकिन यह तो अन्तिम चर्म सीमा है और आखिरी अवस्था है। वह कौन-कौन सी हालतें हैं जिनके अन्दर से गुजरकर उस अन्तिम पूर्ण अवस्था तक पहुंचा जा सकता है?

उत्तर : ईश्वर प्रेम की तीन अवस्थाएं हैं-

1 क्यासी प्रेम
2 यकीनी प्रेम
3 मुकम्मिल यानी पूर्ण प्रेम

1 क्यासी प्रेम-जब सत्संग द्वारा, महापुरुषों और सत्पुरुषों द्वारा सुनकर या शास्त्रों के पठन-पाठन द्वारा जानकर जो प्रेम पैदा होता है वह सुना-सुनाया तथा पढ़ा-पढ़ाया क्यासी प्रेम कहलाता है।

2 जब क्यासी प्रेम वाला जीव सत्पुरुषों द्वारा बतलाए हुए साधन द्वारा कुछ कमाई कर लेता है उसे यकीन या विश्वास हो जाता है कि मैंने जो कुछ सुना था, मैं ठीक रास्ते पर हूं और ईश्वर वास्तव में है। तब यह अवस्था यकीनी प्रेम की होती है।

3 इसके बाद जीव ज्यादा से ज्यादा अभ्यास धारण करता है और मुकम्मिल प्रेम प्राप्त करके अपने आपको प्रभु सत्ता में मुस्तगर्क (लीन) कर देता है। यह ही पूर्ण प्रेम की असली अवस्था है।

संस्कार और स्वभाव

प्रश्न 198 : क्या पशु, पक्षी और अन्य योनियों में भी जाकर जीव कर्म करता है, या सिर्फ भोगता ही है?

उत्तर : प्रेमी, जीव किसी भी योनि में जावे, वह वहां भी कर्म तो करता ही है।

प्रश्न 199 : महाराज जी, कर्म हम खुद करते हैं या पिछले संस्कार ही हमको शुभ-अशुभ मार्ग पर ले जाते हैं?

उत्तर : प्रेमी, बेशक संस्कारों करके ही जीव का स्वभाव बनता है, मगर अपने संस्कार आप बदल भी सकता है। ईश्वर ने बुद्धि दे रखी है, मगर इस्तेमाल नहीं करता। बुराई को छोड़कर अच्छाई को ग्रहण कर सकता है। अच्छा कर्म करते-करते बुरा कर्म भी करने लग जाता है। इस वास्ते हर घड़ी, हर समय दिल को मजबूत करके सन्मार्ग में दृढ़ता धारण करनी चाहिए। ज्यों-ज्यों पक्के इरादे से शुभ मार्ग पर चलता है उच्चता को प्राप्त होता है। अच्छी संगत अच्छी तरफ ले जाती है। मलीन स्वभाव वालों की संगत करके बुद्धि मलीनता को प्राप्त होती है। संगत का असर लाज़मी है। इस वास्ते बार-बार सत्संगत पर जोर दिया जाता है। सारा संसार असत् रूप है। अज्ञानता से शरीर और संसार को सत् मानकर चला जा रहा है। जब विवेक बुद्धि पैदा होती है, तब इधर से हटकर सत् की तरफ कोई ही भाग्यशाली जीव दृढ़ होता है। सत्संग में आकर चुप करके नहीं बैठे रहना चाहिए। विचार करना चाहिए। इसी तरह बुद्धि से भ्रम दूर होता है।

प्रश्न 200 : महाराज जी, जरा प्रारब्ध और पुरुषार्थ को तात्विक रूप में समझाने की कृपा करें।

उत्तर : प्रेमी, तेरा आज का यत्न कल का प्रारब्ध हो जावेगा और वह संस्कार का रूप धारण कर लेगा। जैसे, आज का खाया हुआ खाना कल के लिए मददगार होता है, उसका खून बनकर शरीर की ताकत बन जाती है, इस तरह पिछले जन्मों के संस्कार ऐसी जीव की आदत बनाते हैं जिसके जेरे असर (वशीभूत) होकर जीव आगे यत्न करता है। इसमें कुछ और भी बातें हैं जो मदद करती हैं और खात्मा भी करती हैं, जो बाहिरी हैं, जिनमें संग बड़ा प्रधान काम करता है। बुद्धि संकल्प के द्वारा संग धारण करती है और उसी के मुआफिक

(अनुकूल) बनती है। जैसा संग बुद्धि को प्राप्त होता है उसी के मुआफिक शुभ और अशुभ कर्म में प्रवृत्त होती है। इसलिए सत्पुरुषों ने फरमाया है कि सत्संग करना चाहिए। असंग बुद्धि तब ही होती है जब वह आत्म स्वरूप में लीन हो जावे।

प्रश्न 201 : महाराज जी, क्या कारण है कि ईश्वर को न याद करने वाले तो आजकल बड़े सुख आराम से जिन्दगी बसर कर रहे हैं और याद करने वाले रोटियों से लाचार हैं?

उत्तर : जो पुरुषार्थ छोड़ देता है वह लाचार ही रहता है। दूसरे मुल्कों (देशों) के लोग कुछ असूल वाले हैं, पुरुषार्थ नहीं छोड़ते, लाभ-हानि में घबराते नहीं, कर्म करते जाते हैं, झूठ कम बोलते हैं, चीजों को बनाने में कपट को साथ नहीं रखते। सत् व्यौहार ही निर्मल कर्म है। सिखलाया कि जैसी चीज बनाओ वैसा ही ऊपर लिखो। अन्दर से बुद्धि मालिक का अंश जो है, वह तो जाग्रत है। खाने, पीने, सोने का सब उनका प्रोग्राम बना हुआ है। खाली राम-राम करने से पार नहीं हो जाता। सही कर्म करो फल की आशा छोड़कर। जो प्राप्त हो उसमें संतोष रखना ही धर्म है।

तुम लोग धर्म के मानने वाले कैसे हो? न पुरुषार्थ कर सकते हो, न ही अच्छे असूल धारण कर सकते हो? आजा रामा आजा, मुंह में पा जा कड़ाह। तुम लोग कथनी हो, वे लोग करके दिखलाते हैं। राम को नहीं पावेंगे तो राम की माया को तो सही रूप में इस्तेमाल करते हैं। विलायत, अमरीका में कमाई करके हिन्दुस्तान में शफाखाने *(चिकित्सालय) खोल रखे हैं। तुम्हारे यहां (देश में) खाने वाली चीजों में मिलावट, पहनने वाले कपड़ों में दगाबाजी-मतलब यह कि कोई काम भी शुद्ध रूप में नहीं। सत्संग का मतलब (भाव) यह है कि सही सोचना। फिर तो फल प्राप्त अपने आप होता है। ईश्वर तुमको सुबुद्धि देवे।

प्रश्न 202 : महाराज जी, स्वभाव कैसे बनता है? कोई धनवान है, कोई दरिद्री। दरिद्री धनवान होने की चाहना करता है, क्या यह मुमकिन (सम्भव) हो सकता है?

उत्तर : हो सकता है प्रेमी, स्वभाव बनता है कर्म करने से। जैसे-जैसे मनुष्य काम करता है, उसका सूक्ष्म रूप बुद्धि ग्रहण करती है जो बाद में स्वभाव

*संकेत मिशनरी हस्पतालों की ओर था।

की शक्ल अख्तियार (धारण) कर लेता है। जैसे-जैसे स्वभाव बनता जाता है वैसा-वैसा ही वातावरण व माहौल निर्माण होता जाता है। उसी के मुआफिक (अनुकूल) मनुष्य को दरिद्रीपन और धनवानपन प्राप्त होता रहता है।

दूसरे, तुमने जो पूछा कि अगर कोई दरिद्री धनवान बनने की चाहना करता है तो क्या ऐसा हो सकता है, इसके जवाब में ये तुझको एक नुस्खा बताते हैं। तू इसको आजमा (टेस्ट कर) ले। फकीरों की बात कभी गलत नहीं होती। (तू) एक काम कर। तू अपने आराम और सुख दूसरों के दुख में तकसीम करना (बांटना) शुरू कर। यह वह रास्ता है जिस पर चलकर तू धनवान बन जावेगा। दस साल के अन्दर-अन्दर तेरी जिन्दगी पलट जावेगी और तू दरिद्री जामे से ऊपर उठकर दौलतमंद के दरजे तक पहुंच जावेगा।

प्रेमी, अपनी जिन्दगी में एक और असूल धारण कर ले जो तेरे लिये फायदेमंद (लाभदायक) साबित होगा। अपने लिए महज (केवल) गुजरान वाली जिन्दगी बना। इससे क्या होगा कि गैरज़रूरी ख्वाहिशात (अनावश्यक कामनाएं) हमेशा के लिऐ तेरे से विदा हो जावेंगी और तू एक बड़ी मुसीबत से छुट्टी पा लेगा।

प्रश्न 203 : महाराज जी, क्या यह सच है कि जीव अपने संस्कारों को बदल सकता है?

उत्तर : जीव अपने संस्कारों में कमीबेशी कर सकता है। इस वास्ते हर वक्त कुवते इरादी (निश्चय शक्ति) को मजबूत करके जो सत्मार्ग में दृढ़ होता है वह अपने तुच्छ संस्कारों से उच्चता को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न 204 : आशा, तृष्णा, सुख-दुख, ये सब शरीर के साथ हैं और शरीर के शुरू से आखिर तक इसके साथ रहते हैं। जब शरीर नाश होगा, ये भी नाश होंगे क्योंकि ये सब शरीर के साथ ही हैं। आपका इस बारे में क्या विचार है?

उत्तर : आशा, तृष्णा वगैरह का शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है इनका वास्तविक सम्बंध बुद्धि (जीवात्मा) से है। जब शरीर का नाश होता है तब यह संस्कार रूप में जीवात्मा के साथ दूसरी देह में चले जाते हैं।

विकारों से छुटकारा

प्रश्न 205 : महाराज जी, यह नींद भी एक बड़ा भारी विकार है जिससे छुटकारा मिलता ही नहीं।

उत्तर : खाना, पीना, सोना, विषय विकार, पैदा होना, बढ़ना, जवान होना, कुबड़ा होना, फिर गिरना–सब ही जीव को दुःख देने वाले हैं। इनकी तब्दीली में अपनी तब्दीली मानकर जीव दुःखी-सुखी होता है। जब तक ज्ञान में प्रवेश नहीं करता तब तक इस चक्कर में पड़ा ही रहता है। जब तक यह विचार नहीं आता कि यह शरीर क्या है? यह कब से है? इसमें कौन सी तब्दीलियाँ होती हैं और कैसे होती हैं? इसमें बोलने वाला कौन है? किस चीज़ के जानने से यह निर्विकार हो सकता है? किस तत्व के जान लेने से इसे और कुछ जानने की ज़रूरत नहीं रहती–जब तक इन विचारों को बुद्धि विचार नहीं करती तब तक सत्मार्ग में दृढ़ नहीं होती। सत्मार्ग में दृढ़ होने पर किसी समय जाकर सब विकारों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न 206 : महाराज जी, आलस्य, निद्रा, विकारों से खुलासी न जाने कब जाकर होगी?

उत्तर : प्रेमी, जब तक शरीर है, शरीर के धर्म साथ हैं, जैसे सोना, खाना, पीना, जागना, पैदा होना, बढ़ना, जवान होना, फिर गिर जाना। जब बुद्धि शरीर की ममता को छोड़कर आत्म तत्त्व में लीन होती है तभी इन विकारों से छुट्टी मिलती है।

प्रश्न 207 : महाराज जी, ऐसा कौन-सा साधन है जिससे ये हमारे पांच विकार काम, क्रोध आदि कम होते जावें?

उत्तर : प्रेमी, प्रभु का विश्वास ही तुम्हारे अन्दर से विकारों की कमी करता जावेगा। आशिकों के साथ बैठना सीखो। ये सब विकार तेरे अन्दर से भागने लगेंगे और तुमको सही बात स्वयं समझ आने लगेगी। लाल जी, इस दुनिया में फर्ज और गर्ज को अगर तूने ठीक-ठाक समझ लिया है और फर्ज की तरफ रागिब (उन्मुख) हो गया तो गर्ज तेरी आप ही पूरी होती जावेगी। अगर पूरी नहीं होती है तो भी फिकर न कर, परमात्मा तुझे खाली नहीं

रखेगा। तू गम खा और सबर कर, यानी दोनों हालतों में गर्ज पूरी होती है या नहीं, इससे लापरवाह हो जाओ। फिर तो तुझको जरूरी फल प्राप्त होगा, तू किसी तरह की फिकर न कर, वह तेरी फिकर आप करेगा।

प्रश्न 208 : महाराज जी, मान मद छोड़ना काम, क्रोध वगैरा से भी मुश्किल है। आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, छोड़ना क्या है मारना है। माया का मोह और अभिमान ही तो छोड़ना है। तप, जप, अभ्यास योग इसी के वास्ते हैं कि दीनता और गरीबी आ जाये। सब कुछ प्राप्त हो और कहे कि सब कुछ प्रभु का है, यह शरीर मेरा नहीं है। हर किस्म की ताकत प्राप्त हो परन्तु फिर भी निर्मान रहे। नानक जैसे परम फकीर हर तरह की शक्ति रखने वाले जब बोलते हैं, कहते हैं:

नानक सच कहे विचार
तेरा भाना मीठा लागे
नानक नाम पदारथ मांगे।

कमाई करके जज्ब करनी किसी विरले का ही काम है। जिस तरह मारवाड़ी, महाजन, बनिये, धन कमा-कमाकर के ऐसा सम्भाल कर रखते हैं (कि) कुछ कहा नहीं जाता। बाहिर से धोती मैली सी बांधे रखते हैं। कितना भी धन आये, जरा भी नहीं उभरते। इसी तरह ज्ञानी, विचारवान भी निर्मानता को धारण करके संसार में विचरते हैं।

जिसने मोटी माया धन, घर बार त्याग भी दिया लेकिन मन के अन्दर अंहकार खड़ा है कि मैं बड़ा त्यागी हूँ, तो उसने कुछ नहीं त्यागा। बल भी हो, बुद्धि भी हो और धन और इकबाल भी हो, ऐसी हालत में कोई विरला माई का लाल ही अहंकार से रहित होगा।

प्रश्न 209 : महाराज जी, आदमी निर्भय कब हो सकता है?

उत्तर : प्रेमी, तमाम संशयात्मक बुद्धि को छोड़कर निश्चयात्मक बुद्धि धारण कर, और किसी तरफ भी अपनी बुद्धि को न लगा। उस एक परमात्मा में ध्यान और निश्चय को लगाओ। तब ही निर्भय हो सकोगे वरना कोई न कोई भय बना रहेगा।

प्रश्न 210 : मानसिक विकारों से कैसे छुटकारा मिल सकता है?

उत्तर : हर एक से प्रेम करना क्रोध को नाश करता है। हर एक की सेवा करनी अभिमान और लोभ को नाश करती है। ईश्वर को सत् जानकर उसका सिमरन करना मोह और काम को नाश करता है। जब ऐसी धारणा यानी ईश्वर भक्ति और लोक सेवा चित्त में स्थित होती है उस वक्त यह जीव सब माया के विकारों से छूटकर समता ज्ञान में प्रवेश कर जाता है वही परम पद यानी अखंड शांति है।

प्रश्न 211 : महाराज जी, सारे विकारों से छूटने के वास्ते कोई सरल सा उपाय बताइये।

उत्तर : तन, मन, धन तीनों को सेवा के मार्ग में लगाने से जीव सारे विकारों से छूटकर अविनाशी खुशी को हासिल कर लेता है। इस वास्ते सेवा ही परम धर्म और कल्याण का मार्ग है। जो आदमी सेवा का भाव नहीं रखता वह राक्षस बुद्धि अपनी कामना की खातिर हर वक्त अशांत रहता है। यानी लोभ, मोह, मान, मद, ईर्ष्या आदि अवगुणों में हर वक्त जलता है। यह ही जीवन घोर नरक है किसी पलक भी अपने मन में उदारता नहीं पाता। यह स्वार्थ अंधकार ही काल स्वरूप है। बार-बार जीव को असत् भोगों में भरमाता है। इससे छूटने के वास्ते सेवा रूपी खड़ग अति सुखदाई है। वह मनुष्य कभी असली खुशी हासिल नहीं कर सकता जिसके अन्दर पर का हित और पर की सेवा नहीं।

प्रश्न 212 : यह तृष्णा कैसे शान्त होती है?

उत्तर : प्रेमी, सत्संगों में तृष्णा रूपी रोग से खुलासी पाने के साधन बतलाए जाते हैं। इनमें ही बतलाया जाता है कि जीव को क्या रोग लगा हुआ है और उसकी दवा दारू क्या है। यह बतलाया जाता है कि तृष्णा रूपी रोग ही सब जीवों को लगा हुआ है। राजा, राणा, अमीर, गरीब सबको यह रोग सता रहा है। जितने संसार में सुख नज़र आते हैं यह सब दुख रूप समझो। जन्म से लेकर इस समय तक जीव ने जो खाया पिया है वह कहां गया? इस तरह आइन्दा जो जीवन में सुख मिलेंगे वह भी स्वप्न समान हो जावेंगे। इस रोग को समझकर गोपी चन्द, भरतरी जैसे राजाओं ने राज त्यागकर जंगल की राह ली। उनके पास सांसारिक सुखों की कोई कमी न

थी। इन्द्रलोक के सब सुख क्यों न प्राप्त हो जाएं, तेरा शरीर भोगों को चार युग क्यों न भोगता रहे तो भी इस जीव को ठंडक नहीं मिल सकेगी। प्रेमी, ईश्वर नाम सिमरण करो तब तृष्णा रूपी रोग से मुखलसी (मुक्ति) मिलेगी, और इसका कोई इलाज नहीं।

कामना रूपी अगन में, जीव जले दिन रात ।
'मंगत' मारग धरम में, जीव शीतल हो जात ।।

अभिमान को छोड़कर दीनता को धारण करके सत् विश्वास से प्रभु के नाम का सिमरण करो। यह दवाई ही तृष्णा रूपी रोग से निजात पाने की है। आत्म तत्व को अनुभव करने की कोशिश करो। अपने सही रक्षक बनो। संसार में वही मूर्ख जीव है जो हर समय हर घड़ी शारीरिक बनाव श्रृंगार और खान-पान में लगा रहता है। बड़े लोगों की तरफ मत देखो। हर वक्त पुरातन सत्पुरुषों के जीवन का विचार करो कि किस तरह वह संसार में विचरे। जिस तरह उन्होंने सद्गति को प्राप्त किया उसी तरह तुम भी चलने की कोशिश करो, तब जाकर तुम्हारा कुछ बन सकेगा।

प्रश्न 213 : महाराज जी, मिलिट्री की नौकरी में आदमी ज्यादा सादा रह सकता है। यह भी ऋषियों का जीवन है। मगर संसारी मोह-जाल बच्चों का फिर भी बना रहता है। संसार से अलग रहने पर भी माया पीछा नहीं छोड़ती।

उत्तर : प्रेमी, हर एक जीव के अन्दर एक न एक विकार ज़्यादा होता है। कोई काम में ग्रस्त है, कोई मोह में, कोई क्रोध में तो कोई लोभ में, यानि एक न एक विकार में तीव्र वासना बनी रहती है। मोह करके हर एक जीव संसारी लगाव बनाये रखता है। इसके बाद सब विकार साथ-साथ पैदा होते जाते हैं। इन विकारों से ही जीव ने छुटकारा हासिल करना है। गृहस्त विरक्त का सवाल नहीं। जिनके कलेजे के अंदर तड़प पैदा हो जाती है कि सत्य को हासिल करना है फिर वह राज त्याग कर भी भरतरी, गोपीचंद, महाबीर, बुद्ध, हरिचंद, ऋषभदेव जैसे निर्मोह, निर्लोभ, निर्वास अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। जब तक चित्त में द्वैत यानि दो भाव हैं कि माया भी बनी रहे और मायापति भी मिल जावे, ऐसा हो नहीं सकता। एक मयान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। हां शुद्ध विचार, आहार, ब्यौहार की निर्मलता

चित्त में ठंडक बनाए रखती है। आम संसारियों की तरह परमार्थ में प्रीत रखने वाला जीव हाहाकार नहीं करता। संसारी जीव नित ही भोगों की प्रीति व प्राप्ति में ही पतंगे की तरह जलते रहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, गंध, रस–इन पांच प्रकार के सूक्ष्म नफ़सानी लज्जतों में (इन्द्रिय भोगों में) हर एक का मन डावांडोल रहता है। जितनी भी जीव रात दिन कोशिश कर रहे हैं जरा निर्मल बुद्धि से विचार करके देखो, पूरब से पश्चिम तक मन पांच विषयों को पूर्ण करने के वास्ते ही लगे हुए हैं या इनके अलावा और भी कोई यत्न है? चौदह लोकों में जहां तक जीवमयी सृष्टि है, जितने भी शरीरधारी जीव हैं–सबको माया ने घेर रखा है। सब ही मोहवश होकर दिन रात इन्द्रियों की वासना को पूरा करने में लगे हैं। जो भी जीव बिना विचार के चल रहा है वह संसार में आने का कुछ अर्थ नहीं पा सकता। जनरल, कर्नल क्यों न बन जायें, राजे, राने, गृहस्थी, विरक्ती सबके सब ही तब तक अंधकार में जीवन व्यतीत कर रहे हैं जब तक संसार को देखकर मोहित हो रहे हैं। दुनिया का राजा हो जाना बड़ी बात नहीं। जिसके हाथ में डंडा होता है वही मानी बन जाता है। दुनिया को ज़ेर (नीचा दिखाना) कर सकता है, मगर मन राजे को ज़ेर करना निर्मल बुद्धि वाले का काम है। इस अद्‌भुत माया के चक्कर को अच्छी तरह विचार करना और फिर मन को सत् की तरफ लगाना ही बहादुरी है। जिन्होंने मन पर राज किया उनको ही राम, कृष्ण, अवतार आदि कहा गया। नानक, कबीर, सत्पुरुषों के नाम ले लेकर ही दुनिया तर रही है। उनके जमाने में उन सत्पुरुषों के दर्शन करके चन्द ही जीवों ने कल्याण पाई। लेकिन बाद में उनके नाम लेवा श्रद्धालु भक्त प्रेम अनुराग के बल द्वारा ही आत्म ज्ञान को प्राप्त हुए। धन्ना भक्त, पीपा, सेन, नामदेव, रविदास, सूरदास, मीराबाई, सदना कसाई और भी कई भक्तों ने सिद्धगति पाई। हर प्रेमी के अंदर जिस वक्त आत्म विरह जागती है, वह चाहे किसी देश के रहने वाले हों, कमाई करके जानी जान को जान सकते हैं।

धर्म का स्वरूप तथा निष्काम कर्म

प्रश्न 214 : हमारे हिन्दुओं के कितने ही धर्म हैं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। समझ नहीं आता किसे मानें।

उत्तर : प्रेमी, ज़रा सोचकर चलो तो झट फ़ैसला हो जाता है। जीव मात्र से प्रेम रखना, किसी का बुरा न सोचना, अपनी आत्मा सबमें जानना ही धर्म है। आत्मा और शरीर के भेद को समझने वाले ही धर्म मार्ग को जानते हैं। जो सब जीवों में अपनी आत्मा को जानकर हर एक की सेवा करने वाला है, किसी को मन-वचन से दुःख नहीं देता, वह ही धर्म के रूप को जानता है। सोचने की कोशिश करो, धर्म का मार्ग अपने आप मिल जायेगा।

प्रश्न 215 : महाराज जी, क्या धर्म और राजनीति एक जगह रह सकते हैं?

उत्तर : प्रेमी, धर्म और राजनीति एक दूसरे से भिन्न न समझो। लेकिन रिवाजक धर्म जो आज का धर्म बना हुआ है और शैतानियत जो आज की राजनीति बनी हुई है, एक नहीं हो सकते। न ही असल राजनीति के साथ रिवाजक धर्म का कोई सम्बन्ध है। रिवाजक धर्म में वही बातें हैं जो किसी प्रकार के पंथ, मत, अदारे, गिरोह के रहन-सहन, रीति-रिवाज, पोशाक, खानपान और देश के चलन पर आधारित हैं। जैसे गिरजाघर जाना, विशेष रूप से परमात्मा की भक्ति करना, नमाज पढ़ना, रोजे रखना, चोटी रखना, जनेऊ धारण करना, तिलक लगाना, कड़ा, कच्छा, कंघा, किरपान और केश धारण करना इत्यादि सब रिवाजक धर्म हैं। उनका वास्तविक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का सम्बन्ध वास्तव में शान्ति के साथ है। और रिवाज का सम्बन्ध शरीर के साथ है। असली धर्म और सही राजनीति एक ही वस्तु है। इसमें किसी भी मजहब व मिल्लत को दखल नहीं है। यह मानवता का अंग है और मानवता को प्रकट करने वाली और फैलाने वाली नीति है। तमाम जीवों के दुखों को दूर करके उनको राहत पहुंचाना और सारे विश्व को एक कुटुम्ब, परिवार के समान जानकर हरेक से हार्दिक प्रेम करना, अपने स्वार्थों को त्यागकर हर समय दूसरों की भलाई

चाहना, यह सब धर्म और राजनीति के एक ही स्वरूप में आ जाते हैं। इस प्रकार की राजनीति जब त्यागी राजा लोग चाहते हैं और अपनाते हैं तो सारे संसार में अमन और शांति फैल जाती है।

प्रश्न 216 : परोपकारी जीवन का क्या लाभ है? एवं कुदरती जीवन जीने का क्या महत्त्व है?

उत्तर : प्रेमी, सारी प्रकृति के निजाम (चक्र) को तू देख। हर पदार्थ का यह स्वभाव है कि वह अपने से अलग दूसरों को सुख देने के निमित्त जीवित है। पेड़, पौधे, सूरज, चांद, नदियें, अग्नि, वायु वगैरह सब दूसरों का कल्याण और सुख पहुंचाने का कार्य कर रहे हैं। तू भी अपना ऐसा ही कुदरती जीवन बना। तेरा यह भाव अगर हर समय बना रहे कि मेरे से किसी को कोई तकलीफ न हो, मैं किस तरह से सबके लिए कल्याण स्वरूप बन जाऊं एवं सुख पहुंचाने वाला होऊं तो तेरी जिंदगी को चार चांद लग जायेंगे और तेरा जीवन असल में देवताओं वाला बन जाएगा।

कुदरते कामला (प्रकृति) तेरी हर तरह से मदद करेगी और तू अपने अंदर असीम खुशी का स्रोत अनुभव करेगा। अगर इसके उलट तू अपने ही सुख हासल करने में लगा रहेगा और दूसरों के सुखों पर डाका डालकर अपने ही सुख इकट्ठे करेगा तो जैसी आज संसार की हालत है, तृष्णा की आग में झुलसेगा और राक्षसों वाला जीवन बितावेगा।

तू सुखों को एक मर्यादा में भोग ताकि आने वाले दु:खों को सहन करने लायक बन सके। ऐसे अमर्यादित सुख तू न भोग कि आने वाले दु:खों को सहन करने की शक्ति से रहित हो जावे। मुसीबत इन्सान की परम गुरु है जो मनुष्य को ठीक तरह से शिक्षा देती है कि कुदरती जीवन क्या है? अगर आज तेरे पुरुषार्थ से या प्रारब्ध कर्मवश एक अपार धन राशि प्राप्त हो जाती है तो तू अपने इस्तेमाल में इस कदर धन को ले कि आगे आने वाली तंगी या जुदाई का सामना सहन कर सके। मिसाल के तौर पर अगर तुझे फॉका भी काटना पड़े तो तू उसे खुशी-खुशी सहन करने लायक रह सके। शेष सम्पदा को इस तरह से इस्तेमाल कर कि तेरी बुद्धि जागृत रहे और भ्रष्ट न हो जावे।

जागृत बुद्धि उसे कहते हैं जिसके असर स्वरूप तू बाहोश रहे, मदहोश न हो जावे। दूसरे शब्दों में सही रूप से गुण और दोषों को समझने वाला हो। जब बुद्धि भ्रष्ट होती है तब गुणों को दोष करके देखती है और दोषों को गुण करके जानती है। सार निर्णय यह है कि हद से ज्यादा अगर तू सुख भोगेगा तो वह सुख ही तेरे लिए दुःख रूप में पलट जावेंगे।

प्रश्न 217 : महाराज जी, सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरन के साधन आपने बतलाये हैं। सेवा कैसे करनी चाहिए? आजकल तो पता ही नहीं लगता कि किसकी सेवा की जावे, किसकी न की जावे। इस पर रोशनी डालने की कृपा करें?

उत्तर : यह सब साधन जीव के कल्याण के वास्ते हैं। सेवा का साधन ही एक ऐसा साधन है जो सब प्रकार के विकारों से छुटकारा दिलाता है। इस मोह माया के घोर अंधकार से निकलने के लिए सेवा रूपी दीपक ही एक मात्र सहारा है। पहले सेवा के बारे में समझो कि सेवा क्यों करनी ज़रूरी है। केवल किसी अंधे मोहताज को दो पैसे दे देने से सेवा नहीं होती। सेवा पर विचार दो घड़ी में नहीं हो सकता। जीव को हर समय तीन प्रकार की वासना यानि कामना बनी रहती है। शारीरिक भोगों में जीव हर घड़ी गिरफ्तार रहता है। सेवा, पर उपकार से धनी धन खर्च करके लोभ वृत्ति को कम कर सकता है। श्रद्धा प्रेम से निष्काम सेवा करके ही परम शांति मिल सकती है, चाहे किसी ग़रीब, यतीम, अनाथ की करे, चाहे किसी समाज, देश, संसार की सेवा तन, मन, धन द्वारा करे। इस नियम को धारण करने वाला ही सर्व विजयी हो सकता है। जीव अपने परिवार के स्वार्थ में बंधा हुआ दिन-रात मज़दूरों की तरह उनकी सेवा में लगा रहता है। आखिरी समय आता है तब पता चलता है कि क्या खोया, क्या पाया। जो सत् सेवा के नियम में नहीं विचरता वह कामनायुक्त होकर हर समय लोभ, मोह, मान, मद, ईर्ष्या आदि अवगुणों में तपायमान होता रहता है। कुदरत की जितनी भी चीज़ें सूरज, चांद, धरती, पानी, आग इत्यादि दिखाई दे रही हैं सबकी सब निष्काम रूप से सेवा कर रही हैं। एक मानुष ही ऐसा है जो रात दिन अपने स्वार्थ को पूरा करने के वास्ते लगा रहता है। ऐसे नरकी जीव किसी शुमार (गिनती) में नहीं होते। नाम उनका ही चलता है जिन्होंने संसार में आकर ईश्वर का भजन किया और जैसी हो सकी तन, मन, धन से

संसारियों की सेवा करते रहे। अपने दिल को टटोल कर देखो कहां तक किसी दुखी-दीन, अनाथ या किसी भूखे पड़ोसी की सेवा की गई है। अगर किसी सत्संग समाज में दान देते हो तो खूब बोलकर सुनाते हो कि मेरा भी यह लिख लेना। पहले सेवा का स्वरूप समझो, फिर सेवा करके देखो किस कद्र मानसिक शांति, पवित्रता प्राप्त होती है। प्रेमी, कुछ करने से ही लाभ होता है। खाली इस तरह पूछने में उमर गुज़ार देने से कहां खुशी मिल सकेगी। शरीर सेवा करने से पवित्र होता है। धन को अच्छे कर्मों में लगाने से उसकी सफलता होती है। सेवा ही एक ऐसा साधन है जिसके लिए तन, मन, धन अर्पण करना पड़ता है। मन, वचन, कर्म से प्रभु परायणता में दृढ़ होने से ही सेवा धर्म पूरी तरह बन सकता है।

प्रश्न 218 : महाराज जी, यह समाज या संगत की सेवा भी बन्धन का कारण है। जिस तरह परिवार को पालने के वास्ते परिवारी सोचता है और कर्म करता हुआ नित ही कल्पता रहता है, उसी तरह यह भी एक बड़ा परिवार है?

उत्तर : प्रेमी, जब तक गरज़ रखकर सेवा भाव में दृढ़ है तब तक बंधन में ही है। अगर चित्त की शुद्धि की खातिर निष्काम भाव से सेवा कर रहा है तब उसके वास्ते समाज या देश की सेवा कल्याणकारी है। अपने परिवार और खानदान की सेवा मोहवश होकर हर समय जीव करता रहता है। ऊपर से कहता है इनका फर्ज पूरा करना है, सेवा कर रहा हूं। वास्तव में संगत की सेवा, देश की सेवा ही निष्काम भाव से करना चाहे तो कर सकता है। मगर असली सेवा तब ही बन सकती है जब अन्तरविखे आत्मा का प्रकाश हो जाये और मैं-तू, तेरे-मेरे का झगड़ा खत्म हो जाये। वरना यह तो जरा सी बड़ाई मिलने पर भी भूल जाता है। फिर अपनी बड़ाई को कायम रखने के वास्ते कई प्रकार की चालाकियां, चतुराईयां करता है। लेकिन इस तरह हर एक जीव के हृदय में वह बैठ नहीं सकता। सेवा भी कई किस्म की होती है। जितना-जितना लालच रखकर सेवा करता है उतना-उतना मान अपमान पाता रहता है। निर्मान भाव में दृढ़ होकर निष्काम चित्त से की हुई सेवा जुगा जुग तक सबके वास्ते सुखदायक होती चली जाती है। तुम्हें क्या फिक्र लग रहा है; परिवार और संगत की सेवा में बड़ा ज़मीन-आसमान का फर्क है। परिवार की सेवा में नित ही मोहवश लगा रहता है, हर प्रकार की

खिदमत करके भी छित्तर (जूते) पड़ते हैं। कोई खुश नहीं होता। चाहे कितना भी निष्काम भाव से सेवा करे, मगर फिर भी थोड़ी बहुत गर्ज़ बनी ही रहती है। संगत की सेवा से चित्त में खेद नहीं पैदा होता। बाकी आहिस्ता-आहिस्ता सत् सिमरन करने वाला जीव निष्काम भावना की तरफ अपने आप ही चला जाता है। बगैर ईश्वर परायणता के निष्काम सेवा नहीं हो सकती। गुरु भक्ति, ईश्वर भक्ति में कोई फर्क नहीं। गुरु बचनों में ईश्वर प्राप्ति के वास्ते ही जिज्ञासु दृढ़ होता है। यह दृढ़ता ही संसार की परायणता से छुटकारा देने वाली है। बाकी सेवा करते समय किसी संसारी पदार्थ की चाह चित्त में नहीं रखनी चाहिए। बल्कि जिस सत् पद को सत्पुरुषों ने प्राप्त करके सत् शांति प्राप्त की उस मर्कज़ (लक्ष्य) की तरफ सुरति को लगाए रखना चाहिए। ऐसी भावना ही बंधन हालत से निर्बन्धन हालत की तरफ ले जाने वाली है। इस तरह विचार करते रहा करो। संशय निकल जाते हैं। न फर्ज की कोई हद है न सेवा की। स्वार्थी जीव एक टका अरदास करके सारे संसार के पदार्थों की मांग कर लेता है। लेकिन लोक सेवा में शरीर तक बलिदान करने वाले कुछ भी नहीं मांगा करते।

प्रश्न 219 : महाराज जी, निर्मल प्रीत का क्या मतलब है?

उत्तर : निष्काम भाव यानि कोई भी गर्ज न रखते हुए सत् सेवा में समय देना। जिस प्रीति में कोई गर्ज न हो यानि लागर्ज होकर के प्रेम सम्बन्ध प्रभु से बनाए रखना है। संतों ने पहले ही सेवा और नाम सिमरन में लगा दिया है, यानि जोड़े साफ करो, झाड़ू लगाओ, गरीब अनाथ की सेवा, संगत की सेवा, पब्लिक सेवा, जिस कदर निष्काम सेवा बन सके और आन्तरिक साधन सच्ची प्रीति से करने से कर्त्तापन कमजोर होता जाता है।

"तू-तू करता तू भया मुझ में रही न हूं"

जितने कर्म तुझसे हों नित प्रभु आज्ञा में समर्पण करो। प्रभु की आज्ञा में ऐसा ध्यान परिपक्व हो जाये, अन्दर से तेरा अहं खत्म हो जाए। जो हो रहा है सब प्रभु आज्ञा में हो रहा है, ऐसा होगा तब उसमें बुद्धि जुड़ कर बाहर की सुध, बुध भूल जायेगी। तब अपने आप ही तुझे ऐसा अन्दर बाहर भासेगा कि उसी दाते की आज्ञा में सारा खेल हो रहा है। तब कर्त्तापन रूपी अन्धकार लय हो जाता है। मगर यह अवस्था बड़ी ऊंची है। कोटां में कोई ही इस पद को पहुंच सकता है और त्रैगुण माया से पवित्र

होता है। हर समय "तू कर्त्ता सर्व तेरी आज्ञा" इस सत् भावना को धीरे-धीरे दृढ़ करते जाओ।

हूं बलहारी तिन पंखियां जंगल जिना दा वास ।
कंकर चुगन थल वसन रब न छोड़न आस ।।

प्रश्न 220 : महाराज जी, एक गृहस्थी को कम से कम कितना दान किस रूप में करना चाहिए?

उत्तर : निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसबंद (दस प्रतिशत) धर्म मार्ग में खर्च करना जरूरी है। अगर ज्यादा बचत होवे तो पांचवां हिस्सा तक भी धर्म मार्ग में खर्च करना चाहिए, यानी जब तक निष्काम सेवा अधिक प्रीत से धारण न की जावे तब तक कभी भी जीवन पवित्र नहीं हो सकता है। समता नियम अनुकूल सेवा करनी कल्याणकारी है यानी अनाथ, अभ्यागत, बेवा, रोगी की सहायता में और दीगर (अन्य) जो असूल दान के हैं उनके अनुकूल अपनी कमाई को बरताना हर प्रकार की कल्याण को देने वाला है।

दसबंद का अपने खर्च में इस्तेमाल करना हानि के देने वाला है। यही सत्पुरुषों की नीति है। बल्कि ज्यादा से ज्यादा धर्म मार्ग में अपनी सम्पदा का त्याग करना ही असली सिद्धि के देने वाला है। जो प्रेमी समता का अनुयाई है, उसको हर पहलू में अधिक से अधिक कुरबानी के जज्बात धारण करने चाहिए। इसी से धर्म की जागृति और देश में शांति प्रकाश करती है।

दान के असूल ये हैं:-
सबसे बड़ा दान यह है:-

विद्या के प्रचार में खर्च,

रोग निवृत्ति की खातिर खर्च,

देश और धर्म की जागृति की खातिर खर्च,

श्रेष्ठ आचार साधु और विद्वानों के जीवन की खातिर खर्च,

गरीबों और यतीमों की उन्नति की खातिर खर्च,

सत्संग और समाज के एकत्र करने का खर्च,

अन्न और वस्त्र का हरएक नदारद (अभाव ग्रस्त) की खातिर खर्च

सराय, तालाब, कुएं, बावड़ियां, सड़कें, पुल इनके बनवाने का खर्च सब दान उच्च कोटि का है। इससे बड़ी कल्याणता प्राप्त होती है।

स्वार्थ वाली सेवा से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती चाहे कितनी ही कोशिश करे। फर्ज को जानकर जो सेवा करता है वह आत्म उन्नति को प्राप्त होता है। तन, मन और धन यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनों जंजीरों से छूटने की खातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है। सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लागर्ज भाव को मद्देनज़र रखकर त्याग का रास्ता बतलाया गया है, सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लागर्ज भाव को मद्देनज़र रखकर त्याग करता है वह इन कैदों से छूट जाता है। जो गर्व करके त्याग करता है वह बार बार इन जंजीरों में कैद होता है।

प्रश्न 221 : दान करते समय किस तरह देखा जावे कि यह पात्र है या कुपात्र?

उत्तर : प्रेमी, जिस मेहनत से तुम धन कमाते हो उसको मुस्तहिक (अधिकारी) जीवों तक पहुंचाना ही ठीक है। इसीलिए दान करते वक्त अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिए। कोशिश करने से अधिकारी प्रेमी मिल जाता है। दान करते वक्त किसी प्रकार की कामना मन में नहीं रखनी चाहिए। निष्काम मन से दान पुण्य करना ठीक रहता है। दान ऐसी जगह करो जहां तुम्हारे दिए हुए का कोई बदला न चुका सके। इसके साथ-साथ मन में कभी ऐसा विचार न उठे कि मैं बड़ा दानी हूं। देने वाले को चाहिए, देकर ऐसा भाव बना ले, ईश्वर तेरी आज्ञा पूरी हुई। सतोगुणी, सदाचारी पण्डित, गुरु आचार्य को दिया गया दान श्रेष्ठ दान है।

प्रश्न 222 : महाराज जी, क्या आप थोड़े में निष्काम कर्म का स्वरूप बतला सकेंगे?

उत्तर : क्यों नहीं। लो सुनो। जब बुद्धि कर्मफल द्वन्द्व सुख-दुख में चलायमान नहीं होती यानी किसी प्रकार के फल में जो कर्मों द्वारा प्राप्त होते हैं,

चलायमान न होकर अचल रहती है तो बुद्धि की उस अवस्था में किया हुआ कर्म निष्काम कर्म कहलाता है। यह संसार बड़ा गम्भीर सागर है। इसको सिदक और शौक द्वारा ही पार किया जा सकता है।

प्रश्न 223 : आप अभी कह रहे थे कि सिदक और शौक से यह संसार पार किया जा सकता है। सो कृपा करके जरा खोलें कि सिदक और शौक किसे कहते हैं?

उत्तर : हां, प्रेमी, जरूर समझो। शौक तो ऐसा हो कि आत्मज्ञान रूपी मैदान अब मारा कि अब मारा (फतह किया), अब देर नहीं है कि मैं उस अवस्था तक पहुंचूं। तथा सिदक हो कि मैं जरूर ही कामयाब हूंगा, कोई ताकत नहीं जो मेरी कामयाबी रोक सके। भेद थोड़ा ही है, दोनों करीब-करीब एक ही बातें हैं।

प्रश्न 224 : महाराज जी, सकाम कर्म तथा निष्काम कर्म के भेद को ज़रा समझाइये।

उत्तर : एक कर्म करके जीव बन्धन में पड़ता है, दूसरा कर्म उसे छुटकारा दिलाता है। जीव एक पल के लिए भी कर्म-क्रीड़ा से छूट नहीं पाता। मन में फल की आशा रखकर जो कर्म किया जाता है, उसे सकाम कर्म कहते हैं। सकाम कर्म ही उसे आवागमन के चक्कर में ले जाते हैं। बार-बार अनेक प्रकार के शरीर धारण करके कर्मफल को भोगता हुआ दुःख-सुख, राग-द्वेष से अशान्त रहता है। भाग्य से सत्पुरुषों की संगत द्वारा सोझी (सूझ) पाकर निष्काम कर्म के भेद को जानकर सत्मार्ग में दृढ़ होता है। इधर से वृत्ति को हटाकर उधर लगाना है। यानी जो भी कर्म इससे बन आवे, उसे ईश्वराज्ञा में समझते हुए फल की आशा से रहित होकर करे। तब बुद्धि निर्मल होते-होते सत्-तत्त (तत्त्व) को जानने लगेगी। असली निष्कामता उस समय आती है जब नाद स्वरूप परमेश्वर को अपने घट में प्रकट देखता है। तब उससे कोई सकाम कर्म नहीं बन सकता। तब जीव निष्काम कर्म का ही स्वरूप हो जाता है। दुर्मति के स्थान पर सुमति प्राप्त होती है। आकारमयी बुद्धि निराकार में बदल जाती है। फिर उसके अन्दर किसकी इच्छा उठे? जब सबमें अपने-आपको देखने लगा तो होना, न होना प्रभु-आज्ञा में विचारने लगा।

प्रश्न 225 : कई बार निःस्वार्थ भाव से मनुष्य किसी सम्बन्धी या समाज की भलाई का काम सोचता है और शुरू करता है मगर फिर भी भय और शोक को प्राप्त करता है, ऐसा क्यों?

उत्तर : जब तक सत् परायणता में पूर्ण दृढ़ता न प्राप्त होवे तब तक निष्काम कर्म अक्सर खेद स्वरूप ही प्रतीत होते हैं।

प्रश्न 226 : कौन से कर्म बन्धन का कारण होते हैं और कौन से मुक्ति का?

उत्तर : गर्ज़ (स्वार्थ) करके जो काम किया जाता है, वह बन्धन का कारण होता है और फर्ज करके किया हुआ काम आजादी देता है।

प्रश्न 227 : निष्कामता कैसे प्राप्त होती है?

उत्तर : अपनी ज़रूरतों को त्याग करके दूसरों की ज़रूरतें पूर्ण करें। ज्यों-ज्यों दूसरे की सेवा में प्रवृत्त होवेगा त्यों-त्यों निष्काम अवस्था को प्राप्त होता जावेगा। जिस वक्त अति ही परहित और परसुख में लीन हो जाएगा उस वक्त निष्कर्म स्वरूप परम शांति को प्राप्त होवेगा जो असली धाम है। हर वक्त अपनी ज़रूरतों पर काबू पाकर दूसरे की सेवा में स्थित होना चाहिए। इस धारणा से ही हालते बेख्वाहिशी या आनंद अवस्था प्राप्त होती है।

नाम स्मरण, ध्यान तथा योग

प्रश्न 228 : महाराज जी, मेरा शरीर बीमार रहता है। शरीर द्वारा ही सब साधन हो सकते हैं, इन हालात में मेरे लिए आपकी क्या आज्ञा है?

उत्तर : प्रेमी, पुरातन संस्कारों वश तेरे अन्दर वह आग जल रही है। तुझे चैन से बैठने नहीं देगी। इस खाकी जिसम के रोगों की तू फिकर न कर, जैसे भी कम और ज्यादा हो सके, उलटा-सुलटा नाम जपते जाओ। बुद्धि को बेकार में इधर- उधर न भटकाओ, बल्कि सीधे रास्ते पर चल पड़ो। यह बुद्धि संगी है। इसको इस जिस्म और दुनियादार लोगों के संग से अलग करो। तब यह सत्नाम का संग करेगी। शरीर करके पर सेवा करो। गुरु में अटूट श्रद्धा धारण करो। शरीर को नाशवान समझते हुए मन को संसार से हटाकर नाम-परायण करने से ही कुछ बनेगा।

प्रश्न 229 : महाराज जी, संसारी काम करते हुए प्राणी नाम-चिन्तन कैसे करें?

उत्तर : प्रेमी, संसारी कामों को करते हुए प्राणी नाम चिन्तन इस तरह से कर सकता है-अपने कारोबार में लगा हुआ इन्सान फर्ज करके अपने कामों को निबटाता रहे लेकिन चेष्टा उसकी उसको खत्म करके नाम परायण होने की बनी रहे। इस चेष्टा की कशिश और खिंचाव सूक्ष्म रीति से नाम के परायण होना ही है यानी कर्म करते समय तो नाम सिमरण नहीं हो सकता, लेकिन ध्यान में उधर की तरफ खिंचाव होना ही सूक्ष्म प्रकार से नाम परायण होना है- जब काम खत्म हो जाये तो अपनी उसी कशिश और खिंचाव करके, जो उसमें पहले से मौजूद थी, नाम सिमरण शुरू कर देना चाहिए।

प्रश्न 230 : महाराज जी, इबादत करने के लिए क्या-क्या बातें जरूरी हैं?

उत्तर : प्रेमी जी, गौर (ध्यान) और यकसुई (एकाग्रता) के बगैर इबादत होनी मुश्किल है। सबसे पहले बुद्धि को एकाग्र करके जिसकी इबादत करने चले, उसके वास्ते चित्त में तड़प होनी चाहिए। फिर गौर प्राप्त होगी। तब इबादत करने लायक बनोगे।

प्रश्न 231 : महाराज जी, ये जो परमात्मा के नाम हैं, जैसे वाहगुरु, अल्लाहू, सत्नाम, राम, हरि, गायत्री मंत्र, ओम, राम, कृष्ण आदि इनको जपने से क्या लाभ होता है?

उत्तर : लाल जी, मन का काम है मनन करना, बार-बार याद करना। सो यह असत् संसार का चिन्तन बड़ी मुद्दत से करता चला आ रहा है और चिन्तन करते-करते पक्का संसारी हो गया है। मन का स्वभाव है बार-बार याद करने का। पहले नाम को याद करता है। फिर उसका रूप कल्पता है फिर उसी के गुणों की कल्पना करता है। फिर आगे उसको प्राप्त करने का यत्न करता है। सत्पुरुषों ने मन की ऐसी खसलत (स्वभाव) जानकर संसार के मुकाबले में परमात्मा के नाम सिमरण को महत्व दिया, ताकि नाम सिमरण के जरिये परमात्मा की याद पक्की करता जावे। ज्यों-ज्यों यह उधर पक्का होता जावेगा उतना ही नाम रूप असत् संसार की याद इसके अन्दर से गायब होती जावेगी। जब परमात्मा की याद पूर्ण पक्की हो जावेगी तो संसार से पूरी तरह से हटकर उस आत्मानन्द को अनुभव करेगा।

अपने मुर्शिद (गुरु) को ईश्वर करके समझे, तो तेरे दिल के अन्दर उसका खौफ (भय) तारी (व्याप्त) होगा और फिर श्रद्धा उत्पन्न होगी। फिर ऐसा जजबा (भाव) पैदा होगा जिससे वह शिष्य गुरु आज्ञा में अपने आप को मिटा देवे जिसके बाद गुरु कृपा प्राप्त होने पर आत्म साक्षात्कार खुद-ब-खुद हो जायेगा। यही पार होने की कुंजी है। शेख सादी ने कहा है कि फनाफिल शेख होगा तो फिर फनाफिल हो ही जायेगा। अर्थात् मुर्शिद के हुक्म में लगकर पहले अपने आप को मिटा देगा तो तू तत्व स्वरूप में स्वयं स्थित हो जायेगा।

एक मीरपुर के फकीर पीराशाह गाजी हुए हैं। वह अपने शिष्य के साथ सफर कर रहे थे। रास्ते में एक नदी पड़ी। मुर्शिद करनी द्वारा पार हो गये और मुरीद (शिष्य) को कह गये कि पीरा-पीरा कहता पीछे चला आ। जब वह मुरीद पीरा-पीरा कहता हुआ नदी में उतरा तो नदी में कुछ दूर चलने पर उसे ख्याल आया कि पीर तो आखिरकार इन्सान ही है, क्यों न अल्लाह का नाम लिया जावे। जैसे ही यह भाव उसके अन्दर आया वह गोते (डुबकियां) खाने लगा। मुर्शिद ने किनारे से आवाज लगाई-मूर्ख कहीं का, पहले पीर को तो पहुंच, पीछे अल्लाह को समझना। यह सुनकर उसे होश आया और वह पीरा-पीरा कहता हुआ पार हो गया। मतलब यह कि गुरु-भक्ति द्वारा प्रभु आप ही प्राप्त हो जाते हैं।

प्रश्न 232 : महाराज जी, उस परमात्मा के हजारों नाम हैं। क्या किसी भी नाम को जपने से कुछ काल के बाद सिद्धता प्राप्त हो जायेगी? मैंने कई मनुष्य देखे हैं जो जन्म भर नाम रटते रहे और उनका कुछ न बना। आखिर इसमें जरूर ही कुछ राज़ होगा। आपकी इस बारे में क्या राय है?

उत्तर : प्रेमी जी, परमात्मा के नाम अनेक हैं और वे सब ठीक हैं। परन्तु जो नाम किसी अनुभवी तथा कमाई किए हुए सिद्ध पुरुष से प्राप्त होता है, वह ही नाम असल में कुछ कमाई करने के बाद जैसा वह सिद्ध पुरुष बतलाए, कारगर होता है। मसलन (जैसे) किसी भी तलवार बनाने वाले की दुकान में तलवारें टंगी हैं और वे हैं भी सब तलवारें ही। मगर जो तलवार शूरवीर के हाथ में होगी वही तलवार असल में तलवार है। वह शूरवीर ही तलवार के इस्तेमाल का तरीका बतला सकता है और उस पर यकीन भी किया जा सकता है। उसके अलावा जो तलवारें उस तलवार वाले दुकानदार के पास हैं, वे देखने में तो तलवारें दिखाई देती हैं, पर वास्तव में लोहे का टुकड़ा ही हैं। ऐसा ही तुम नाम के बारे में समझो। सब परमात्मा के नाम ही हैं, पर सत्‌गुरु द्वारा दिये गये नाम की महिमा अपार है। जो कहते हो कि नाम के जपने वाले सैंकड़ों देखे हैं और उनका कुछ नहीं बना, सो ठीक है। हर प्रकार के काम करने के लिए, चाहे वह सांसारिक हो या पारमार्थिक बिना युक्ति के किसी काम में सफलता प्राप्त नहीं होती। सो, बिना सही युक्ति जाने वे सब यत्न अकारथ ही जानो। ऐसा ही उन लोगों की समझो। महापुरुषों ने कहा है कि एक सत्‌नाम के जपने से करोड़ों जन्मों के पाप नाश हो जाते हैं। यदि नाम को ही सहज भाव से सत्‌गुरु की बतलाई हुई युक्ति द्वारा जपते चलो तो और कुछ करना शेष नहीं रह जाता।

प्रश्न 233 : (एक हकीम प्रेमी) महाराज जी, आप फरमाते हैं कि अभ्यास में वक्त की पाबन्दी होनी चाहिए। सो कई बार ज्यों ही अभ्यास में बैठता हूं, रोगी की आवाज आती है कि बहुत तकलीफ है, देखिए। उस वक्त क्या करना चाहिए? क्योंकि दास को तो उस समय रोगी को देखना ही आवश्यक प्रतीत होता है।

उत्तर : प्रेमी, तू भी रोगी है और अपने रोग निवृत्ति का यत्न कर रहा है। यह तुझे बड़ा पुराना रोग है जो कि अनन्त जन्मों का तुझे लगा हुआ है। इसकी निवृत्ति का यत्न करना बड़ा आवश्यक है। उस मालिक पर दृढ़ विश्वास रखो कि सबके दु:खों और रोगों को दूर करने वाला वही एक प्रभु है और उसकी कृपा

से आए हुए रोगी का रोग दूर हो जायेगा। यदि रोगी के प्रारब्ध में दु:ख है तो उसे अवश्य भोगना पड़ेगा। उसे कोई भी दूर न कर सकेगा। तू चिन्ता न कर।

प्रश्न 234 : प्रभो, अगर मरीज को बहुत ज्यादा तकलीफ हो तो क्या फिर साधन से नहीं उठना चाहिए?

उत्तर : नहीं प्रेमी, बिल्कुल नहीं उठना चाहिए। अरे, रोग क्या अगर तेरे मकान को भी आग लग जाये तब भी साधन को छोड़कर नहीं उठना। बड़ी से बड़ी मुसीबत आ जाए, लेकिन साधन को अपने समय से पहले नहीं छोड़ना चाहिए।

प्रश्न 235 : महाराज जी, शुरू में आत्मचिन्तन में कठिनाई होती है। क्या पहले तीर्थयात्रा वगैरह साधनों को धारण कर लिया जावे। उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता आत्म-चिन्तन सम्भव हो सकेगा? बच्चों और अनपढ़ व्यक्तियों के लिए तो यह बहुत मुश्किल है। कृपा करके इस पर प्रकाश डालें।

उत्तर : प्रेमी, सीधा होकर चल। हेर फेर डालने का समय नहीं। जीवन थोड़ा है, मंजिल लम्बी है, सन्तों का मार्ग एक ही है। सबसे पहले समता के पांच असूलों-सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत्-सिमरण को जीवन में धारण करना और बच्चों को भी उन्हीं पांच असूलों की शिक्षा देना, उन्नति का मार्ग है। सबसे पहले सदाचारी जीवन होना बड़ा जरूरी है। भगवान की सबसे बड़ी पूजा यह ही है।

प्रश्न 236 : महाराज जी, क्या यह सिमरण या अभ्यास अलैहदा एकान्त में बैठकर करना ही उचित है या कुछ प्रेमी इकट्‌ठे कर सकते हैं, जैसे कि कई संस्थाओं में कुछ लोगों को इकट्‌ठे बैठाकर अभ्यास कराया जाता है?

उत्तर : प्रेमियों, अभ्यास एकान्त में किया जाना चाहिए। किसी को यह पता भी न चल सके कि वह अभ्यास कर रहा है। इकट्‌ठे मिलकर बैठने से अभ्यास नहीं हो सकता क्योंकि इस तरह मन ठहर नहीं सकता और न ही अभ्यास की तरफ जाता है। उसका ख्याल हर वक्त साथ या कुछ फासले पर सामने बैठे हुए प्रेमियों की तरफ लगा रहता है। एकाग्रता नहीं हो सकती। यह ख्याल बना रहता है कि मैं ज्यादा देर बैठूं ताकि दूसरे यह न कह सकें कि यह

अभ्यास कम करता है। इसी तरह के विचारों में पड़ा रहता है इसलिए अभ्यास हमेशा एकान्त स्थान में ही करना चाहिए।

प्रश्न 237 : महाराज जी, अगर सत्नाम निदिध्यासन करने के बाद भी वासनाएं बनी रहें तो फिर अविनाशी शब्द जिसको वेदों में नादब्रह्म कहकर महापुरुषों ने बयान किया है, वह क्या हासिल हो सकता है?

उत्तर : दयालू जी, तेरे अन्दर अगर वासना होगी तो शब्द का प्रकाश वहां नहीं होगा। ये दोनों मुतजाद (विरोधी) बातें हैं। वासना के रहते हुए कभी शब्द में स्थिति न होगी। सो तुम अच्छी तरह समझ लो।

प्रश्न 238 : नाम की इतनी महिमा क्यों है और यह नाम क्या वस्तु है?

उत्तर : हर एक वस्तु में चार गुण होते हैं। नाम, रूप, गुण, और कर्म। जैसे नाशपाती नाम है। उसकी बनावट, रंगत, रूप है, मीठापन उसका गुण है, वगैरह। इन्सान के अन्दर जो शब्द हो रहा है उसको आत्मदर्शी पुरुष ही जानते हैं। गुरु जो नाम बतलाते हैं, वह उसी शब्द से मिलता जुलता है और उसी की मदद से वह शब्द (नाद) अन्दर प्रकट होता है और जीव मुख्लसी पा जाता है। इसीलिए नाम की बहुत महिमा है।

प्रश्न 239 : दोष वाली चीजें (बुद्धि) निर्दोष को कैसे देख सकती हैं जबकि हर वक्त उसका लगाव दोष वाली चीजों से है?

उत्तर : बुद्धि दोष को त्याग कर ही निर्दोष को देख सकती है। दोष को त्यागना ही परम यत्न और परम भक्ति है। निर्णय यह है कि बुद्धि मन, इन्द्रियों की ममता को लिए हुए नित्य ही शुभ-अशुभ कर्मों को ग्रहण करती है और हर वक्त चलायमान रहती है। जब बुद्धि सत्श्रद्धा और दृढ़ अनुराग से गुरु शिक्षा द्वारा मन इन्द्रियों की ममता को त्यागकर ईश्वर इच्छा को अन्तर्विखे दृढ़ करती है और सत् नाम का सिमरन (स्मरण) दृढ़ निश्चय से करती है, तब वासना रूपी महादोष को दूर कर निष्क्रिय तत्व आत्मा को अनुभव करती है। तब ही जाकर परम पवित्र होती है और परम शांति का स्वरूप हो जाती है। यह ही हालत तत्व बोध, समता स्थिति और निर्वाण की है।

प्रश्न 240 : महाराज जी, सिमरण का स्वरूप क्या है?

उत्तर : मन का स्वरूप है मनन करना या दूसरे शब्दों में सिमरना। यह

सिमरना ही संसार है। मन जिन्दा बानी (वाणी) करके है। मन जब तक ठिकाने नहीं आता, सिमरण यानी वाणी जारी रहती है। जब तक उसको ठिकाने लगाने का प्रबंध न हो तब तक यह ठिकाने पर नहीं आता। जब सिमरनी का नाका फेरा, निर्वाणी अवस्था का बोध हो गया। वाणी भूल गया। सिमरण हृदय करके होता है। सेवा शरीर करके होती है। ये साधन देह पर काबू पाने के हैं। सिमरण मुंह बन्द करके जब सत्नाम का किया जावे तब बन्धन से मुक्ति मिलती है। यह गुरु से हासिल होता है।

प्रश्न 241 : महाराज जी, अभ्यास चिन्तन करते-करते जब आत्म-ध्वनि अनुभव होती है, उस वक्त हमारी वृत्ति का क्या नक्शा बनता है?

उत्तर : लाल जी, तू क्यों ऐसे सवाल करता है? यह बातें अनुभव से ताल्लुक रखती हैं। फिर भी इशारा मात्र तेरी जानकारी के लिए यह फकीर सुना रहे हैं। आत्म-ध्वनि के उठते ही इस मन की वृत्तियां वासनाहीन हो जाती हैं। हर कारज जो जीव करता है, वह सहज होता है और निष्काम होता है।

प्रश्न 242 : महाराज जी, साधन में बैठते हैं तब संकल्प-विकल्प बहुत उठते हैं और कुछ उन्नति मालूम नहीं होती है।

उत्तर : प्रेमी जी, बड़ी कठिन मंजिल है। आहिस्ता-आहिस्ता ही यत्न-प्रयत्न करने से उन्नति हो सकती है। अब आपको मुकम्मल रहनुमाई मिली है लेकिन पूर्ण दृढ़ता और सत् विश्वास से ही सफलता प्राप्त हो सकती है। दर्जा-बदर्जा (धीरे-धीरे) ही उन्नति प्राप्त होती है।

प्रश्न 243 : महाराज जी, धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने से क्या लाभ है?

उत्तर : प्रेमी, जीवन के मसले का यथार्थ बोध इन पुस्तकों से ही होता है।

प्रश्न 244 : महाराज जी, ऐसी कृपा करें जिससे अभ्यास में मन लगा रहे और कोई सरल सा तरीका बतलायें जिससे मन अन्तर्मुख हो जाए। इस बारे में कई तरीके महापुरुषों ने बयान किए हैं जिनका वर्णन शास्त्रों में आता है। इनमें से कुछ आंख कान दबाकर नाम का ध्यान हृदय मस्तक तथा कपाल में करने के लिए कहते हैं। कुछ लोग इसको चक्रभेद विद्या का नाम देते हैं।

कोई तरीका हृदय और त्रिकुटी में प्रकाश में ध्यान लगाने का है। किन्हीं तरीकों में यह कल्पना की जाती है कि प्रकाश मस्तिष्क से चलकर हृदय में, हृदय से नाभि फिर सारे शरीर में फैल जाता है, इस पर ध्यान लगाया जावे। कुछ कहते हैं इन स्थानों में ध्यान ठहराकर ओ३म् अक्षर को जपना चाहिए। कुछ खेचरी आदि मुद्राओं के द्वारा एकाग्रता हासिल करने के बारे में विचार देते हैं। आप परम योगी हैं हमें राजमार्ग पर ले आवें।

उत्तर : प्रेमी, यह सब साधनाएं अवलोकन करके फकीरों ने आखिरकार एक सही और सुगम तरीका कायम किया वह ही प्रमाणित तरीका माना जाता है। आम संसारी जीव इस गुप्त राज़ को नहीं जानते। संसारी क्या अच्छे-अच्छे साधना करने वाले भी इस शिव मार्ग को नहीं पहचान सकते। प्राण-अपान योग आज का चलाया हुआ नहीं। पुरातन सत्पुरुषों ने इसी अभ्यास द्वारा सिद्धगति पाई है। गीता के पांचवें, छठे और आठवें अध्याय में श्री कृष्ण ने वर्णन किया है। सिर्फ घुंडी (रहस्य) अपने पास रख ली है। अर्जुन को कह रहे हैं-"किसी साधु, सन्त, महात्मा की शरण में जाकर नम्र भाव से प्रार्थना कर। वे तुझे गुप्त रहस्य तेरी श्रद्धा, प्रेम विश्वास को देखकर समझावेंगे।

इस तरह कहने का अर्थ उनका यही था कि कोई जिज्ञासु भ्रान्ति में न पड़ जाए। जिस समय किसी सत्पुरुष से शिक्षा ले चुके, तुरन्त तसल्ली हो जायेगी कि वास्तव में यही तरीका भगवान् कृष्ण ने कह रखा है। सिर्फ सामने बैठकर समझने की, श्रद्धा विश्वास प्राप्त करने की जरूरत थी। आवाम (सर्वसाधारण) को क्या पता है कि योग-साधन क्या वस्तु है, किस तरह करना है। जिस तरह किसी ने समझाया, अंधा-धुंध चल पड़े। अब भी लोग न समझें तो कसूर किसका है? बिस्तरे में पड़े-पड़े ही सब योगी बन रहे हैं। ऊंचे-ऊंचे सिंहासनों पर योग-सिद्धि नहीं हो जाती।

आंख कान को दबाकर रोशनी और शब्द को सुनना, देखना यह सब तत्व विज्ञान है। जिन तरीकों के बारे में तुमने अभी-अभी जिकर किया है सब भरमाने वाले मार्ग हैं। इस तरह से नाद स्वरूप परमेश्वर अन्दर प्रकट नहीं हो सकता, जब तक प्राण-अपान के संग किसी योगी के बतलाए हुए बीज-मंत्र की साधना न की जाए। ज्यों-ज्यों इस साधना में जिज्ञासु दृढ़ होता जाता है, मन, पवन, नाम की एक रूप में स्थिति होती जाती है। तब नाभिकमल में बुद्धि निश्चल होकर अमृत शब्द का भान करने लगती है। गुरु रूप प्रकट हुआ उस

हालत को जानो। फिर नाभि से अमर धारा ऊपर आकाश दसवें द्वार भंवर गुफा की तरफ चलती है और सुरति दृढ़ होने लगती है। सत् विश्वास की दृढ़ता तभी प्राप्त होती है। इस तरह करते करते मस्तक, त्रिकुटी, तीन भवन, मुद्रक, चश्म, दिव्य नेत्र तीसरी आंख वाली जगह में सुरति मस्ती को अनुभव करने लगती है। फिर जाकर हृदय कमल का खुलना होता है। तरह-तरह का ज्ञान-विज्ञान, आत्म साक्षात्कार अवस्था प्राप्त होती है। नाद-स्वरूप के प्रकट होने को ही सुल्तान उलअंकार, अनहद शब्द-कई नामों से पुकारा है।

शिव की जटा से गंगा के प्रकट होने का भाव भी यह ही है- रोम-रोम से आनन्द की धारा बहने लगी।

बेअन्त सत्पुरुष नेति-नेति करके इसमें लीन हो गये। कबीर, नानक, बुद्ध, सनकादिक, कृष्ण, राम, गोरख, कपिल, व्यास और ऋषिमुनि जितने भी इस संसार में सिद्ध पुरुष हुए हैं सबका एक ही मंत्र रहा है-

आंख न मूंदों, कान न रूंधों, काया कष्ट न धारूं।
कबीर मन पवन को साध के, त्रिकुटी बंध उघारूं।।

कई तरीके से साधना को सत्पुरुषों ने बयान किया है।

इतना फरमाने के बाद "ग्रंथ श्री समता प्रकाश" में से एक शब्द पढ़ वाया जिसका दोहा इस प्रकार है-

ऊंच ज्ञायी नाद की, पारावार न कोए।
"मंगत" जिस जन सोझी पड़ी, तिसके चरण नित धोए।।

शब्द समाप्ति पर फरमाया-

प्रेमी, क्या कोई कसर बाकी है? यह भी तुम तब समझ रहे हो सामने बैठकर अच्छी तरह समझा हुआ है। पचास वर्ष के बाद यह भी पिछले समय की तरह गुप्त भेद में शामिल हो जायेंगे। छोटे-छोटे साधन मन बहलावे के वास्ते हैं। किसी साधन और हठ-योग की क्रियाओं को करने के बाद इस मार्ग से सहज योग (राजयोग) की तरफ आता है। कपिल, पतंजलि, शिवजी कहां आँखों को, कानों को दबाकर बैठे हुए हैं। और भी किसी ऋषि-मुनि, महात्मा की मूर्ति को देखो, किस तरह सिद्ध या पद्म आसन पर बैठे हुए दिखाये गये हैं। बुद्ध की सबसे ज्यादा मूर्तियां हैं। सब जगह सहज आसन पर बैठे हुए पाओगे।

प्रेमी, संसारियों को गुमराह करने के वास्ते यह मार्ग आंख कान मूंदने वाला प्रचलित हो गया है। कोई बतलाने वाला न हो तब यह ही हाल होता आया है। दस गुरुओं के बाद जब कोई बतलाने वाला न रहा तब शब्द भेदी मार्ग लोप हो गया। मनमाने, अपने अपने स्मरण के रास्ते निकाल लिए। जिस तरह किसी को मालूम भी था उसको आज्ञा न थी। मन की मन में ही रही। जिनको पता भी है, वे जंगलों में साधना कर रहे हैं। तुम लोगों ने इसे सस्ता समझ रखा है। ईश्वर सबको सुमति देवे।

प्रश्न 245 : महाराज जी, जरा से विपरीत वातावरण में जाने पर मन में गड़बड़ पैदा हो जाती है जो अशांति का कारण होती है। इसका क्या इलाज है?

उत्तर : अभ्यास और चिन्तन जब खूब बढ़ जावेगा तो विपरीत अवस्था परेशान न कर सकेगी। अभी तुम सदाचारी जीवन बनाने की कोशिश में हो, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था बहुत दूर है। जब अभ्यास व चिन्तन बढ़ जावेगा तब ही स्थिति एकाग्र होगी, पहले नहीं। घबराओ नहीं। अभ्यास चिन्तन बढ़ाओ। सब ठीक हो जावेगा।

प्रश्न 246 : ध्यान किस स्थिति का नाम है?

उत्तर : ज्यों-ज्यों सत्नाम में दृढ़ता बुद्धि को प्राप्त होती है त्यों-त्यों कर्त्तापन का अभाव होता जाता है। और ज्यों-ज्यों कर्त्तापन का नाश होता है त्यों-त्यों वासना जाल का अभाव होता जाता है और ज्यों-ज्यों वासना का नाश होता है त्यों-त्यों बुद्धि अविनाशी स्वरूप समवाद में निःचल होती है। ऐसी निःचलता को ही ध्यान कहा गया है।

प्रश्न 247 : महाराज जी, अभ्यास करते समय मन इधर उधर भागने लगता है इसको किस तरह एकाग्र करके अभ्यास में लगावें?

उत्तर : इस मन की बड़ी पुरानी आदत पड़ी हुई है। आहिस्ता-आहिस्ता काबू में आवेगा। तुम्हारा मन जब अभ्यास करते-करते इधर-उधर भागने लगे तो परमात्मा की रजा (मर्जी) रूपी खांडे (तलवार) से उसे बार-बार कत्ल (मारो) करो और अभ्यास में लगाओ। यह भी क्रिया जीवित मरना है इसी को ज्ञानी लोग ज्ञान अग्नि कहते हैं। मन की आदत है जिस काम में इसको लगाया

जावे उसी काम में लग जाता है। अभ्यास में चूंकि इसे मर्जी के मुताबिक दिल लगाने वाले सामान इत्यादि नहीं मिलते इसलिए इधर-उधर भागने लगता है। इसलिए उस समय यह कहकर अन्तरबिखे बार-बार पकड़े कि सब कुछ उस परमात्मा की मर्जी से हो रहा है तू क्यों फिजूल उधेड़बुन में परेशान है। तू हर उलझन को छोड़कर उस मालिके कुल का सिमरण कर। दुनिया में अगर कोई परम दुख है तो इस मन का डोलना ही है। इसको निश्चल करने के लिए तुझे अपनी सोच की धारणा बदलनी होगी। हर समय तू इस शरीर को जिन्दा समझना छोड़कर मुर्दा समझने का प्रयत्न कर। इसके अन्दर जो जिन्दगी (जीवन शक्ति) है वह ही सत्सरूप है। जब तू शरीर को मुर्दा समझने लगेगा तो मन शरीर की ममता से मुक्त हो जाएगा। इसीलिए ऐ प्रेमी, हेरा फेरी छोड़ दे।

प्रश्न 248 : महाराज जी, हेरा-फेरी किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, ज्ञान इन्द्रियों द्वारा जो रस इस शरीर को प्राप्त होते हैं बुद्धि उनको भोगती है। आंख, नाक, कान, जीभ और लिंग के भोगों के चक्कर में बुद्धि का आ जाना और उनका रसपान करना यह सब हेरा-फेरी है। जिसका व्यौहार शुद्ध है, सदाचारी जिसका जीवन है और जो इन्द्रियों के भोगों में रसपान नहीं करता वह महान तपीश्वर है। बीयाबान जंगलों में तपस्या करने वाले साधुओं से वह बहुत ऊँचा है।

प्रश्न 249 : महाराज जी, कभी बड़े अच्छे विचार पैदा होते हैं। मन करता है कि स्मरण, अभ्यास और सेवा करते जाएं। कभी मन इनसे विमुख हो जाता है और खाने, पीने, पहनने में लग जाता है।

उत्तर : प्रेमी, यह गुणों का चक्र चलता रहता है। जब सतोगुणी भाव प्रगट होता है तब स्वत: ही सत्संग सिमरण और सेवा में मन लगने लगता है। रजोगुण खाने, पीने, पहनने और भोग-विकार की तरफ ले जाता है। तमोगुण, चोरी, जुआ, कपट और छल की तरफ़ ले जाता है। इन गुणों के चक्कर से पार होने के लिये ही अभ्यास है। जब निर्गुण अवस्था जीव के अन्दर पैदा होती है तब इन विकारों की समाप्ति हो जाती है। पता ही नहीं लगता कि किधर गए। रञ्चक मात्र भी जब बुद्धि सही रूप में निर्मल होती है तब अपने-आप ही भोग-पदार्थों से घृणा होने लगती है। समय आने पर अपने-आप ही रंग लग

जाता है। गिर पड़े तो घबराना नहीं चाहिए। फिर सत्विचार से बुद्धि को सत्मार्ग में लगाना चाहिए।

प्रश्न 250 : नाम जपते समय कई बार श्वास और नाम दोनों ही भूल जाते हैं। मन अपने ही संकल्पों में खो जाता है। इसका यह खेल कब समाप्त होगा?

उत्तर : सुरति (बुद्धि) कैसे एकदम एकाग्र हो सकती है? जन्म-जन्मान्तर से वासना को पूर्ण करने में लगी यह बुद्धि निर्वास होने की कोशिश ही नहीं करती। बड़े भाग्य से गुरुमुख जीव को जुगति (युक्ति) प्राप्त होती है। जब तक इसमें चित्त न दे कैसे एक आधार पर आ सकती है? हर समय नाक की नोक पर दृष्टि जमाकर आने-जाने वाले श्वास के साथ नाम उच्चारण करो। मुँह बिल्कुल बन्द रहे। रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहे। आसन ठीक तरह बिछाकर बैठना चाहिए। गर्दन बिल्कुल न झुकने पाये। गर्दन का झुकना ग़फ़लत की निशानी है। बाहर से दृष्टि हटाकर नासिका के अग्र भाग पर रखकर बार-बार श्वास और नाम में वृत्ति लगावे। गर्दन उस समय झुक जाती है जब अभ्यास के समय आलस, निद्रा आ घेरते हैं।

प्रश्न 251 : महाराज जी, हमको आहार किस कद्र करना चाहिए, कोई इसके मुतालिक सरल तरीका बतला दें ताकि अभ्यास में तरक्की हो?

उत्तर : प्रेमी, तुम खुद ही आहार, ब्यौहार का प्रोग्राम बना सकते हो। जितना कम करना चाहो, कर सकते हो। जितना इसे बढ़ाना चाहो, बढ़ जाएगा। अगर अभ्यास करना है तो सूक्ष्म और युक्ति का आहार, ब्यौहार करना पड़ेगा। भोजन उतना करो जिससे भूख की निवृत्ति हो जाए। थोड़ी भूख रखकर खाओ, ऐसा करने से प्राण सही चलते हैं। शारीरिक रोग भी कम होते हैं। प्रारब्ध कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। ऐसे कष्ट तो आ ही जाते हैं। बाकी दिनरात के साथ घड़ी के चार भाग कर लो। सुबह-शाम चार-चार घड़ी या डेढ़ घंटा या दो घंटे का सुबह-शाम का प्रोग्राम बना लो। रात को अगर समय मिले तो आधी रात के बाद समय निकाल लो। गो गृहस्थी से इतना साधन नहीं बन सकता और न ही भूख पर काबू पाया जा सकता है, मगर अभ्यास के लिए यह बहुत जरूरी है कि रात को तो बहुत सूक्ष्म और शुद्ध आहार जो बने ले लिया जावे। फल वगैरा आजकल मुयस्सर (प्राप्त) होने मुश्किल हैं। सादा आहार का

मतलब यह है कि सस्ता भी हो और पूर्ति भी हो जाए और इतना हो कि आलस्य और निन्द्रा भी न सतायें और स्वांस भी हल्के चलें। एक वक्त पुख्ता नियम बनाओ। सुबह का समय सबसे ज्यादा अच्छा रहता है। घर में या बाहर किसी पत्थर की ओट में जा बैठो और समय अभ्यास में लगा दो, मगर दृढ़ नियम होना चाहिए। पक्का व्रत होना चाहिए। व्रत का मतलब है जो धारणा बनाओ वह टूटने न पावे।

प्रश्न 252 : महाराज जी, साधना का क्या स्वरूप है?

उत्तर : पहले अपने रोजाना जीवन पर निगाह डालो। घर का सामान, शरीर पर धारण करने वाले कपड़े, बिस्तरा और भी तरह तरह के जी बहलाने वाले सामान, रहने की जगह कितनी प्रकार की और कैसी हैं। और यह सब कैसे बना रखे हैं। इन सबके होते हुए संयम वाली ज़िन्दगी गुजारनी, साधना करनी यानि सत्‌नाम सिमरण करना कैसे बन सकता है? जब सब तरफ से मुंह मोड़ कर सत्मार्ग में समय दोगे तब तपस्वी बन सकोगे। मन में यह दृढ़ता धारण कर लो कि चित्त की शुद्धि करके छोड़नी है। मन, तन, बचन का साधन करते करते जो भी दुख सहन करने पड़े सहते जाना ही तप और यह सब साधना ही है। जो जो बुरी आदतें पड़ी हुई हैं उनको दूर करना ही साधना है। मन, बुद्धि दीर्घ वासनाओं में फंसे हुए हैं। मन की वृत्तियों को संकुचित करना और आदतों को ठीक करते जाना, इन्हें बढ़ने न देना, यह इन्द्रियों की रसना शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जो दुख का मूल हैं इनको रोकना भी तप साधना है। साधना के अनेक स्वरूप हैं। कहां तक इन्हें ब्यान किया जावे।

इलमो बस करें ओ यार इलमों बस करें ओ यार
इको अलिफ तेरे दरकार।

प्रेमी, प्रभु परायण हो जाओ। सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत् सिमरण के नियम धारण करो। निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता और परोपकार सब ही शुभ गुण विकारों से निर्विकार करने वाले हैं। पूछते नहीं रहना चाहिए, चलने की कोशिश करो। जीवन में जीव अपने पुत्र स्त्री वगैरा का भार बड़ी खुशी से उठाए रखता है मगर सत्पुरुषों व महात्माओं की सेवा निष्काम रूप में नहीं कर पाता। संगत किसकी करनी है इसका खास ख्याल रखो। अज्ञानियों की

संगत का त्याग करके ज्ञानियों की संगत में समय दिया करो। सत्पुरुषों की संगत परम सुख की खान है। जब तक सांसारिक जीवन में लगे हुए हो माता पिता की सेवा, स्त्री पुत्र आदि परिवार की संभाल करनी तुम्हारा फर्ज है। अपने फर्ज को ठीक तरह निभाना खुशी और सुख के देने वाले हैं। इससे बेचैनी नहीं बढ़ती। अच्छे उत्तम कर्मों की तरफ ले जाने वाली भावना बनाओ। दान पुण्य करते रहो, धर्म परायण होने की कोशिश करो। अच्छे संकल्प बनाए रखना साधना में सहायक होते हैं। जब तक संसार में शरीर चल रहा है इन बातों का खास ख्याल रखना चाहिए। ऐसा करने से गुरुमुख जीव कल्याण को प्राप्त होते हैं। अगर कोई दुखी जीव दिखाई दे पहले प्रेम से उसका हाल दरयाफ्त करो, फिर उसकी दिलजोई करो। फिर तन मन से जैसी भी सेवा हो सके करके उसका दुख निवृत्त करो। यह हर एक जीव का फर्ज़ है। अगर किसी दुखी का दुख देखकर नजर अन्दाज कर जाते हो तो तुमने अहिंसावाद को समझा ही नहीं। सिर्फ बातों से दिल बहलाने वाले मत बनो असली अहिंसावादी बनो।

प्रश्न 253 : सहज अवस्था किसे कहते हैं?

उत्तर : जब चौबीस घंटे (हर समय) सुरति गुणों के प्रभाव से मुक्त रहकर सत् स्वरूप में लीन रहे, उसे ही सहज अवस्था कहते हैं। तत्त्ववेत्ता ब्रह्मज्ञानी की ऐसी ही अवस्था होती है।

प्रश्न 254 : महाराज जी, योग क्या है?

उत्तर : प्रेमी, जीव और ब्रह्म की एकता को ही योग कहते हैं।

प्रश्न 255 : महाराज जी, कभी कभी ऐसी अवस्था बन जाती है कि मन उचाट होकर न साधन में लगता है, न स्वाध्याय करने को जी करता है। नींद और आलस्य आ घेरते हैं। मन खुद-ब-खुद विषय चिन्तन करने लगता है। मन के अन्दर घोर तमोगुणी वृत्तियां जाग्रत हो जाती हैं, उस समय मैं क्या करूं?

उत्तर : लाल जी, घबराना नहीं चाहिये। बेहतर होगा कि ऐसे वक्त में सब कुछ छोड़कर एकान्त में चले जाना चाहिए। विचार और अभ्यास बारम्बार दृढ़ करना चाहिए। बार बार मन की वृत्तियों को पकड़कर समझाना चाहिए:

हे मूर्ख, क्यों परेशान है? जिन-जिन विषयों को तू भोगकर इन्द्रियों को तृप्त करना चाहता है वे क्या आज तक तृप्त हुई हैं? इस समय जिनको अपार भोग प्राप्त हैं, जिन भोगों की तू कामना कर रहा है, क्या उनकी इन्द्रियां तृप्त हुई हैं? बिल्कुल नहीं हुईं। तू जाकर तस्फीहा (फैसला) कर ले। जो कुछ पूछ-ताछ तूने करनी है, जाकर कर ले। फकीरों की बात याद रख। सब प्यासे ही हैं और घोर अतृप्त अवस्था में ही हैं। फिर तू क्यों इस अन्धेरे में पड़ता है? इन्द्रियों का स्वभाव ही है कि ये नित्य प्यासी रहती हैं। इसलिए तू इस सत् तत्व की खोज कर जिससे इन इन्द्रियों की हमेशा की प्यास शान्त हो जावे। इस तरह बारम्बार विचार द्वारा मन को सावधान करना चाहिए और एकान्तवास करना चाहिए।

प्रश्न 256 : महाराज जी, कामी पुरुष के लिए एकान्त बड़ा घातक है। वह एकान्त में जाकर अपनी कामनाओं का चिन्तन करने लगेगा।

उत्तर : प्रेमी, यह ठीक है, लेकिन साधक और जिज्ञासु प्रेमी के लिए यह बात नहीं है। उनकी यह अवस्था हमेशा थोड़े ही रहती है। कभी-कभी ऐसी तमोगुणी अवस्था आ जाती है, उसका ही यह इलाज है। बाकीमांदा (शेष) आम दुनियादार लोग, जो नाम मात्र के पुजारी हैं, उनके लिए यह इलाज नहीं। उनके लिए जो तुमने कहा है, वह ठीक है।

प्रश्न 257 : महाराज जी, मन में खला (खालीपन) कैसे पैदा हो जाता है?

उत्तर : प्रेमी, मन में खला अगर न हो तो एक के बाद दूसरे संकल्प कैसे भरे जावें। जब तुम कोई मकान बनाने की तजबीज करते हो तो पहले मन में जगह बनाते हो। मन की जगह खाली हो तब ही उसका नक्शा भरा गया। बाद में नक्शा रूपी संकल्प ही जमीन पर आकर मकान की शक्ल इख्तियार (धारण) कर लेता है। इसलिए मन में खला का होना अपने आप सिद्ध है। प्रेमी, तुम्हें और बतलाते हैं कि पांच तत्वों से जो पांच तन्मात्राएं हैं, उनको ग्रहण करने वाली पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं। इन्सानी जिस्म में इसके दौर को सत्पुरुषों ने इस तरह अनुभव किया:-

आकाश तत्व से मन की उत्पत्ति होती है और संकल्पों को जन्म मिलता है। आकाश तत्व की तन्मात्रा शब्द है जिसको कर्ण इन्द्री ग्रहण और त्याग करती है। पृथ्वी तत्व का सम्बंध नासिका इन्द्रिय से है जो गन्ध का ग्रहण, त्याग करती है। जल का सम्बन्ध जिव्हा इन्द्रिय से है जो रस को ग्रहण और त्याग

करती है। वायु का सम्बंध त्वचा इन्द्रिय से है जिससे स्पर्श महसूस होता है। अग्नि का आंख से सम्बन्ध है जिससे रूप को अनुभव करती है।

प्रश्न 258 : महाराज जी, मन की सादगी के स्वरूप को जरा साफ करके समझायें।

उत्तर : एक नुक्ता (तथ्य) है। तुम इसको अच्छी तरह जहनशीन (हृदयंगम) कर लो तो सारी बात आसानी से तुम्हारे दिल में जज्ब हो जायेगी। मान लो तुम खाने बैठे हो। भोजन तुम्हारे सामने परोस दिया गया है और तुम खाना शुरू करने वाले हो। उस वक्त उस खाने का असर तुम्हारी तबीयत पर न हो तो तुम उसे खा जाओ। अगर उसको देखकर मन ललचाने लगा हो तो उसमें से थोड़ा सा लेकर बाकी (शेष) तक्सीम कर दो (औरों को खिला दो) यह एक ऐसा तरीका है जिसको तुम अपनी जिन्दगी के हर पहलू में इस्तेमाल कर सकते हो और ऐसा करते-करते मन अपनी गलत हरकतों से बाज आ जायेगा और तुम उस पर हकूमत करने वाले बन जाओगे। मन को जिन पदार्थों में खुशी महसूस हो, दिल ललचाने लगे, उनसे इसको दूर करना है। वस्त्र ऐसे मत पहनो जिसको पहनकर मन में यह भाव आये कि मैंने कैसे अच्छे कपड़े पहन रखे हैं, मैं कैसा सुन्दर लग रहा हूं। बाकी सब लोगों के सामने मैं ऊंचा हूं। जब इस तरह से मन को धक्के चारों तरफ से मिलेंगे, यह दौड़कर आखिर को नाम सिमरण में लगेगा।

प्रश्न 259 : महाराज जी, संध्या करना किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, संध्या के मानी (अर्थ) है जोड़ना। जब कामिल उस्ताद (सद्गुरु) से विचार होगा उस वक्त मालूम होवेगा कि संध्या कैसे की जाती है। ऐसे ही ऐसी (ठीक प्रकार की) संध्या नहीं होती, यह घढ़ा-घढ़ाया (किसी का बनाया हुआ) चक्र है।

प्रश्न 260 : महाराज जी, बुद्धि या सुरति की बहिर्मुखी चेष्टा कब खत्म होती है?

उत्तर : प्रेमी, सिमरन अभ्यास द्वारा श्वास ज्यों ज्यों सूक्ष्म होते जावेंगे, त्यों-त्यों नाम सिमरन में प्रेम बढ़ता जावेगा। अन्तर विखे हर रग में शब्द की टंकोर हो रही है, जिसे सुरति निर्मल होकर ही अनुभव कर सकती है। सुषुम्ना

नाड़ी में ज्यूं-ज्यूं वह सुरति जीवन शक्ति को अनुभव करेगी, एक सरूर (आनन्द) और खुमारी महसूस होगी। तभी बुद्धि या सुरति की बहिर्मुखी चेष्टा का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 261 : सुरति किसे कहते हैं?
उत्तर : तवज्जो यानी बुद्धि को सुरति कहते हैं।

प्रश्न 262 : महाराज जी, चतुर्भुज नारायण भगवान शेषनाग पर विराजमान हैं- इससे क्या भाव है?
उत्तर : प्रेमी, यह सब अन्दरूनी (आन्तरिक) अवस्था का वर्णन है। नाभि कँवल को शेषनाग करके दर्शाया गया है और नाद शब्द को नारायण का रूप दिया गया है क्योंकि शब्द स्वरूप भगवान की अनुभवता नाभि कँवल में होती है।

प्रश्न 263 : महाराज जी, वाणी में जगह-जगह ये नाम आये हैं-सुखमन नाड़ी, तीन भवन, सुन्न कपाली, यह किस चीज के नाम हैं?
उत्तर : प्रेमी, योग विद्या के अन्तर्गत कुछ इशारे हैं। इस पंच भौतिक शरीर के अन्दर ही योगी पुरुषों ने नाद ब्रह्म को अनुभव किया। साधक अवस्था से सिद्ध अवस्था तक पहुंचने में जो अनुभूतियां सिद्ध पुरुषों ने अनुभव कीं उनकी तरफ इशारा करके बयान किया गया है।

उन्मुन, भंवर-गुफा, गगनमण्डल, ये सब कपाल के नाम हैं। दोनों भौहों के मध्य वाला स्थान, तीन भवन, त्रिकुटी है जिसे "ललाट" भी कहते हैं। इसी प्रकार नाभि, हृदय, कण्ठ इत्यादि के अलग-अलग स्थानों के नाम हैं। सबसे अधिक लीन जब बुद्धि सत् स्वरूप में होती है वह कपाल का स्थान है जहां पर हिन्दू लोग चोटी रखते हैं। तुम इन चीजों को न पूछो। तुम यह पूछो कि सूत्र कहां से अच्छा मिलता है, किस चीज की पान कपड़े को लगाई जावे, वह भी बताई जावेगी। यह आशिकों का विषय है। इधर जिन्दगी में ही सब कुछ छोड़ना पड़ता है।

इश्क इलाही ओखा पैण्डा-जीवन्दयां मर वंजन यारा।

प्रश्न 264 : महाराज जी, आपने फरमाया हुआ है कि शरीर के अन्दर दस प्रकार की प्राण वायु है–प्राण, अपान, ब्यान, उदान, समान, नाग, कोरम, करकुल, देवदत्त, धनंजय। इनको किस प्रकार अलग–अलग समझा जावे?

उत्तर : प्रेमी, इन झमेलों में पड़कर तुमने क्या लेना है? मोटी बात याद रखो कि "झूठ संसार, सत् करतार"। जो साधना बताई गई है, प्राण अपान द्वारा उसमें सुरति से नाम उच्चारण करते जावें तो समय पर जाकर सारा राज़ (रहस्य) खुल जायेगा।

प्रश्न 265 : महाराज जी, रेचक, पूरक कुंभक के मुत्तलिक (बारे में) कहा जाता है, ऐसा करते पवन यानि स्वांस को कितनी–कितनी देर तक रोकना चाहिए।

उत्तर : प्रेमी, इस झमेले में न पड़ो। जिस तरह सहज में स्वांस आवे जावे, नाम के साथ जितना समय लगे, वैसे ही ठीक है। अगर ज़ोर देकर स्वांस रोकोगे तो अगले स्वांसों की गति तेज़ हो जावेगी और फिर मन चंचल हो जावेगा। स्वांसों को नाम के साथ जितना आराम से चलने दोगे वह ही ठीक रहेगा। तब ही मन पवन और नाम एक धारा में चल सकेंगे। सहज योग में खुराक अगर मिकदार की खाओगे तो बहुत बेहतर रहता है। प्राणायाम में खुराक का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। खुराक जितनी सूक्ष्म और शुद्ध ग्रहण करोगे और एकांत में रहोगे, उतना ही लाभदायक है। तुमको सौ टंटे और लगे हुए हैं, इस वास्ते ऐसा प्रोग्राम बनाओ जोकि निभ सके। ऐसा न हो 'आगे दौड़ पीछे चौड़'। आहिस्ता–आहिस्ता साधन बढ़ाओ। जब एक वक्त दृढ़ता से साधन करने लग जाओगे, फिर समय भी बढ़ा सकोगे। जितना अभ्यास करोगे उतना ही विश्वास बढ़ेगा। संशय दूर होंगे।

प्रश्न 266 : महाराज जी, यह धोती–नेती बगैरा इनके मुतालिक कृपा करके बतला दें कि इनकी तरफ ध्यान देना चाहिए या नहीं?

उत्तर : यह छः प्रकार के हठयोग के साधन हैं, जो उनके करने वालों ने बयान किए हुए हैं, धोती, नेती, बस्ती, कुंजुकर्म, न्योली कर्म और त्राटक कर्म। इनके द्वारा शरीर शुद्धि और बुद्धि की पवित्रता मानते हैं। इनको करके शारीरिक रोगों से खुलासी पाने और बुद्धि को निर्मल करने की कोशिश की जाती है। नेती कर्म के लिए सूत की डोरी बनाकर उस पर मोम लगाते हैं। सुबह सवेरे उठकर

हाजित से फ़ारग होने के बाद, नासिका द्वारा अंदर बाहर चलाते हैं। दोनों नथनों से बारी-बारी मथानी मथने की तरह चलाते हैं। गला, आंख, नाक साफ करते हैं। धोती कर्म के लिए सोलह हाथ लम्बी बारीक मलमल की पट्टी चार उंगल चौड़ी लेकर उसे जल में भिगोकर निचोड़ लेते हैं, फिर उसे आहिस्ता-आहिस्ता निगल जाते हैं, फिर बाहर निकालते हैं, जिससे पित्त-कफ का ठीक होना मानते हैं। हठ योगी इन साधनों में लगे रहते हैं। बस्ती कर्म के लिए गुदा द्वारा जल को ऊपर चढ़ाते हैं। पेट को भरकर फिर बैठकर बाहर निकालते हैं। इन क्रियाओं को किसी अच्छे माहिर यानि इन कर्मों के करने वालों के पास रहकर करे तब भी पार नहीं हो सकता। कुंजुकर्म भी खूब पानी पी लिया और फिर निकाल दिया। न्योली कर्म में पदम आसन लगाकर दोनों हथेलियों को जमीन पर टिकाकर वज़न बराबर करके पेट को दायें बायें चलाते हैं। इससे पेट के रोगों से खुलासी मानते हैं। रोगों को दूर करते-करते और रोगों को खरीद लेते हैं। आखिर में त्राटक कर्म थोड़ा साधन में मदद देता है। नज़र को किसी चीज़ पर या नुक्ते पर टिकाये रहते हैं। इसी तरह दृष्टि को स्थिर करने का यत्न किया जाता है। उल्टी आंख करके भी दृष्टि को स्थिर करने का यत्न करते हैं। मगर प्रेमी जी, आज तक इन क्रियाओं द्वारा पूर्ण सिद्धि किसी ने हासिल नहीं की। यह सब कर्म शारीरिक शुद्धि वगैरा के जरूर हैं।

प्रश्न 267 : महाराज जी, थोड़ी रोशनी मुद्राओं पर भी डालिए?

उत्तर : प्रेमी जी, यह जितने भी साधन बताए हैं इनमें से शायद ही कोई तुमसे बन सके। पहली मुद्रा खेचरी, फिर भोचरी, चाचरी, अगोचरी, उनमनी और शनमुखी हैं। आजकल प्रधान शनमुखी मुद्रा बतलाई जा रही है। आंख, कान नाक उंगलियों से दबाकर अंतरविखे हो रही आवाज को सुनकर और आंख दबाने से जो रोशनियां पैदा होती हैं उनको जोत मानकर हज़ारों जीवों को भ्रम में डाला जा रहा है। न नाद का पता है न ज्योति का। इन मुद्राओं को एकांत जंगल में जाकर वर्षों तक साधना करने पर भी ठौर ठिकाने का पता नहीं लगता।

प्रश्न 268 : महाराज जी, महाबन्ध, मूलबंध वगैरा कैसे साधन हैं?

उत्तर : आज ही सारे योग का पता करना चाहते हो। यह चार पांच तरह के बन्ध नाथों ने और कई गुरु लोगों ने बयान किए हैं। उन्होंने ही प्राण-अपान को कई साधनों के ज़रिए साधन करने की कोशिश की है। यह चार तरह

के बंध हैं: महाबंध, मूलबंध, जालन्धर बंध, उड्यान बंध। मूल द्वार को ऐड़ी से बंद करके प्राण वायु को हृदय में स्थिर करके बार-बार रोकना। लेकिन बिना गुरु के इन साधनों के करने वाले रोगों को खरीद लेते हैं। यह खास हिदायत गुरुओं ने दे रखी है। करने वालों ने ही यह सब साधन बयान कर रखे हैं। मुद्रा और बंध इकट्ठे किए जाते हैं। पवन स्थिति से ध्यान कंठ, हृदय, त्रिकुटी वग़ैरा में किए जाते हैं। साथ-साथ रेचक और पूरक भी होता रहे। मानसिक और शारीरिक रोग नष्ट होते हैं। कहते हैं इनको करने वाले की आयु दीर्घ हो जाती है। दूसरी अपान वायु को वश करने के वास्ते मूल बंध का आसरा लिया जाता है। अपान वायु का गुदा में वास होता है। बायीं एड़ी से गुदा को दबाया और वायु को ऊपर की ओर खींचा। अगर एड़ी से न काम चले तो कपड़े की गेंद बनाकर मूलबंध पूरा किया जाता है। इस तरह प्राण अपान सहज में मिल जाता है। इस साधन से बूढ़े भी जवान हो जाते हैं। इस साधन से जठराग्नि तेज़ हो जाती है। जो खाओ सब हज़म। ऐसा साधन बहुत साधु करते हैं। लेकिन बग़ैर अच्छे गुरु के इन साधनों में कदम न रखे। तीसरा जालंधर बन्ध, कंठ में वायु को रोकना। हृदय में प्राण को स्थिर करना। इर्द-उर्ध में पवन से विचरकर उदर के दरम्यान चलाते हैं, फिर ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचाते हैं। इस तरह की साधना भी योगी को आनन्दित करती है; पर ज्यादा इन बंधों द्वारा अजर अमर होने की आशा बनी रहती है। उड्यान और शनमुखी मुद्रा मिली जुली हैं। जीभा को उलटकर तालू के साथ लगाकर साथ ही कान, आंख और नाक सबके सब बंद कर देते हैं। बज्र किवाड़ लगाकर सातों द्वारों को बंद करके प्राण-अपान को साधा जाता है। प्राण-अपान को किसी हालत में त्यागा नहीं गया है। सच्चे सत्गुरु कबीर, नानक, दादू, चरनदास, बुद्ध आदि ने सहज योग, राज योग को ही प्रधान माना है। जिसे गृहस्थ में रहते हुए भी त्याग रूप में किया जा सकता है। इसके द्वारा कोई व्याधि नहीं उपजती। प्रभु परायण रहकर जिस कद्र इस सत् युक्ति में समय दिया जावे उतनी ही कल्याण है। सब साधन वगैरा बग़ैर सत्गुरु की कृपा के नहीं बन सकते। इस वास्ते तुम्हारी तसल्ली तो सहज में हो गई थी। पहाड़ों, जंगलों में खोज गुरु की नहीं करना पड़ी। भाग्य से गुरुमुखों को गुरु मिल जाते हैं, मगर प्रेमी जी, बगैर साधना के सिद्धता नहीं मिल सकती।

प्रश्न 269 : महाराज जी, समाधि अवस्था में शरीर की क्या अवस्था या हालत होती है?

उत्तर : समाधि अवस्था में शरीर की कोई सुध नहीं होती।

प्रश्न 270 : महाराज जी, क्या जब तक शब्द अनुभव नहीं होता तब तक यह विकार जीव को हैरान व परेशान करते रहते हैं?

उत्तर : प्रेमी जी, त्रैगुणी मायाजाल बड़ा ही अपार है। इस माया में सब जीव बांधे हुए ख्वार हो रहे हैं। जब तक अपने आपको फायल यानि कर्म का कर्त्ता मान रहे हो तब तक उस भ्रम से छूट नहीं सकते। माया का रूप यह कर्त्तापन ही है। इससे त्रैगुण सत, रज, तम प्रगट होकर अज्ञानता की तरफ ले जाते हैं।

प्रश्न 271 : महाराज जी, आपने तो सारा ग्रन्थ याद कर रखा है। संत शब्द की महिमा का गायन करते हैं। नाम और शब्द का कुछ पता नहीं लगता। ग्रंथों में तो केवल ओ३म् शब्द की महिमा गाई गई है। महाराज जी, सही रास्ता बताने की कृपा करें।

उत्तर : प्रेमी, तुम शब्द का भेद क्या जानो। अभी तो तुम मन्दिर की चारदीवारी में ही कैद हो। दिल को कुशादा (विशाल) करो। सारी आयु पहली कक्षा में नहीं काट देनी चाहिए। दूसरे अर्थों में शब्द को नाद कहते हैं। जरा अपने ग्रंथों को, शास्त्रों को खोलकर देखो, नाद की महिमा किस जगह नहीं आई हुई। सबसे बड़ा गुरमुख, योगी, गुरु वह ही है जिसने नाद अर्थात् शब्द की महिमा का वर्णन किया है। यह घण्टा, शंख, खड़ताल इत्यादि सब बाहर के स्वांग हैं।

गीता का वचन है कि करोड़ों में कोई विरला आत्म-साक्षात्कार वाला होता है। नाम की महिमा तो सत्पुरुषों ने अनादिकाल से गायन की है। मन की ममता और मैल को धोने वाला एक शब्द ही है। जब तक प्राण और नाम एक सूत में न पिरोये जावें, मन चंचल कब ठहरने वाला है। बड़ा सूक्ष्म विषय है।

शबद शबद बहु अन्तरे, सार शब्द चित दे।
जो शबद से साहिब मिले, सोही शबद गहि ले।।
शबद एक गुरुदेव का, जा का अनन्त विचार।
पण्डित थाके मुनिजनां, वेद न पावे सार।।

बिन शबद के सुरता अन्धकार में, कहो कहां को जाय।
द्वार न पकड़े शबद का, नितनित भटकत रहाय।।
शब्द कहां से उठत है, कहां को जाय समाय।
हाथ पांव बाके नहीं, कैसे पकड़ा जाय ।।

सहंस कंवल से उठत है, सुन्न में जाय समाय।
हाथ पांव बाके नहीं, सुरत से पकड़ा जाय ।।
शबद रूप घट प्रकट भया, भय भरम सब नाश ।
'मंगत' एको सब थाई समाया, जो जलथल करे निवास ।।

शबद की महिमा अपार है, जाने कोई गुणी संत ।
"मंगत" बिन भेदी न पाइये, सत्त सार भगवन्त ।।

प्रेमी, जिन्हां घालिया, तिन्हा पाया। जिनको सत्मार्ग पर चलने का शौक होता है उनको रास्ते पर लगाने वाला कोई न कोई किसी रूप में मिल जाता है। इसी प्रकार प्रयत्न करते रहा करो। ईश्वर आप कृपा कर देवेगा। साधु जमात के साथ नहीं चलते। न ही उनके मठ होते हैं। समय मिले तो सत्संग में आया करो।

प्रश्न 272 : महाराज जी, अनहद नाद की महिमा और सत् स्वरूप प्रकाश की महिमा उच्चारण फरमाते हुए आपने फरमाया है कि उस शब्द की अति गर्जना है और करोड़ों सूर्यों से अधिक रोशनी है। परन्तु पेट में जरा सी वायु की गड़- गड़ाहट होवे तो बाहर सुनाई देती है। दूसरे एक सूर्य की तपिश सहन करनी मुश्किल होती हो तो फिर अन्दर हजारों सूर्यों की रोशनी कैसे सहन की जाती है? उस शब्द की घोर गर्जना बाहर क्यों सुनाई नहीं देती?

उत्तर : प्रेमी, यह मन बुद्धि इन्द्रियों का विषय नहीं है। बुद्धि केवल उस अवस्था को अनुभव कर सकती है, व्याख्या नहीं कर सकती। बुद्धि इस पांच तात्विक शरीर के लगाव से तपश और ठण्डक अनुभव करती है। जब उस परम तत्व में लीन होती है तब न ठण्डक का पता रहता है, न तपिश का। वह परम तत्व तीन गुणों (सत्, रज, तम) के दोषों से न्यारा है। निर्गुण आत्म तत्व को न तपिश तपा सकती है, न हवा सुखा सकती है, न पानी बहा सकता है। बाकी इस

अनुभूति को शरीर के कोट से बाहर निकलने नहीं दिया जाता। यह समर्थ सत्पुरुषों में ही होती है। इस भेद को वे ही जानते हैं। हर समय उस हालत में उठते-बैठते खाते-पीते सरशार (डूबा) रहते हैं। नींद, आलस्य और भूख, यह तीनों शब्द प्राप्ति के बाद समाप्त हो जाती हैं। केवल संसार से बचने के वास्ते महापुरुष थोड़ी खुराक सूक्ष्म रूप में रखते हैं ताकि पर्दा बना रहे। यह बनावटी काम नहीं है।

प्रेमी, कमाई करो, जब तक इस अवस्था को अन्तर विखे अभ्यास द्वारा अनुभव नहीं करोगे तब तक वह परम प्रसन्नता सर पर हाथ धरने से प्राप्त नहीं होगी। दो मिनट के वास्ते यदि आपके अन्दर ऐसी हालत पैदा कर भी दी जावे तो आप उसको सम्भाल ही न सकेंगे। दौलत कमाओ, सम्भालो और संसार में आने का लाभ प्राप्त करो। दूसरों के वास्ते आदर्श बनो। परन्तु यह मोह माया का जाल ऐसा है कि इस जीव को इस जाहरी दृश्य से उपरामता प्राप्त नहीं होने देता। बारम्बार संसार की नश्वरता और शरीर की तबदीली को विचार में लावें। सिमरन अभ्यास और वैराग्य द्वारा बुद्धि अन्तर्मुख होकर अपने आप को समझ सकेगी कि आत्मरूप मैं ही हूं। जब तक ऐसा बोध न होवे तब तक खुलासी बड़ी कठिन है। और यह स्थिति मन, पवन, नाम के एक रूप हो जाने से प्राप्त होती है।

प्रश्न 273 : महाराज जी, नाद के क्या अर्थ हैं?

उत्तर : प्रेमी, नाद शब्द को कहते हैं जिसको ऋषियों मुनियों ने परमेश्वर, जगदीश्वर, सर्व प्रकाश, अखण्ड, अद्वैत, परिपूर्ण करके बतलाया है। अनन्त स्वरूप जिस करके भास रहे हैं। हर एक जीव का मालिक, ठाकुर, सर्जनहार वह नाद ही सबकी जिन्दगी व जान है। उसको जानकर जन्म जन्मांतरों के दुखों से रहित होता है। उसके जानने से ही तृष्णा अग्नि शान्त होती है। निर्भयपन भी नाद स्वरूप को पाकर आता है। इन मादी आंखों से वह अदृष्ट वस्तु नजर नहीं आती। जब तमाम आशा, तृष्णा, कामना से न्यारी होकर नाद स्वरूप में बुद्धि स्थित होती है तब यह आकार में फंसी हुई बुद्धि निराकार अवस्था को प्राप्त होकर केवल ब्रह्म को अनुभव करती है। उस अवस्था को नाद-ध्यान कहते हैं। उस स्थिति में प्रवेश करके सत् असत् के निर्णय को अच्छी प्रकार बुद्धि समझ जाती है। तब जाकर मोह माया के जाल से वास्तविक अर्थों में छुटकारा होता है। सब वेद शास्त्र, कुरान, अंजील उस नाद स्वरूप की महिमा

गा रहे हैं। लेकिन जितनी जितनी बुद्धि निज स्वरूप में स्थित होती जाती है उतनी-उतनी ही उस महिमा का वर्णन करती जाती है। कोई इस अवस्था को पाकर खामोश हो जाते हैं। कोई ही सत् पद के मालिक संसारी जीवों के लिए समय निकालकर दया व मेहर करते हैं। उनके क्रियात्मक जीवन को देखकर फिर से लोगों के अन्दर उत्साह आ जाता है। उन्हें प्रतीत होने लगता है कि कोई स्थिति है जिसे पाकर अडोल, अचाहक होकर अपनी मस्ती में आप विराजमान हैं। उस स्थिति की तलाश ही जीवन का लक्ष्य है। प्रेमियों, यह एक महान् कार्य है जिसे संसार में आके करना मनुष्य के वास्ते परम आवश्यक है। इसी में परम शान्ति और अखण्ड सुख है।

प्रश्न 274 : महाराज जी, निर्वाण अवस्था कितने अर्से में प्राप्त हो सकती है?

उत्तर : प्रेमी, यह अवस्था धरती के किसी कोने में नहीं पड़ी हुई, न आसमान पर लटक रही है। जिस समय बुद्धि को निर्विकार कर लोगे यानि जिस वक्त इन्द्रियों के भोगों और संकल्पों से रहित हो जावोगे निर्वाण अवस्था प्राप्त हो जावेगी। जब बुद्धि निष्काम चित्त से सत् स्वरूप की अनुभवता के लिए अन्तरमुखी अभ्यास करते करते शरीर को बिल्कुल भूल जावेगी, शरीर के नाम रूप की याद तीनों अवस्थाओं में न रहेगी, तब बुद्धि अपने आप को विकारों से निर्विकार करके निराधार होकर स्वयं निर्वाण स्वरूप हो जाती है।

प्रश्न 275 : मूसा को कोहतूर पर खुदा का जलवा नज़र आया था, और हमारे देवता भी कैलाश इत्यादि पर्वतों पर समय गुज़ारते रहे हैं। हम भी किसी ऊँचे पर्वत पर जाकर डेरा डाल दें तो क्या अल्लाह मियां हम पर कृपा कर देंगे? क्या हमें भी किसी पहाड़ की चोटी पर जाकर रब्ब-उल आलमीन (सृष्टि के मालिक परमेश्वर) का दीदार हासिल हो जाएगा?

उत्तर : जिनका तुम नाम ले रहे हो, बड़ी करनी वाले फ़कीर हुए हैं। उन्होंने बड़े तप और त्याग के बाद ही उसका दीदार (दर्शन) हासिल किया। रहा सवाल कोहतूर और कैलाश पर्वत का, यह सब तेरे अन्दर ही मौजूद हैं। करनी करोगे तो खुद ब खुद (स्वयं) इन मंज़िलों का पता लगता जावेगा। चौदह लोक, मानसरोवर तट आदि तेरी ही (योग) अवस्थाओं के नाम हैं। अभ्यास में बैठेगा, सुरति एकाग्र होगी। अन्दर के पट अपने आप खुलते चले जावेंगे। एक बार

पक्के इरादे से बैठने का यत्न तो करो। यह मुकाम खुद ब खुद तेरे अनुभव में आ जावेंगे और फिर किसी से पूछने की ज़रूरत ही न रहेगी।

प्रश्न 276 : महाराज जी, स्वर के भेद को कैसे जाना जा सकता है?

उत्तर : कुछ महापुरुषों ने स्वरों के भेद को बयान किया हुआ है और बतलाया हुआ है कि कौन सी स्वर चलते समय कौन सा काम करना चाहिए और कौन सा नहीं करना चाहिए। इस मकसद के लिए स्वरों में ध्यान रखना पड़ता है। आया अब सूरज स्वर चल रहा या चंद्र स्वर चल रहा है, बुद्धि को इस तरफ लगाए रखना पड़ता है। इस वक्त कौनसा काम करना लाभदायक है और कौन सा नहीं। इस वक्त इस काम के करने से सिद्धी प्राप्त होगी। प्रेमी, इस झगड़े में अभ्यासी जिज्ञासु को नहीं पड़ना चाहिये। बल्कि उसे चाहिए कि होना न होना ईश्वर आज्ञा में देखे। प्रभु प्रेमी से कोई उलटा करम होता ही नहीं। समय के अनुसार ही विचार उठा करते हैं। सुषमना के भेद को जानने वाले की कुदरती तौर पर सब भोगमयी वासनाएं खत्म हो जाती हैं। मन को अशांति में डालने वाले भोग पदार्थ उनके नजदीक नहीं आते। वैसे फकीर हर समय निर्धन ही रहते हैं। लोक भलाई के वास्ते जब इच्छा हो जाए तब सब सामग्री एकत्र होने के साधन आप बन जाते हैं। निष्काम भाव से सब कारज करवाकर उसी समय खत्म कर देते हैं। कई संसार में अधिक सुख प्राप्त करने के वास्ते इस स्वर भेद के साथ प्रीत बनाए रखते हैं। किसी समय कोई दुख न आवे, लेकिन उनको आत्म शांति प्राप्त नहीं हो सकती। आत्म शक्ति जागृत करने वाले को निर्वाद यानि स्वरों का सब ज्ञान कुदरती हो जाया करता है। तुम इस पचड़े में पड़कर क्या लेना चाहते हो? जो बतलाया गया है सार योग ही जानो, सिर्फ पुरुषार्थ की जरूरत है।

प्रश्न 277 : महाराज जी, आप किसी समय बिल्कुल झुक जाते हैं। बड़ी देर के बाद फिर सामान्य स्थिति में आते हैं।

उत्तर : प्रेमी, यह अवस्था और चीज़ है। यह जल्दी नहीं आती। यह ही निर्देह अवस्था है। जब सुरति बिल्कुल शरीर को भूल जाती है–यानि पिण्ड को छोड़कर ब्रह्माण्ड में स्थित हो जाती है, तब आनन्द में मग्न होकर प्राकृत (प्राकृतिक) मण्डल से परे हो जाती है। उस समय ऐसा होता है।

प्रश्न 278 : (किसी प्रेमी का नाम लेकर) वह भी ऐसे ही करता है और कभी-कभी गर्दन हिलाता है।

उत्तर : वह अपने साथ भी ठग्गी करता है और दूसरों को भी धोखा देता है। जब सुरति नाम और श्वास के आने-जाने को अच्छी तरह समझकर आ-जा रही है, और नाम उच्चारण कर रही है, तब झुकने का मतलब ही क्या है? जब किसी समय भाग्य से बड़ी मेहनत करके नाद शब्द प्रकट होता है तब जाकर शरीर को भूलने वाली अवस्था आने लगती है। अभ्यास के समय चौकन्ने होकर, कमर सीधी रखकर होश से नाम उच्चारण करना चाहिए। न ज़्यादा खाने वाले, न ज़्यादा सोने वाले, न ज़्यादा जागने वाले से ही यह यत्न पूरा होता है। जिसका खान-पान, चलना-फिरना, बैठना-सोना यानी आहार, व्यवहार और संगत मर्यादा की है, वह इस परमसुख (रूप) समता शान्ति को कभी-न-कभी प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न 279 : महाराज जी, कुछ प्रेमी सत्संगों में भी समाधि लगाकर बैठ जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी सुरति दसवें द्वार से भी आगे निकल गई है। इस सम्बन्ध में क्या मर्यादा है?

उत्तर : प्रेमी, भरा हुआ घड़ा छलकता नहीं। थोड़े पानी वाला ही आवाज़ दिया करता है। यह सब दिखलावा है। सत्संग में बाहोश होकर निर्मान चित्त से बैठना चाहिए। भूलकर भी सत्संग में दिखलावे वाली बात नहीं करनी चाहिए। अभ्यास बिल्कुल गुप्त रूप में करना चाहिए। वर्षों बीत जायें लेकिन किसी को पता भी न चले कि यह क्या करता है।

प्रश्न 280 : असली नाम के बारे में आपका क्या निर्णय है?

उत्तर : नाम का असली निर्णय यह है कि जो खास बीज मंत्र किसी सिद्ध पुरुष से प्राप्त हुआ होवे और अन्तर्गति व बहिर्गति में पूर्ण रूप से चिन्तन किया जा सके, और पल-पल विखे सत्गुरु शरणागति धारण करके एक नाम के आधार पर ही अपनी तमाम की तमाम मनोवृत्तियों को निश्चल करके बुद्धि को एकाग्र किया जावे। ऐसे साधन को ही नाम चिंतन और योग कहा गया है।

जो नामुकम्मिल साधु के उपदेश को धारण किया होवे, जिसने खुद अपने अन्धकार को दूर नहीं किया हो, तो उस उपदेश में सफलता होनी कठिन है। क्योंकि इस योग मार्ग में गुरु करनी वाले के बगैर सत्पद की प्राप्ति होनी

अति कठिन है। जैसा कि आम बनावटी गुरु घर घर उपदेश देते फिरते हैं, उसका नतीजा महज़ (केवल) एक व्यौहार है, न कि कल्याण है। नामुकम्मिल साधु का उपदेश न यथार्थ कल्याण दे सकता है और न ही बुद्धि उस पर पूर्ण निश्चयगत हो सकती है। ऐसा अच्छी तरह से समझना चाहिए।

कीर्तन

प्रश्न 281 : महाराज जी, कीर्तन किसे कहते हैं? क्या राग रंग के बैजन्तरों से कीर्तन कला लाभदायक है?

उत्तर : कीर्तन के असली मानी हैं कि यकसूं (एकाग्र) होकर परमेश्वर के साथ जुड़कर ईश्वर की प्राप्ति का यत्न करना। आजकल के कीर्तनों में जो कई किस्म (प्रकार) के बैजन्तर वगैरा बजाये जाते हैं और जोर-जोर से गले फाड़-फाड़ कर भजनों का गायन किया जाता है, इससे आनन्द की आरजी (अस्थायी) खुशी के अलावा और कुछ नहीं मिलता।

असली कीर्तन तो वह है जो कि हर वक्त मानुष के अन्दर हो रहा है मगर बुद्धि अपनी अज्ञानता के कारण इस असली आनन्दमयी कीर्तन को अनुभव नहीं कर सकती है। जो कीर्तन सिमरन एकाग्रचित्त होकर किसी एकान्त स्थान में बैठकर मन के अन्दर ही अन्दर किया जावे वह ही ज्यादा लाभदायक है। इससे ईश्वर की नजदीकी (निकटता) प्राप्त हो सकती है। असली कीर्तन तब ही हासिल हो सकता है जब बुद्धि महापुरुषों के बतलाये हुए मार्ग पर चलकर निर्मानता को हासिल करती है और शुद्ध चित्त होकर अन्दर ही अन्दर ईश्वर प्रेम में मस्त हो जाती है।

प्रश्न 282 : महाराज जी, महाराज कृष्ण खुद कीर्तन करते रहे हैं तो हम क्यों न करें?

उत्तर : कृष्ण जैसा योगी कभी कीर्तन नहीं कर सकता था। ये मुखालिफ (विरुद्ध) लोगों ने मनघढ़त बातें बनाई हैं। अगर तुम इनकी नकल करना चाहते हो तो वह आपके कहने के मुताबिक नाग के फन पर बैठकर कीर्तन किया करते थे, आप भी किया करो। प्रेमी, कृष्ण ने जो उपदेश अर्जुन को मन ठहराने का बतलाया था उस पर अमल करें।

निर्गुण तथा सगुण पूजा

प्रश्न 283 : मूर्ति पूजा के बारे में आपका क्या विचार है? इस समय जो मूर्ति पूजा चल रही है उसमें कई प्रकार के साधन नाचने, कूदने घंटी, चिमटे, खड़- तालें और भी कई प्रकार के बाद्य यंत्र इस्तेमाल करने का जो चलन है क्या यह साधन मन को शांति दे सकता है?

उत्तर : मूर्ति की पूजा सिर्फ इतना ही कल्याण दे सकती है कि सत्पुरुषों के गुण और कर्म का आदर्श उनके स्वरूप से लिया जावे। आदर्श के बगैर जो मूर्ति पूजा है वह सख्त ज़हालत (अज्ञानता) है। प्रेमी, नाराज न होना, कबीर ने फैसला कर दिया है:-

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहाड़,
याते तो चक्की भली जो पीस खाए संसार ।
कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाय,
ताँ चढ़ मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।

प्रेमी, संसार का निर्णय करने वाले फकीर किसी का लिहाज नहीं करते। यह सब साधन मन बहलावे के वास्ते हैं। आगे ही मन बड़ा चंचल है। सिमरण-ध्यान की बजाए अगर इसे और साँगोपांग में लगा दिया जाएगा तो और भी चंचल होगा। कभी कृष्ण की भक्ति करता है, कभी राम की, फिर शिव की शुरू कर देता है। वहां से स्वार्थ पूरा नहीं हुआ तो हनुमान की शुरू कर देगा। ये जितने भी देवी-देवताओं, अवतारों की पूजा, सिमरण, ध्यान में जीव लगे हैं, सब स्वार्थवादी हैं। कृष्ण खुद गीता में फरमाते हैं:-

हे अर्जुन, जो लोग दूसरे देवी-देवताओं में श्रद्धा करके उनकी उपासना करते हैं, वह मेरी बेकायदा पूजा है।* इसी कारण उन लोगों को मुक्ति नहीं मिलती और वे आवागमन के चक्र में फंसे रहते हैं। जो पुरुष स्वार्थ से रहित

---

* ये अपि अन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धया अन्विताः।
ते अपि मामेव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकम् ।।
गीता, 9-23

अर्थात् हे अर्जुन! यद्यापि श्रद्धा से युक्त हुए जो भक्त दूसरे देवताओं को पूजते है, वे भी मेरे को ही पूजते हैं परन्तु उनका वह पूजना अविधिपूर्वक है अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।

निष्काम चित्त से मेरी उपासना यानी आत्मा की खोज करते हैं, उनको फिर मैं आवागमन से छुड़ा लेता हूं।

प्रेमी, किसी जगह उन्होंने अपने शरीर की भक्ति नहीं बतलाई। आत्म भक्ति के बारे में ही सारी गीता में वर्णन है। शरीर नित तबदीली युक्त है, आत्मा नित्य अविनाशी है और घट-घट में सर्व व्यापक है। मूर्ख लोग आत्म-आनन्द को जानने की कोशिश नहीं करते।

संसार के किसी काम को करने के वास्ते जब सोचा जाता है तब बड़े एकाग्र होकर विचार करने पर सही सोच आती है। ईश्वर कुल संसार का मालिक है, उस महान् तत्व को समझने के लिए नाचना, कूदना क्या काम करेगा? बड़ी जीरक बुद्धि द्वारा सूक्ष्म अवस्था को जाना जाता है। जब तुम सत्पुरुषों के असूल, सिख्या (शिक्षा) और ज्ञान विचार करोगे तब तुम्हारा सब वहम (भ्रान्ति) दूर हो जायेगा। तौहमात, वहमात (भ्रामक धारणाओं) वाली संशययुक्त बुद्धि क्या कभी सत्मार्ग में लग सकती है? सब चैतन्य महाप्रभु, मीरा नहीं बन सकते। उनके अन्दर कई जन्मों की जाग लगी हुई थी। जिस राग में वे मग्न थे वे सब उनके अन्दर की हालत थी जिसमें वे मस्त रहते थे।

प्रेमी, सत्पुरुषों के जाहिरी चिन्हों को धारण करने से सत्पुरुष नहीं बन जाता, उनकी सिख्या (उपदेश) धारण करने में जीव की कल्याण है। महापुरुष देश काल के अनुसार कई प्रकार के भक्ति साधन प्रकट कर दिया करते हैं। गाना बजाना यह काम इन्द्रिय का विषय है। हर एक शरीरधारी के अंतरविखे रंग लगा हुआ है। जो उसे सुनने, समझने का यत्न करता है उसने ही ज्ञान ध्यान के सार को पाया है। प्रभु कीर्तन ढोलकी बाजों से नहीं बनता। यह तो दो चार घण्टे बजा करके बाद में जब थक जाता है, छूट जाता है, अखंड नहीं रहता। लगातार महिमा जो अन्तरविखे नित्य प्रति हो रही है, जब तक बुद्धि उसमें लवलीन नहीं होती जन्म मरण का ताँता नहीं टूटता। यत्न करते-करते जिस समय बुद्धि त्रिकुटी में स्थित नाद स्वरूप परमेश्वर को बोध करती है, तब जाकर इसका चंचलपना खत्म होता है और काल के भय से परे होकर निर्भय अवस्था को प्राप्त हो जाती है। तभी गुरु महिमा का पता लगता है। सत्पुरुष साधारण जीवों के वास्ते छोटे-छोटे साधन बाज औकात (कई बार) रुचि बढ़ाने के वास्ते बताते आऐ हैं। यह नहीं कि सारी उम्र "अलफ, बे" यानी "क, ख" ही पढ़ते रहें। आगे बढ़ ने का यत्न भी करना चाहिए। सत्पुरुषों ने वेद, ग्रंथ, गीता, उपनिषद् वगैरा शास्त्र

किस वास्ते रचे हैं? इसीलिए न कि अच्छी तरह से विचार करके सही तरीका इख्तियार (धारण) किया जावे। अब तुम ही बताओ कि क्या करना चाहिए?

प्रश्न 284 : महाराज जी, भगवान की पूजा के निर्गुण और सगुण दो रूप बताए गए हैं। इसको समझाने की कृपा करें।

उत्तर : प्रेमी, परमात्मा को कर्त्ता, व्यापक और प्रेरक समझना और इस संसार के जर्रे जर्रे (कण कण) में उसकी महानता को देखना और उसकी आराधना करना, यथाशक्ति आवश्यकता अनुसार प्राणियों की सेवा करना–इन सबमें परमात्मा को ही जानना–यह उसकी सगुण पूजा है।

परमात्मा को अकर्त्ता, अलेप और असंग समझना और नित्य और निरन्तर ध्यान मग्न होकर इन ही भावों को चिन्तन करना उसकी निर्गुण पूजा है। निर्गुण उपासना शुरू में कठिन है। भक्त सगुण के बाद निर्गुण उपासना में सहज ही प्रवृत्त हो जाता है।

प्रश्न 285 : महाराज जी, मूर्तिपूजा हमारे लिए कहाँ तक कल्याणकारी है?

उत्तर : प्रेमी, जैसे शुरू में बच्चे के हाथ में कलम पकड़ाकर पूरणों पर फिरवाई जाती है, मूर्तिपूजा का लाभ यही है कि महापुरुषों के आदर्श जीवन को धारण किया जावे। परन्तु इसके विपरीत तू भगवान को बनाता है, फिर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करता है। भगवान को बनाने और प्राण डालने वाला भी तू ही हुआ। इससे प्रकट हुआ कि तू ईश्वर को बनाने वाला है लेकिन जिसने तेरे शरीर रूपी मन्दिर को साजा और स्वयं अन्दर विराजमान है उस सर्जनहार प्रभु को भुला दिया है। यही मूढ़ता है।

जिस साहब ने देह पिण्ड साजा,
मिरतक शरीर में आय विराजा।
जिसकी शकत सब बलधारी,
सो परमेश्वर जप पार मुरारी।

प्रश्न 286 : महाराज जी, मेरे विचार से निराकार को जानने के लिए साकार का सिमरन ध्यान करना क्या ठीक नहीं है?

उत्तर : प्रेमी, एक विचार करो। यह जीव जन्म से ही शरीर की पूजा में लगा हुआ है। समझता है मेरे जैसे आकार वाला ईश्वर भी होगा। पहले शरीर

की अवस्था को जानो। यह क्या मनारा खड़ा हुआ है। इसके अन्दर क्या वस्तु बोल रही है। बोलने वाली चीज का क्या आकार-विकार है। जब वह शक्ति शरीर को त्याग देती है तब उसकी क्या हालत होती है। ईश्वर को छोड़ो, पहले इस झगड़े को समझो। जीव का स्वभाव क्यों आकार वाली वस्तुओं की तरफ दौड़ता रहता है। मूर्तियों की पूजा और कई तरह की मनमानी पूजा, व्रत और दरख्तों, पत्थरों, ग्रन्थों, मढ़ी मसानों का आधार लेकर चलता है। यह सब जैसे बच्चे गुड़िया पटोले लेकर खेलते हैं, की तरह है। यह सब झगड़ा ही है। ईश्वर के सिमरन को छोड़कर के जो इस तरह पाखंड करके मानसिक शांति चाहते हैं, सारी आयु और शरीर खत्म हो जाने पर उनको कुछ हासिल नहीं होता। लाखों मनमाने देवी देवता हिन्दुओं ने बना रखे हैं। किसी एक का शायद पता होगा, फलां उसके माता-पिता थे, पत्थर को धूप दिखाते रहते हैं। मुर्दों को पूजते हैं। जिन्दगी की कोई पूछ ही नहीं। तेरे शरीर के अन्दर ही कल्याण स्वरूप शिव मौजूद है, उसकी खोज करो। श्रद्धा, सत् विश्वास रूपी औखद (औषधि) को जब घोटा देगा तब उससे ऐसा रंग निकलेगा जिसे पीकर कोई ख्वाहिश नहीं रहती। इसकी जगह संसारियों ने भंग निकाल ली है। शिव को भंग पीने वाला बना दिया है। जैसे भंग - चरस सुल्फा पीने वाले तुम्हारे गुरु वैसे ही तुम्हारे जैसे उनके शिष्य बन जाते हैं। चलो जैसी मर्जी पूजा पाठ करो। जिस तरह गुरु अवतारों ने तप-त्याग करके संसार में बड़े-बड़े कर्म किए हैं, उनके नक्शे कदम पर चलें।

कबीर या जग को समझाइयो सौ बार।
पूंछ तो पकड़े भेड़ की उत्तरा चाहे पार।।

साकार की पूजा यह ही है कि जीती जागती जो मूर्तियाँ हैं इन जीवों की तन, मन से सेवा कर। किसी को मन, बचन कर्म से कष्ट न दो। कोई भूखा है उसकी अन्न जल से सेवा करो, नंगा है कपड़ा दे दो और कोई दुखी अनाथ है उसकी जो सेवा बन सके कर दो। जीभ के स्वाद के वास्ते किसी जीव का बध न करो। धर्म-अधर्म को समझने वाली बुद्धि रानी है, जो कि पल में सब जायजा ले लेती है। जब ऐसा अमल इख्तियार करोगे तब तो असली मूर्ति का पुजारी जान। प्रेमी, मन की मैल साफ करो। शारीरिक मैल नहाने से जाती है, चाहे जिस जगह जाकर पानी में नहाओ। मन की मैल सत्संग, सिमरन, सेवा को धारण करने से और नुमायशी जीवन को छोड़ने से दूर हो सकती है। छोटे-छोटे

आसरे न ढूंढो। पता नहीं क्यों मूर्ति पूजा खड़ी हो गई है। छोटी बुद्धि के जीवों के वास्ते यह सिलसिला खड़ा किया गया होगा। वह भी शायद इस वास्ते किया गया हो कि बुजुर्गों के उपदेश को भी साथ-साथ अपनाया जाए। इस बात को तो लिया नहीं केवल अपना हलवा मांडा पूरा करने के वास्ते मूर्ति पूजा खड़ी कर दी। यह आज से नहीं, राम के जमाने से पहले विष्णु की मूर्ति का आधार ले रखा था। फिर आहिस्ता-आहिस्ता ज्यों-ज्यों जमाना गुजरता गया, अनेक तरह के लिंग लोगों ने खड़े कर लिए। बुद्ध ने बड़ी कोशिश की, यह लोग अच्छे कर्मों को इख्तियार (धारण) करें। मगर बाद में उनके नाम लेवा जो थे उन्होंने बुद्ध की मूर्तियां खड़ी करके पूजा शुरू करवा दी, फिर शंकराचार्य ने बुद्ध मत को खत्म किया। इसके बाद मलेच्छाचार्य, माधवाचार्य ने राम कृष्ण की मूर्तियों को थाप दिया। बुद्ध धर्म को हिन्दुस्तान से तकरीबन खत्म कर दिया था। अब फिर बुद्ध के पुजारी शुरू हो रहे हैं। सब संसार के लोग मूर्ति पूजक हैं। हिन्दुस्तान में केवल आत्म ज्ञान था। लाखों वर्षों से इस जगह आत्मा की खोज वाले चले आ रहे हैं। जितने भी गुरु, अवतार, ऋषि हुए हैं हद दर्जे के आत्म अनुभवता वाले थे। अब हद दर्जे का नास्तिकपन भी इसी जगह मौजूद है। संसार में सब किस्म के लोग हैं, तुम अपनी सफाई की कोशिश करो। सारी धरती के कांटे कभी किसी ने खत्म नहीं किए। जब जूता पहनोगे कांटे तुम्हारे वास्ते नहीं रहेंगे। आत्मा को जानने वाले बनोगे तो तुम्हारी दृष्टि में कोई भी भिन्न भेद नहीं रहेगा। किसी उस्ताद को ढूंढो, जो तुमको जिस्म और जान का निर्णय समझाए। किस तरह इस शरीर में परम ज्योति को अनुभव किया जाता है, जिस करके सारा ब्रह्माण्ड नज़र आ रहा है। इस हिन्दूमत के ब्राह्मण गुरु हैं, चाहे डोबें या तारें। होश वाली बुद्धि बनाओ। अपने गुरु आप बनो।

प्रश्न 287 : महाराज जी, यह मूर्ति पूजा राम, कृष्ण, दुर्गा बग़ैरा यानि देवी-देवताओं, अवतारों की जो की जाती है, क्या यह सब अन्धा-धुन्ध ही चला जा रहा है?

उत्तर : जो लोग ऐसी पूजा में लगे हुए हैं यह अन्ध विश्वास ही है। मगर जो कोई आचार विचार धारण कर लेते हैं उनका जीवन अच्छा बन जाता है। जो केवल भक्ष-अभक्ष खाने पीने में देवी-देवताओं के नाम लेकर ग्रहण करते हैं, इस प्रकार की मूर्ति पूजा अन्धकार परस्ती है। दुर्गा के जो कई हाथ दिखाये गये हैं यह सब ताकतें यानि शक्ति अलग-अलग दिखाई गई हैं, जो दैवी सम्पदा

वाले सत्पुरुष के अन्दर कुदरती तौर पर आ जाती हैं। स्त्री हो या पुरुष जिसने मेहनत की, शक्तियां उसे हासिल हो जाती हैं। हर तपस्वी के अंदर तप मुकम्मल होने पर शक्तियों का भंडार खुल जाता है। वह इन्हें इस्तेमाल करे या न करे। आम तौर पर कोई भी अपनी कमाई तकसीम नहीं करता। ओछी तबियत वाले झट उभर जाते हैं। निर्गुण अवस्था में कोई विरले ही स्थिति पाकर खामोश हो जाते हैं या सत् विचार और सत् कर्म का रास्ता समझाते हैं। रजोगुणी फ़कीर जज़्ब नहीं कर सकते, अपनी मेहनत ज़ाया कर बैठते हैं। नानक, कबीर, कृष्ण, मुहम्मद आदि सत्पुरुषों के साथ कई लोग मुकाबले करने, इम्तिहान लेने वाले और ईर्ष्या करने वाले हो गए थे। इसलिए गाहे-बगाहे उनको प्रभु आज्ञा में रहते हुए कुछ करके दिखाना पड़ा। वैसे सत्पुरुषों ने ईश्वरी विश्वास की महिमा सत् विचारों द्वारा ही करवाई है। मुहम्मद को हुए चौदह सौ वर्ष होने लगे हैं। उनकी बनाई हुई नीति से कोई आगे पीछे नहीं हो सकता है। कितना खुदा पर विश्वास को पक्का कर दिया गया है और कैसी हिदायत दी है कि जो भी फेल (कर्म) करो अल्लाह की रज़ा में करो। भगवान कृष्ण ने शिक्षा दी है कि 'मैं कर्त्ता' को छोड़कर अगर कत्ल कर दे तो कोई पाप नहीं। मतलब यह कि प्रभु आज्ञा में पूरी तरह दृढ़ हो जाने के वास्ते समझाया है। गीता में कहां किसी देवी-देवता के आगे हाथ जोड़ने के वास्ते कहा गया है। चोटी के जो सत्पुरुष हुए हैं उन्होंने केवल ईश्वरी विश्वास को पक्का करने की अनेक तरह से कोशिश की है। ढिलमिल यकीन नहीं होना चाहिए।

प्रश्न 288 : महाराज जी, कृपा करके सगुण और निर्गुण वाले मसले पर और रोशनी डालें?

उत्तर : प्रेमी, सगुण और निर्गुण वृत्ति की हालतें हैं, सगुण वृत्ति अर्थात् सबको आत्मा के आधार पर देखना, इस मसले को न समझने के कारण मूर्ति पूजा शुरू हुई। निर्गुण वृत्ति, सबसे आत्मा को असंग देखना।

प्रश्न 289 : क्या आप बतायेंगे कि बुत परस्ती के बारे में आपका क्या ख्याल है? (कप्तान यूसफखां बकरवाल का सवाल है)

उत्तर : कप्तान साहब, इस जिस्म के बनाव श्रृंगार में लगे रहते हैं न। क्या यह बुत परस्ती नहीं। अगर कोई इंसान जिस बुत या मूर्ति को मानने वाला है उसकी तालीम पर अमल करता है तो ठीक है। वह वहदत परस्त है वरना सब बुत परस्ती ही है।

पाप और पुण्य

प्रश्न 290 : महाराज जी, पापों में महापाप क्या है?
उत्तर : प्रेमी, किसी जीव को दुख देना महापाप है।

प्रश्न 291 : महाराज जी, पुण्यों में महापुण्य क्या है?
उत्तर : प्रेमी, किसी को सुख देना महापुण्य है।

प्रश्न 292 : महाराज जी, पाप तथा पुण्य कर्म की क्या पहचान है?
उत्तर : जिस कर्म को करने से तेरे अन्दर बशाशत हो (खुशी हो) दिल में उत्साह पैदा होवे, वे पुण्य कर्म हैं तथा जिन कर्मों के करने से तेरे अन्दर चिन्ता, भय तथा क्षोभ पैदा होवे वे सब पाप कर्म हैं।

प्रश्न 293 : महाराज जी, किसी के साथ बुरा बरताव किया जाता है तो उसमें किस पर उसका ज्यादा खराब असर होता है?
उत्तर : प्रेमी जी, बुराई जितना उसका नुकसान (हानि) करती है जो किसी के साथ बुराई करता है, उतना उसका नहीं करती जिसके साथ बुरा बरताव किया जाता है। किसी भी बुराई के करने से पहिले वह अपने अन्त:करण को बुरा बनाता है जो सबसे बड़ा नुकसान है। मन का बुरा होना ही असल में बड़ा नुकसान है।

प्रश्न 294 : महाराज जी, पाप कर्म करने से विशेष हानि क्या है?
उत्तर : पाप कर्म वासना रूपी आग को प्रज्जवलित करने के लिए घी की आहुति का काम करते हैं और वासना की आग का बढ़ना ही मन को महाचंचल बना देता है, यह ही सबसे बड़ी हानि इस जीव को है।

तीर्थ यात्रा

प्रश्न 295 : महाराज जी, तीर्थ पर जाने का कुछ लाभ है या भटकना ही रहती है?

उत्तर : तीर्थ यात्रा अच्छी है, सैर हो जाती है। जो मकसद (उद्देश्य) असली था वह तो ख़त्म हो गया है। पुरातन समय में तीर्थों पर सन्तों का बास हुआ करता था, जो भी जाता था कुछ ग्रहण करके आता था। जिस जगह कोई रब्ब का प्यारा बैठा हुआ हो या जिस जगह हरि कथा होती हो, तत्व ज्ञान का विचार हो, किसी गरीब यतीम की सेवा हो रही हो, ये सब जगहें तीर्थ ही हैं। यह नहीं कि जिस जगह जल ज्यादा चलता हो वह तीर्थ है।

तीर्थों पर जाने की महानता सिर्फ इतनी ही है कि जनता का संगठन आसानी से हो सकता है। वहाँ पर आए हुए सन्त महात्मा अच्छी तरह अपना विचार सुना सकते हैं। सत् विचार हो गये, अश्नान (स्नान) हो गया, कुदरती जगहें देखी गईं। मन प्रसन्न हो गया। बस यही तीर्थ का लाभ है।

प्रश्न 296 : महाराज जी तीर्थों के मानी क्या हैं?

उत्तर : प्रेमी, जी, "समता विलास" में "तीर्थ यात्रा के सिद्धान्त" में यह बात अच्छी तरह खोल कर समझा दी गई है, उसको विचार कर लें। अंत:करण को ठंडक देने वाली जो भी वस्तु है उसे तीर्थ रूप ही जानो।

प्रश्न 297 : पंजासाहिब सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। महाराज जी, लाखों लोग यहाँ मुक्ति के लिये स्नान करते हैं! क्या ये गलती करते हैं?

उत्तर : इस तरह मुक्ति नहीं मिलती। ऐसी रीतियाँ लोकसंग्रह के लिये सत्पुरुष बना जाते हैं। एकत्र होने में कई दुनियावी दु:खों से छुटकारा मिलता है। पानी शरीर की मैल साफ़ करता है। मन की मैल मन-पवन की संधि से और गुरु के वाक्य से हुआ करती है। मन की मैल इन रिवाजों से नहीं जाती। सत्पुरुष जिस जगह बैठते हैं उस जगह से संसारी जीव ख़्वाह-मख़्वाह ही प्रेम बना लेते हैं। यह जगह आज की नहीं बनी हुई है। पुरातन वक़्त से यह स्थान चला आया है। यहीं पाणिनि ऋषि का आश्रम था। यहाँ उस ऋषि के समय में हर वक्त दस हजार विद्यार्थी व्याकरण पढ़ने के वास्ते रहते थे। यह जल उस ज़माने में भी

था। फिर यह जगह बौद्धों के कब्जे में रही। तक्षशिला बड़ी भारी यूनिवर्सिटी थी। पेशावर परशुराम का स्थान था। जमरोद जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। इस तरह ज़माना बदलने पर इन जगहों का रूप-रंग बदल जाया करता है। इस तरह श्री गुरु नानकदेव का बाबा वलीकन्धारी से संवाद हुआ था। वलीकन्धारी बड़ा ही ऋद्धि-सिद्धि का मालिक था। गुरु नानक बड़े ही सत्पुरुष थे। उनके पंजे से वह निकल न सका। आख़िरकार बड़े नम्रभाव से सेवा में पेश आया। यह पंजा महाराजा रणजीतसिंह के समय खुदवाया गया था। उसने सोचा इससे हिन्दू धर्म में जाग्रति होगी। ग़ैर इलाक़े पर हमला करते वक़्त आते-जाते एक-दो दफ़ा उसका क्याम (निवास) भी यहाँ हुआ था। सुन्दर जगह देखकर उसे पक्का कर दिया और इतिहास में भी यह जगह आ चुकी थी। जिसका ज़ोर होता है वह कुछ न कुछ कर ही लेता है। बाकी वलीकन्धारी की जो पत्थर फेंकने की बात है, वह ग़लत है। पत्थर उसके स्थान से इधर आने का सवाल ही पैदा नहीं हो सकता। पीरों के मुरीद ऐसी बातें उड़ाते रहते हैं। इन बातों में जीवों का कल्याण नहीं। कल्याण सत्पुरुषों के वचन मानने में है। इस संसार का चक्कर चलता रहता है। वक्त आने पर यह भी तबदील हो जायेगा। सदा एक जैसी प्रकृति की हालत नहीं रहती। तबदीली होती रहती है। एक रस केवल निरंकार (निराकार) आत्मा ही है।

जीव गति

प्रश्न 298 : महाराज जी, गति किसको कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, वासना से निर्वास होना यह असली गति है। जब सत् स्वरूप परमेश्वर चित्त में दृढ़ हो जाता है संसार की इच्छा, कामना खत्म हो जाती है, कर्म बंधन टूट जाते हैं, सब कुछ कर्त्ता हर्ता उस प्रभु को मानता है, अपनी "मैं" भावना बिल्कुल निकल जाती है यानी अहंकार ख़त्म हो जाता है, इस अवस्था को गति कहते हैं। ऐसी गति तो जीव अपने आप ही कर सकता है। अगर खुद वासना की गिरफ्तारी में है तो दूसरों को गति कौन दे सकता है। गति पैसे, पाईयां, लौंग, इलाइचियों द्वारा कैसे हो सकती है। हर एक जीव को सुख दुख अपने शुभ अशुभ कर्मों अनुसार मिलता है। इसलिए करनी मलीन होने पर मेरी गति मेरे बच्चे, भाई बंध या पंडित कैसे करवा देंगे। जब तक अपने कर्म साफ नहीं तीर्थों का भ्रमण, देवी देवताओं का पूजन, पिंड आदि गति नहीं दे सकते। प्रेमी, जाकर सत् विश्वास द्वारा सिमरन, ध्यान, सेवा, सत्संग करो जिनसे चित्त ठंडा रहे। जो पुराने वहम व तोहमात में फंसा रहता है उसकी कभी गति न होगी, न कोई उसकी गति कर सकता है। ईश्वर विश्वासी लोग सत्कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं। निर्मल चित्त से ईश्वर की याद में रहना, संसार को नित असत् मानना, उस महाप्रभु को कर्त्ता हर्ता जानकर नित सब जीवों से प्रेम करना यह ही सत्कर्म जीव को गति देने वाले हैं। ऐसा हर एक प्रेमी को विश्वास होना चाहिए। जो जिंदगी में कुछ नहीं करते उनके वास्ते आगे परमात्मा ने गति देने वाला दफ्तर नहीं खोल रखा है। इस वास्ते अपनी गति आप करनी होगी। दूसरे के भरोसे रहने वाला कभी सुखी नहीं होता। ईश्वर आपको सत्बुद्धि देवे।

प्रश्न 299 : महाराज जी, महाभारत काल का ऐसा जिकर महाभारत ग्रंथ में आता है कि उस वक्त पिण्डोदक क्रिया, पितर आदि को मानने का सिलसिला परंपरागत चल रहा था। गीता ग्रंथ में भी श्री कृष्ण महाराज से वीर अर्जुन ने कहा है कि अगर लड़ाई होगी तो हजारों लोग उसमें मारे जावेंगे और उनकी विधवाएं दुनिया में वर्णसंकर फैलाने का कारण बनेंगी। पिन्डोदक कर्म लुप्त हो जावेंगे और पितरगण

अधोगति को प्राप्त होंगे। महाराज जी, आप से प्रार्थना है कि इसे आप साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, महाभारत ग्रंथ के बारे में पता चला है कि राजा भोज के जमाने में इस ग्रंथ में दस हजार श्लोक थे। अब इसमें एक लाख से ऊपर श्लोक हैं। इससे पता चलता है कि असलियत कभी की गायब हो चुकी है। ब्राह्मणों ने अपना मतलब सीधा करने की खातिर जैसा चाहा अपने मतलब का उसे घड़ लिया। दूसरी बात यह है कि उस जमाने में भी दुनिया में अन्धकार परस्ती जारी थी। गीता ज्ञान की जरूरत श्री कृष्ण ने अर्जुन को इसीलिए महसूस करवाई कि अंधकार से हटकर प्रकाश की तरफ आवे। श्री कृष्ण ने गीता में साफ तौर से उच्चारण फरमाया है कि हे अर्जुन, यह असली ज्ञान जो मैं तुझको बता रहा हूं कोई नया नहीं है। पहिले भी पुरातन बुजुर्गों ने इस ज्ञान को लोगों से कहा है, आज फिर जब वह ज्ञान दुनिया भूल चुकी है मैं तुझको बतलाता हूं। तू अंधेरे से जागृत होकर मेरे इस शुद्ध ज्ञान को सुन जो पहिले भी था, आगे भी रहेगा। आज वह ज्ञान कालचक्र से लुप्त (लोप) हो गया है, इसलिए फिर तेरे आगे रखता हूं। इस ज़माने में तू और तेरे गिरदोनवाह (आसपास) के लोग सारे अंधकार में पड़े हुए हैं। तेरी यह बातें बुद्धिमान होते हुए भी मूर्खता की सी हैं। जो चीज़ सोचने लायक नहीं है उसके बारे में तू सोच करता है और फिर पण्डितों की सी बातें करता है। यह तुझे शोभा नहीं देता। इस तरह कृष्ण ने अर्जुन को बहुत सी बातें कही हैं और सचेत किया है। प्रेमी, इस तरह सब पितर वगैरह का चक्कर ढोंग है। जीव चार प्रकार की सृष्टि में विचरता है अंडज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज। कितने से कितना सूक्ष्म (अथवा) स्थूल शरीर किसी जीव का हो, वह भी इन सृष्टियों में से ही होगा। पितरों का इन सृष्टियों से अलग कोई वजूद नहीं होता। ब्राह्मणों ने अपना रोजगार चलाने के लिए यह सब कल्पना (पितरों, गति इत्यादि की) कल्पी हुई है। तेरे माता पिता अन्य बुजुर्ग जब तक इस फानी (नश्वर) शरीर में वास करते हैं तेरे पितर हैं, तू उनकी सेवा कर और हर प्रकार से उन्हें सन्तुष्ट कर, यह ही तेरे पितरों की पूजा है। इसके अलावा जब शरीर छोड़कर जीव चल देता है तो उसका तेरे साथ सम्बंध खत्म हो जाता है।

यह जीव सदा अविनाशी है, एक शरीर को छोड़कर फौरन (तत्काल) दूसरा धारण कर लेता है। अब बताओ, कौन तेरा पितर रहा?

दूसरे शरीर में जाकर दूसरों से सम्बन्ध कायम (स्थापित) कर लेता है। इस तरह से जन्म मरण को प्राप्त हुआ यह जीव इस सृष्टि में घूम रहा है। अब किसको पितर कहा जाये? इस सिलसिले को अच्छी तरह समझ लो।

प्रश्न 300 : महाराज जी, श्राद्ध करने का क्या लाभ है?

उत्तर : प्रेमी, श्राद्ध करना तो बड़ा पुण्य नहीं, बल्कि बुजुर्गों की याद मनाने का एक तरीका है। आप रोजाना ही उनकी याद दिल में रखें, हर वक्त गरीबों की अन्न पानी से सेवा श्रद्धापूर्वक करने में कोई हर्ज नहीं।

प्रश्न 301 : महाराज जी, श्राद्ध में किया हुआ दान प्राणी को मिलता है या नहीं?

उत्तर : श्री महाराज जी (मुस्करा कर): प्रेमी, पहिले यह तो बताओ कि जो कुछ दान दिया जाता है, प्राणी के नाम पर दिया जाता है या कुछ और?

प्रेमी: महाराज जी, नाम पर दिया जाता है।

श्री महाराज: प्रेमी, नाम किसका? शरीर का या जीवात्मा का?

प्रेमी (कुछ देर सोचकर): महाराज जी, नाम तो शरीर का होता है।

श्री महाराज जी : मरने पर शरीर को अग्नि के सुपुर्द कर दिया, पांच तत्व अपने तत्वों में मिल गये, जीवात्मा का कोई नाम नहीं है। अब आप ही समझ लो कि दान किसको मिलता है। प्रेमी, यह तो पहिले भले पुरुषों ने दान की प्रणाली चलाने के लिए समाज के लिए एक विधान बना छोड़ा है ताकि इस तरह कुछ न कुछ दान होता रहे और दान करने की परिपाटी बनी रहे।

प्रश्न 302 : महाराज जी, जब जीव शरीर से निकल जाता है, बाद में सम्बन्धी जो क्रिया-कर्म करवाते हैं, क्या उसे मिलता है या नहीं?

उत्तर : प्रेमी, तुम लोग व्यापारी हो, हमेशा नफा (लाभ) वाली बात सोचते हो। किसी को कुछ मिलता है या नहीं, मगर तुम्हारे हाथ से तो अच्छे कर्म किसी बहाने से हो ही जाते हैं। बुजुर्गों ने सोचा होगा, संसारी लोग

हमेशा तो पुण्य-दान-यज्ञ कर नहीं सकते, इनके वास्ते ऐसे तरीके रख दो जिससे कि बँधे हुए किसी समय अच्छे कर्म कर सकें। हाँ, शुभ कर्म किया हुआ जरूरी फल देता है। इस बहाने माता-पिता, पितामह की याद हो जाती है, जैसे कि आजकल रिवाज चल रहा है जन्मदिन मनाने का। इसी तरह पितरों की याद मनाने के दिवस मुकर्रर कर दिये हैं। श्राद्ध के पन्द्रह दिनों में तुम कुछ दान दोगे तब ही वे तृप्त होंगे, बाकी साल के 350 दिन किधर से पितर गुजारा करते होंगे?

प्रेमी, कुछ बुद्धि से सोचना भी चाहिये, ब्राह्मणों ने खाने के बहुत से रास्ते निकाल रखे हैं। अब्बल (प्रथम) ज्योतिष द्वारा दूसरों को कोई ग्रह चमोड़ (लगा) देते हैं और अपना काम चलाते रहते हैं- दूसराः किसी देवी-देवता की पूजा वगैरा, कथा-वार्ता, जन्म-मरण, कई तरीके उन्होंने घड़ रखे हैं। पैदायश से लेकर मरण तक उनकी पूजा चलती रहती है।

मोटी बात समझो, जिन्दगी में जो कुछ भी अच्छा या बुरा कर्म कर लिया है, इसका इवजाना (फल) जरूर मिलेगा। ऐसी आदत डालो (कि) हर समय अच्छे कर्म होते ही रहें। श्राद्ध का मतलब श्रद्धा से जरूरतमंद की तन, मन, धन से जैसी सेवा बन सके यथाशक्ति करते जाओ, व्यौहार साफ रखो, सादा खुराक हो, दो चार घड़ी ईश्वर की याद किसी गुरु पीर के बताए हुए रास्ते द्वारा कर लो, अपने आप परलोक सुधर जायेगा।

प्रश्न 303 : महाराज जी, यह संशय बना रहता है कि जो प्राणी देह छोड़कर चला जाता है उसके कल्याण के वास्ते ब्राह्मण लोग हमसे बड़ा कर्मकांड करवाते हैं। क्या गुजरे हुए प्राणी को कुछ मिल सकता है?

उत्तर : प्रेमी ब्राह्मण लोग ऐसा न कराएं तो आप काबू आने वाले थोड़े हो। जीव ने जो शुभ-अशुभ कर्म कर लिया है वह ही उसके साथ जाता है। जो कुछ आप बाद में करते हो अगर उसको न कुछ पहुंचा तो इस जगह पुण्य, दान कराने वाला जो है उसे तो जरूर मिलेगा, कुछ ब्राह्मण को उस समय मिल गया। गति किसी की कोई भी नहीं करवा सकता, हर एक को अपने किये हुए कर्मों का इवजाना (फल) मिलता है। जिन्दगी में जिसने कोई पुण्यदान, तप, ध्यान प्रभु परायण होकर किया है, उसने अपनी गति आप कर ली। जो प्राणी इस विचार में रहता है कि मेरे मरने के बाद मेरी

गति मेरे बेटे, पोते, धेवते कर देंगे, वह अंधकार में है। जौ के लड्डू कल्याण थोड़े ही कर देंगे। जीवन में जिसने गरीबों की निष्काम सेवा की है, कुछ भजन किया है, वह अपना सुधार करके चला है। मत किसी के भरोसे रहने की कोशिश करें। अपना कल्याण आप करके चलो। अब रोशनी का जमाना है, कुछ समझो, ब्राह्मणों की बेशक सेवा करो, कोई मना नहीं करता, मगर यह अंधेरा मत इकट्ठा करो। जो जीव इन तोहमात (भ्रमों) में फंसा रहता है उसे शान्ति नसीब (प्राप्त) नहीं होती। इन वहमों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा रखो। जो जिस वक्त अच्छा कर्म करेगा उसके नतीजे का वह हकदार है। आप कौन हैं किसी की गति करवाने वाले? जब कोई प्राणी चला जाये, बाद में बेशक पुण्य दान, सत्संग, पाठ, यज्ञ करो कोई मना नहीं करता, यह कहना कि जाने वाले की गति करवा रहे हैं, यह अंधविश्वास है। अच्छे बुरे कर्म जो जिन्दगी में कर गया उसका इवजाना (फल) आप ही पाता रहेगा।

फिर साल के बाद श्राद्ध का टण्टा (समस्या) डाला हुआ है, क्या साल के बाद एक रोज उसके निमित्त ब्राह्मण को खिला देने से उसकी पूर्ति हो जाती है, बाकी साल वह (गया हुआ जीव) भूखा रहता है? क्यों अपने आपको अज्ञानता में डाल रखा है?

मिलता मिलाता किसी को कुछ नहीं, सिर्फ ब्राह्मणों ने अपने खाने का ढंग बना रखा है, इस तरीके ने इनको निकम्मा बना दिया है।

प्रेमी जी, केवल ईश्वर का भरोसा रखें। सत् (शुभ) कर्मों को धारण करके हर समय प्रभु आज्ञा में विचरें। माया के चक्कर से छूटना है, अपनी गति करनी है तो ईश्वर का सिमरण और लोक सेवा ही कल्याणकारी साधन है, इसे धारण करो। तुम लोग भी दो-दो पैसे धरकर अपना कल्याण चाहने वाले हो। व्यौहार और आचार को पवित्र करो, आहार शुद्ध करो, संगत अच्छी धारण करो, दो घड़ी मालिक की याद श्रद्धा विश्वास से करो। हो सके तो गरीब, यतीम की यथाशक्ति सेवा करो, कल्याण का और कोई रास्ता नहीं है।

प्रश्न 304 : महाराज जी, अगर भाई, मौलवी, पंडित हमारी कल्याण नहीं कर सकते, तो फिर कल्याण कैसे हो सकेगी?

उत्तर : प्रेमी, पंडित, भाई कल्याण का कुछ रास्ता बता सकते हैं, जितना वह जानते होंगे। कल्याण चाहते हो या भगवान के चरणामृत से मुक्ति हासिल करना चाहते हो, और चाहते हो कि करना-धरना कुछ न पड़े। प्रेमी, यह ठगी ठगोली करके भगवान को ठगना चाहते हो। क्या वह भोला है, कुछ नहीं जानता? तुम भी पागल और तुमको रास्ता दिखाने वाले भी अंधे। जो अपनी कल्याण नहीं कर सकते वह तुम्हारी क्या कल्याण कर सकेंगे। कोई ठीक रास्ता पकड़ो। पहले समझो करना क्या है? किधर से आऐ हैं? किधर जाना है? कल्याण का रास्ता बताने वाला कैसा होना चाहिए? पुराने वहमों से बुद्धि को निकालो। आहिस्ता-आहिस्ता इस तरह सत्संग सुनते-सुनते आप ही पता लग जावेगा कल्याण कैसे हो सकता है। कल्याण कोई खिलौना नहीं है जो हाथ में पकड़ा दिया जाए। विश्वास ही है। तेरी कल्याण सत्संग, सिमरन, पर-उपकार में है, हर प्राणी मात्र की निष्काम सेवा करने में है। अपने लवाजमात (भोग) को कम करके जो धन बचे उसको गरीब, यतीम, अनाथों की सेवा में खर्च करो। खाली धूप, दीप दिखाकर भगवान को खुश करना चाहते हो। वह तुम्हारे घट-घट की जानने वाले हैं। किसी ख्वाहिश को लेकर उसके नजदीक जाते हो। प्रेमी, अगर कल्याण करने की ख्वाहिश है तो निर्मल चित्त से तन, मन, धन सब कुछ सुख-सम्पत्ति जो है उसकी परमदात समझकर उसे दूसरों के सुखों के वास्ते हर वक्त तकसीम करने वाले बनो। सच्चे दिल से जिस कद्र सत् सिमरन बन सके, इसमें शरीर को घालो (लगाओ)। मन बुद्धि से लगातार उसका सिमरन करके उसमें जजब (लीन) हो जाओ। बस फिर कल्याण कोई दूर नहीं।

प्रश्न 305 : महाराज जी, बैकुंठ किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, बैकुंठ मन की अवस्था है। जितनी मन में वासनायें हैं उतना ही नरकी मन है। जितनी मर्यादा है उतना ही स्वर्गी मन है। निर्वास मन बैकुंठ मन है।

प्रश्न 306 : महाराज जी, जीव की गति कैसे हो सकती है?

उत्तर : प्रेमी, जीव की गति इन धारणाओं से हो सकती है–अपनी करनी का सुधार करके, दृढ़ निश्चय से ईश्वर स्मरण करके, अपने आचार को दुरुस्त (ठीक) करके, सत्पुरुषों के जीवन के अनुकूल अपना जीवन बनाके, कर्त्ता हर्ता महाप्रभु को जानकर सब कुछ उसकी आज्ञा में देखके, ईश्वर का भरोसा करके, सत् कर्मों को धारण करके, पाप कर्मों की तरफ भूलकर भी न जाके तथा लोक सेवा और निर्मान भाव चित्त में धारण करके ।

भूत-प्रेत तथा रूह

प्रश्न 307 : महाराज जी, भूत-प्रेत के बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, भूत-प्रेत लोगों की घढ़ी हुई कहानियाँ ही हैं। बिना पंचभूत अर्थात् तत्वों के किसी का शरीर आज तक नहीं बना। अच्छे कर्म करने वाले को देवता कहा जाता है। खराब कर्म करने वाले को भूत, प्रेत चाण्डाल के नाम से पुकारा जाता है। यह फकीर भी वर्षों से भयानक जंगलों में बियाबानों, शमशानों में समय काटते आ रहे हैं। अपने मन के खोटे संकल्प ही जीव के वास्ते हैरानी व परेशानी का कारण बनते हैं। बाकी तुम अपनी उन्नति के विचार करो।

प्रश्न 308 : महाराज जी, बहुत से लोग कहते हैं कि वे रूहों को बुलाते हैं और उनसे बातें करते हैं। क्या यह ठीक है?

उत्तर : रूहों को किस नाम से बुलाते हैं? नाम तो केवल इस पंच भौतिक शरीर का है। रूह यानी आत्मा का कोई नाम नहीं। जब शरीर ही न रहा तो फिर आत्मा अर्थात रूह को किस नाम से बुलाया जा सकता है, जबकि जीव का न तो पहला शरीर रहा और न ही नाम। इसलिए रूहों को बुलाना और उनसे बातें करना-यह केवल एक ढोंग ही रचा हुआ है। केवल अपने पेट पालने की खातिर चतुर बुद्धि लोग दूसरे साधारण जीवों को धोखा दे रहे हैं। वास्तव में कुछ भी नहीं है।

प्रश्न 309 : महाराज जी, जिन्न, भूत, चुड़ैल और जादूमंत्र, ताबीज इत्यादि ये क्या हैं?

उत्तर : ये सब अपने मन की कल्पना हैं। वास्तव में न कोई जिन्न है, न भूत। यह सब अपने मन की कल्पनाओं के ही रूप हैं। अर्थात् जीव के मन में जैसी-जैसी कल्पना जिस समय उत्पन्न हुई, फौरन उसका अक्स (प्रतिबिम्ब) अर्थात् रूप प्रकट होकर सामने आ गया। यह ही रूप या शक्लें हैं जिनको भूत या प्रेत कहा गया है। ये रूप ही बाद में जीव के लिए दुख का कारण हो जाते हैं। ये सब नाममात्र ही हैं। वास्तव में न कोई उनकी शक्ल है, न रूप और न शरीर।

निन्दा

प्रश्न 310 : महाराज जी, निन्दा का क्या स्वरूप है?
उत्तर : सोने को पीतल और पीतल को सोना कहना ही निन्दा है। सत् का मण्डन और असत् का खण्डन निन्दा नहीं है। सब सत्संगों में और सन्तों के दरबारों में सत् और असत् का निर्णय होता है, वह निन्दा नहीं है। तात्पर्य यह है कि असत् कहना निन्दा नहीं है, सत्य को झूठ सिद्ध करना और झूठ को सत्य सिद्ध करना निन्दा है।

प्रश्न 311 : महाराज जी, कटु सत्य तो अच्छा नहीं होता।
उत्तर : प्रेमी जी, सत्य तो कटु ही होता है। वह बेशक हेर-फेर से कहोगे, कड़वा ही होगा।

प्रश्न 312 : महाराज जी, काने को काना कहना क्या बुरा नहीं है?
उत्तर : कौन कहता है कि तुम ऐसा कहो, जबकि इसके कहे बिना काम चल सकता है। जब इस बात का कहीं निर्णय करना हो तो आपको कहना ही पड़ेगा। वैसे ही काना कहना ठीक नहीं है।

प्रश्न 313 : महाराज जी, 'सपनेहु नहीं देखहिं परदोषा' इसका क्या तात्पर्य है?
उत्तर : प्रेमी, संकल्प मात्र में भी दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करना यानी जैसे कोई आदमी सामने से आ रहा है उसको देखते ही यह धारणा अन्तर में बना लेना, यह दुष्ट होगा, चोर होगा इत्यादि यह संकल्प में दोषों को ग्रहण करना कहलाता है। लेकिन खरे और खोटे की परख करना, पाखंड का खण्डन करना निंदा नहीं है, न्याय है। यह सत्य असत्य के भेद को हासिल करने के लिए आवश्यक है।

नम्रता या दीन भाव

प्रश्न 314 : (जगाधरी सम्मेलन के अवसर पर) महाराज जी, यहां आकर हमने जो सादगी और सेवा के नमूनों को देखा है वह आपके बतलाये हुए आदर्श से गिरा हुआ है। क्या आप इसको खोलकर बता सकेंगे कि इसके पतन का क्या कारण है?

उत्तर : प्रेमी जी, लम्बी चौड़ी बात नहीं। सेवादारों में निर्मानता की कमी है। अन्दर से निर्मान नहीं हैं। ऊपर से बनावट करते हैं।

प्रश्न 315 : महाराज जी, यह कैसे पता चले कि सेवादारों की स्थिति सच्ची है या बनावटी?

उत्तर : लाल जी, सेवादार जब स्तुति से हर्षमान न हो, निन्दा से दुखी न हो अर्थात् परेशान न हो तो यह सच्ची निर्मानता का स्वरूप है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह पाखण्ड है, ढोंग है। जरा नम्र बनकर देखो तो सही, कितना मजा आता है। जल हमेशा पहाड़ों के नीचे तराई में आकर ठहरता है, ऊँचाई में सर्वदा सूखा रहता है।

प्रश्न 316 : महाराज जी, नम्र कैसे रह सकते हैं?

उत्तर : इसके लिए यह ध्यान हर समय रखना आवश्यक है कि शरीर नापायेदार (नाशवान) है और पल पल विखे नाश को प्राप्त हो रहा है। इसकी किस शै (वस्तु) पर तू घमंड करता है? किसका तुझे मान है? तेरे जैसे आला तरी (सर्वश्रेष्ठ) असंखों लोग इस संसार में आये और चले गये। ऐसा विचार करते करते बुद्धि नम्र हो जाती है।

प्रश्न 317 : महाराज जी, हमारे अन्दर निर्मान भाव आ रहा है या नहीं, इसकी क्या कसौटी है?

उत्तर : लाल जी, हमारे अन्दर निर्मान भाव आ रहा है इसके लिए सत्पुरुषों के वचनों में दृढ़ विश्वास और श्रद्धा का बढ़ते जाना और सत्पुरुषों के वास्ते मन के अन्दर अधिक से अधिक आकर्षण उत्पन्न होना, उनके वचनों में

अपने आप को मिटाना और उनके वचनों को अपने जीवन में घटाने लग जाना आवश्यक है। ऐसे पुरुष की बुद्धि बड़ी तीव्र होने लग जाती है और उसी में यह गुण पैदा हो जाते हैं। वह गुण और दोषों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से, बड़े गौर और बड़ी बारीकी से जाँचता है। उन दोषों से वीतराग होने का यत्न करता है। यदि 24 घन्टों में से एक पल भी किसी की चेष्टा शरीर के भोगों में रहती है तो वह पुरुष आत्मस्थिति से दूर ही समझना चाहिए और जो कुछ भी बाहरी रूप दिखाई देता है वह सब दिखावा है। पाखंड है। जब बुद्धि में शरीर का पूर्ण विनाश निश्चय में आ जावे तब उस पुरुष में गरीबी, निर्मानिता, धीरता, दीनता इत्यादि महागुण आ जाते हैं।

प्रश्न 318 : महाराज जी, आप अत्यन्त दीन भाव के शब्द उच्चारण करते हैं। आपने तो परमस्थिति प्राप्त कर ली है। फिर भी आम फ़रमाते हैं:

ऐसी दात करो दातार । मांगनहार खड़ा दरबार ।।
पूरण सेवा सबने पाई। तुद दरबार मांगन जो आई ।।
अबकी बारी तोड़ निभाओ । करूँ अरदास सुनो प्रभराओ।।
दया करो प्रभ अत किरपालू। साची भगति तेरे चरण दयालू।।

माँगू भगती दीख्या, तुद दर भया भिखारी ।
'मंगत' तेरी दात से, नित जाऊँ बलिहारी ।।

इतने दीनभाव के शब्द जिज्ञासु को उच्चारण करने चाहिए, न कि किसी सिद्ध पुरुष को।

उत्तर : प्रेमी, इनका हिसाब-किताब ख़त्म है। यह सब तुम्हारे लिये ही बोला जा रहा है। जो प्रभु प्रेमी सत्मार्ग में विश्वास करने वाले होंगे वे सब इनका ही रूप हैं। इस देववाणी को पढ़कर अपना आना-जाना बन्द करेंगे। इन शब्दों के द्वारा ही प्रेमी के अन्दर प्रेम पैदा होता है। परमपद प्राप्ति के बाद और भी निर्मान भाव प्रकट करना ही उचित है।

प्रश्न 319 : महाराज जी, कहा है:

भक्तों और संतों की, एक यही पहचान।
आप अमाने ही रहें, देत और को मान।।

कृपया इसको स्पष्ट करें।

उत्तर **:** लाल जी, संत लोग अपने आप को निर्मान किये और देह की ममता से अबूर (छुटकारा) पाये हुए होते हैं। उनके पास जो भी अभिमानी या अहंभाव वाले जीव आते हैं जिन्हें मान की इच्छा होती है, संत लोग उन्हें मान दे देते हैं। जिसका अहंभाव दूर करना होता है उसका पासा घड़ देते हैं। अहं चूर कर देते हैं। सेवक को सही सेवक बनाने के लिए यानी उसे निर्मान बनाने के लिए सत्पुरुष उससे निर्मान भाव की बोली बोलते हैं। इस मान गुमान से तभी खुलासी होती है जब बुद्धि खुशी गमी से परे हो जावे।

संगत का असर

प्रश्न 320 : महाराज जी, क्या आप फरमायेंगे कि पिछले जन्मों के शुभ और अशुभ संस्कार इस जन्म में संग-दोष से कैसे प्रभावित हो जाते हैं?
उत्तर : सवाल खोलकर कहो कि तुम क्या कहना चाहते हो?

प्रश्न 321 : मेरा मतलब यह है कि मनुष्य में दोनों प्रकार के संस्कार मौजूद रहते हैं। सो किसी अच्छे संस्कारी जीव को अगर कुसंग मिल जाए या किसी गंदे संस्कारी जीव को अच्छा संग यहाँ प्राप्त हो जाए तो इसके संग-दोष का उन पर क्या असर होता है?
उत्तर : प्रेमी जी, संग-दोष का असर महान् है। संग-दोष करके शुभ या अशुभ संस्कारों को फल लगते हैं। दोनों प्रकार के संस्कार जीव में रहते हुए भी जिस प्रकार का अच्छा या मंदा संग उसको मिलता है उसी प्रकार के संस्कार चेतन हो जाते हैं और दूसरे दब जाते हैं। तुम दूसरी तरह समझ लो कि जैसे सारा शरीर टांगों के बिना चल नहीं सकता, उसी तरह तुम्हारा संस्कार रूपी शरीर बिना संग रूपी टांगों के चल नहीं सकता। यह संग ही है जिसके द्वारा संस्कार जाग्रत होकर प्रकाशवान होते हैं। अगर कोई बड़े ही मंदे संस्कारों वाला जीव है और भूला भटका गुणी पुरुष तथा साधुजनों के संग को प्राप्त हो गया तो उसके वे मंद संस्कार दब जाएंगे और जो अच्छे संस्कारों का कुछ-कुछ अंश इसमें मौजूद है जाग्रत होकर इसकी काया पलट देवेंगे। इस प्रकार की बड़ी-बड़ी मिसालें संसार में मौजूद हैं। संग की महिमा बड़ी है। यह ही डुबाने वाला और यह ही तारने वाला है।

विरह और वैराग्य

प्रश्न 322 : महाराज जी, विरह किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, विरह की हालत वैराग्य प्राप्त होने के बाद आती है। जब संसार से वैराग्य होता है तब उस प्रभु को प्राप्त करने के वास्ते तड़प पैदा होती है। इसी को विरह कहते हैं। फिर प्रभु का प्रेम प्राप्त होने पर विरह शांत हो जाती है।

प्रश्न 323 : वैराग्य का क्या स्वरूप है?

उत्तर : बुद्धि अभिमान के मल से पवित्र हो करके यथार्थ स्वरूप में जब प्रकृति के चक्र को अनुभव करती है, यानी तमाम स्थूल आकार और अपना शरीर भी आदि अंत सहित, खेद (दु:ख) सहित, कर्म सहित, तबदीली युक्त और नित्य ही भयदायक प्रतीत करती है और किसी वस्तु में भी सत् शांति को अनुभव नहीं करती है, बल्कि हर एक वस्तु परस्पर नाश के चक्र में अपनी शकल को तबदील करती यथार्थ रूप में दिखलाई देती है, ऐसी पवित्र अनुभवता को ही वैराग्य कहा गया है।

प्रश्न 324 : महाराज जी, वैराग्य और विरह कैसे पैदा होता है?

उत्तर : यह कोई जमीन की पैदावार थोड़े है जिसमें बीज डालकर पैदा कर लोगे। संसार की असारता को बार-बार दृढ़ करो। इस न रहने वाले संसार के साथ क्यों ज्यादा लगाव बनाया हुआ है? पहले खोज करो सत् क्या वस्तु है? जिस्म और जान का निर्णय करो। जिस समय जान को जानने की लगन लग जावेगी अपने आप ही वैराग्य प्रगट होगा। वैराग्य से विरह आप पैदा होता है। इस प्राणी के सब स्वार्थ के भाव खत्म होने लगते हैं। यानि चित्त के अन्दर यह दृढ़ विश्वास बनाये रखो कि अपने असल रूप को इस जन्म में ही जानकर छोड़ ना है। ऐसी अवस्था प्राप्त करनी है जैसी शिव, सनकादिक, नारद, राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक इत्यादि ने प्राप्त की। अपना इरादा बड़ा मज़बूत रखें, फिर किसी न किसी समय जरूर फतह पाओगे। फिर असली सत्गुरु की मांग अन्तर विखे होगी। वगैर नाम-रूप अनात्म वस्तु को छोड़ने के प्रभु प्रेम पैदा करना कोई आसान नहीं। प्रभु की अश्चर्ज रूपों में फैली हुई माया को देखकर अनुमान से

उसकी महिमा में मुस्तगर्क (लीन) होना है। संसार की सब चीजें सबक दे रही हैं। सूरज, चांद, सितारे, जमीन, आसमान किस कदर घड़ रखे हैं। कुदरत को बार-बार विचार करने पर ऐन-उल-यकीन (पूर्ण विश्वास) होने लगता है। सर्व आधार शक्ति को बुद्धि विवेक ज्ञान द्वारा जब जानने लगती है, उस परम तत्व की महिमा को अन्तर-विखे जानकर खामोश हो जाती है। सारे संसार को इसका रूप जानकर, मगन होकर रूप रेख बिन इस देव शक्ति के अद्‌भुत रूप में समा जाती है। कोई भाग्यशाली जीव ही शरीर के होते हुए इस विस्माद अवस्था को प्राप्त हुआ करता है। ईश्वर सबको प्रतीत प्रीत बख्शे।

प्रश्न 325 : वैराग्य कैसे उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर : अपने शारीरिक सुखों को दूसरों की सेवा में भेंट करना और मन में निर्मान भाव रखना, अधिक तन, मन, धन से सेवा करके प्रभु इच्छा में निश्चित होना-यह ही एक निर्मल त्याग का मार्ग है। ज्यों-ज्यों गुणी पुरुष पवित्र भावना से इस उपकार के मार्ग में विचरता है, त्यों-त्यों अन्तःकरण के दोष नाश हो जाते हैं। तब सत् स्वरूप में दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है और संसारी पदार्थों से चित्त को वैराग्य हासिल होता है। यह धारणा ही निर्मल भक्ति के अंकुर हैं। यानी शारीरिक सुखों को तुच्छ जानकर प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों के सुख की खातिर अपने आपको जो निष्काम भाव से न्योछावर करता है, वह ही परम गुणी आत्म-आनन्द का अधिकारी है।

प्रश्न 326 : महाराज जी, कौन से साधन से मनुष्य की वृत्ति वैराग्यवान हो सकती है?

उत्तर : प्रेमी जी, गुरु के वचनों में अटूट विश्वास करने से तू आप ही वैराग्यवान बन जावेगा। इसलिए गुरु के वचनों को अपनी मानसिक खुराक समझकर नित्य-प्रति इसका सेवन करना गुणी पुरुषों का धर्म है। संतों के पास हमेशा ऐसे ही गुणों को लेने के लिए जाना चाहिए जिससे अपने जीवन का सुधार प्राप्त हो और बुलन्दी की तरफ जा सके।

नदी के पास अगर रोज-रोज तू जाता रहे और अगर किसी वजह से ठंडा पानी पीने को न मिले तो न सही, ठंडी हवा तो मिल ही जावेगी। अगर हवा भी न मिले तो कम से कम जितनी देर तू उस नदी के पास रहेगा तेरा मन

एकाग्र होकर तुझको कुछ शान्ति महसूस करावेगा। और एक न एक दिन नदी के पास जाने के सारे औसाफ (गुण) तुझको प्राप्त होंगे। इसी तरह कुछ मिले न मिले, संत, महापुरुष तथा भक्तों के पास हमेशा जाते रहो। भले ही वहां कुछ न मिले और सब कुछ छोड़कर आना पड़े, पर जाओ रोजाना जरूर। फायदा जरूर होगा। वे एक न एक दिन कृपा कर देवेंगे जिससे तेरा कल्याण अवश्य हो जावेगा। शर्त एक और है कि अपनी नियत ठीक करके चलो और निडर होकर चलो। कोई क्लेश बाकी न रहेगा।

प्रश्न 327 : महाराज जी, वैराग्य की स्थिति कैसे पक्की होती है?

उत्तर : प्रेमी जी, शरीर और संसार से उपरसता करके प्राणी नाम परायण होने का यत्न करता है। नाम परायण होने पर संसार से उपरामता पक्की हो जाती है इसलिए सबसे पहले सिर्फ ब्रह्मनिष्ठ पुरुष का सत्संग करके शरीर और संसार की सही हालत समझे। ऐसा समझने से उसको विवेक प्राप्त होगा और नाम में अधिक परायणता प्राप्त होगी तब जाकर वैराग्य पक्का होगा।

गीता तथा अन्य धर्म ग्रन्थों पर विचार

प्रश्न 328 : महाराज जी, महर्षि व्यासदेव जी महाराज की रची हुई भगवद्गीता नाम की पुस्तक जो है उसमें श्रीकृष्ण जी के मुख से अर्जुन को जो ज्ञान दिया है उसके बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी जी, जिस्म और जान के फलसफे को एक कूजे में भरने वाला और अच्छी तरह से समझाने वाला यह एक लामिसाल (अनुपम) ग्रंथ है।

प्रश्न 329 : परम योगीश्वर कृष्ण ने अर्जुन को गीता में समझाते हुए कहा है, "श्रद्धावान लभते ज्ञानं" अर्थात् श्रद्धावान को ज्ञान की प्राप्ति होती है। क्या आप निर्णय करेंगे कि वह सच्ची श्रद्धा क्या है जिसकी तरफ महायोगी कृष्ण का संकेत था? आजकल जो श्रद्धा के नाम पर अन्ध विश्वास फैला हुआ है उसने तो सारे राष्ट्र को चौपट कर दिया है और लोगों को बेकार तथा कायर बना दिया है। इन सब बातों से मालूम पड़ता है कि भगवान कृष्ण का संकेत किसी और ही तरफ होगा।

उत्तर : हाँ प्रेमी, यह ठीक है कि कृष्ण का संकेत किसी और तरफ ही था। पर आजकल तो उन सब बातों का अनर्थ हो रहा है। लो ध्यान से वह बात समझो और जाँच कर देख लो, पूरा है कि नहीं। यह कोई ऐसी बात नहीं कहते जो इन्होंने सुनी सुनाई हो। सबसे पहले हर बात को यह अपने आप पर तोलते हैं और जो पूरी उतरती है फिर वह लोगों की सेवा में समर्पण कर देते हैं।

यह संसार एक बड़ी बाजी है जो नाना रूप के रंग पल-पल विखे बदलती है और सारे प्राणियों को भुलावे में डाले हुए है। पर बाजीगर इसका सच्चा है जो तीन काल दायम कायम एक रस है। जब बाजी को बदलने वाला, मिथ्या करके जाना और बाजीगर को सत् करके निश्चय किया तो इस सत् निश्चय को ही सच्ची श्रद्धा कहते हैं। मालिक की यह रचना दृष्टिगोचर होती है जो पल-पल में अपना रूप बदलती है, इसके बदलने

करके भी जो स्वयं कुछ नहीं है और अपना आधार अपने से अलग रखती है, इसके आधार में पूर्ण समर्थ है कि इस रचना को जैसा चाहे बदल दे या लय कर दे। तुम इस शरीर को ही लो। वह चेतन सत्ता, जिस करके यह मुर्दा खड़ा है, इसमें रहती हुई भी इससे अलग है। यह शरीर दस दिन रहे, दस वर्ष रहे या दस लाख वर्ष रहे वह इनमें सर्वदा एक जैसी है। शरीर पल-पल नाश की तरफ जा रहा है। इसमें प्रति क्षण सैंकड़ों प्रलय हो रहे हैं पर इसकी आधारभूत चेतन सत्ता सदा सर्वदा एक जैसी है। ऐसा जानकर जो इस पर अटल निश्चय रखता है वह सत् ज्ञान को प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

इसी को सच्ची श्रद्धा कहते हैं। जिनको वह श्रद्धा रूपी अमर फल मिल गया फिर उन्होंने दुनिया को ऐसे देखा जैसे राजा मोरध्वज ने देखा, राजा हरीश्चन्द्र ने देखा, गुरु गोविन्दसिंह के उन दो लड़कों ने देखा जो जीते जी दीवार में चुनवाये गये इत्यादि, वैसे श्रद्धा के अर्थ लोगों ने अपने घढ़ रखे हैं। बाहोश होकर संसार को देखो। श्रद्धा प्राप्त करना बच्चों का खिलवाड़ समझ रखा है। प्रेमी जी, जीते जी मरना पड़ता है। बड़ा औखा (कठिन) मार्ग है, पर घबराना नहीं चाहिए। अगर चाह हो तो यह सब सौखा (आसान) हो जाता है।

प्रश्न 330 : महाराज जी, भगवान कृष्ण ने अर्जुन को महाभारत के समय, जब युद्ध के लिए दोनों ओर सेनाएं खड़ी थीं, इतना लम्बा उपदेश गीता का किया होगा, समझ नहीं आता।

उत्तर : प्रेमी, आप ठीक कहते हैं। इतना समय नहीं था और न ही इतना लम्बा उपदेश कृष्ण ने दिया था बल्कि उन्होंने थोड़े शब्दों में अर्जुन के संशय और भ्रम को निवृत्त किया था। इसके पश्चात् व्यास ने उस तत्वज्ञान के आधार से गीता विस्तार से लिखी।

प्रश्न 331 : महाराज जी, गीता में भगवान कृष्ण फरमाते हैं कि जो जीव अन्तिम समय "ओ३म्" अक्षर का अभ्यास करते हुए प्राण त्यागता है वह मुझे प्राप्त होता है। यदि ऐसा है तो जीवन भर अभ्यास करने से क्या लाभ है?

उत्तर : प्रेमी, कृष्ण का भाव "ओ३म्" अक्षर से "शब्द" की

अनुभवता है और यदि शब्द की अनुभवता और स्थिति प्राप्त न होवे तो अन्तिम समय अभ्यास का होना कठिन है।

प्रश्न 332 : महाराज जी, श्री कृष्ण भगवान के दर्शन कैसे प्राप्त हों?
उत्तर : प्रेमी, जो हाजिर (वर्तमान) कृष्ण कह रहे हैं, वह तो सुन लो।

प्रश्न 333 : गीता के १२वें अध्याय में भगवान कृष्ण ने बताया है कि साधक को, जो साकार के उपासक हैं, उन्हें शुरू में कठिनाई बहुत है। जीव को देह-अभिमान के कारण बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कृपा करके इसे समझाइये कि प्रभु के निराकार स्वरूप की उपासना क्या है और साकार उपासना क्या है?
उत्तर : प्रेमी, भगवान को सर्वव्यापक जानकर और सब जीवों में उसको व्यापक जानकर सब जीवों की सेवा करना-यह सगुण उपासना है। सब जगत् मिथ्या और नाशवान है और आत्मा सत् है, ऐसा जानकर उपासना करना-यह निर्गुण उपासना है। यह निर्गुण उपासना शुरू में कठिन है। सगुण के बाद निर्गुण में सहज ही प्रवृत्त हो जायेगा।

प्रश्न 334 : भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, "हे अर्जुन, जो मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प भी भेंट करता है मैं उसे स्वीकार करता हूं।" इसका क्या भाव है?
उत्तर : प्रेमी, कृष्ण का भाव यहाँ यह है कि जो थोड़ी श्रद्धा भी रखता है वह उस परम तत्व की प्राप्ति में उन्नति करता है।

प्रश्न 335 : महाराज जी, क्षर, अक्षर के विषय में गीता में जो वर्णन है उसके बारे में आपका क्या निर्णय है?
उत्तर : नाम रूप संसार का फैलाव जितना भी माया जाल दिखाई दे रहा है सबका सब झूट यानि नाश रूप है। अक्षर यानि अविनाशी, अपरम शक्ति, नित अनादि है। उसका ही गुणी पुरुष नित ध्यान सिमरन करके परम सिद्धि को पाते हैं। जब तक अजर अमर तत्व को बुद्धि अनुभव नहीं कर लेती तब तक उसकी अशांति खत्म नहीं होती। करोड़ों जन्म जन्मांतर तक जीव तृष्णा में गोते खाता रहता है। बन्धनों से खुलासी नहीं हो सकती, जब तक क्षर रूप माया के संग बुद्धि लिपटी है। उस अक्षर ब्रह्म को मानने के

वास्ते कृष्ण ने गीता में फरमाया है कि हे अर्जुन, सब दरवाजों को बंद करके मन को ह्रदय में रखते हुए प्राणों को मस्तक में ठहराकर मुझ अक्षर अविनाशी परमेश्वर का ध्यान करता हुआ जीव परम गति को प्राप्त होता है; जिस स्थिति को प्राप्त होकर वापिस किसी मृतक लोक में नहीं आना पड़ता। सारी गीता का सार ही यह है कि जिस्म और जान क्या वस्तु है। पुरुष और प्रकृति का खोलकर निर्णय सुनाया गया है। अव्यक्त रूप में आरूढ़ होने के वास्ते सत् यत्न को फिर पांचवे अध्याय, छठे और आठवें अध्याय में बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। पढ़ लेने से ज्ञान होना होता तो सब ही ज्ञानी बन जाते। करनी से ही वह अवस्था प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न 336 : महाराज जी, दुर्गा भागवत् में दुर्गा का जो रूप वर्णन किया है और उसकी जो लीला बयान की है, उसके बारे में आप की क्या राय है?

उत्तर : प्रेमी जी, पुरातन काल में यह एक वर्णन करने का ढंग था जो कि बाद में स्वार्थी लोगों ने अपने तसव्वर (कल्पना) घढ़कर अपनी पेट पूजा का धन्धा बना लिया। दुर्गा भागवत् में दुर्गा का जो रूप शेर की सवारी का बताया गया है और दुर्गा के जितने हाथ दिखाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि अंहकार रूपी शेर पर जो सवारी करता है वह असंख्य हाथों से ऊपर उठाया जाता है और असंख्य हाथ उसका हर कार्य करने को तैयार रहते हैं।

प्रश्न 337 : महाराज जी, कृष्ण जी ने अपने आप को खुदा (ईश्वर) करके मुखातिब किया है। बार-बार ऐसा कहकर अर्जुन को समझाते रहे हैं?

उत्तर : प्रेमी जी, श्री कृष्ण ने अपने जिस्म को खुदा नहीं कहा। उसने वाहिद जात अपने आप को हर समय समझा हुआ था। इस प्रकार ठोक बजाकर किसी सत् पुरुष ने अपने आप को ब्रह्म स्वरूप नहीं कहा है। बार-बार आत्मा की तरफ उनका इशारा हुआ करता था। कृष्ण की स्थिति को कृष्ण बनकर ही जाना जा सकता है। आप संसारी जीव इसके मखफी इलम (गुप्त ज्ञान) को नहीं समझ सकते हैं। उनका कलाम कुफ्र से बालातर (नास्तिकता से परे) था। वह परम राजयोगी थे। इन नाचने वाले रासधारियों ने उन्हें और रूप दे रखा है। उनके हकीकी ज्ञान की तरफ जाओ। ऐसा ज्ञान इस संसार में कोई गृहस्थी जीव तीन काल नहीं दे सकता है।

प्रश्न 338 : महाराज जी, क्या मैं कृष्ण बन सकता हूं?

उत्तर : क्यों नहीं प्रेमी, कृष्ण अपने स्वरूप को जानता था, जब तू भी अपने स्वरूप को जान जायेगा तू भी कृष्ण बन जायेगा। अभी तो तू अपने स्वरूप से गाफिल है। इसीलिये न तू अपनी जात को जानता है न पहचानता है, कृष्ण बनने का सवाल ही नहीं उठता।

प्रश्न 339 : महाराज जी, शास्त्रों में गंगा मइया की बड़ी महिमा है। कृपा करके इसके बारे में समझाने की कृपा करें?

उत्तर : पुरातन ऋषियों ने जिस बात का बयान किया है वह खत्म हो गई। अब पेट के स्वार्थी लोगों ने मन गढ़त कहानियाँ घड़-घड़ के अपना धंधा बना रखा है। लो सुनो, कपाल रूपी आकाश से उतरकर सुषमन नाड़ी के द्वारा सारे शरीर को प्रकाश करने वाली शक्ति को ज्ञान रूपी बुद्धि (भगीरथ स्वरूप) जब अनुभव करती है तब वासना रूपी तपन शान्त होकर अविनाशी शब्द को प्राप्त हो जाती है। यह ही आत्म शब्द की धारा गंगा का स्वरूप है। इसमें स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। कर सकते हो तो करो।

प्रश्न 340 : महाराज जी, राक्षसों ने और देवताओं ने समुद्र मन्थन करके रत्न निकाले थे। इस बारे में आपका क्या ख्याल है?

उत्तर : प्रेमी, यह भी वही बात है। पेट रूपी समुद्र को प्राण अपान रूपी मथानी से मथ कर ज्ञान रूपी रत्न निकालते हैं। मनुष्य के अन्दर देवमई और आसुरी दोनों प्रकार की वृत्तियां हैं, उन्हीं के द्वारा यह समुद्र मथा जाता है।

प्रश्न 341 : पहले जमाने में गोमेध और अश्वमेध यज्ञ हर इन्सान कर लेता था और उसकी बड़ी महिमा शास्त्रों में बयान की गई है। यह कैसे मुमकिन हो सकता है। राजा के सिवाय गोमेध और अश्वमेध यज्ञ दूसरा कौन कर सकता है?

उत्तर : प्रेमी, सब पाखण्ड है। ऋषियों का जो असल भाव था उसके अर्थ का अनर्थ किया जा रहा है। यज्ञ के अर्थ त्याग के हैं। गोमेध यज्ञ के असली अर्थ हैं विषयों का त्याग अर्थात् इन्द्रियों का दमन करना और अश्वमेध यज्ञ के अर्थ हैं प्राणों का दमन (नियमन) करना।

प्रश्न 342 : वेदों में तो हवन, यज्ञ पूजन को बड़ा महत्व दिया गया है। अश्वमेध यज्ञ इत्यादि के साथ बड़ी घटनाओं का ज़िकर आया है। आपकी इस बारे में क्या राय है?

उत्तर : हवन कुंड तो तेरी नाभी में मौजूद है। आहुति डालनी है तो अपने प्राणों की डाल। जब तक तेरी सुरति बाहरमुखी होकर माया को अन्दर उड़ेल रही है यज्ञ पूजन का सवाल ही नहीं उठता। यही सुरति जो प्राणों पर सवार होकर अन्दर बाहर आ जा रही है, जब अन्तर्मुखी होगी तब तेरा हवन कुण्ड शुद्ध होगा। और तब तू सोध कुण्ड के पास जाकर प्राणों की आहुति डालने के काबिल होगा।

रहा सवाल अश्वमेध यज्ञ का, यह तेरा विकराल मन ही खुला हुआ घोड़ा है। जिधर जाता है बाहर के आकर्षण इसे पकड़ लेते हैं। जब यह तेरे काबू में आ जाएगा तब तेरा अश्वमेध यज्ञ पूरा होगा। पुरातन किस्से कहानियों को छोड़कर प्रण करके मन और प्राणों की रक्षा करो, ताकि सुरति (बुद्धि) अन्तर्मुखी हो और हरि सिमरण द्वारा निज थाओं (मंजिल) में वास कर सके।

प्रश्न 343 : महाराज जी, शास्त्रों में जो विष्णु दूत और यमदूत का वर्णन आता है, कृपया इसके बारे में कुछ रोशनी डालें?

उत्तर : लाल जी, पुरातन शास्त्रों में उपमा और तशरीह (व्याख्या) देकर अध्यात्म विद्या का बयान किया गया है। तेरी देव वृत्तियाँ ही विष्णु दूत हैं और असुर वृत्तियाँ ही यमदूत हैं।

प्रश्न 344 : महाराज जी, देखा गया है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि सिद्ध तपीश्वर इस काम का शिकार हो चुके हैं जिनमें शिव, पाराशर, विश्वामित्र, नारद, ब्रह्मा, मछन्दर आदि आते हैं। क्या आप इसका कारण बताने की कृपा करेंगे?

उत्तर : प्रेमी जी, यह उस अवस्था तक पहुंचने वालों की बात नहीं है, यह अपूर्ण अवस्था वाले लोगों की बात है। हर घड़ी जो शरीर को विनाश करके देख रहा हो, बुद्धि शरीर से अलग अपने आपको देख रही हो, ऐसा पुरुष ही पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी है। ऐसे पुरुष के लिए भी लाजिम (आवश्यक) है कि वह अपना आहार, व्यौहार ठीक मर्यादा का ही रखे

ताकि शरीर रहते हुए कभी भूलकर भी माया की हवा न लग जावे और (ऐसा न हो कि) दुनियाँ के सामने आदर्श दिखाने वाला चरित्र न रह सके।

प्रश्न 345 : योग वशिष्ठ में दिया हुआ है कि वशिष्ठ जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि फलाँ-फलाँ समय में कृष्ण का अवतार होगा, जो गीता का उपदेश प्रगट करेंगे। क्या महापुरुष ऐसी पेशीनगोईयाँ (भविष्य वाणियाँ) कर दिया करते हैं?

उत्तर : इस पर गौर करने से मालूम होता है कि यह रोचक विचार हैं और बाद में दरज किये गये हैं क्योंकि आत्मदर्शी पुरुष हर एक देश में हुए हैं, मसलन (जैसे कि) ईसा, मूसा, इब्राहिम, मुहम्मद, बुद्ध, महावीर वगैरा, और भी कई हैं और होवेंगे, इनके मुतअल्लक कोई पेशीनगोई (भविष्यवाणी) नहीं की गई है। क्या उन्होंने थोड़ी कुरबानी पेश की है? क्या आत्म सत्ता का मजमून (विषय) भारतवर्ष में ही अनुभव किया गया है? और देशों में जो आत्मदर्शी हुए हैं उनके मुतअल्लक कोई विचार नहीं है? यह सिर्फ बाद के आचार्यों ने राम और कृष्ण के तईं श्रद्धा बढ़ाने के वास्ते तहरीर किया है। आत्म ज्ञान में न कोई देश है, न काल है और न कोई और स्थूल प्रकृति का भास है। वह सत्ता निराकार स्वरूप सर्वज्ञ है। उसमें न कुछ हुआ, न कुछ होगा। यह स्थूल प्रकृति महज (केवल) तीन गुणों का अचम्भा है। आत्मदर्शी पुरुष उसके मुतअल्लक (सम्बन्ध में) कुछ नहीं कहते हैं। गुणों में गुण बरतते हुए अनन्त प्रकार की सृष्टि का स्वरूप उत्पत परलय (प्रलय) होता रहता है। उसके मुतअल्लक यथार्थ और मुकम्मल कुछ नहीं कहा जा सकता है। सिर्फ गुणों के चक्कर का अन्दाजा ही लगाकर कोई कुछ कहे तो कह सकता है।

प्रश्न 346 : महाराज जी, पांच तत्व और पच्चीस प्रकृति का जो विचार वेदान्त ग्रन्थों में आया है इससे सत् पुरुषों का अर्थ क्या था? कृपा करके समझाने का कष्ट करें?

उत्तर : प्रेमी जी, पाँच तत्व यह हैं-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। एक तत्व पाँच-पाँच तरीके से इस शरीर में प्रकट है। आकाश से शोक, मोह, लज्जा, भय और कीर्ति उत्पन्न होते हैं। वायु से सिकुड़ना, अकड़ना, फैलना, दौड़ना, धावना। अग्नि से भूख, प्यास, निद्रा, आलस्य,

कान्ति-यह पैदा होते हैं। जल से खून (रक्त), वीर्य, थूक, पसीना, सीण्ड (नाक बहना)। पृथ्वी से खाल, बाल, मॉस, मज्जा, हड्डी शरीरों में उत्पन्न होते रहते हैं। इस प्रकार ये सारे शरीर पांच तत्वों और उनके सूक्ष्म रूप पांच-पांच प्रकृतियों के ही नमूने हैं।

प्रश्न 347 : महाराज जी, धर्म शास्त्रों में कहा है कि योग भ्रष्ट ज्ञानी श्रीमान कुल में जन्म लेता है। श्रीमान कुल में जन्म लेकर योग भ्रष्ट ज्ञानी पुरुष को वहां का संग दोष क्यों नहीं होता? ज्ञानी कुल किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, श्रीमान कुल में जन्म लेकर योगभ्रष्ट पुरुष अपने पुरातन संस्कारों की बलवानता के कारण उनके ऐश्वर्य में अर्थात् आसायश नुमायश दिखावे में भूलता नहीं और न ही उसमें ग्रस्त होता है बल्कि उसके उल्ट उनमें उपरामता, उदासीनता धारण कर लेता है। इसी प्रकार कई जगह बहुत से महापुरुष हुए हैं-राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर इत्यादि। सब इसी दर्जा के सत्पुरुष थे। यह सब राजगृह में जन्म लेकर भी पूर्ण ज्ञानी बने।

ज्ञानीकुल उसे कहते हैं जहां धन, सम्पत्ति, रुपया-पैसा तो अधिक नहीं होता परन्तु परिवार धर्म-कर्म में तथा नेक और सदाचारी सीरत में पूर्ण होता है। इनमें जो लोग होते हैं वे उच्च आदर्श और सदाचार में पूरे होते हैं। ऐसे परिवार में योगभ्रष्ट पुरुष पैदा होकर अपने साधन में आगे बढ़ता है। और उसे सहायक साधन का माहौल (वातावरण) प्राप्त होता है।

प्रश्न 348 : महाराज जी, आप नशीली चीजों के इस्तेमाल को मना करते हैं। शिवजी भी भंग पीते थे। आजकल की गुरु परंपरा में भी इस बात की मनाही नहीं है, फिर आप हमको इसके प्रयोग से क्यों मना करते हैं?

उत्तर : ख्वामख्वाह (अकारण) शिवजी और सत्पुरुषों का नाम लेकर बुद्धि को लोग भ्रष्ट कर रहे हैं। क्या कोई उनको देख रहा था कि शिवजी महाराज भंग और चरस पी रहे हैं? वह तो नित्य ही नाम की खुमारी में मस्त रहते थे। आजकल चण्डू, गांजा, भंग पीकर मस्त रहने वाले अपना भी विनाश करते हैं और कई साधारण जीवों को भी खराब करते हैं। ऐसे गुरु जो शिष्यों को नशे की आदत में डालने वाले हैं उनके निकट तक नहीं

जाना चाहिए। इन नशों में कोई सिद्धि इत्यादि नहीं, न ही उनके द्वारा समाधि लग सकती है। नशा पीने वाले की बुद्धि बिल्कुल गफलत में चली जाती है। उसने जप-तप क्या करना है? जप-तप तो बड़ी सूक्ष्म बुद्धि वाले ही कर सकते हैं। जो इन नशों में पड़कर कहे कि सुरति लग जाती है, महज (केवल) धोखा है। पहले खोटे स्वभाव से अपने आप को पवित्र करो। बिल्कुल साधारण खाना-पीना हो जावेगा, तब जाकर देवताओं वाले स्वभाव बन सकते हैं। जिस खुराक और नशे का सेवन करने से शरीर में तकलीफ और मन में विकार पैदा हो जावे वे कैसे सुख शांति दे सकते हैं? इस वास्ते नशीली और मनश्शी चीजों का इस्तेमाल कभी नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 349 : क्या वेदान्त लोगों को अपाहिज़ बनाता है?

उत्तर : वेदान्त लोगों को अपाहिज नहीं बनाता बल्कि निर्भय और परोपकारी बनाता है। जो कथनी वेदान्ती हैं वही वास्तव में दुखदायी हैं। इसका विचार कर लेवें कि वेदान्त के फिलास्फर ही दुनिया के उस्ताद होते हैं और अमली जिन्दगी लोगों को सिखलाते हैं। वे लोग मूर्ख हैं जो बेअमल होकर सिर्फ बातें बनाते हैं। वेदान्त के कई पहलू हैं। अन्तिम अवस्था किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होती है। जो वेदान्त को अपाहिज कहते हैं उनको वेदान्त का पता ही नहीं है और जो कथनी वेदान्ती हैं वे न दीन के, न दुनिया के। वे पाखण्डी हैं। वे ही तबाही के कारण हैं। वेदान्त का भेद कोई नहीं जानता। वेदान्त के सही विचार से निष्काम कर्म का भाव उत्पन्न होता है और उससे भक्ति भाव आता है।

प्रश्न 350 : ईश्वर तत्व की तीन आदि शक्तियां ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नाम से विख्यात हैं। इस बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, सारी प्रकृति का निज़ाम आठ तत्वों से चल रहा है। जिसमें पांच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) एवं तीन गुण (सत, रज, तम) आते हैं। सतोगुण विष्णु स्वरूप, रजोगुण ब्रह्मा का और तमोगुण महेश का स्वरूप है। इससे अलग और कोई देव स्वरूप नहीं है।

गुरुदेव के व्यक्तिगत जीवन सम्बंधी विचार

प्रश्न 351 : महाराज जी, आप शरीर को बिल्कुल आराम नहीं देते यह बहुत बुरी बात है। ऐसा अन्याय आप क्यों करते हैं? इस शरीर ने आपका क्या बिगाड़ा है? इसको भी आराम की जरूरत है।

उत्तर : प्रेमी, यह एक घंटा लेटते हैं। इनके शरीर की थकावट दूर करने के लिए बस इतना ही काफी है।

प्रश्न 352 : महाराज जी, आप किस समय भजन करते हैं? मैं इसमें बाधा न डालूंगा। आप बतला दीजिये।

उत्तर : फकीरों का स्वयं स्वरूप ही भजन तद्‌रूप हो चुका होता है। कोई खास वक्त भजन करने का नहीं होता है। जैसे- इस तरह समझो कि किसी आदमी को धन-दौलत की इच्छा हुई और जब तक वह उसे प्राप्त नहीं कर लेता तो उसके पाने का साधन रूप उसका भजन ही करता रहता है, लेकिन जब वह माया प्राप्त हो चुकती है तो वह भजन करना छोड़कर उसकी हिफाजत (रक्षा) करने में तथा चौकसी में लगा रहता है कि कहीं यह मेरे से जुदा न हो जावे। इसी चिन्ता में रहता है और भजन नहीं करता और न ही उसकी जरूरत रहती है। यही बातें फकीरों के साथ घटा लो।

प्रश्न 353 : महाराज जी, आप हमेशा रात को बाहर जंगल में जाते हैं। वहां कई खौफनाक (भयानक) जानवर होते हैं। प्रभु, क्या आपको खौफनाक जीव जैसे शेर, सांप से कभी वास्ता पड़ा?

उत्तर : ये तो अपने पास बैठ जाते हैं। गंगोठियां का जिकर है कि यह कुछ जल्दी ही एक रात बाहर चले गये। बादल छाये हुए थे। सो समय का इन्हें ठीक पता न लगा। यह एक सिल (शिला) पर बैठ गये। जब सुबह उठे तो इनके घुटने के नीचे से सांप उठा और नीचे गिर गया। उसकी भी आंख उस वक्त ही खुली।

प्रश्न 354 : महाराज जी, हम लोगों को तो रात को जंगल में बहुत डर महसूस होता है और खौफनाक जानवरों का हर वक्त खौफ (भय) रहता है ।

उत्तर : प्रेमी, हर एक जीव अपनी जगह पर भयभीत है, वही एक आत्मशक्ति हर एक जीव में व्याप्त है। सो जैसा तू किसी जीव के प्रति भाव बनायेगा वैसा ही भाव उसमें पैदा हो जाता है। अगर तू दुश्मन (शत्रु) समझेगा तो मुकाबले के लिए उस जीव में शक्ति खड़ी हो जायेगी और अगर तू इस भाव से बचेगा और ऐसा सोचेगा कि वही आत्म शक्ति जो मुझमें है वह हर एक जीव में है तो कोई जीव भी तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जैसी भावना बनायेगा वैसा ही स्वरूप देखेगा।

प्रश्न 355 : महाराज जी, आप पढ़े तो उर्दू हैं लेकिन वाणी लगभग हिन्दी में ही उच्चारण करते हैं?

उत्तर : मालिक की आज्ञा से जैसा प्रसंग आ रहा है वैसा ही तुम्हारे सामने रखा जा रहा है। जिस समय तुम दोबारा पढ़कर सुनाते हो तो उस समय इन्हें खुद ही आश्चर्य होता है। (यह नहीं जानते कि) यह प्रसंग किस समय बोला गया था–यह बोलना चाहिए था कि नहीं बोलना चाहिए था। प्रेमी, ये भी मजबूर हैं। उस मालिक का हुक्म बड़ा सख़्त है। जिस तरह बुलाए उस तरह बोला जायेगा। हमारे बस की बात नहीं है। जीवों के कल्याण के वास्ते अमरलोक से वाणी आई है। देशकाल के मुताबिक दीनदयाल कृपा किया करते हैं। कहो तो संस्कृत या अंग्रेज़ी में भी आ सकती है। लेकिन जैसा प्रवाह आ रहा है वैसा ही तुम्हारे सामने रखा जा रहा है। तुम्हें पसन्द हो तो रखो। यह ही आसान भाषा आगे देश की भाषा होगी। मिलीजुली भाषा आम लोगों के सुधार के वास्ते है। सत्पुरुष जिस-जिस देश में होते हैं उस जगह के लोगों के वास्ते वैसे (उन्हीं की भाषा में) ही उच्चारण फ़र्माया करते हैं। सत्पुरुष हर ज़माने में हर जगह होते आए हैं। यह नहीं कि मुहम्मद के बाद या गुरु अवतारों के बाद बन्दिश हो गई है। न बन्दिश हुई है, न होगी। जब-जब भी जीव नेक उसूलों से पतित होने लगते हैं रजोगुण-तमोगुण का ज़ोर बढ़ने लगता है- तब कोई अवतारी पुरुष भी आ जाया करता है। बैठे हुए वे चाहे कहीं हों, लेकिन उनकी आवाज़ सारे कुर्रा-हवाई (वायुमण्डल) में फैलकर खुद-बखुद ही सतोगुणी जीवों के अन्दर जज़्ब हो जाती है-और उनके द्वारा भी सब जीवों की भलाई होती है। अब यह

समताभाव नये सिरे से प्रकट हुआ है। यह आज इतना असर नहीं करेगा जितना कि दस-बीस, पचास वर्ष के बाद। महापुरुषों द्वारा ही संसार को चेतावनी मिला करती है। जो समताभाव को ग्रहण नहीं करेगा वह क़ौम (समाज) या देश नष्ट हो जायेगा। समता के बिना जो कानून बनाया जाएगा वह सुखदाई नहीं होगा।

प्रश्न 356 : महाराज जी, यह क्या बात है कि आप वाणी उच्चारण करते समय तो लगातार ही उच्चारण करते जाते हैं-मिनटों में कितने ही पद बोल जाते हैं, लेकिन दुरुस्ती (शोधन) के सयम ज़रा सी गलती निकालने में दो-तीन मिनट लगा देते हैं?

उत्तर : मालिक की मौज का प्रवाह जब चल रहा होता है, उस समय बुद्धि ग़लत-सही विचार के द्वन्द्व से परे होती है। उस समय बेदारी हालत से ग़लत शब्द उच्चारण नहीं होता। तेरी कलम या बेहोशी ग़लती कर जाती है। उस बेपरवाह हालत का अनुभव वही सत्पुरुष जान सकता है जिसके अन्दर आनन्दमयी मौज तारी है। जब सत्स्वरूप से अलग बहिर्मुखी होकर विचार होता है तब ज़ेर (मात्राओं) का विचार आता है। सत्शब्द से लगी हुई बुद्धि के अन्दर अपने-आप आत्म-तत्व के सही विचार उठते हैं। उनको ज़रा भी सोचने के वास्ते कोशिश नहीं करनी पड़ती। अपने-आप ही अमृतवाणी प्रकट होनी शुरू हो जाती है। जैसा भी जिस विचार का संकल्प उठा, उसकी महिमा शुरू होने लग जायेगी-कर्तार की भी और संसार की भी। नई से नई बातों का पता चलता है। लेकिन संसार की मालूमात खेदयुक्त होती है। इस वास्ते उधर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है। जिस प्रकार तपे हुए हृदय में ठंडक-शांति आवे, वह ही विचार सत्पुरुष प्रकट कर जाते हैं। सबको अपना-अपना सत्विश्वास और श्रद्धा ही इस सत्-अनुराग में उन्नति देने वाली है।

प्रश्न 357 : महाराज जी, यह जो वाणी आप उच्चारण फ़रमाते हैं यह कब और किस तरह जल्दी-जल्दी प्रकट होती जाती है?

उत्तर : जब अन्दर शब्द प्रकट होता है और प्रकट शब्द के बाद बुद्धि जब गगन यानी कपाल में स्थिर होती है उस समय सब हालात इसे समझ आ जाते हैं। प्रकृति क्या है? कहाँ से जीव आया है? कहाँ जाना है? बन्धन क्या है? निर्बन्ध क्या है? सब गुण अवगुण लमहा (पल) भर में समझ जाती है। पद्य और गद्य की कोई बात नहीं-हर तरह ब्यान कर सकती है। बहिर्मुख होती है या

अन्तर्मुख होती है–हर हालत में सत–चित् आनन्द में लीन रहती है। वाणी उच्चारण करते समय पद्य में ईश्वर की महिमा इसलिए ब्यान की जाती है ताकि असली भावों को मनमुख जीव तबदील न कर सकें। महापुरुष की नज़र में जड़ –अजड़ एक ही रूप है। सब जड़– चेतन उसी ब्रह्म का रूप है। लेकिन समझाने के वास्ते सब कहना पड़ता है। और मर्यादा को कायम रखना पड़ता है।

प्रश्न 358 : महाराज जी, नाद की महिमा गाते समय आपने फ़र्माया है कि उस शब्द की बहुत गर्जना है, करोड़ों सूर्यों से ज़्यादा प्रकाश है। लेकिन पेट में ज़रा सी वायु गड़–गड़ाहट करे तो बाहर सुनाई देती है। दूसरे एक सूर्य की तपन सहन करना कठिन है, तो हज़ारों सूर्यों का प्रकाश और तपन कैसे सहन हो सकते हैं? शब्द की घोर गर्जन हमें बाहर क्यों नहीं सुनाई देती; जबकि सत्पुरुष फ़र्माते हैं कि रोम–रोम में उसका अनुभव हो रहा है?

उत्तर : बच्चू, यह मन, बुद्धि और इन्द्रियों का विषय नहीं है। बुद्धि उस हालत को अनुभव कर सकती है, ब्यान नहीं कर सकती।

बुद्धि इस तत्त्वमयी शरीर के लगाव से कुछ तपिश, कुछ ठण्डक महसूस करती है। जब उस परमतत्व में लीन हो जाती है, न ठंडक का पता रहता है, न तपिश का। वह परमतत्व तीनों गुणों के दोषों से अलग है। निर्गुण आत्मतत्व को न तपिश तपा सकती है , न हवा सुखा सकती है, न पानी गीला कर सकता है। बाकी उस आवाज़ को शरीर के कोट से बाहर नहीं निकलने दिया जाता। यह समर्थ सत्पुरुषों में ही होती है। उस भेद को वे ही जानते हैं। ऐसा पुरुष हर समय उठते–बैठते, खाते–पीते उस हालत में सरशार (मस्त) रहता है। नींद, आलस और भूख–ये तीनों दोष वाली चीजें शब्द के अनुभव के बाद ख़त्म हो जाती हैं। सिर्फ संसार से बचने के लिए सत्पुरुष थोड़ी खुराक सूक्ष्म रूप से लेते हैं ताकि शक्ति बनी रहे। यहां बनावटी काम नहीं है।

प्रश्न 359 : एक शंका है। ग़लत ढंग से कहूँ तो क्षमा कीजिए। आप पुरातन सत्पुरुषों का ज़िक्र केवल नाम लेकर ही करते हैं और सब दुनिया पहले 'भगवान', 'गुरु' आदि सम्मानार्थक शब्दों सहित उनका नाम लेती है।

उत्तर : (हँसकर) आत्मस्थिति में वे न इनसे बड़े हैं, न छोटे हैं। तुम भी तो अपने हम–उमरों का पूरा नाम नहीं लेते–उनका आधा नाम ही उच्चारण करते

हो। फिर भी वे तुमसे प्रेम बनाये रखते हैं। इसी तरह इनका उनसे सम्बन्ध है। वे सब उस समताधाम के निवासी हैं। तुम फ़िक्र न करो, खाली नाम उच्चारण करने से वे सत्पुरुष इन पर नाराज़ नहीं होंगे।

प्रश्न 360 : महाराज जी, सत् की सोझी (सूझ) जन्म से जीव को होती है। क्या पिछले जन्मों से जीव तप करता हुआ चला आता है और फिर आगे करने लग जाता है?

उत्तर : प्रेमी, यह कोई एक जन्म की साधना थोड़े ही है। इनको चार बरस की आयु में ही सत् का भेद अच्छी तरह सामने आ गया था। मौज और मस्ती जन्म से ही अन्दर थी मगर समझ न आती थी कि यह क्या हालत है। चार बरस की आयु में सत् सार का भेद खुल गया था। बाल अवस्था की वजह से उस हाल में समय गुजरना था। सार-भेद के यौवन की स्थिति की ओर जाने का चित्त में शौक बढ़ने लगा। ऊपर से संसारियों के साथ मिलकर चलना ही उस समय बेहतर समझा और बचा-बचा कर इधर एकान्त में समय देना शुरू हो गया था। फकीरों का संसारियों से मेल क्या?

प्रश्न 361 : महाराज जी, आपने अन्न क्यों छोड़ रखा है? आगे तो हम ग्रन्थों में पढ़ा करते थे, अब प्रत्यक्ष देख रहे हैं। रोटी बिना कैसे रह सकते हैं?

उत्तर : प्रेमी, इन बातों में क्या पड़ा है? तू अपने जीवन के लिए पूछ। यह बड़ी उच्च अवस्था की बात है, तुमको क्या समझ आवेगी? जप-तप करके जब इस हालत में पहुंचोगे, अपने आप पता लग जावेगा। अब यह क्या कहें? चलने वाली गल (बात) करो। मामूली संसार का गम (शोक) आ जाए या बहुत खुशी मिल जाए तो भूख-प्यास खत्म हो जाती है। जिनके अन्दर मालिक आप कृपा कर देवे उनको फिर किस चीज की जरूरत रहती है? यह भी (थोड़ा सा दूध, चाय जो ग्रहण किया जाता था) मशीन को तेल देने वाली बात है। इधर हिसाब-किताब ग्रहण त्याग का खत्म ही है। समय काट रहे हैं। गुरमुख जीवों के दर्शन ही इनकी खुराक है।

प्रश्न 362 : क्या आप राम को मानते हैं?

उत्तर : जिसको राम मानते थे या जिसकी बाबत कृष्ण ने गीता में कहा है, यह उस परमेश्वर को मानते हैं।

प्रश्न 363 : महाराज जी, आप द्वैतवादी हैं या अद्वैतवादी?

उत्तर : प्रेमी, पहले बैठ जाइये। यह द्वैत को अद्वैत में देखते हैं और अद्वैत को द्वैत में। एकता, समता की तरफ बुद्धि तब ही जायेगी जब दोनों हालतों में केवल एक को समझा जायेगा। बाकी यह विषय अनुभव से सम्बंध रखता है – न कि कहने कथने से।

प्रश्न 364 : महाराज जी, आप फोटो (छायाचित्र) को क्यों नहीं पसन्द करते?

उत्तर : प्रेमी, किसी का वास्तविक स्वरूप, उसका आँखों से दिखने वाला वजूद (स्थूल शरीर) पांच तत्वों का बना हुआ होता है। तेरा स्वरूप तेरी ज्ञान निष्ठा है, तेरे भाव और तेरे विचार हैं। इसलिए झूठ वस्तु में अपने स्वरूप को समझना कितनी मूर्खता है। जैसे कोई यदि चोर है तो उसका शरीर तुम्हारे जैसा ही है परन्तु उसकी ज्ञान निष्ठा में और विचारों में जो स्वरूप है उसे चोर का नाम दे देते हैं। इससे यह साफ है कि हरएक का स्वरूप उसके विचार और उसके भाव हैं न कि उसका पांच तात्विक शरीर, जिसकी तुम फोटो लेते हो। यह फोटो तुमको वास्तविकता से हटाकर नकल की ओर ले जाती है।

प्रश्न 365 : महाराज जी, आपको प्यास लगती ही नहीं। सुना है आप पानी पीते ही नहीं हैं?

उत्तर : तुम जानते हो कि शिवजी महाराज की जटा से गंगा निकलती दिखलाई गई है, जो कई कोटि जीवों को तृप्त करती रहती है। क्या इनके वास्ते अन्दर बह रही गंगा प्यास नहीं बुझा सकती?

प्रश्न 366 : महाराज जी, बहुत दफा देखा गया है कि आप बड़ी उदासी में बैठे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप नाराज या नाखुश हैं।

उत्तर : प्रेमी, तुमने अच्छा अंदाजा लगाया है। बाकई यह हर समय संसार की अधोगति का विचार सामने रखते हुए उदास रहते हैं। इन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता। जिसे संसारी सुख आनन्द रूप समझते हैं इनको सब दुख और अशांत रूप नज़र आते हैं। संसार की कोई चीज सुख सम्पत्ति इनको मोहित करने वाली नहीं है। इन्होंने किसी से नाराज होकर क्या लेना है। कोई इन्हें रोगी कहते हैं, कोई कुछ। इधर किसी प्रकार का दुख रोग चिंता नहीं है। इनका दुख बहुत ही निराला और अश्चर्ज है। जैसी उदासी इनके अन्दर आई हुई है ऐसी उदासी

वाले विरले ही जीव हुए हैं, जिन्होंने इस उदास रूपी रोग से निवृत्ति पाई है और परम तृप्त होकर संसार से गए। हजारों प्राणी उनकी शिक्षा द्वारा सत् विचारों को पाकर निर्मोह हो गए। वह परम पद के अधिकारी थे। दुनिया वाले उनको पागल, दीवाना, जादूगर नाम देकर पुकारते रहे हैं। यह सबकी सुनते रहते थे। किसी की बातों में नहीं आते। संसारी और फ़कीरों के रास्ते में बहुत भेद है। संसारी किसी घड़ी एक चित्त होकर विचार नहीं करते कि यह स्त्री, पुत्र, नौकर-चाकर, मान, इकबाल, सम्पत्ति आखिर है क्या चीज़। अच्छी तरह विचार की आंखों से देखा जावे तो यह सब विनाश रूप है। जीव इन सबके वास्ते किस तरह दिन रात ज़ाया कर रहा है। शरीर सहित किसी वस्तु ने इस जीवड़े के साथ नहीं जाना। अच्छी तरह विचारोगे तो इनका सार कुछ नहीं पाओगे।

प्रश्न 367 : कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की आयु दीर्घ और शरीर अरोग्य होता है? (इशारा आपकी शारीरिक ख़राबी की ओर था जबकि आप बाल ब्रह्मचारी थे)

उत्तर : शरीर तो नित ही रोग रूप है, चाहे संत का है या संसारी का। कल्याणकारी जीवन उन्हीं सत्पुरुषों का जानो जिनकी बुद्धि नित ही ब्रह्म तत्व आत्मा में स्थित है। जिसने शब्द स्वरूप ब्रह्म तत्व आत्मा में स्थिति पाई है वह ही असली ब्रह्मचारी है।

प्रश्न 368 : महाराज जी, सब महात्मा जन अच्छी तरह गले में हार डलवाते हैं परन्तु आप फूल की भेंट क्यों स्वीकार नहीं करते?

उत्तर : लाल जी, तुम हिन्दू लोग फूल पत्र संतों के आगे रखकर, जल में स्नान से और गऊ माता को आटे का पेड़ा देने से ही छुटकारा चाहते हो, और चाहते हो कि कुछ न करना धरना पड़े। प्रेमी, छुटकारा शरीर भेंट से भी नहीं होता। इनमें कल्याण नहीं, न कोई असलियत है। मड़ियां, कबरें पूज लीं, दरख्तों के आगे मत्थे रगड़ लिए, साल के बाद या कभी-कभी गंगा स्नान कर लिया और इसी में कल्याण समझ लिया या गाय बच्छी वैतरणी पार करने के लिए दान कर दी, यह सब वहम, तोहमात कहां तक तुम्हारी बुद्धि को निर्मल कर सकते हैं। आंखें खोलो, अब वह जमाना नहीं रहा। बाल की खाल निकालने वाली आईंदा आने वाली नस्लें आ रही हैं। सनातन धर्म यह नहीं है। पुराना सनातन धर्म क्या था, इसका विचार करें। ऋषियों, मुनियों का धर्म था- उपकार, निष्काम कर्म, दुखियों की सेवा, हर जीव मात्र में अपनी आत्मा का विचार करना। किसी को

मन, वचन, कर्म, करके दुख न देना। सदा एक प्रभु की आराधना करनी। जो कुछ धन, सम्पत्ति, परिवार प्राप्त है, बल्कि अपना शरीर भी, सब प्रभु की दात समझनी। भिन्न भेद से रहित होना, हर पदार्थ जीव मात्र में उस समस्वरूप परमात्मा को देखना। आज क्या हालत है, चूल्हे दी तेरी तवे दी मेरी, या दगा तेरा आसरा। क्या आहार पवित्र है? व्यवहार में कितनी सफाई, पवित्रता रखी हुई है? प्रेमी, यह फकीर खाली मत्था टिकाने वालों में से नहीं हैं। यह तुम लोगों को समझाने आए हैं।

सफलता प्राप्ति का सूत्र

प्रश्न 369 : महाराज जी, ऐसे कौन से साधन हैं जिनको अपनाकर इंसान अपने कार्य में सफल हो जाता है – चाहे वह संसारी हो या परमार्थिक?

उत्तर : प्रेमी, किसी भी अवस्था को प्राप्त करने का पहले निश्चय होना चाहिए और वह निश्चय पक्का होना चाहिए। फिर सफलता के लिये यथार्थ यत्न करना चाहिए। तब कहीं नतीजा ठीक निकलता है। निश्चय करने का अर्थ है कि जिस कार्य को हाथ में लेना हो उसको पहले अच्छी प्रकार से समझ लो, उसकी ऊंच-नीच और अपनी शक्ति का पूरा-पूरा जायजा ले लो। उसके पश्चात् यत्न करना शुरू करो। किसी कार्य को पूरा करने के लिये यत्न करना ऐसे है जैसे यह निश्चय करे कि यह कार्य दस बजे तक समाप्त करना है, लेकिन वह चार बजे तक खत्म नहीं हो पाया; ऐसे यत्न को यथार्थ यत्न नहीं कहते। इस वास्ते बुजुर्गों ने यथार्थ यत्न द्वारा ही पूरी सफलता प्राप्त होने की बात कही है। जब यथार्थ यत्न होता है तो दस बजे से पहले ही काम समाप्त हो जाता है। किसी स्वार्थ या परमार्थ कार्य करने वाले व्यक्ति को अपने सामने एक लालच रखना चाहिये। इस लालच के वशीभूत हुआ मनुष्य कार्य को पूरा करने में जुट जाता है और उसको पूरा करके ही छोड़ता है।

प्रश्न 370 : महाराज जी, किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने के वास्ते क्या किसी विशेष बात की आवश्यकता पड़ती है?

उत्तर : प्रेमी, वह है मुस्तकिल (पक्का) इरादा जिसके बिना तुम किसी कार्य में भी सफल न हो सकोगे।

प्रश्न 371 : महाराज जी, यह मुस्तकिल इरादा पक्का कैसे हो?

उत्तर : लाल जी, या तो गुरु का भय हो या ईश्वर का भय हो, तब ही इरादा पक्का (मुस्तकिल) हो सकेगा।

प्रश्न 372 : महाराज जी, जरा खोल कर बतलाने की कृपा करें।

उत्तर : प्रेमी, भय करके तुम्हारे अन्दर नम्रता आवेगी। जिसका भय किया जावेगा उसके लिए आप आदर का बर्ताव करोगे। फिर वह कृपा करेगा

तब तुम्हें उसके लिए श्रद्धा पैदा होगी और तुम्हारा कल्याण होगा। फिर यह हालत आवेगी:

भय काहू को दे नहीं, नहीं भय मानत आन ।
कहे नानक सुन रे मना, ज्ञानी ताहे बखान ।।

महिला सम्बन्धी विचार

प्रश्न 373 : महाराज जी, माताओं के क्या फरायज़ (कर्त्तव्य) हैं?
उत्तर : प्रेमी, उनमें सादगी और सेवा का होना लाज़मी है। उनको चाहिये कि खाना पकाने और खिलाने का प्रबन्ध नौकरों के हाथ न देकर स्वयं किया करें और अपनी औलाद (सन्तान) के अख़लाक (चरित्र) का खास ख्याल रखें।

प्रश्न 374 : महाराज जी, मासिक धर्म के दिनों में स्नान इत्यादि नहीं किया जाता। उस हालत में नाम सिमरण किस तरह करना चाहिये?
उत्तर : देवी, केवल हाथ मुंह धोकर ही अपना नियम कर सकती हो। चाहे पाखाने में बैठे हुए हों, तब भी मन को ध्यान में लगाये रखो। बहुत वहम को छोड़ दो। क्या उन दिनों में रोटी इत्यादि नहीं खाती हो? कौन सा कार्य छोड़ देती हो? खाना पकाने के समय जरूरी सफाई रख करके बाकी कार्य कम से कम करना चाहिये। उन दिनों में अधिक सिमरण किया करो।

प्रश्न 375 : महाराज जी, यही विचार बार-बार संशय पैदा कर रहा था।
उत्तर : देवी, बिना सत् सिमरण के सब ही शूद्र हैं। स्त्री, पुरुष का कोई सवाल नहीं, जो करे सो पावे। गार्गी, मदालसा, सीता, सावित्री और भी अनेक स्त्रियों ने सत् सिमरण किया। अभ्यास द्वारा ही ऊंचा पद प्राप्त किया है। स्त्री का चोला सेवा रूप है। बचपन से लेकर अन्तिम अवस्था तक सेवा में लगी रहती हैं। एक ही बड़ा नुक्स इनमें यह होता है कि पर निन्दा में व्यर्थ अपना समय नष्ट कर देती हैं। यदि डटकर बैठ जावें तो बड़े-बड़े साधु-सन्तों को पीछे फेंक देती हैं। इनकी बुद्धि ईश्वर ठीक रखें। मर्यादा में ही रहें। बिना सत्संग, सत् सिमरण के मर्यादा में इनका रहना बहुत कठिन है। वह ही संसार की माता है जिसने सिमरण, सेवा, सत्संग में मन चित्त दे रखा है। ईश्वर ही कृपा करें। स्त्री साक्षात् माया का रूप होती है। इस वास्ते संसारी चिन्ता में अधिक लगी रहती है। बचपन से ही माता-पिता के नेक स्वभाव द्वारा जिनके अन्दर लाग लगी हुई होती है वह अगले (दूसरे) घरों में जाकर अपने नेक स्वभाव से दूसरों को अपने

जैसा बना लेती हैं। सबसे सांझ बनानी अपने स्वभाव पर निर्भर है। वरना सारी आयु गन्दगी धोते-धोते ही गुजार देती हैं। बहुत कम देवियों के अन्दर धर्म के साथ प्रीति होती है और सही मार्ग समझने की कोशिश करती हैं। वैसे इस देश में धर्म में स्त्रियों की कुछ अधिक प्रवृत्ति है परन्तु स्वार्थ को पूरा करने के वास्ते अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान और जादू टोने करती रहती हैं। गुरुद्वारा, मन्दिर, साधु-सन्त, फ़कीर जिस जगह जावेंगी, कोई न कोई कामना लेकर जावेंगी। इस वास्ते करोड़ों में कोई ही परम सिद्धि को प्राप्त होती हैं। नरम दिल अवश्य होती हैं। थोड़ा किसी ने लालच दिया, मोजज़ा (चमत्कार) दिखाया, ठगी जाती हैं। हां, किसी के चित्त को दुःखी नहीं करना चाहतीं। कुछ न कुछ सेवा कर देती हैं।

प्रश्न 376 : महाराज जी, आप स्त्रियों को अधिक उपदेश क्यों नहीं देते?

उत्तर : प्रेमी, तुमको पता नहीं। इनके अन्दर संसारी मोह बहुत अधिक होता है। वृत्ति चंचल होने के कारण इनसे कुछ नहीं बन सकता। अधिकतर तो स्वार्थ भाव पूरा करने के वास्ते ज्यादातर साधु-सन्तों के पास दौड़ती रहती हैं। अनेक साधुओं से उपदेश लेती फिरती हैं। कोई ही देवी सत्मार्ग की जिज्ञासु होती है। घर के झंझटों से अवकाश नहीं मिलता। सुबह से लेकर रात तक लगी रहती हैं। कोई बीमार है, किसी को नहलाना है, दूध लाना है, घर के सौ झंझट होते हैं। श्रद्धा सेवा भाव तो बहुत होता है पर उनको यह मायाजाल नहीं निकलने देता। अति मोह स्त्रियों के अन्दर होता है। मोह करके सारा संसार बढ़ता है। मोहवादी से सत् विचार जरा कम ही होता है। जरा कोई चमत्कार दिखाने वाला आया नहीं कि उधर लग गईं। सती सावित्री, अनुसूया, सीता, मदालसा, मीरा जैसा जीवन बनाना बड़ी उच्च बुद्धिवाली देवियों का कार्य है। फिर भी इन देवियों के सत् व्रत ने ही बड़े महापुरुषों को जन्म दिया है।

प्रश्न 377 : महाराज जी, स्त्रियों में चंचलता अधिक क्यों होती है?

उत्तर : प्रेमी, यह चन्द्रमा का अंश रखती हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा घटता बढ़ता रहता है, ऐसा ही इनका स्वभाव होता है। पल में तोला, पल में माशा। यह बिना किसी आश्रय के रह नहीं सकतीं। स्वभाव को निर्मल करने में भी लग जावें तो सबसे आगे बढ़ सकती हैं। राबया जैसी देवी जो अरब में हुई है, किस प्रकार की उच्च स्थिति वाली थी। यह जिस हठ पर खड़ी हो जावें, पूरा कर दिखाती हैं। स्वाभाविक तौर पर इनके अन्दर धैर्य, संतोष, शीतलता, विश्वास,

वासना की अधिकता, मोह, लालसा, लज्जा, शर्म, दया भी हद से ज्यादा होते हैं। इनकी संकल्प शक्ति में बड़ा बल होता है और रोकने की हिम्मत भी बड़ी रखती हैं। रोना और हंसना इनका पुरुष को भुलावे में एक पल में डाल देता है। जायज़-नाजायज़ कार्य करवा डालती हैं।

प्रश्न 378 : महाराज जी, पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी पास आकर बैठने और संशय निवृत्त करने की आज्ञा होनी चाहिये?

उत्तर : प्रेमी, आम सत्संग के दिन माताओं को आने की आज्ञा है। कोई माता इस दिन के अलावा यदि आना चाहे तो अपने पति या नजदीकी सम्बन्धी को साथ लेकर आ सकती है। वैसे माताओं को अकेली आने की आज्ञा नहीं। यह धर्म मर्यादा के प्रतिकूल है। प्रेमी, स्त्री माया का स्वरूप है। पुरुष तो जंगल में भी रह सकता है परन्तु स्त्रियों के लिए कठिन है। इनके पतन का हर वक्त खतरा है।

प्रश्न 379 : महाराज जी, सेवा का हक क्या पुरुषों को ही है? उनकी सेवा, सत् सिमरन से क्या हम भी तर जावेंगी या जो भी सेवा या अभ्यास खुद करेगा वह तर सकेगा? वेशक स्त्री का मालिक उसका पति है। वह कमाई करता है और दोनों मिलकर जीवन क्रिया चलाते हैं। मगर जब कोई समय सेवा-दान पुण्य का आवे, मर्द आगे हो जाता है, उसी को मान्यता दी जाती है। यह नहीं कि हम मर्दों के खिलाफ हैं, वह हमारे मालिक हैं। उनकी आज्ञा माननी हमारा फर्ज़ है, मगर सेवा में आपने भेद-भाव किया है, ऐसा क्यों? आपके चरणों में जिस-जिस ने जगह पाई है, सब आपके सेवक हैं।

उत्तर : देवी, जो कुछ तुमने कहा है, किसी हद तक ठीक है। धर्म-नीति के अनुसार स्त्री पुरुष का बायां अंग है। दोनों मिलकर सेवा करें, तब ही ठीक होता है। अलग-अलग आज्ञा लेकर सत् सेवा, सत्संग वगैरा करें तो कर सकते हैं। मगर आजकल सत्संग जो अलग-अलग किये जा रहे हैं उसका नतीजा यह निकल रहा है कि स्त्री का मत और है पुरुष का और। इनसे घरों में दुबिधा पड़ रही है। स्त्रियाँ सिर्फ सिमरन अभ्यास ही अलग-अलग नहीं करतीं, बल्कि घरवालों से चोरी-चोरी गुप्त सेवा भी करने लग गई हैं। इसके यह खिलाफ हैं। जब और घरेलू मामलात में आपस में मिलकर विचार होता है और सब काम

होते हैं, तो फिर सेवा करते वक्त छुपाकर करना गलत है। कमाई तो मर्द की है, मर्द की रजामंदी लेकर जैसी उसकी मर्जी हो सेवा कर सकती हो। मर्द को स्त्री की रजामंदी लेनी उतनी ही लाजमी है जितनी कि स्त्री को है। स्त्री बहुत बातों में आधीन है। मर्द हर अच्छे काम में खर्च करने के लिए बा-इख्तियार हैं । वह नाजाईज़ भी कर जाए तो स्त्री कुछ नहीं बिगाड़ सकती। मगर उस समय स्त्री का भी हक हो जाता है कि गलत कामों से उसे रोके। मर्द घर का मुखी जो हुआ। कोई-कोई स्त्री विचारवान भी होती है जो मर्द को हमेशा अच्छी सलाह देती है और दोनों हमख्याल हो जाते हैं। जिस घर में विचारवान स्त्री हो वह घर स्वर्ग बन जाता है। अब तुम बताओ दोष वाली बात क्या की गई है?

सदाचार

प्रश्न 380 : सदाचार से आपका क्या अभिप्राय है?

उत्तर : प्रभु परायणता ही सदाचार का स्वरूप है। सदाचार यानी सत् में आचरण करना तब ही हो सकता है जब केवल सत्स्वरूप ईश्वर को ही सत् करके निश्चय में धारण किया जावे और तमाम प्रकृति जाल को असत् स्वरूप में देखा जावे। इस वास्ते अति प्रभु की याद करो और उसी का सिमरण करो।

प्रश्न 381 : सदाचारी बनने के लिए किन विशेष बातों को जीवन में लाना चाहिए? कृपया साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, इस समय सदाचारी बनना बड़ा दुर्लभ है, जब सदाचारी बनेगा तभी आत्म साक्षात्कार करने लायक बन सकेगा। इन पाँच बातों को अगर जीवन में घटा पावे तो सदाचारी जीवन बन सकता है।

1 जीवन सादा और सरल बनावें।

2 नशीली चीजें, नुमायशगाह (सिनेमा, थियेटर वगैरह) से परहेज़ करें। यह बुद्धि को मलीन करते हैं और चंचलता बढ़ाते हैं।

3 भूल कर भी कुसंग का सेवन न करें।

4 हमेशा गुणी पुरुषों के पास बैठे, चाहे वहां बैठकर तेरी समझ में कुछ न आता हो। एक समय आवेगा कि तू गुणी पुरुषों के विचारों को समझने लगेगा। गुणी पुरुषों के संग का बड़ा असर होता है।

5 मन से छल और कपट को त्यागकर सरल और निष्कपट होजा, इससे तू बड़ी मुसीबतों से बचकर परम शांत अवस्था को प्राप्त करेगा।

प्रश्न 382 : प्याज लहसुन के इस्तेमाल से हिन्दुस्तान के लोग और कुछ पंजाब के रहने वाले भी बहुत परहेज़ करते हैं और कई महापुरुषों ने ग्रन्थों में भी इसका सेवन बन्द किया हुआ है। क्या आप इसके गुण दोषों पर रोशनी डालेंगे और क्या इनका इस्तेमाल ठीक है या नहीं?

उत्तर : जिन देशों में प्याज लहसुन नहीं होता या कई सम्प्रदाय मसलन जैन धर्म वाले या धर्म मर्यादा वाले जो इसका इस्तेमाल नहीं करते क्या उनके अन्दर तमोगुण नहीं होता, क्या उनकी विषय वासना कम हो चुकी है? जरा विचार करने पर पता लगेगा कि इस खुराक से मन के अशुद्ध होने का कोई सम्बंध नहीं है। मन की चंचलता शब्द की अनुभवता से मिट सकती है। लहसुन प्याज खाओ, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी भी खुराक या चीज़ की दीर्घ वासना मन को चंचल करती है। दूध घी का ज्यादा इस्तेमाल भी रजोगुण तमोगुण को बढ़ाने वाला है, हालांकि यह सात्विक खुराक मानी गई है। मर्यादा के अन्दर अगर किसी वस्तु को ग्रहण करोगे चित्त के अन्दर धीरज आवेगा। स्वाद वश कोई चीज ग्रहण करोगे तो वह अपना उल्टा असर करेगी। मुनश्यात (नशे वाली वस्तु) चाहे थोड़ी मात्रा में भी ली जावेगी वह अपना रजोगुणी तमोगुणी असर पैदा करेगी।

प्रश्न 383 : रूहानियत की तरफ चलने के लिए कौन सी आदत का होना लाज़मी है? वह कौन से भाव हैं जिनको ग्रहण करना आवश्यक है और जिनसे इस धर्म के मार्ग में मदद मिलती है?

उत्तर : प्रेमी, सदाचारी जीवन जिसमें सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरन शामिल हैं, होना लाज़मी है। सत् सिमरन का साधन किसी कामल उस्ताद से, जिसे गुरु कहते हैं, मिलता है।

प्रश्न 384 : महाराज जी, पहले तीन नियमों में दृढ़ता नहीं है। पहले इनको अपना लिया जाए तो फिर गुरु की तलाश का सवाल आएगा। अभी तो इन पर अमल नहीं हो रहा। अगर उन पर चल पाए तो फिर आगे चलने के साधन की जरूरत होगी।

उत्तर : प्रेमी, इनकी बुनियाद तो सत् सिमरन है। अगर बुनियाद ही न होगी तो मकान किस पर खड़ा करोगे।

विविध प्रश्न

प्रश्न 385 : महाराज जी, एक इन्सान की उम्र अस्सी साल है। साठ साल बीत गये, बीस और रहते हैं। सुबह-शाम खाए-पिए, कसरत करे, मेहनत करके दुनिया का कारोबार चलाते हुए यह कैसे सोच सकता है कि मर जाना है। मौत तो वक्त पर आयेगी। हर वक्त मौत का ख्याल रखना अपने वास्ते एक गिरावट का माहौल (वातावरण) तैयार कर लेना है। इसके बारे में आपका क्या ख्याल है?

उत्तर : प्रेमी, आम दुनियादारों के वास्ते तुम्हारी बात सही है। उनको इस बात की जरूरत ही नहीं है कि मौत का ख्याल किया जावे। उनको मौत का ख्याल उसी समय आता है जब उनका कोई नजदीकी दोस्त उनसे हमेशा के लिए जुदा हो जाता है। उस वक्त चन्द लम्हें (कुछ क्षण) सारी दुनिया उनके वास्ते अंधेरी नजर आती है मगर समय के पलटते ही सब भूल-भाल जाते हैं और मौत का ख्याल उनके वास्ते एक सपना हो जाता है। कोई जिज्ञासु पुरुष ही, जिसके बड़े संस्कार उदय हों, यह ख्याल रख सकता है। जब बुद्धि में सत् विश्वास दृढ़ होता है तब ही मौत हर वक्त सामने नजर आती है।

प्रश्न 386 : महाराज जी, फकीर के दरबार में आकर क्या भेंट देनी चाहिए?

उत्तर : प्रेमी, सच्चे फकीर दुनियावी चीजों को अहमियत (महत्व) नहीं देते। उनके ताल्लुकात (सम्बन्ध) जीव मात्र से रूहानी (आध्यात्मिक) हुआ करते हैं। वे सब जीवों को आत्म रूप करके ही समझते हैं। तुम्हारे अन्दर कोई बुराई या अवगुण है, कोई तपिश तुम्हें तपा रही है, कोई कल्पना सता रही है तो उसको फकीर के दरबार में भेंट कर दो। यही भेंट फकीर तुम लोगों से चाहते हैं।

प्रश्न 387 : महाराज जी, फकीर का परशाद क्या है?

उत्तर : प्रेमी, परशाद (प्रसाद) के बारे में भी यही बात है। जो कुछ भी ठंडक, तसल्ली और नेक गुण और अपनी जिन्दगी को मनव्वर

(प्रकाशमयी) बनाने की बातें सन्तों के दरबार से मिलें उनको फकीर का परशाद जानकर ग्रहण करो।

प्रश्न 388 : महाराज जी, फकीर कितनी तरह के होते हैं?

उत्तर : प्रेमी, फकीर तीन तरह के होते हैं- मस्त फकीर, दीवाने फकीर और दाना (वाइज) फकीर। मस्त फकीर किसी से किसी तरह का मतलब नहीं रखते हैं। अपने में अलमस्त रहते हैं। किसी से कुछ कहना-सुनना नहीं बल्कि अपनी मस्ती में इस तरह मखमूर (मतवाले) रहते हैं कि उनको पता नहीं होता कि वे कहां हैं और उनका शरीर कहां है।

दीवाने फकीर दुनिया को दिखाने के लिए पागल से बने रहते हैं, पर अन्दर से विचारवान होते हैं। और लोगों को अपने से दूर रखने के लिए वे दीवानगी का वतीरा इख्त्यार (ढंग धारण) किये हुए रहते हैं।

दाना फकीर संसार की भलाई के लिए अपनी कमाई में से जिज्ञासुओं को सही उपदेश प्रदान करते हैं और यह कोशिश करते हैं कि इस चार रोजा जिन्दगी में अगर किसी का कल्याण उनके जरिए हो जावे तो बेहतर ही है।

प्रश्न 389 : महाराज जी, क्या इस समय भर्तृहरि मौजूद हैं?

उत्तर : प्रेमी, फकीरों से संसार खाली नहीं रहता है। और भी कई महात्मा सूक्ष्म रूप धारण किये इच्छाचारी होकर विचर रहे हैं। जब जैसा चाहें रूप धारण कर लें या लोप कर लें। ज्यादा से ज्यादा समय यह महापुरुष समाधिस्थ अवस्था में गुजार देते हैं। योग अवस्था वालों की अगाध महिमा है।

प्रश्न 390 : महाराज जी, क्या अवधूत अवस्था वाले भी साधु हो सकते हैं जो चमत्कार दिखाते हैं?

उत्तर : प्रेमी, ऐसे महापुरुष संसारियों को ज्यादा नजदीक नहीं आने देते। वे ज्यादा से ज्यादा आनन्दमयी अवस्था में रहना अच्छा समझते हैं। सब संसारी स्वार्थों के भरे हुए होते हैं। जो भी मन और सच्चे हृदय से उनके पास जाते हैं उनके मनोरथ न कहने पर भी पूरे हो जाते हैं। गालियां इस वास्ते देते हैं कि लोग बे यकीन होकर (विश्वासहीन होकर) वापिस चले

जावें, हमारी मौज में दखल न दें। वैसे ही संसारी डर के मारे कम पास जाते हैं। इस अवस्था को समवृत्ति कहा गया है। वह ही आत्म आनन्द की आरूढ़ अवस्था होती है। जनता का भला ऐसे पुरुषों द्वारा नहीं हो सकता। अवधूत न ही किसी को कल्याण का रास्ता बतलाते हैं और न ही उनकी बात किसी को समझ में आती है।

प्रश्न 391 : महाराज जी, मसलाए तकबीर के मुतल्लक आपका क्या फरमान है? (एक मुसलमान प्रेमी का प्रश्न)

उत्तर : प्रेमी, कुरान शरीफ में लिखा हुआ है कि नहीं कि ख्वाहिश (कामना) और गजब (जुल्म) से मुबर्रा (मुक्त) होकर तकबीर पढ़?

प्रेमी जी : हां ऐसा तहरीर (लिखा) है।

श्री महाराज जी : तो प्रेमी, यह बताइये कि जो लोग हमेशा बकरियों और गायों के गलों पर छुरियां चलाते हैं, क्या वे ख्वाहिश और गजब से मुबर्रा हैं?

तो बतलाइये, क्या तकबीर होगी? प्रेमी, तकबीर तो इब्राहीम ने पढ़ी थी, जिसने अपने लड़के के गले पर छुरी चला दी थी। वह हस्ती (महापुरुष) ख्वाहिश और गजब से मुबर्रा थी। ऐसी हस्ती ही तकबीर पढ़ सकती थी।

प्रश्न 392 : महाराज जी, अपने अन्दर क्या-क्या खामियां (त्रुटियां) हैं, यह कैसे पता चले?

उत्तर : प्रेमी, यदि इन पांच असूलों पर तुम नहीं चल रहे हो, तो फिर खामियां ही खामियां हैं। सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरण यही पांच असूल हैं। अगर तरक्की नहीं हो रही तो लाल जी, मूर्खों की संगत दो चार दिन करो। जब उनके बुरे काम देखोगे तो नफरत (घृणा) पैदा होगी। फिर बुद्धि का सन्तों की तरफ झुकाव होगा और श्रद्धा पैदा होगी। मूर्ख लोगों को जब तुम कोई भलाई की बात बताओगे तो वे मारेंगे डंडा, देंगे गाली, बस फिर तुम्हारी अक्ल ठिकाने आ जायेगी। फिर तुम दुनिया की असलियत को सही तरह से समझने लगोगे। देखो प्रेमी, ये दुनिया वाले कितने दुखी हैं, इनकी वासना का कोई अन्त ही नहीं, किसी तरह की भी शान्ति इन लोगों

को नहीं। पुत्र, पौत्र, दौलत, शादी ब्याह सब कुछ हुआ–फिर भी बेचैन हैं, बेकरार हैं। यह सोचकर अपने जीवन का मुकम्मल प्रोग्राम बनाओ और परमार्थ के रास्ते में कदम बढ़ाते चलो। सत्संग द्वारा विचार ग्रहण करके अपने प्रोग्राम बनाओ और उस पर कसकर चल पड़ो। इस जिन्दगी का आखिर मरण ही है, कोई भी इस महाकाल कराल से नहीं बचा। तेरे शुद्ध विचार ही विवेक हैं, ऐसे विचारों की परिपक्वता ही निश्चय है। गर्ज (स्वार्थ) छोड़ो, फर्ज को पकड़ो, तुम्हारा बेड़ा ही पार है। पुँछू साहिब कहते हैं:-

होनी सो होनी खलकत ऐमें रोनी

अपने ऊपर अपनी कृपा करो, इसका मतलब यह है कि अपने आपको न ठगो।

प्रश्न 393 : महाराज जी, मांस खाने से कौन सी विशेष हानि है?

उत्तर : प्रेमी, मांस खाने से बुद्धि जड़ हो जाती है, बुद्धि की चेतना नष्ट होकर गुस्सा, गरूर और क्रूरता के भाव अन्दर आ जाते हैं।

प्रश्न 394 : महाराज जी, साइंसदान कुदरत के राज़ की खोज करके आवाम (जनता) की खिदमत करते हैं और दुनिया का नक्शा बदल रहे हैं। अगर रूहानी ताकत से लोगों को फायदा पहुंचाएंगे तो ईश्वर का इसमें क्या नुकसान है? ईश्वर बेअन्त शक्ति का लामहदूद (असीम) खजाना है। रूहानी शक्ति यानी वरकतों से लोगों के कष्ट (दुःख) दूर करने से इस खजाने में कभी कमी न होवेगी, फिर रूहानी पुरुष क्यों ताकत छुपाये रखते हैं और क्यों करामात के इस्तेमाल (प्रयोग) से गुरेज (संकोच) करते हैं?

उत्तर : लाल जी, करामातें दिखाने के कारण ईसा, मनसूर को सूली पर चढ़ना पड़ा और शमस तबरेज को चमड़ी उतरवानी पड़ी, दीगर (अन्य) करामात दिखाने वाले फकीरों का यह हाल रहा है। कोई अकलमन्द (बुद्धिमान) इन्सान अपना खजाना बेसूद जाया नहीं कर सकता, करामात का मुआवजा अदा करना पड़ता है, बाकी निष्काम कर्म ही जिन्दगी के भूषण हैं, इन ही से इन्सान जीवन सफल कर सकता है। तत्वों के रद्दोबदल (हेर फेर) के बगैर यह संसार उजाड़ बन जाता है। फिर इंसान बगैर कर्म के

किस तरह मंजिले मकसूद (लक्ष्य) तक पहुंच सकता है। कुदरत की तमाम ताकतें-सूरज, चांद, हवा, पानी, पृथ्वी-निष्काम कर्म का पवित्र आदर्श पेश कर रही हैं। ये ताकतें अनथक सेवा कर रही हैं, इनका जीवन निष्काम कर्म के अर्पण है।

जब तक जीवन सादा न हो, आचार, विचार, आहार, व्यौहार ठीक न हो, तब तक ज्ञान की बात करना बेसूद (निरर्थक) हुआ करता है। ऐसे जीव धोखेबाज बन जाते हैं। कहनी, करनी और रहनी और बन जाती है। जीव अन्धकार में पैदा हुआ है, अन्धकार में ही बढ़ता, फलता, फूलता और खत्म हो जाता है। कोई विरला पुरुष ही इस माया के अन्धकार से ऊपर उठ सकता है।

ज्यों-ज्यों प्रकृति की खोज की जायेगी त्यों-त्यों नये से नये अजायबात (अचम्भे) प्रगट होंगे, जिनको देखकर जीव दंग रह जाता है। आगे और खोज करने के वास्ते बढ़ रहा है, प्रकृति की खोज कभी खत्म नहीं होती, खोज करने वाले ही खत्म हो जाते हैं। जब तक गैर तबदील हालत को समझा नहीं जाता तब तक इस जीव की खोज बन्द नहीं होती। सम तत्त्व की प्राप्ति करनी कोई आसान नहीं। इस मोह-माया के जाल को ही जीव ने सब कुछ समझ रखा है। ऐसा मोहित हो गया है कि अपने सत् स्वरूप की याद बिल्कुल ही भूल गया है। प्रकृति को ही अपना रूप मान लिया है। इस नाम रूप रस की वासना जब तक चित्त में दृढ़ है तब तक भ्रम, अज्ञान, अविद्या जीव की खत्म नहीं हो सकती। नाम रूपी कल्पना चित्त के अन्दर अनेक प्रकार के तुरंग (संकल्प) पैदा कर रही है। प्राप्ति अप्राप्ति दोनों हालतें संशय और शोक पैदा करती रहती हैं। कभी धीरज चित्त के अन्दर नहीं आ सकता। कोटि जन्म जन्मान्तर तक इस भ्रम में गुजर जाते हैं। इन्द्रियों के रस-भोगों में जीव ग्रसा रहता है। छिन में खुशी छिन में गमी को पाता हुआ सारी जीवन यात्रा व्यतीत कर देता है, शरीर नष्ट हो जाने पर भी भोगों की लालसा खत्म नहीं होती, यह ही तृषा बार-बार कई प्रकार के शरीरों को धारण करवाती है। चाहे कोई साइंसदान हो, चाहे गृहस्थी या विरक्त, जब तक सम तत्त्व को बोध नहीं कर लेता तब तक भटकना बनी रहेगी। इस वास्ते परम तत्त्ववेत्ता सत्पुरुष प्रकृति की खोज में दखल ही नहीं देते। जीवन शक्ति की खोज में समाँ (समय) देकर ऐसी

हालत में प्रवेश कर जाते हैं जिसे पाकर फिर किसी की जरूरत नहीं रहती।

कोटबार पसरया पसारा।

यह सृष्टि कई बार पैदा हुई और लीन हुई। मगरब (पश्चिम) वाले जिस खोज में लगे हुए हैं, उन साइंसदानों के पास बैठकर पूछो (कि) क्या हासिल हुआ है? अगर इतना समाँ मन बुद्धि एवं परम तत्त्व की खोज में लगावें तो वे लोग ज्यादा तरक्की कर जावें। तुम्हारे देश के सत्पुरुषों ने जिस बात को छोड़ दिया था उसको उन्होंने पकड़ लिया है। प्रकृति की खोज के बाद जब आत्मा की खोज की तरफ आवेंगे तब शान्ति आवेगी। इस वक्त तक केवल दूसरों का नाश करने वाले ही सामान ज्यादा से ज्यादा बनाकर एक दूसरे को हैरान परेशान कर रहे हैं। पहाड़ दूर से ही सुहावने मालूम होते हैं। उन देशों के जितने अन्दर-खाने (अन्दर ही अन्दर) अशान्ति यानी आग लगी हुई है, वे ही जानते हैं। कोई रास्ता उनको नहीं मिल रहा है। उन मुल्कों (देशों) में विवेकानन्द, रामतीर्थ इत्यादि के जाने से उनकी आँखें खुली हैं, बाकी (हां यह बात तो जरूर है कि) उनकी अक्ल तेज है। किस तरह दुनियावी सामान को बनाया जावे और इस्तेमाल (प्रयोग) किया जावे, रहन-सहन का तरीका, सेवा भाव, दूसरे का दर्द अच्छी तरह जानते हैं। कपट करते भी हैं तो अच्छा मौका देखकर, जहाँ तक उनका अपने देशवासियों से ताल्लुक (सम्पर्क) है ठीक है।

मैं तू का झगड़ा तो विवेकी पुरुष के अन्दर खत्म हो सकता है। जब तक मोह माया के जाल में जीव फंसा हुआ है तब तक किसी को परिवार का बन्धन है, किसी को गांव का, किसी को कसबा का, किसी को सूबा का, किसी को देश का मोह बना ही रहता है। सारे विश्व के प्राणियों से एक जैसा अन्दर से प्रेम रखना गुणी पुरुष का धर्म है। कोई ही सत् बुद्धि वाला जीव सदियों के बाद पैदा होता है। उनके अमली जीवन को देखकर हजारों जीवों के अन्दर चाव बनता चला जाता है। खासकर भारत की धरती ही ऐसी है, इस मिट्टी में से कोई न कोई भागवान जीव प्रभु प्रेरणा से आता ही रहता है। सूर्य का काम है रोशनी देना, उस रोशनी से चाहे कोई लाभ उठाये या न उठाये। उसे इससे कोई मतलब नहीं है। जब रोशनी गरुब (अस्त) हो जाती है तब कदर आती है, जब अंधेरे में ठोकरें लगती हैं तो होश आता है। प्रेमी, तुम अपना विचार करो फिर उस शक्ति को प्राप्त

करो। फिर करामात में खर्च करके तजुर्बा कर लेना। जब मौका आया नानक, मीरा, दादू, पलटू वगैरा सत्पुरुषों को जाहिर होना पड़ा। यह कोई समाँ होता है, काया पलट देते हैं।

प्रश्न 395 : महाराज जी, ऐसा सुनने में आता है कि सन्तों के पास जाकर दुनियादार लोग अपने मन की मुराद पूरी कर लेते हैं। और कई तरह की मुरादें (कामनाएं) लेकर सन्तों के पास जाना और उनसे पूरी करवाकर आना, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही। अगर सन्त ऐसे जादूगर हैं तो कुदरते कामिला (पूर्ण प्रकृति) का निजाम टिकने वाला रहेगा ही नहीं। मेहरबानी करके इसे जरूर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : लाल जी, क्यों सन्तों को दोष देते हो? सन्तों के पास कभी किसी उम्मीद को लेकर नहीं जाना चाहिये। अगर कोई उम्मीद तबीयत में (अन्तर्गत) लेकर जाना है तो अपने कल्याण की उम्मीद (चाहना) लेकर जा। ऐसा करने से तेरे सामने जो भी तकलीफ या दिक्कत (कठिनाई) इस संसार के संग्राम में पेश आवेगी तो उसको दूर करने की सूक्ष्म बुद्धि तेरे अन्दर अपने आप से आप पैदा होगी और तेरी तकलीफ या दिक्कत समूल नष्ट हो जावेगी। सन्तों के पास जो प्राणी जिस भावना से जाता है वह वहां से उसको पूरी करके आता है। इसका कारण प्रेमी अच्छी तरह समझ लो। सन्त कोई जादूगर नहीं हैं और न ही कुदरते कामिला (पूर्ण प्रकृति) के मामलों में दखल-अन्दाजी (हस्तक्षेप) करते हैं। वे तो स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं। इस मिसाल के मुताविक कि जैसे गंगा कितना भारी जल लेकर बह रही है और बहती चली जा रही है, कोई इन्सान अपना बरतन लेकर पानी भरने जावे और बरतन भर ही ले तो उससे गंगा का न कोई कुछ घटता है न बढ़ता है। न ही गंगा उस इन्सान को पानी देती है। वह तो अपने आप में मस्त उछलती कूदती लहरों में लहराती समुद्र की तरफ बढ़ रही है लेकिन इन्सान अपनी जरूरत के मुआफिक उसमें से पानी भर कर लाता है और अपनी प्यास बुझाता है। सन्तों के पास भी लोग अपने-अपने खाली अन्तःकरण लेकर पहुंचते हैं तो जिसका जितना और जैसा अन्तःकरण है वह सन्तों के ज्ञान स्वरूप से उतना ही ज्ञान लेकर अपने जीवन की उन्नति करता है। इसमें सन्तों का कोई लेने देने का ब्यौपार नहीं है। अगर अन्तःकरण खाली नहीं है तो उसमें कुछ नहीं भरता। अगर सन्तों के पास जाना ही है तो अपने

आपको खाली बनाकर जाओ। हलीम और आजिज़ (नम्र) होकर जाओ और उनमें श्रद्धा रखो। उनकी जिन्दगी के हालात का बारीकी से मुतालया (अध्ययन) करो और अपनी मानसिक खुराक को प्राप्त करके वापिस आओ। तुम्हारा जरूर कल्याण होगा।

प्रश्न 396 : महाराज जी, बतलाया जाता है कि प्रलय कई हैं। इस पर रोशनी डालें?

उत्तर : हाँ प्रेमी, लो सुनो। प्रलय कई हैं, नित प्रलय, निमित्त प्रलय, प्रबोध प्रलय, विज्ञान प्रलय और अत्यंत प्रलय। नित प्रलय रोजाना तबदीली यानि सुबह होती है, शाम होता है, सूरज आ रहा है, जा रहा है, चांद घट, बढ़ रहा है।

निमित्त प्रलय : बाप मर गया, दादा मर गया, मां मर गई, बगैरा-बगैरा।

प्रबोध प्रलय : संसार को नाशवान जानना और ईश्वर को सत् करके जानना।

विज्ञान प्रलय : अपने आपको सबमें मुहीत (व्याप्त) देखना और अंदर से असंग रहना।

अत्यंत प्रलय : अपने स्वरूप का बोध हो गया और सब संसार खत्म हो गया और निसंकल्प हालत हो गई, यह अत्यंत प्रलय है।

प्रश्न 397 : महाराज जी, सत्संग के बारे में जरा और रोशनी डालें। आजकल बड़े बड़े सत्संग हो रहे हैं, लोगों ने इसे व्यापार बना लिया है। सत्संग करने वालों में कोई विशेष बात तो नज़र आती नहीं, ज्यादातर भोली जनता को उल्लू बनाया जा रहा है।

उत्तर : प्रेमी, इन्होंने सत्संग के करने में चौदह असूल (ग्रंथ 'समता विलास' में) बनाए हुए हैं, सत्संग उनके मुताबिक तबादला ख्यालात (विचार विमर्ष) होना चाहिए। इसके अलावा जो सत्संग का स्वरूप देखा जा रहा है वह सत्संग नहीं है। सत् का यत्न करना भी सत्संग है, इसके बारे में विचार करना भी सत्संग है। प्रेमी, संसार को देखा सबने है, समझा किसी ने है। ईश्वर का निश्चय जब तक पुख्ता नहीं होता तब तक फकीरों और आशिकों की सोहबत बहुत जरूरी है। तुम्हारा निश्चय जो इस समय परमात्मा में है,

सिर्फ ख्याली ही है। जब तक इसे पूरी तहकीकात (खोज) करके समझ न लिया जावे परमात्मा वाला निश्चय बैठता नहीं। आम लोगों का परमात्मा वाला निश्चय महज़ सुना सुनाया है।

प्रश्न 398 : क्या शराब पीकर समाधि प्राप्त की जा सकती है?
उत्तर : जब जागृत अवस्था में मन वाणी से रहित हो जाता है और उसके संकल्प विकल्प नष्ट हो जाते हैं, उसी अवस्था को समाधि कहते हैं। शराब पीकर बेहोशी आ जाती है, समाधि नहीं होती।

प्रश्न 399 : महाराज जी, हम जिज्ञासु पद पर या मुमुक्षु पद पर कैसे स्थित हो सकते हैं?
उत्तर : प्रेमी, सत्पुरुषों पर अटूट श्रद्धा और आत्म विश्वास, ये दो बातें ऐसी हैं यदि इन्हें अपने जीवन में ले आया तो तू जिज्ञासु पद पर आरूढ़ हो जावेगा। इसके अतिरिक्त और सब बातें जिज्ञासु के लिए वितंडावाद (व्यर्थ) हैं। उन्हें जिज्ञासु को कभी धारण नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 400 : महाराज जी, कहते हैं स्वप्न में मरे हुए के दर्शन करना हानिकारक है। इसका क्या अर्थ है? क्या ऐसा होना ठीक है?
उत्तर : प्रेमी, यह सब अपने मन की कल्पना है। मृतक का शरीर तो इस जगह भस्म हो गया और जीव अपनी वासनानुसार पता नहीं किस शरीर में विचर रहा है और इस जगह जो स्वप्न दर्शन है यह केवल अपने मन का संकल्प है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

प्रश्न 401 : महाराज जी, गृहस्थ अच्छा है या फकीरी?
उत्तर : प्रेमी, दोनों में रोना ही है। इबादत इलाही (ईश्वर भक्ति) में ही आनन्द है।

प्रश्न 402 : महाराज जी, आप सत्य बोलने पर ज्यादा जोर देते हैं। हम तुच्छ बुद्धि जीव इस कद्र संसार में ग्रस्त हैं कि बिना झूठ के कोई मानता ही नहीं। इस समय कन्ट्रोल का जमाना है। बीस बोरी अन्दर चीज़ पड़ी हुई है। अफसर आ जाने पर उसे दस बोरी बतानी पड़ती है। ग्राहक से अफसर से, हरेक से दाव खेलना पड़ता है। सच बोलते हैं तो

गिरफ्तार होने का डर है। झूठ पाप समझा जाता है। समझते हुए फिर हमें ऐसा करना पड़ता है क्योंकि झूठ के बिना काम चलता दिखाई नहीं देता।

उत्तर : प्रेमी, यह सब मनगढ़त बातें हैं। लाल जी, सारा दिन दुकान पर काम करने के बाद शाम को जरा एकान्त में बैठकर यह किया करें कि अमुक व्यक्ति को चालीस सेर की बजाये ३९ सेर चीज दी गई है। ऐसा क्यों हुआ है और इस प्रकार मुझे करने में क्या लाभ है, और भी इस तरह के विचारों को जब बार-बार विचारोगे तब मन बुद्धि स्वयं ही सच्चाई का रास्ता निकाल लेंगे। जब तक विचार नहीं करोगे तब तक मन के कहने में और देखा देखी में लगे रहोगे। इस तरह कभी सुधार नहीं हो सकता।

प्रश्न 403 : महाराज जी, ज्यादा सत्संगी हो जाने पर या समाजी आदि होने पर कई प्रकार की त्रुटियां भी आ जाती हैं। अब हम ही हैं, साधु, सन्तों, फकीरों को मान देने के बदले नुक्स (दोष) निकालते रहते हैं। और जमायतें (सम्प्रदाय) तो पुस्तकों, ग्रन्थों का कितना आदर करती हैं, इधर इस बात का भी कोई ख्याल नहीं, जिस तरह आया पढ़ लिया। समतावादी होने का क्या मतलब है?

उत्तर : प्रेमी, मान से प्रेम, श्रद्धा, विश्वास बढ़ते हैं। जब भी जहां प्रेमी मिलें, ब्रह्म सत्यम् करके भेंट करें। पुस्तक को माथा टेकना मना ही सही परन्तु चाहे कोई भी ग्रंथ हो, थोड़ा ऊंचा रखकर विचार करें। साफ सुथरा कपड़ा ग्रंथ के नीचे होना चाहिए। बैठने की जगह नुमायशी नहीं होनी चाहिए, ताकि उस पर बैठकर पढ़ने वाला अभिमान में न आ जावे। पाठ करने वाले के वास्ते आसन आवश्यक समझो तो कुशा या ऊन का होना चाहिए। सरलता और सादगी से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। ऐसा न होने से ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार प्रकट हो जाता है। हर प्रकार की सेवा का कार्य बड़ी नम्रता से पूरा करना चाहिए। अपने आप को तुच्छ से तुच्छ सेवादार समझे तब धर्म की वृद्धि हो सकती है। वह नीचा, मैं ऊँचा वाला भाव खत्म करके हर जीव मात्र की सेवा में शरीर को लगाये रखना समतावादी पुरुषों का धर्म है। अपनी बुद्धि से साधु सन्त, असन्त का विचार कर लेना चाहिए। किसी की अपने द्वारा इज्जत हो जाने पर कमी नहीं पड़ती।

प्रश्न 404 : महाराज जी, खेचरी मुद्रा क्या होती है?

उत्तर : प्रेमी, यह हठयोग का साधन है। गुरु गोरख, मछन्दर जैसे योगी इन साधनों को प्रयोग में लाते रहे हैं।

प्रश्न 405 : महाराज जी, बच्चे तो हर समय निश्चिंत रहते हैं। इन्हें न हर्ष है न शोक?

उत्तर : प्रेमी, ऐसा नहीं। इनको भी राग और द्वेष पल-पल विखे सताता है। बल्कि इसके साथ इनमें अज्ञानता की विशेषता है। अज्ञानता के कारण यह अधिक दुखी रहते हैं।

प्रश्न 406 : महाराज जी, आपने कई जगह वाणी में फरमाया हुआ है-

चार, अठारह, नौ पढ़ थाके।
नेति-नेति तिन कर जापे।
इसका अर्थ समझाने की कृपा करें।

उत्तर : प्रेमी, ये बुझारतें ही तो सन्तों का खजाना है। समझने वाले इशारों में सारा हिसाब समझ जाते हैं। इस वाणी में चार वेद, अठारह पुराण नौ स्मृति से मतलब है।

प्रश्न 407 : महाराज जी, मानव अपने आप को धोखा देकर ठग रहा है, कैसे माना जाए?

उत्तर : लाल जी, यह बोसकी (सिल्क) की कमीज तुमने पहन रखी है, इसकी आसक्ति से निकलो। इस कमीज ने तुम्हारे मन पर एक पकड़ पैदा कर ली है। परमात्मा न करें, कल यह न मिले तो दुखी हो जाओगे। इस गफलत में पड़े रहने और यथार्थता से दूर रहने को अपने आप को ठगना कहते हैं।

प्रश्न 408 : महाराज जी, गुरु को पास कैसे समझा जावे?

उत्तर : प्रेमी, उसी प्रकार जिस तरह एक औरत अपने यार (मुंजले) के पास जा रही थी। रास्ते में सांप मिला। सांप ने उसे फुंकारा। आगे से उसने कहा:

कालिया नागा, छजली वालिया।
तुद डराइयां क्यों डरिये।।
मियाॅ मुॅजले जैसे मन्दरोई होवण।
तुद डसियाॅ क्यों मरिये ।।

मेरा मॉन्दरी मुन्जला है मैं उससे मिलने जा रही हूं। तेरा डंक मुझे नहीं मार सकता। ऐसी निडरता जिस जिज्ञासु के पास सत् विश्वास करके आ जाती है उसके पास गुरु को समझना चाहिए।

चोहा भग्ताॅ (पाकिस्तान) में एक सूरज संत महात्मा हुए हैं। उनके पास एक गूजर आकर बैठता था। एक बार सूरज जी को दूध की आवश्यकता पड़ी। गूजर शाहानी को कहा गया कि दूध ले आ। गूजर ने कहा कि दूध खत्म हो गया है। सूरज महाराज ने कहा अन्दर दूध काफी है, जाकर ले आओ। शाहानी ने जाकर जब अन्दर देखा तो वास्तव में दूध बर्तनों में भरा हुआ था। शाहानी वापस आकर सूरज भगत के चरणों में गिर गया और कहने लगा–पीर जी, अल्लाह की राह हमें भी समझाओ। बाद में शाहानी का उन पर ऐसा पक्का विश्वास हो गया कि वह हर एक को कहता फिरता:-

नाम शाहानी जात अहीर, सूरज मिलया सच्चा पीर ।
अल्लाह कहो न कहो, सूरज सेती सच्चा रहो।।

मुझे शाहानी कहते हैं, मेरी जात अहीर है। मुझे सच्चा गुरु सूरज भगत मिल गया। अल्लाह का नाम लो या न लो परन्तु सूरज भगत के प्रति पूर्ण शरणागत रहो।

प्रश्न 409 : महाराज जी, इस संसार में दो प्रकार के व्यक्ति नजर आते हैं। एक बुद्धि प्रधान और एक हृदय प्रधान। एक बड़े चतुर होते हैं और एक बड़े जजबाती (भावुक) होते हैं। इस रास्ते के लिए कौन से व्यक्ति ठीक होते हैं?

उत्तर : प्रेमी, बुद्धि प्रधान व्यक्ति बड़े खतरनाक होते हैं। ये अपनी तरकीब द्वारा शैतानी करते रहते हैं। हृदय प्रधान आदमी के संभलने के कुछ मौके हैं। वह भी भूलकर या अनजान बनकर या मूर्खता से शैतानी करता

रहता है। मगर शैतान दोनों ही हैं। जो इन्सान इन्द्रिय संयम करने वाला होवे और मन के कहे में जिसकी बुद्धि चलायमान न हो वह ही आदमी असली मानों में बुद्धिमान कहलाता है। बाकी सब लोग, चाहे वह जज़्बाती हों चाहे बुद्धि प्रधान हों, वे दहाड़े ही मारते हैं।

प्रश्न 410 : महाराज जी, सुनने में आ रहा है कि लोग काया-कल्प कर लेते हैं।

उत्तर : लाल जी, भ्रष्टाचार को छोड़कर सदाचार में प्रविष्ट हो। राक्षस बुद्धि छोड़कर देव बुद्धि धारण करना ही वास्तव में काया-कल्प है। शरीर का बूढ़े से जवान होना, गन्दे और अशुभ काम करना-अपना कल्याण नहीं बल्कि नाश करना है, इसको काया-कल्प नहीं कहते।

प्रश्न 411 : महाराज जी, दिलों में जो संशय भरे पड़े हैं, वे कैसे दूर हों?

उत्तर : प्रेमी, गुरु बचनों में पूर्ण विश्वास से और यह विचार करने से कि जो कुछ हो रहा है या हो चुका है या आयन्दा होगा, वह सब प्रभु आज्ञा के अन्दर है। तू अपने मुर्शिद (गुरु) के बचनों में सारी चतुराई चालाकी छोड़ कर पूर्ण विश्वास ला। तेरे सब संशयों का नाश अपने आप ही हो जावेगा। जब तू इस प्रकार परम विश्वासी बनेगा तो तेरा कल्याण ही कल्याण है। प्रेमी जी, यदि कुछ नहीं होता तो कम से कम अपने सत्‌गुरु में श्रद्धा को पक्की कर। तेरी श्रद्धा और विश्वास पक्का होने से तू पार हो जायेगा।

प्रश्न 412 : महाराज जी, तीन अवस्थाओं में जीव किस स्थिति में रहता है?

उत्तर : प्रेमी, जाग्रत अवस्था में कर्त्ता, कर्म और कर्म-फल तीनों को बुद्धि जानती है। स्वप्न अवस्था में बुद्धि कर्त्ता व कर्म को ही जानती है। नतीजा उसमें नहीं रहता और भिन्न-भिन्न प्रकार की लहरें उठा करती हैं, पर परिणाम कुछ हासिल नहीं होता। सुषुप्ति में केवल कर्त्ताभाव ही बुद्धि में रहता है और बाकी कर्म और कर्म-फल का अभाव हो जाता है। अर्थात् "मैं हूं" मात्र रह जाता है। प्रेमी जी, अपने आपको ठीक करो तो तुम्हारी सब चीजें ठीक हो जायेंगी। अपने आप को उच्च और दूसरों को हीन समझने से

तुम्हारे अन्दर गिरावट आवेगी। जब तक इन्सान यह निश्चय नहीं बनाता कि मेरे शरीर के टुकड़े कर दिये जावें पर मेरे दिल की शान्ति भंग न होने पावे और इस आशय को लिये हुए जो परमात्मा का भजन करता है वह सत् मार्ग से गिर नहीं सकता। वरना रास्ते में महान अजगर रूपी अहंकार खड़ा है जो किसी हाल में भी बख्श नहीं सकता। उसे यह ख्याल पग-पग पर आवेगा कि मैं सबसे बड़ा हूँ और सब लोग मेरे से हीन हैं। यह सब बातें उसे नहीं सतावेंगी जो इस भाव को लक्ष्य करके भगवान को याद करेगा कि चाहे मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जावें पर दीनदयाल मेरे दिल की शान्ति मुझसे न छीने।

प्रश्न 413 : क्या हम अनहलक कह सकते हैं?
उत्तर : हां, क्यों नहीं कह सकते। पात्र बनना होगा।

प्रश्न 414 : पात्र बनने में क्या होता है?
उत्तर : कुछ होता ही नहीं? यूं ही खुदा बनने चले। शरीर की खुशी व रंज़ में जब तक तुम हो तब तक अनहलक कहना निरा नास्तिकपन है। बल्कि इससे भी कहीं बुरा है।

प्रश्न 415 : महाराज जी, त्रिलोकीनाथ का क्या अर्थ है?
उत्तर : प्रेमी, स्थूल शरीर, मन और बुद्धि का स्वामी होने के कारण आत्मा को त्रिलोकीनाथ कहा गया है।

प्रश्न 416 : महाराज जी, गऊ हत्या कैसे बन्द हो सकती है?
उत्तर : लो प्रेमी, बाहोश होकर सुनो। सुबह आप जंगल दिशा के वास्ते जाते हैं तो एक स्लीपर या चप्पल पहनकर जाते हैं। दफ्तर से वापिस आकर घर में घूमने के लिए एक अलैहदा जोड़ा होता है। शाम की सैर के वास्ते अलैहदा जूती पहनी जाती है। घड़ी का स्ट्रैप भी आप चमड़े का बना हुआ पहनते हैं। हैट को यदि चमड़ा न लगा हुआ हो तो आपको अच्छा नहीं लगता है। पैन्ट पहनने के वास्ते भी कमर पेटी चमड़े की ही आप पसन्द करते हैं और पहनते हैं। कहीं सफर में जाना पड़े तो हैण्ड बैग भी चमड़े का ही आपको चाहिए। दूसरा आपको पसन्द नहीं आता है। यानि

एड़ी से चोटी तक आपकी जरूरत पूरी करने के लिए आपको चमड़ा चाहिए। यह तो हुई आपकी निजी जरूरत। इस प्रकार हिन्दुस्तान के अन्य करोड़ों निवासियों की भी जरूरियात हैं तो बताओ कि राजसत्ता जो कि हिन्दुस्तान की जरूरियात को प्राप्त कराने के लिए जिम्मेवार है वह इतना चमड़ा कहां से लाये? यदि रफ्तार इसी प्रकार रही तो गऊ हत्या बन्द तो क्या होगी, और भी बढ़ेगी। लाल जी, यदि आप गऊ को माता मानते हैं और चाहते हैं कि गऊ माता का वध बन्द हो जावे तो अपनी चमड़े की आवश्यकता को धीरे-धीरे कम करते जाइये और आखिरकार छोड़ दीजिए। बस आपकी ऐसी आवश्यकतायें कम हो जाने पर गऊ हत्या कम हो जायेगी और आवश्यकतायें खत्म हो जाने पर गऊ हत्या स्वयं ही बन्द हो जायेगी।

प्रश्न 417 : महाराज जी, वर्णाश्रम धर्म के बार में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, संसारी लिहाज से एक हद तक सब ठीक है। हर वर्ण का इन्सान यदि अपना फर्ज समझकर ठीक कार्य करे तो समाज की व्यवस्था बड़ी अच्छी तरह से चल सकती है। यदि ऐसे ही नाम लेवा वर्णाश्रम बने रहे तो सब बेकार है, अन्धकार परस्ती और फरेब है।

प्रश्न 418 : महाराज जी, जीवात्मा और परमात्मा अद्वैत वेदान्त के अनुसार एक ही है। यदि संसार में इस सिद्धान्त के अनुसार वरता जावे तो सब परम्परा चौपट हो जावेगी और भ्रष्टाचार का फैलाव होगा।

उत्तर : हां प्रेमी, यह बात अच्छी प्रकार से समझ लो। आज अद्वैत वेदान्त के मानने वाले सत्पुरुषों के इस सिद्धान्त का गलत अर्थ लगाकर भ्रष्टाचार का फैलाव कर रहे हैं। अद्वैत विचार चिन्तन का विषय है। अपने आप को जीव भाव से ऊंचा उठाकर परमात्म भाव में लीन करने के लिए अद्वैत चिन्तन का मार्ग है। लेकिन प्रकृति में खुली आंख करके जो कुछ भी बरताव किया जावे वह द्वैत में ही होगा क्योंकि प्रकृति रचना ही द्वैत सृष्टि है। यदि प्रकृति में बरतने में अद्वैत भाव रखा जाए तो सब व्यवस्था चौपट हो जायेगी और सामाजिक परम्परा नष्ट होकर लोग भ्रष्टाचारी हो जावेंगे। इसलिए सत्पुरुषों ने फरमाया है कि हमेशा अपने निश्चय में अद्वैत भाव रखें। आत्म सम्बंधी चिन्तन अभ्यास करना चाहिए और व्यापार में खुली आंख करके द्वैत भाव वर्तना चाहिए।

प्रश्न 419 : महाराज जी, प्रलय क्या है?

उत्तर : प्रेमी, संकल्प से रहित अवस्था ही प्रलय है।

प्रश्न 420 : महाराज जी, साम्यवाद यानि मौजूदा कम्यूनिज़्म के बारे में आपका क्या ख्याल है?

उत्तर : लाल जी, साम्यवाद यदि अध्यात्म को साथ लिए हुए हो तो ईश्वर का स्वरूप है और यदि खुदग़र्जी को साथ लिए हुए है तो शैतानियत का स्वरूप है।

असली साम्यवाद यह है कि हर मानुष अपने स्वभाव और आदत का ग़ुलाम है। बुद्धि शरीर के हर एक पुर्ज़े (अंग) की हर समय देखभाल कर रही है। इस शरीर में कितने ही कल और पुर्जे हैं; हर एक का काम अलग-अलग है। ये सबके सब इस तीन हाथ भर शरीर के हिस्से जरूर हैं लेकिन सब अपना-अपना काम अलग-अलग रूप में पूर्ण करते हैं- हाथ, हाथ का काम करता है; कान, कान का काम करता है- वग़ैरह वग़ैरह। लेकिन बुद्धि कभी भी किसी पुर्ज़े के साथ ग़ैर (पराये) का सा बर्ताव नहीं करती। यदि आँख में तक़लीफ हो गई है तो सब तरफ़ से बुद्धि अपना ध्यान हटाकर आँख में लगा देती है, जब तक कि आँख को आराम न हो जावे। इसी तरह से और भी शरीर का व्यौपार इन्द्रियों और दूसरे शरीर के अंगों द्वारा साम्यता से चल रहा है। बुद्धि हर एक अंग की साक्षी होकर सबका समान रूप से ख़्याल रखती है। टाँगें चलने का काम करती हैं और दिमाग़ सोच विचार का काम करता है। यदि दिमाग़ यह सोचने लगे कि मैं ऊँचा हूँ, टाँगें नीची तो इन बातों को बुद्धि गवारा नहीं करेगी। वह टाँगों की और दिमाग़ की एक जैसी कद्र करती है क्योंकि दोनों अंग अपनी-अपनी जगह पर बड़े हैं।

इसी तरह संसार, स्वरूप में जो कि इस जिस्म के मानिंद ही है, इसमें सब बशर (व्यक्ति) एक ही जैसे हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि सबको उनकी योग्यता के माफ़िक काम देकर राज्य का शासन एक अच्छे तरीके से चलावे। कोई बशर अपने काम करके बड़ा या छोटा नहीं है। उसकी समानता हर वक्त कायम रहनी चाहिए और जिस बशर की जो जरूरत हो वह उसकी योग्यता के माफ़िक पूर्ण होनी चाहिए। यह असली साम्यवाद का स्वरूप है। स्वार्थ वाला साम्यवाद टिकाऊ नहीं होता। कुछ अरसा चलने के

बाद ख़त्म हो जाता है। फ़र्ज वाला (प्राकृतिक) साम्यवाद क़ुदरती जीवन की पुष्टि करता है, जो हमेशा से चलता आया है।

प्रश्न 421 : महाराज जी, हमारे यहां गेरवा रंग का कपड़ा जो कोई पहन लेता है, उसको बड़ी इज्जत और सम्मान से देखा जाता है। उसके प्रति बड़ा श्रद्धा भाव उत्पन्न होता है। तमाम साधु समाज ने गेरवा रंग अपनाया हुआ है। क्या आप इस पर रोशनी डाल सकेंगे कि बुजुर्गों ने इस गेरवा रंग को इतना महत्व क्यों दिया?

उत्तर : प्रेमी, गेरवा रंग से रंगा हुआ कपड़ा आग की लपटों के रंग का होता है। बुजुर्गों का इससे मतलब यही होता था कि जो व्यक्ति इस गेरवा रंग को धारण करेगा वह आग की लपटों की तरह अपनी सब आसक्तियों को जलाकर प्रकाशमान होगा। जैसे आग में चीज डाल दी जाती है वह भस्म हो जाती है, उसी प्रकार जो जो गेरवा वस्त्र पहनता है उसके बारे में यही सोचा जाता है कि वह आसक्ति और ममता से रहित हो गया और वह आग की रोशनी की तरह चमक रहा है। प्रकृति में चार प्रकार की आसक्ति होती है। शरीर आसक्ति (मद), परिवार आसक्ति, समाज मद, देश मद, इन चारों मदों से जो पार पा जावे वह ही भगवा पहनने का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त जो आजकल भगवे का स्वांग बना हुआ है वह तुम ही देख लो, वास्तविकता से कितनी दूर है। भगवे के पीछे जो श्रद्धा है वह सब इस त्याग की ही महिमा है।

प्रश्न 422 : महाराज जी, आपने अपने सिद्धान्त में जो समता विलास और समता प्रकाश के रूप में प्रकट किया है, ब्रह्मचर्य के बारे में कहीं जोर देकर खास तौर पर कोई प्रसंग उच्चारण नहीं फरमाया और न ही कोई शिक्षा इस बारे में दी है?

उत्तर : प्रेमी, समता के पांच बुनियादी नियम-सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरण इत्यादि इसीलिये बनाये गये हैं कि इस काम विकार का जो कि बड़ा प्रबल है और जिसका बुद्धि पर बड़ा असर है, शमन हो जावे। खाली "ब्रह्मचर्य" पालन करो कह देने से कार्य नहीं चलता। इसके यथार्थ इलाज तजवीज किये गये हैं जिनके सेवन से बीमारी अपने आप दूर हो जावे।

प्रश्न 423 : महाराज जी, क्या गृहस्थ आदमी ब्रह्मचारी रह सकता है जबकि उसकी स्त्री उसके प्रतिकूल अधिक व्यभिचारी हो?

उत्तर : लाल जी, खूब गौर से समझो। औरत की बुद्धि कमजोर होती है। वह पुरुष से बहुत जल्द प्रभावित हो जाती है। इसलिये आदमी यदि पक्के इरादे का हो और सदाचारी हो तो उसे अपने अनुकूल बना सकता है। और समझा बुझाकर विवेक द्वारा उस पर काबू पा सकता है।

प्रश्न 424 : नहीं महाराज जी। आज के मौजूदा जमाने में औरतें ऐसी नहीं हैं। वातावरण इसके बिल्कुल उल्ट है। स्त्रियां पुरुषों पर हावी हैं, तो फिर क्या इलाज करें?

उत्तर : प्रेमी, बाहोश (दत्तचित्त) होकर सुन। इसके लिये फिर रामतीर्थ की तरह छोड़ दे उसे और स्वतंत्र हो जा, और कोई इलाज नहीं है।

प्रश्न 425 : महाराज जी, इस वक्त बड़े दिनों के बाद देश आज़ाद हुआ है और यह बड़ी ख़ुशनसीबी है कि मौजूदा वक्त की राजसत्ता देशसेवकों के हाथ में है जिन्होंने बड़ी कुरबानी करके देश को आज़ाद करवाया है। आगे आने वाले वक्त में देश का शासन कैसे चलेगा? इस बारे में आप कोई रोशनी डालें (वर्ष १९४८)।

उत्तर : प्रेमी, सच है कि देशभक्तों ने बड़ी कुरबानी देकर देश को आज़ाद कराया है। परन्तु देश सेवा और राज-इच्छा दो विपरीत हालतें हैं। राज-इच्छा का सम्बन्ध प्रकृति के साथ है और देश सेवा आध्यात्मिक वस्तु है। ये दोनों कभी एक जगह नहीं रह सकतीं। देश सेवा करने वाला कभी भी राज-इच्छा को धारण करके राजा नहीं बनेगा। यदि बनेगा तो वह ठीक तरह से शासन नहीं कर पावेगा।

राज ठीक चलाने के लिये चार बातें बड़ी जरूरी हैं:-

पहली बात- औरतों की आज़ादी केवल घरेलू और सामाजिक होवे। इसके अलावा अधिक आज़ादी होना ठीक नहीं है। अगर इससे ज़्यादा आज़ादी दी गई तो इसका असर उनसे पैदा होने वाली सन्तान पर पड़ेगा। ऐसी सन्तान वे पैदा नहीं कर सकेंगी जो नेक-सीरत, नेक-अमल, कुल-आचारी, दृढ़ इरादे और दृढ़ निश्चय वाली हो। इसके उलट, जब अधिक आज़ादी औरतों की दी जावेगी तो वे भ्रष्ट, लम्पट और दुराचारी सन्तान देश में पैदा

करेंगी। इससे देश की राजसत्ता का नाश हो जावेगा। जब आगे की नसल ही ठीक नहीं होवेगी तो राज कैसे ठीक चलेगा? अर्थात् राज हमेशा प्रजा के अपने विचारों की एकता पर चलता है। इस तरह की सन्तान, जो भ्रष्ट, लम्पट और दुराचारी होगी, वह कभी भी एकता का संगठन धारण नहीं कर सकेगी।

दूसरी बात – राज की ओर से धन की टकसाल मुनासबत में जारी होनी चाहिये, यानी यह बात सोच-विचार करके मुनासबत के तरीके से राज्य की ओर से टकसाल जारी होवे कि ज़रूरत की चीज़ें महंगी न होने पावें। लोगों को ज़रूरत का सामान मुनासिब दामों पर ही प्राप्त होना चाहिये।

तीसरी बात – धन का बटवारा राज की तरफ़ से ऐसा समता में होना चाहिये कि ज़्यादा अमीर भी लोग न होने पावें और ग़रीबी भी ज़्यादा न हो।

चौथा – राज के कर्मचारी आलिम (विद्वान), आमिल और हलीम (विनम्र) होने चाहियें। निष्पक्षता और त्याग उनमें कूट-कूटकर भरा होना चाहिये। तब जाकर कहीं राज ठीक चला करता है।

इन फ़कीरों की कौन सुनता है? इस वक्त देश में मनमानी का राज चल रहा है। अब तुम ही समझ लो कि आगे जाकर क्या होगा।

प्रश्न 426 : महाराज जी, भारत का शासन छिन्न-भिन्न हो रहा है। अभी हाल ही में देश गुलामी से आज़ाद हुआ है और कर्मचारी-गण बजाय देशहित के सोचने के अपनी जेबें भरते नज़र आ रहे हैं। चारों तरफ़ भ्रष्टाचार ही फैलता जा रहा है। इसका कोई कारण ग़हरा है? (वर्ष १९५३)

उत्तर : लाल जी, भारत का निज़ाम (शासन) आगे आने वाले वक्त में ठीक होने वाला नहीं है, क्योंकि मान और माया से दूर रहने वाले लोग ही राजनीति ठीक चला सकते हैं। राज हमेशा बाअमल विद्वान लोगों के ज़रिये चलता है। इस वक्त बे-अमल लोगों का टोला इकट्ठा हुआ है। इनको पता ही नहीं है कि प्रजा का हित उनके अपने अमल में ही खड़ा है। इस तरह के लोग केवल खुदग़र्ज बुद्धि को लिये हुए विचरते हैं। इससे कुछ चलेगा नहीं, यह सबके सब डुबोने वाले हैं। अगर विद्वान बाअमल हों तो

सब ठीक हो जाता है। अगर बे-अमल रहे तो सब कुछ डुबाने वाले ही बनेंगे।

ऐसा ही इस वक़्त भारत में हो रहा है। अब तुम ही समझो कि वह कैसे रास पर आवे जिसकी बुनियाद ही ग़लत हो?

प्रश्न 427 : महाराज जी, जिससे समाज का सुधार हो सके उसके लिये सुधारक को क्या सावधानी बरतनी चाहिये?

उत्तर : प्रेमी, किसी भी नीति का यदि सुधार करना हो तो खण्डन करने से पूर्व उसका मण्डन होना चाहिए। वह यह है कि किसी भी रायज (प्रचलित) नीति को काटने से पहले देखिए कि वह किस नियम के आधार पर खड़ी है। फिर उसके पश्चात् उसी नियम का ही आश्रय लेकर बतलाये कि जिस पथ प्रदर्शक ने यह नीति चलाई थी और जिसको तुम इस रूप में पालन कर रहो हो, वास्तव में उसका क्या अर्थ था। यह बात उस बुजुर्ग के बताये हुए शब्दों में जनता के सामने रखनी चाहिये। तब जनता इसे समझेगी और तुम्हारी कायल होगी।

प्रश्न 428 : महाराज जी, जिस शहर में हमने बहुत सा जमाना जिन्दगी का सुख से गुजारा है उस शहर पर मुसीबत आ जाने से भाग जाना क्या इखलाकी जुर्म नहीं? आयु के लिहाज से या स्वास्थ्य के कारण यदि एक व्यक्ति शहर में रहकर उसकी सुरक्षा में पूरा भाग नहीं ले सकता फिर भी केवल शहर में हाजिर रहकर लोगों को सांत्वना देना ही क्या सेवा नहीं?

उत्तर : प्रेमी जी, मनुष्य का कर्त्तव्य है कि जिस जगह सब जीवन आराम से व्यतीत किया जावे उसकी यथाशक्ति रक्षा करे और जो जीव हमसाये के रूप में होवें उनकी हर प्रकार से सेवा करे। तब ही जीवन स्थिति सुख रूप होती है। यदि लाचारी से हर तरफ से मजबूरी हो जावे तो अपने सत् आचरण की रक्षा के वास्ते आश्रम छोड़ना कोई दोष नहीं।

प्रश्न 429 : महाराज जी, रोजाना ही सुबह सत्संग में सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरण पर विचार सुनते हैं। चित्त में बात बैठती क्यों नहीं? समय पर सब ज्ञान-ध्यान भूल जाता है?

उत्तर : प्रेमी, जिसने अपने पापों को छोड़ने की कोशिश की अर्थात्

सत् यत्न शुरू कर दिया वह तो अवश्य कुछ न कुछ कर पावेगा। जो केवल सुनता ही रहता है किसी साधन नियम को धारण नहीं करता, उसने क्या प्राप्त करना है? सत्पुरुष विश्वास बख़्शते हैं। जिसको प्रभु चरणों में विश्वास है और हृदय से दूसरों का दुख हरण करने वाला है तन-मन-धन करके, और अन्तिम अवस्था में शरीर छोड़ने के समय को याद रखता है, नित ही ईश्वर आज्ञा में स्थिर रहता है, निर्मान चित्त से सबकी सेवा का भाव मन में बनाये रखता है, वह ही जिज्ञासु खोटे एवम् अच्छे कर्मों को विचारता हुआ सत्कर्म करने में लग जाता है। मोह माया में फंसे हुए जीव भूल जाते हैं।

हर समय यही प्रार्थना किया करो कि प्रभु सुमति दे, ताकि नित्य उसकी महिमा का विचार करते हुए जीवन-यात्रा व्यतीत कर सकें और नाशवान संसार में आने का यथार्थ लाभ प्राप्त कर पावें। बाकी प्रेमी, किसी उस्ताद, पीर की शिक्षा द्वारा ही मन अच्छे भावों को पकड़ सकता है।

प्रश्न 430 : स्वामी जी, मैं बहुत खुशनसीब हूं कि मुझे आप जैसे मुर्शिद की कदम बोसी हासिल हुई है, अब बराये मेहरबानी मेरे लिये दुआ फरमावें कि मुझे रोशन जमीरी हासिल हो।

उत्तर : प्रेमी, जो तुम्हें कलाम बख्शा गया है यही इस्में आज़म है इसको छुपा कर रखना। इसी इस्में -आजम से बड़े-बड़े गौस, कुतुब औलिया के मर्तबा तक पहुंचे। इसी की मदद से रोशन ज़मीरी, इलहाम, आसमानी बाँग, कलबी ज़िकर, वगैरा खुद-ब-खुद हासिल हो जावेंगे। खाली दुआओं के भरोसे मत रहो। रियाज़त करो।

प्रश्न 431 : कुफ़र किसको कहते हैं और काफ़र कौन है?

उत्तर : उस ज़ाते आला (ख़ुदा) से जो मुनकर (अविश्वासी) है वह ही काफ़र है। जो हर रूह (जीव) में मालिक की ज़ात को देखता है और राजी-ब़-रज़ा (परायणता) में रहकर धन दौलत, माल इकबाल, जिस्म और जान सब उसकी ही दात मानता है और खुदी (अहंकार) से बालातर (मुक्त) होकर खिदमते ख़लक (जन सेवा) में ला-ग़र्ज (निष्काम भाव से) जुटा हुआ है वह मोमन (साधक) और खुदा परस्त है। नफ़स (कामना) की खातिर मेहर को छोड़कर कैहर (ज़ुल्म) को अपनाना, जिन्दा चीज़ को मारकर

हलाल कहकर खाना, अपना मारा हुआ हलाल और खुदा का मारा हुआ हराम करार देना, कुफ़्र नहीं तो और क्या है?

प्रश्न 432 : स्वामी जी, मेरा भविष्य कैसा होगा? सुना है फकीरों की दुआ से आफत और बलायें टल जाती हैं?

उत्तर : तुम्हारा भविष्य तुम्हारे एमाल (कर्म) पर मुनहसिर है। यह खुदाई हुक्म में दखल नहीं देते। हमेशा सबका भला ही चाहते हैं। हिम्मत और हौसले से काम लो। घबराने की कोई बात नहीं। राज़ी-ब-रज़ा के मसला पर साबिर व शाकिर रहो और आकबत (अन्तकाल) का फिकर करो। दुनियावी जिन्दगी चन्द रोज़ा है, तेरे दुख सुख से गुजर जायेगी। जो तुम्हें कलाम (मंत्र) बख्शा गया है उस पर यकीन रखते हुये अपनी जिन्दगी का सुधार करो। हिम्मत बिल्कुल न हारना।

प्रश्न 433 : संतों का आशीर्वाद किस रूप में प्राप्त होता है?

उत्तर : तुम्हारा सत् विश्वास ही संतों का आशीर्वाद है।

प्रश्न 434 : महाराज जी, समय की पाबन्दी (नियमितता) के बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, मनुष्य को चाहिए कि हमेशा वक्त की पाबन्दी में रहे। ऐसा आदमी दुनियां में सब काम ठीक-ठाक कर सकता है। जितने भी महापुरुष संसार में आए हैं, अगर उनके जीवन का अध्ययन करो तो तुमको पता चलेगा कि वे अपने वक्त को किस तरह से बांट देते थे और कितने पाबन्द (नियमित) थे। इसी वजह से वे कामयाब होते थे। जो आदमी समय का पाबन्द नहीं रहता उसका कोई काम पूरा नहीं होता। उसके अन्दर हर समय उलझन बनी रहती है। वह किसी काम को भी सहूलियत (सरलता) से पूरा नहीं कर सकता। इसलिए यह जरूरी है कि तुम वक्त (समय) के पाबन्द रहो।

प्रश्न 435 : महाराज जी, ब्रत क्या है, और इसका क्या लाभ है?

उत्तर : प्रेमी, ब्रत से शारीरिक और मानसिक शुद्धि प्राप्त होती है। इसका यह मतलब है कि ब्रत के दिन ज्यादा स्वाध्याय किया जाए, थोड़ा काम किया जाए और अभ्यास में ज्यादा समय दिया जाए। ब्रत शारीरिक और मानसिक शुद्धि को कायम रखने का एक कुदरती इलाज है।

प्रश्न 436 : प्रेमी, मौन व्रत क्यों रखना चाहते हो?

उत्तर : प्रेमी ने अर्ज़ की, "महाराज जी, अभ्यास में लाभ हो।"

श्री महाराज जी ने फरमाया, "जहां से संकल्प उठ रहा है, जब तक उसे काबू नहीं कर सकते तब तक मौन बन नहीं सकता। जिस तरह लकड़ी का स्वभाव है: जब तक ऐसा स्वभाव नहीं बनाओगे तब तक मौन वृत्ति नहीं हो सकेगी। इसे ही काष्ठ मौन कहते हैं। जब अभ्यास करते हो, मन को भटकने न दो। यह ही मौन हो जाएगा। अगर इस दौरान मन में संकल्प विकल्प चलते रहे तो यह ही पाखंड का रूप है। फ़िजूल बोलना बंद करो। मतलब की बात हुई कर ली। ज्यादा से ज्यादा समय अंतरमुख होने में लगाओ, सहज भाव ही मौन बना रहेगा। ज़ाहिरी मौन व्रत की कोई ज़रूरत नहीं। अगर मौन रखना चाहते हो तो झूठ बोलना बंद कर दो, यानि झूठ न बोलने का व्रत रखो। ऐसा कदम उठाना चाहिए जिससे लाभ हो। ऐसा नियम धारण करना चाहिए जो सारी ज़िन्दगी निभाया जा सके। कोई प्रोग्राम निश्चित करके उसको छोड़ देना ठीक नहीं। इससे बेहतर यह ही है कि ऐसा प्रोग्राम ही न बनाया जावे।"

प्रश्न 437 : महाराज जी, आप फूलों को पसंद नहीं करते और न ही फूलों को अपने पास लाना पसंद करते हैं। इसका क्या कारण है?

उत्तर : प्रेमी, ऐसी बात नहीं है। फूल तो उस प्रकृति की एक अनुपम देन है जो अपने जीवन का बहुत थोड़ा वक्त लेकर आता है और कुछ काल तक जीवित रहकर मुरझा जाता है। यह फूलों को नापसंद नहीं करते बल्कि समय से पहले फूलों के जीवन को बर्बाद होते हुए देखना ठीक नहीं समझते। अक्सर इनका ठहरना शहर से बाहर बगीचों में ही होता है। इनके देखने में आया कि लोग सुबह ही मंदिरों में जाने से पहले फूलों पर कहर ढहा देते हैं। बेमतलब उन मासूम जीवों का जीवन हरण करके अपने घड़े-घड़ाए देवताओं की पूजा में फूल चढ़ाते हैं, यह बात इनको पसंद नहीं आयी। परम संत कबीर ने उच्चारण फरमाया है:-

मूल ब्रह्मा डार विष्णु फूल शंकर देव जी।
तीन देव प्रत्यक्ष तोड़े करै तू किसकी सेव जी।।

प्रश्न 438 : गुरुदेव, यह बात बड़ी अटपटी सी लगती है कि आप सत्संग के अवसर पर सिर ढक कर बैठने के लिए आदेश देते हैं। क्या सिर ढकने में कोई आध्यात्मिकता है, जबकि भारत में ही कुछ ऐसे स्थान हैं जहां सिर ढकने का कोई चलन नहीं है। क्या वे लोग सत्मार्ग से वंचित रहेंगे?

उत्तर : प्रेमी, इनका शरीर पंजाब प्रांत में पैदा हुआ। पंजाब में सिर ढकने को आदर सूचक मानते हैं। सत्संग में जब प्राणी बैठता है तब वह आदरपूर्वक ही बैठता है। इसलिए यह सिर ढकने की आज्ञा देते हैं लेकिन इसका सत्मार्ग से कोई सम्बंध नहीं है। भारत में ही कुछ ऐसे प्रांत हैं जहां सिर ढकना अच्छा नहीं माना जाता तो क्या वे सत्मार्ग के राही नहीं हो सकते? नहीं, ऐसा नहीं है। यह बात हर प्रांत के अपने प्रांतीय चलन पर आधारित है।

प्रश्न 439 : महाराज जी, यह सम्मेलन कायम करने के पीछे आपका क्या उद्देश्य रहा है?

उत्तर : प्रेमी, सत्संग सम्मेलन का आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए विशेष आयोजन नहीं है। इसकी स्थापना विशेष तौर पर सेवाभाव को जागृत करने के लिए तथा विचार बल को आध्यात्मिक आधार पर निर्माण करने के लिए की गयी है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु इस आयोजन के द्वारा जनता निःस्वार्थ प्रेम करना सीखे और सेवा, संगठन द्वारा समतावाद जो असली धर्म तत्व है उसके प्रकाश में अपना व्यवहार करना और इन गुणों को वर्तना सीखे। प्रेम, सेवा, संगठन द्वारा अपनी सामाजिक शक्ति एवं एकता को बढ़ावें। आगे आने वाले वक्त में संसार घोर नास्तिकवाद की लहर में समा जाएगा। जो कोई भी आस्तिक बुद्धि वाले लोग नजर आवेंगे वे गिने चुने लोग ही होंगे। ईश्वर को मानने वाले लोग केवल मात्र कहलाने भर के आस्तिक होंगे। असलियत में सच्चाई बहुत कम होगी। इस तरह के नास्तिक लोगों के द्वारा संसार में घोर तमोगुणी जीवन का प्रचलन फैलेगा। फलस्वरूप विनाशकारी लीला व्यापेगी। आपस में लड़कर, कट मर कर, हत्याकांड बम वगैरह से तबाह होकर नष्ट हो जाएंगे। यह ही तमोगुण का चमत्कार है। इसीलिए इनके द्वारा यह सत्संग सम्मेलन का आयोजन किया गया है, ताकि इस घोर अंधकार के जमाने में कुछ पुरातन संस्कार युक्त

महापुरुषों का प्रकाश होता रहे तथा संस्कारवान पुरुषों में देव संस्कार जागृत हो सकें और समय आने पर कोई न कोई होनहार पुरुष पैदा होकर इस घोर नास्तिकवाद के वातावरण को समाप्त करके आध्यात्मिक जीवन को पुनः स्थापित कर सके। समय आने पर ऐसा महापुरुष समतावादी संगठन के द्वारा फिर सामाजिक जागरण कर सकेगा।

प्रश्न 440 : महाराज जी, समता की तालीम किस तरह से फैल सकती है ताकि हम बड़ी तादाद में इस तालीम को रोशन देखें।

उत्तर : प्रेमी, तुम यह कोशिश न करो कि सब लोग तुम्हारे अनुकूल हो जावें और समतावाद में दाखिल हो जावें तथा यह समतावाद का आंदोलन एक गिरोह और पंथ का रूप धारण कर ले। तुम्हारी केवल यह कोशिश होनी चाहिए कि तुम आत्मिक उन्नति करके अपने आप को उज्जवल करो। इस तरह से अगर समतावाद के संगठन में एक या दो भिक्षु भी हो गए, जो कि समय पर अवश्य होंगे तो संसार को रोशन कर देंगे। बाकी मॉदा समता की तालीम मुकम्मिल है और उसका प्रचार स्वयं हो रहा है।

प्रश्न 441 : महाराज जी, आपने सम्मेलन की तिथि कार्तिक के पहले रविवार की निश्चित की है। मैं जानना चाहूंगा कि आपने ऐसा क्यों किया? क्या इस दिन कोई विशेष पर्व है अथवा आप या आपकी माताजी के जीवन की कोई विशेष घटना हुई है जिसके कारण आपके द्वारा कार्तिक के पहले रविवार को यह उत्सव मनाया जाता है?

उत्तर : प्रेमी, क्या तू इनको भी रिवाजिक अंधेरा ढोने वाला मानता है। जिज्ञासुः नहीं महाराज।

गुरुदेवः प्रेमी, इनके द्वारा हर मौसम में सत्संग यज्ञ का आयोजन किया जाता रहा है। तजुर्बे से यह बात सामने आई कि कभी बारिषें हो जाती हैं, कभी गर्मी-सर्दी का प्रकोप पेश आता है, कभी खेतों में फसल उगी हुई रहती है, कभी अंधेड़ बहुत चलते हैं इसलिए बड़े सोच विचारकर कार्तिक का पहला सप्ताह सत्संग यज्ञ के लिए ठीक समझा गया। इस समय खेत खाली होते हैं, फसल बोने की तैयारी हुई होती है, गर्मी खत्म हो गयी होती है, अधिकतर ठंड भी नहीं होती है तथा मौसम सुहावना होता है,

पहनने तथा बिछाने के थोड़े कपड़ों में काम चल जाता है, भोजन भी खराब नहीं होता। इन्हीं सब बातों का ख्याल रखते हुए यह तिथि निश्चित की है। एक अड़चन और पेश आई कि कभी–कभी कार्तिक के पहले रविवार को दीवाली का त्यौहार पड़ जाया करता है, इसके लिए दुबारा विचार किया गया और यह निर्णय लिया गया कि किसी समय यदि ऐसा हो जावे तो कार्तिक का दूसरा रविवार मुकर्रर किया जावे। इतवार का दिन इसलिए निश्चित किया गया कि आम नौकरी पेशा लोगों की छुट्टी रहती है तथा ज्यादातर व्यापारी पेशा भी इस दिन छुट्टी रखता है। इसलिए इतवार का दिन इन सहूलियतों को ध्यान में रखकर निश्चित किया गया। अब तुम्हीं समझो कि इसमें कहां कोई रिवाजी बंधन है।

प्रश्न 442 : महाराज जी, चौदह लोक क्या हैं?

उत्तर : पांच कर्म इन्द्रियां, पांच ज्ञान इन्द्रियां और चार अंतःकरण यह चौदह लोक हैं।

प्रश्न 443 : महाराज जी, कृपा करके यह भी बतला दें सोलह कला क्या हैं?

उत्तर : प्रेमी, पांच कर्म इन्द्रियां, पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच प्राण यानि प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान, और मन यह सोलह कलाएं हैं।

प्रश्न 444 : महाराज जी, अविद्या क्या है?

उत्तर : प्रेमी, जो चीज वास्तव में नहीं है और निश्चय में उसे मान रहा है, वह अविद्या है।

प्रश्न 445 : विद्या का क्या स्वरूप है?

उत्तर : जो चीज जैसी है वैसा उसको जानना विद्या है।

प्रश्न 446 : ज्ञान का क्या स्वरूप है?

उत्तर : ज्ञान बजाते खुद कोई चीज नहीं है। वह एक हालत या असलियत का ब्यान है। जब असलियत मालूम हो गई, ज्ञान गायब हो गया। केवल वहां तेरा स्वरूप ही रहेगा। दूसरी चीज वहां नहीं रहती है। वहां कहने वाला कौन, सुनने वाला कौन?

प्रश्न 447 : महाराज जी, अहिंसा का क्या स्वरूप है?
उत्तर : सब जीवों के साथ प्रेम रखना अहिंसा है। अपने अन्दर भिन्न भेद न रखना, ऐसा विचार करना कि जैसा दुख सुख मुझे महसूस होता है वैसा ही दुख सुख सब जीवों को भी महसूस होता है इसलिए मैं किसी को दुखी न करूं, ऐसा भाव रखने वाला अहिंसावादी है। राग-द्वेष, लोभ, मोह, अंहकार इन सब पर निगाह रखनी और इन्हें दूर करने वाला अहिंसावादी है।

प्रश्न 448 : अहिंसावादी वृत्ति कैसे बनाई जावे?
उत्तर : अन्तर्विखे जो जो दोष हैं उन पर हर समय दृष्टि रखो और उन्हें कभी उठने न दो और मर्यादा सहित जीवन बनाओ, ऐसे संयमी जीवन वाला ही अहिंसावादी बन जाता है। खोटी वृत्तियों से दूर रहकर सत् भावों में मन को लगाओ। मीठे बचन बोलो, शरीर को सेवा सत्संग में लगाओ, खुद बखुद अहिंसावादी वृत्ति बन जावेगी।

एक प्रेमी का श्री महाराज जी से वार्तालाप

(स्थान–अबोहर मंडी, पंजाब । समय दिसम्बर, 1953)*

एक दिन गुरुदेव गहरे विचार में बैठे हुये थे। पास ही एक समाचार पत्र पड़ा था। समाचार पत्र में तत्कालीन एक वैभवशाली और सम्पन्न गुरु का प्रवचन छपा था। यह गुरु एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय के गुरु थे। प्रवचन में कहा गया था, ''तू कहता है कागज लेखी, मैं कहता हूँ आँखों देखी।'' जब श्री गुरुदेव महाराज को यह लेख दिखाया गया और इन ऊपर वर्णित शब्दों की ओर संकेत किया गया तो आप कहने लगे, ''प्रेमी, यह कबीर साहब की वाणी है। अखवार वालों को पैसे देकर अपनी शोहरत (प्रसिद्धि) के लिए ऐसे प्रवचन शाया (प्रकाशित) कराते रहते हैं ताकि लोगों को प्रभावित करके पैरोकारों (अनुयाइयों) की तादाद (संख्या) बढ़ाई जाये। यह गद्दीनशीनी का नशा भी राजाओं महाराजाओं की तरह ही शानोशौकत का दिखलावा करने वाला समझो। इनका मिशन तो गुरुडम की फैलती हुई मुसीबतों से लोगों को बाख़बर व बाहोश (जागरूक) करना है।''

ये वचन सुनकर एक प्रेमी ने प्रश्न किया, ''महाराज जी, सिक्ख गुरुओं के समय में भी तो गद्दीनशीनी बराबर चली थी, लेकिन आपने श्री समता विलास में गुरुडम की निन्दा की है।"

गुरुदेव : सिक्ख गुरु एक मिशन की पूर्णताई के लिए मालिक की मौज से वारिद (प्रकट) हुए थे। उनकी ज़िन्दगी सेवा, सादगी, सच्चाई और रूहानियत के अलावा अपनी कुर्बानी पर निर्भर थी। आख़िरी गुरु श्री गोबिन्द सिंह की कुर्बानी लासानी (अद्वितीय)

---

*नोट: देहरादून निवासी प्रेमी ओम कपूर से प्राप्त विवरण के अनुसार यह वार्तालाप अबोहर फाजल्का जाने वाली सड़क पर स्थित चांदी राम वर्मा के बर्फखाने में हुआ था। जाड़े के दिनों में कारखाना बंद होने के कारण यह एकांत स्थान बन जाता था। गुरुदेव के अबोहर प्रवास के दौरान वहाँ के प्रेमी यहीं गुरुदेव से मिलने आते थे। परणामी मत के एक भद्र पुरुष स्व० अमीर चन्द जी का, जोकि बहुत तार्किक स्वभाव के थे, गुरुदेव के साथ कई दिन वार्तालाप हुआ था। उसके मुख्य अंश बाद में इस रूप में प्रकाशित हुए थे।

थी। पिता पुत्र तक कुर्बान कर दिए। बिखरी कौम को ऊँच नीच के भेद से उठाकर एक मजबूत इतहाद (एकता) की लड़ी में पिरो दिया। सर्वस्व कुर्बानी देकर साबित किया कि,

जे तोहे प्रेम खेलन का चाओ ।
शीश धर तली गली मेरी आओ ।।

यहाँ तो प्रेमी जी सर्वस्व आहुति देनी होती है। कुछ लेना नहीं होता। अब उनके अनुयायी देने में नहीं लेने में विश्वास रखते हैं। उनका मिशन पूरा होते ही गद्दीनशीनी समाप्त कर दी गई थी।

प्रेमी : महाराज जी, सिक्ख तो कहते हैं, ''राज करेगा ख़ालसा बाकी रहे न को।''

गुरुदेव : हाँ यह ठीक है। जब ख़ालिस व्यक्तियों का, सज्जन पुरुषों का, तप, त्याग और कुर्बानी करने वालों का राज होगा तब सुख शान्ति का समाँ (समय) आयेगा। मगर यह दूर की बात है। अब तो आपाधापी मची हुई है। हर कोई बटोरने के लिए दौड़ धूप कर रहा है। देने के लिए कोई तैयार नहीं। प्रेम में सब कुछ लुटाना होता है बनाना नहीं। सन्त सिपाही कौन बनेगा। सब माँस शराब छकने वाले हो गए हैं।

प्रेमी : एक ओर तो आपने गुरुडम का विरोध किया है और दूसरी ओर गुरु की महिमा श्री समता प्रकाश ग्रन्थ में बड़ी खूबसूरती से की है। क्या यह पहले विचार के विरुद्ध नहीं है?

गुरुदेव : महज़ गद्दीनशीनी से ही परमार्थ का मसला हल हो सकता होता तो महन्त रतनदास, जो एक मशहूर कबीरपन्थी गद्दी के जाँनशीन थे, मारे-मारे गुरु की तलाश में न फिरते। यह भी इस गुरुडम के चक्कर में गुरुगादीनशीन बने हुए थे। मौज मेला करने के बाद जब उन्हें विवेक हुआ तो यह स्वाद फीका लगने लगा। महसूस किया कि ज़िन्दगी मेल नहीं खा रही थी। दरबदर तीर्थों, मठों वगैरह में भटकने के पश्चात्

जब नाउम्मीद हो गये तो इन्हें मालिक के हुक्म से प्रकट होना पड़ा। यह तो गुप्त ही समाँ (समय) व्यतीत कर रहे थे।

प्रेमी : आपने जो यह नये ग्रन्थ श्री समता प्रकाश की रचना कर दी है, क्या पहले कोई ग्रन्थ की कमी थी? फिर आपकी वाणी तो श्री ग्रन्थ साहिब की वाणी से हूबहू मिलती जुलती है। इसकी अलग से रचना करने की क्या ज़रूरत थी?

गुरुदेव : प्रेमी जी, जब भी धर्म की ग्लानि होती है और लोग सत्मार्ग से भटक जाते हैं तब कोई न कोई धर्मग्रन्थ मालिक की मौज से गुमराह लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए आमफ़हम (प्रचलित) बोलचाल में जरूर आता है। हर मज़हब (धर्म) की हिदायत (उपदेश) सच्चाई, एकता व प्रेम पर निर्भर होती है, मगर ज्यों ज्यों समय गुजरता जाता है गुरुओं के अनुयायी अपने स्वार्थ के कारण जब तप और त्याग का रास्ता छोड़ देते हैं और अपने मज़हबी ग्रन्थों की हिदायत को महज़ (केवल) पाठ-पठन करने, माथा टेकने तक महदूद (सीमित) कर लेते हैं और अमली ज़िन्दगी से गिर जाते हैं तब तामीर प्रोग्राम (रचनात्मक कार्यक्रम) तर्क (छोड़) करके अपने-अपने ही किस्म का प्रोग्राम बना लेते हैं। सिक्ख कौम की तरफ़ ही ध्यान दो। गुरु गोविन्दसिंह जी ने पाँच प्यारे खड़े करके बिखरी कौम को एक लड़ी में पिरो दिया। बेजान मुर्दे में ज़िन्दगी फूँक दी। अब उनके कुछ अनुयायी अपने को दूसरों से अलहदगी का प्रचार करने में लगे हैं। कुछ अनुयायी अपने आपको श्रेष्ठ बताकर दूसरों से नफ़रत करने लगे हैं। अपने बुजुर्गों की बनाई माला बिखेरने में कोई झिझक या बुराई नहीं देखते। नतीजा इसका यह होगा कि जो दीगर (दूसरे) लोग ग्रन्थ साहिब की वाणी को पवित्र मानकर एहतराम (आदर) के तौर पर सिर झुकाते हैं नफ़रत करने लग जायेंगे। समता प्रकाश वाणी ऐसी घृणा के खिलाफ ढाल का काम देगी। इसलिए जगह-जगह समता आश्रम या सत्संग शालाएं चालू होनी चाहिए। समता प्रकाश ग्रन्थ का उनमें प्रकाश होना

चाहिए। हर इलहामी वाणी की तालीम एक सी होती है। प्रेम, सेवा और एकता उसका मकसद (उद्देश्य) होता है। बाकी तंगदिल अनुयायी स्वार्थ में उलझकर हुलिया बिगाड़कर रख देते हैं। अब समता प्रेमियों पर यह भारी जिम्मेवारी आन पड़ी है कि वे वाणी प्रचार का बोझ अपने सिर पर उठावें। जहाँ कहीं जितना बन सके, सत्संग चलाने का और सदाचारी जीवन बनाने का प्रोग्राम बनावें ताकि यह जो नफरत (घृणा) का वातावरण पैदा होने लगा है भड़कने न पावे। ईश्वर सुमति देवें। इनका समय तो खत्म हो चुका है।

प्रेमी : जब सब जगह आश्रम खुल गए तो आपको (आपके बाद) एक सही गुरु तो बिठाना ही पड़ेगा। अगर ऐसा हुआ तो क्या यह गुरुडम नहीं होगा?

गुरुदेव : यहाँ गुरु स्थापित करने का कोई सवाल नहीं है। गुरु बनाया नहीं जाता, गुरु बनाना ही गुरुडम है। इधर तालीम में कोई कमी नहीं रखी गई: महामन्त्र अपने आप में गुरुमन्त्र है। सहज सहज शब्दों के अंगों में समाधि अवस्था में अनुभव होता रहा है। जैसे जैसे आया नोट करते रहे। अब मुकम्मिल रूप में रूहानी (आध्यात्मिक) मन्त्र अर्थसहित समता प्रकाश में लिखा है। गीता में भी जपयोग की बड़ी महानता बतलाई गई है।* यह मन्त्र सर्व सिद्धिदातार है।

प्रेमी : आपने समता विलास में एक जगह फ़रमाया है कि असली स्मरण वही है जो कि मन और पवन की सन्धि करे और अब आप फ़रमा रहे हैं कि महामन्त्र का जाप सर्वश्रेष्ठ है। आखिर कौन सी बात ठीक है?

गुरुदेव : गुरु की हिदायत (उपदेश) पर विश्वास ही गुरु की प्राप्ति है। जब कामिल गुरु शारीरिक तौर पर मौजूद नहीं रहते तब चालाक लोग आगे आकर मना की हुई बातों को नजरअंदाज

---

* यज्ञानां जपयज्ञः अस्मि (गीता, 10/25)
मैं यज्ञों में जपयज्ञ हूँ।

करके खुद गुरुडम फैलाने का कारण बनते हैं। भोली भाली जनता को गुमराह करके उनके धन दौलत व दीगर (अन्य) सामिग्रियों से सुख भोगते हैं। इसलिए महामन्त्र की महानता बयान कर दी गई है ताकि पीछे से लोग गुमराह न हों। विश्वास ही कामिल गुरु है।

प्रेमी : अगर फिर भी चालाक लोग रास्ता निकालकर आगे आ जाएँ तो भोली भाली जनता को ईश्वर के नाम पर आसानी से गुमराह किया जा सकता है और महामन्त्र की जगह गुरुमंत्र का लालच दिया जा सकता है।

गुरुदेव : इन्सान बेशक कमजोर दिल है। लालच और लोभ से स्वयम् ही अपनी कमजोरी का शिकार हो जाता है। लेकिन जैसे रोटी के लिखे हुए शब्द पढ़ने से भूख की निवृत्ति नहीं होती, कामिल गुरु के बगैर युक्ति और शक्ति नहीं मिलती।

प्रेमी : फिर महामन्त्र से आपकी अनुपस्थिति में किस प्रकार संतोष होगा? वह भी तो वास्तव में लिखी हुई रोटी के शब्द की ही प्रकार समझा जायेगा।

गुरुदेव : आप भी उन चालाक लोगों की तरह उनकी वकालत कर रहे हैं, जो भोले-भाले लोगों को अपने दांव पेंच में डालकर फाँस लेते हैं। प्रेमी जी, कामिल पुरुषों की तहरीर (लेख) व तकरीर (वचन) में कोई अन्तर नहीं होता। यकीन कामिल (पूर्ण विश्वास) ही सफलता की कुंजी है, बस।

प्रेमी : यदि कोई प्रेमी स्वार्थ रहित हो और विश्वास का पात्र हो तो क्या वह नामदान कर सकता है? क्या ऐसे प्रेमी को अगवाऊ बनाया जा सकता है?

गुरुदेव : तरट्टी चौड़। मूरख के मूरख ही रहे। तुम्हें समझाया क्या गया है? बाड़ ही खेत को खा जायेगी और तुम देखते ही रह जाओगे। अपने मिशन की आप ही खिलाफ़वरजी (विरोध), अगर ऐसा कभी हो ही जाये तो डटकर मुखालफत (विरोध) करना ताकि दूसरों को इबरत (शिक्षा) हासिल हो। छोटी बुद्धि वाले ऐसा भी कर सकते हैं मगर तुम खूब होशियार रहना।

महामन्त्र

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा
सर्व-व्यापक कल्याण-मूरत
परमेश्वराय नमस्तं

महामन्त्र की महिमा

त्रयोदश[1] अक्षर मंत्र यह, सरब सिद्ध दातार ।
जो सिमरे नित प्रेम से, मंगल पाये अपार ।।
जनम जनम जाये भरमना, प्रभ चरण पाये विश्वास ।
मोह माया संकट मिटे, सब कारज होवें रास ।।

महमा सतसरूप की, सब अक्षर पहचान ।
चार वेद और सिमरती, सबका सार निधान ।।
परम शकत परकाश अत, धारे कोट पिण्ड ब्रह्मण्ड ।
सरब न्यारा आप रहे, तत्त नाद रूप अखण्ड ।।

रिखी मुनी और देवते, गायें गुरु अवतार ।
महिमा अवगत रूप की, पल पल करें विचार ।।
ज्ञानी कथा विचारते, जुग जुग पूरण सार ।
ओड़क[2] निरणा पाया, सरब रूप **ओंकार** ।।

कथा विचारें वेदान्ती, देवें अनक भाँत परमाण ।
ब्रह्मसत्यं तत्त रूप का, निरणा करें बखान ।।
शबद रूप को पूजते, जो तीन काल निरदोख ।
त्रैगुण से नित भिन्न है, **निरंकार** शबद तत्त मोख[3] ।।

---

1. तेरह 2. अंत 3. मोक्ष

उतपत परले जो होये, सो असत माया विकार ।
अजन्मा कर प्रभ पूजते, जुग जुग गुणी अपार ।।
केवल सत तत्त रूप को, पूजें सिद्ध बुद्ध अनेक ।
दृश्यमान सब भरम है, प्रभ केवल रूप **अद्वैत** ।।

परम शकत संसार में, ज्ञान मात्रक सार ।
सरब आधारी तत्त सो, करें **पुरखा** विचार ।।
लाख चौरासी जन्त में, जो समरस रह्या व्याप ।
सर्व-व्यापक जान के, हरजन करते जाप ।।

राग द्वेष जाँ को नहीं, शुद्ध सरूप त्रैकाल ।
कल्याणमूरत तत्त ध्यान से, तन मन होये निहाल ।।
सरब शकत आधार जो, अतुल शकत निरधार ।
परमेश्वर कर पूजिये, ताप तपन होये छार ।।

नमो नमो प्रभ रूप को, जाँ की महिमा अपरमपार ।
अनन्त शकत तत्त शबद को, **नमस्तं** बारमबार ।।
तत्त मन्तर महिमा अपार है, ज्ञान सागर अथाह ।
जिस विध जो सिमरन करे, भव दुस्तर तरे असगाह ।।

तत्त सरूप परमात्मा, सब अक्षर महमा जाँ ।
जो सिमरे चित्त प्रीत से, कलह न व्यापे ताँ ।।
सत मन्तर सिमरन करे, उठत बैठत नर जोये ।
जाये भरम की दूषना, चित्त शाँत परापत होये ।।

विजय पाये संकट मिटे, सतगुन ले सुखसार ।
आध व्याध जाये कल्पना, पाये सूझ धरम अपार ।।
जो ध्याये नित प्रेम से, परसे नहीं पखवाद ।
समता तत्त रसना मिले, मोह ममता मिटे मूल परमाद ।।

कलह कलेश सब दूर होये, पाये ज्ञान तत्त योग ।
'मंगत' तत्त अक्षर नित गाइये, प्रभु दरशन होयें संजोग ।।

ग्रंथ
श्री समता विलास से

परम निधान

बचन 1. ईश्वर सत है। उसका आसरा परम सुख देने वाला है ।

बचन 2. **दुनियाँ में जबरदस्त कोशिश क्या है?** धर्म के मार्ग पर चलना ।

बचन 3. **दुनियाँ में सच्चा मित्र कौन है?** अपनी नेक एमाली[1] ।

बचन 4. **दुनियाँ में शक्तिमान कौन है?** पर उपकारी पुरुष ।

बचन 5. **दुनियाँ में हमेशा खुश कौन रहता है?** जो दूसरों का भला चाहता है।

बचन 6. **दुनियाँ में परम तृप्त कौन है?** जिसको ईश्वर पर भरोसा है ।

बचन 7. **दुनियाँ में सबसे बड़ी ताकत क्या है?** निष्काम भावना और खिमा[2] करना ।

बचन 8. **पवित्र ज़िन्दगी क्या है?** जो अपनी मौत का विचार करता है।

बचन 9. **दुनियाँ में कामिल[3] गुरु कौन है?** जिसने अपने आप पर विजय पाई हो।

बचन 10. **सच्ची परिस्तश[4] किसे कहते हैं?** जिसमें अपनी ग़र्ज़ न हो ।

बचन 11. **दुनियाँ में सच्चा सुख क्या है?** ईश्वर की प्राप्ति ।

बचन 12. **बुद्धिमान किसको कहते हैं?** जिसके अन्दर अभिमान न हो ।

बचन 13. **दुनियाँ में नीतिवान कौन है?** जिसके अन्दर एकता का भाव हो।

बचन 14. **वह कौन है जिसका कोई दुश्मन नहीं है?** जो हर वक्त दूसरे की भलाई चाहता है।

बचन 15. **नेकी किसको कहते हैं?** दूसरे का दु:ख निवारण करना ।

बचन 16. **दान किसको कहते हैं?** यथाशक्त अधिकारी की सेवा करना ।

---

1. कर्म 2. क्षमा 3. पूर्ण 4. पूजा

बचन 17. दुनियाँ में दुर्लभ पदार्थ क्या है? कामिल गुरु की प्राप्ति ।

बचन 18. सच्ची भक्ति किसको कहते हैं? विचार का शुद्ध होना और प्रभु विश्वास की दृढ़ता ।

बचन 19. सत्संग किसको कहते हैं? जहां सत् सरूप का विचार हो ।

बचन 20. अवतार किसको कहते हैं? जिसके अन्दर ख़्वाहिश न हो ।

बचन 21. देवता किसको कहते हैं? जो दूसरे को सुख देने की ख़ातिर यत्न करता है ।

बचन 22. मानुष ज़िन्दगी की सार क्या है? सत् सरूप की तलाश ।

बचन 23. तीर्थ किसको कहते हैं? जहां ईश्वर की महिमा गाई जाये या जहां ईश्वर के प्यारे स्थित हों ।

बचन 24. मौत से बड़ा अज़ाब[1] क्या है? अपनी ग़फ़लत[2] का न विचार करना ।

बचन 25. ज़िन्दगी में मुर्दा कौन है? जो खुदग़र्ज़[3] है ।

बचन 26. ईश्वर की प्राप्ति किस तरह होती है? गुरु की हिदायत को मानना, पर उपकार यानी निष्काम सेवा करनी ।

बचन 27. विश्वास किस तरीके से दृढ़ होता है? सच्चे गुरु के मिलाप से ।

बचन 28. ईश्वर की शक्ति क्या है? जो कुल कायनात[4] को आनन्द दे रही है ।

बचन 29. धर्म क्या चीज़ है? जिससे सच्ची खुशी मिले ।

बचन 30. ज्ञान क्या चीज़ है? जो हमेशा की ज़िन्दगी देवे यानी रोशनी देवे ।

बचन 31. जिन्दगी किस तरह ज़िन्दा होती है? धर्म के मार्ग में बड़ी से बड़ी कोशिश करने से ।

बचन 32. सबसे बड़ा पाप क्या है? दूसरे को दुःख देना ।

---

1. दुख 2. लापरवाही 3. स्वार्थी 4. सृष्टि

बचन 33. सबसे बड़ी बेइज्जती क्या है? अपना पाप न विचार करना ।

बचन 34. मन क्या चीज़ है? मनन करना ।

बचन 35. बुद्धि क्या चीज़ है? निश्चय करना ।

बचन 36. अहंकार क्या चीज़ है? कर्म का कर्त्ता बनना ।

बचन 37. आवागवन क्या चीज़ है? कर्मों के फल की ख्वाहिश करनी ।

बचन 38. ख्वाहिश[5] कैसे पैदा होती है? कमी के महसूस करने से ।

बचन 39. ख्वाहिश से कैसे छूट सकते हैं? पूरन पुरख परमेश्वर की प्राप्ति से ।

बचन 40. रोगी कौन है? जो बेहूदा खाना खाये ।

सच्ची कोशिश, सच्चा विचार, सच्ची संगत ज़िन्दगी को कायम रखने वाले गुण हैं। अन्त काल के होने तक इन गुणों को स्वीकार करना चाहिये ।

5. इच्छा

जीवन सार सिद्धान्त

मनुष्य की ज़िन्दगी दुरुस्त विचार हासिल करने की ख़ातिर है, न कि लकीर की फकीरी में फंसे रहने की ख़ातिर। ब्राह्मण जाति का वह आदर्श जो कि आसमान पर चमक रहा था आज पाताल की तरफ जा रहा है। इसका कारण क्या है? इसको अच्छी तरह विचार करें। इस कमजोरी का कारण यह है कि आत्मिक उन्नति जो कि असली धर्म का सरूप है, लोप हो गई और ब्राह्मण कई तरह के तोहमात[1] में मुस्तग़र्क[2] होकर अपनी सामाजिक शक्ति और बुद्धि बल को खो बैठे। जमाने की हालत को देखकर असलियत की तरफ करवट बदलनी चाहिये जिससे कमजोरी का कतई नाश हो जावे। सबसे पहले इन विचारों की तहकीकात[3] करनी चाहिए:

1. **पैदाइश का कारण क्या है? यानी जीव को देह क्यों कर मिली?**
2. **यह तहकीकात करनी चाहिए कि देह और जीव का क्या सम्बन्ध है?**
3. **देह के नष्ट होने पर जीव की क्या हालत होती है?**
4. **देह की कैद से मुखलिसी (छुटकारा) कैसे मिलती है ?**
5. **देह और संसार का क्या भेद है?**
6. **देह का असली सरूप क्या है? और जीव का असली सरूप क्या है?**
7. **जितने भी महापुरुष दुनियाँ में हैं उनके उपदेश को सुनकर धारण करने से कल्याण होता है या महज़ उनके दर्शन भेंट से?**
8. **क्या जीव का कल्याण करने वाला उसका अपना कर्म है, जो श्रवण, मनन और निदिध्यासन में लाया जावे या दूसरे का साधन जिसका अनुभव ही न हो?**
9. **गति किसको कहते हैं? गति देह की होती है या जीव की ?**
10. **जीव के कल्याण का यथार्थ साधन क्या है?**

---

1. वहम, अन्धविश्वास 2. डूबना 3. खोज 4. पूजा

11. धर्म नीति और रिवाज़ के भेद का विचार और रिवाज़ के सुधार का यत्न करना ।

12. ईश्वर की परस्तिश[4] और भगति किसलिये की जाती है? जो ईश्वर से मुनकिर[1] हैं उनको क्या कमी है?

13. सत्पुरुषों का उपदेश क्या है? और सत्पुरुष बनाने वाले कौन–कौन से असूल हैं और सत्पुरुषों की पूजा का क्या सिद्धान्त है?

अब मुन्दरजा बाला[2] सवालात के जवाब का मुताला[3] करें और विचार करें कि हमारा रवैया[4] क्या है और हमारा धर्म क्या कहता है। अपनी बुद्धि को विचार में ग़र्क[5] करो तब असलियत को पाओगे।

1. जीव के देह धारण करने का कारण कामना यानी ख्वाहिश है। जिस वक्त कामना अन्तःकरण में प्रगट हुई उसी वक्त देह की कैद में जीव आ गया यानी देह सरूप को धारण करके अपनी कामना पूर्ण करने की कोशिश करने लगा। इस कामना का नाम ही माया भ्रम है।

2. जीव और देह का सम्बन्ध मालिक और मकान के मुताबिक है, यानी शरीर रूप मकान में जीव रूपी मालिक है। गीता के आठवें अध्याय में अधिभूत, अधिदेव, अध्यात्म सरूप प्रकृति का मालिक अधियज्ञ सरूप जीवन शक्ति का बयान[7] है। इसका विचार करें।

3. देह के नाश होने से जीव दूसरी देह को धारण करता है– उसी छिन में अपनी ख्वाहिश के मुताबिक। यह उपदेश अर्जुन को श्रीकृष्ण जी ने समझाया है कि जैसे मानुष पुराने कपड़े उतारकर नये धारण कर लेता है उसी तरह एक देह से दूसरे देह में जीव प्रवेश करता है। नग्न हालत यानी बगैर जूनी प्रवेश के एक लमह भी अलग नहीं रह सकता।

4. देह की कैद से जीव को मुक्ति निष्काम कर्म से मिलती है। गीता का सारा लुबे लुबाब[6] यह ही है और तमाम ऋषियों और पैग़म्बरों का सिद्धान्त भी यही है। यानी कामना युक्त कर्म देह के भोगों में आसक्त करते हैं, निष्काम कर्म देह की कामना से आज़ाद करते हैं। जैसे तमाम सत्पुरुषों का जीवन ।

1. ईश्वर को न मानना 2. निम्नलिखित 3. अध्ययन 4. आचरण 5. लीन
6. सार 7. वर्णन

5. देह और संसार का कोई भेद नहीं है, यानी देह धारण करने से संसार का निर्वाह चलता दिखाई देता है। देह के नाश होने से जाहिरी संसार अलोप हो जाता है। देह और संसार का एक ही रूप है। देह करके संसार है। असलियत में संसार कोई चीज़ नहीं, जैसी जिसकी देह है वैसा ही उसका संसार है। इसलिए देह पर काबू पाने से संसार पर काबू पाया जाता है। यह निश्चय करें।

6. देह का असली सरूप मजमुआ[1] कर्म हैं। जीव का असली सरूप कर्मों का भोगता होना है। जब तक कर्मों का कर्त्ता अपने आप को मानता है तब तक जीव रूप होकर सुख और दु:ख पाता है। जिस वक्त कर्त्ता भाव से आज़ाद हो गया उस वक्त समता सरूप ब्रह्म शक्ति में लीन हो गया (जैसे बर्फ और पानी का भेद)।

7. जितने भी सत्पुरुष संसार में आये हैं उनका सत उपदेश ग्रहण करने से कल्याण होता है, महज़[2] दर्शन से कुछ नहीं होता। दुर्योधन, कैकेयी और भी लाखों मिसालें मौजूद हैं। अगर महज़ दर्शन से ही कल्याण होता तो अर्जुन में कायरता पैदा न होती, और श्री कृष्ण को उपदेश न देना पड़ता। इसलिये सत् उपदेश को धारण करने की कोशिश करें। यही उसकी पूजा है और उसी में कल्याण है, विचार करें।

8. जीव के कल्याण करने वाला उसका अपना कर्म है। दूसरे (महापुरुष वगैरह) उसे ईश्वरीय कानून से छुड़ा नहीं सकते। जो इस सहारे पर हैं कि हम खुद नेक न बनें और पुत्र वगैरह या कोई पण्डित निजात[3] दिलायेगा, वे महज़ मूर्ख हैं। अपनी करनी से कल्याण है और अपनी करनी ही बन्धन रूप है। यह मसला कर्म है। अगर दूसरा कोई गति दे सकता होता तो ज़िन्दगी में नेक कर्म करने की कोई ज़रूरत न थी और श्री कृष्ण को कर्म योग के समझाने की अर्जुन को ज़रूरत न पड़ती। तमाम सत्पुरुषों का सिद्धान्त है कि जीव को अपनी करनी से सुख-दुख होता है और कर्म फल को कोई मिटा नहीं सकता। यही मसला आवागवन है। अपनी करनी करके असलियत की पहचान करो, अपने सत् बुजुर्गों की हिदायत के मुताबिक[4] ।

1. संचित 2. केवल 3. मुक्ति 4. शिक्षा के अनुसार

9. गति के माने कल्याण के हैं। देह की गति यही है कि आग में जला दी जावे, मिट्टी में दबा दी जावे या पानी में बहा दी जावे। हिन्दू फिलास्फी में जलाना श्रेष्ठ माना गया है। जीव की गति अपने कर्म अनुसार है, दूसरा कोई शक्ति नहीं रखता ।

10. जीव के कल्याण के वास्ते सत्कर्म की धारणा है यानी खुराक, लिबास, विचार, संगत, और कोशिश नेक होवे जिससे जीव असली सरूप को प्राप्त हो जावे, यही असली गति है ।

11. धर्म नीति यानी ज़िन्दगी और मौत का कानून अटल है और हर एक मुल्क और मज़हब के वास्ते बराबर है यानी जीव मात्र का देह धारण करना और भोगों में गिरफ्तार होना और इससे निजात हासिल करना–एक ही धार पर है। दूसरा पहलू रिवाज का है यानी वक्त के मुताबिक सोसायटी के लिये नियम, रिवाज हमेशा बदलता रहता है। जिस तरह वक्त बदलता है उसी तरह रिवाज भी बदलता रहता है, मगर धर्म नीति अटल है।

12. ईश्वर की भगति जन्म मरण संसारी दुःखों से छूटने के लिये है जिससे जीव ख्वाहिश के अज़ाब[1] से छूटकर असली खुशी को हासिल कर लेवे जो हमेशा कायम है और निज आनन्द है। जो आदमी संसार की कामना की खातिर भगति करता है, वह भगति असली खुशी नहीं दे सकती। यह अच्छी तरह विचार करें। जो ईश्वर को नहीं मानते वे भी दुनियावी खुशी व गमी में घिरे रहते हैं। ईश्वर का मानना महज़ निजात (मुक्ति) की खातिर है।

13. सत्पुरुषों का सत् उपदेश अपनी आत्मिक उन्नति के लिए है, यानी पाप कर्मों से छूटकर सत्कर्म की साधना करनी। उनका उपदेश मानना ही असली पूजा है। नेक कर्म करके वे खुद सत्पुरुष बने। निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता और उपकार ये गुण साधन करने और धारण करने सत्पुरुषों का जीवन है। यह ही उनकी हिदायत[2] है और इस पर अमल करना उनकी सच्ची पूजा है।

---

1. इच्छा रूपी दुःख 2. शिक्षा

गुरुपद का सिद्धांत

बचन 1. गुरु शब्द का अर्थ यह है कि अन्धकार को नाश करने वाला। वास्तव में तो गुरु एक शब्द सरूप परमेश्वर ही है जो तमाम भ्रम अन्धकार से निर्मल है और तमाम भ्रम अन्धकार को नाश करने वाला है। अखण्ड प्रकाश घट-घट व्याप रहा है। उस परम तत्त को जब बुद्धि अनुभव करती है तब सब अन्धकार से पवित्र होकर प्रकाश सरूप में लीन हो जाती है।

बचन 2. संसार की विचरित हालत में संसारी नीति का ज्ञान भी जिससे प्राप्त होवे वह संसारी गुरु माना जाता है। यानी इस जीव को हर वक्त सिखया की ज़रूरत है। बग़ैर सिखया के सांसारिक तथा परमार्थिक बोध नहीं हासिल कर सकता है।

बचन 3. परमार्थिक गुरु वह ही हो सकता है जिसने परम तत्त अविनाशी परमेश्वर में स्थिति हासिल की हो और तमाम तृष्णा विकार से जो पवित्र हो चुका हो, यानी हर वक्त अपने अन्तर विखे[1] परम प्रकाश में जो लीन रहता हो ।

बचन 4. सिर्फ ईश्वर प्राप्ति का रास्ता जानने वाले को गुरु नहीं कहते हैं, बल्कि ईश्वर सरूप में जो आनन्दित हुआ हो वह असली गुरु है। सिर्फ रास्ता जानने से गुरु कहलाने का मुस्तहिक[2] नहीं हो सकता है, जब तक कि वह अपनी सत् श्रद्धा और प्रेम भगति से अंतरगत में परमेश्वर में लीन न हो जावे ।

बचन 5. ऐसे कथनी गुरु जो ईश्वर तत्त को प्राप्त नहीं हुए हैं वे विद्या के मान में आकर बड़े-बड़े अनर्थिक पाप कर्म करके खुद असली शान्ति को न प्राप्त हो सकते हैं और न ही शिष्यों को पापों से छुड़ा सकते हैं। यानी गुरु व शिष्य दोनों दुराचारी होकर लोक व परलोक दोनों को बिगाड़ देते हैं।

---

1. अन्तर्गत 2. अधिकारी, पात्र

बचन 6. जो कथनी ब्रह्मज्ञानी हैं और देह के मद में गिरफ्तार हैं, और शिष्यों से अपनी देह की पूजा करवाते हैं, वे शिष्यों का धन माल लूटकर अपने भोगों में सर्फ[1] करते हैं वे गुरु नहीं बल्कि धर्म के नाशक हैं और दुनियाँ में पाप को फैलाने वाले हैं।

बचन 7. जो कथनी मात्र अपने आपको कर्मों से विलग मानते हैं और शिष्यों को यह उपदेश करते हैं कि आत्मा निर्लेप है, पाप व पुण्य देह करके हैं, हम आत्म सरूप हैं, हमको कोई कर्म लेप नहीं कर सकता है, इस वास्ते हमारी करनी पर गौर न करो बल्कि तुम अपनी सत् श्रद्धा से गुरु को ब्रह्म सरूप जानकर पूजा करो, ऐसे कपटी गुरु इन्द्री भोगों की खातिर गुरुडम फैलाकर कई पुरुषों को चेले-चेलियाँ बनाकर खूब प्रकृति के भोगों का आनन्द हासिल करते हैं और तमाम धर्म की सत्ता को नाश कर देते हैं । उनके कथनी ज्ञान और पापयुक्त रहनी को विचार करके जनता दुराचारी हो जाती है और संसार में उपद्रव फैल जाता है और अत्यन्त कष्ट में हर एक जीव हो जाता है। कथनी गुरुओं की करनी का यह फल संसारी जीवों को प्राप्त होता है।

बचन 8. गुरुपद अत ही कठिन अवस्था है। कोई ही गुरमुख प्राप्त होता है। जिसने अपने तमाम शारीरिक भोगों से त्याग हासिल किया हो और हर वक्त आत्म सरूप में स्थित रहता है, पर उपकारी जीवन जिसका हो, हर एक जीव से अधिक प्रेम रखने वाला हो, लाभ व हानि, खुशी व गमी, सर्दी व गर्मी, मित्र-शत्रु, भय व भ्रम से जिसकी बुद्धि बिलकुल न्यारी हो चुकी हो और शब्द सरूप ब्रह्म में स्थित हो गई हो, वह ही गुरु है। यानि प्रथम उसने अपना अंधकार दूर किया है और ईश्वर प्रकाश को प्राप्त हुआ है। उसका उपदेश दूसरों के वास्ते भी कल्याणकारी है।

बचन 9. जो कथनी गुरु तन, मन, धन की भेंट की प्रतिज्ञा शिष्यों से लेकर शिष्यों के धन से अपने भोग पूर्ण करते हैं, और उनके तन से अपने शरीर की सेवा करवाते हैं, और मन से अपनी देह की पूजा कराते हैं और यह शिष्यों को हिदायत करते हैं कि तुम्हारा कल्याण सिर्फ गुरु की भगति में

1. खर्च

ही है, ऐसे कपटी गुरु क्या कल्याण दे सकते हैं जो खुद माया में मोहित हो रहे हैं? यह सब ठगी है। अपनी बुद्धि द्वारा विचार करके यह सम्बन्ध धारण करना चाहिये।

बचन 10. असली गुरु तन मन धन की भेंट इस तरह शिष्यों से लेते हैं और उपदेश करते हैं कि अपनी ममता को त्याग करके अपने धन को सत्कर्म में लगाओ और तन से जीवों की सेवा करो, और मन से परम परमेश्वर का सिमरन करो जो तुम्हारे अन्दर प्रकाश कर रहा है। हमारी गुरु भगति यही है कि तुम सत् उपदेश द्वारा अपनी कल्याण करो यानी असली गुरु शिष्यों को अपनी पूजा या सेवा नहीं सिखलाते हैं बल्कि तमाम जनता की सेवा अपनी सेवा मानते हैं और शिष्यों को जगत की सेवा का उपदेश करते हैं।

बचन 11. जो कपटी गुरु अपने चेले और चेलियों को यही हिदायत करते हैं कि गुरु की देह की पूजा करो, आरती करो, चर्णामृत लो और तमाम अपना धन-माल गुरु अर्पण गुप्त रूप में करो और बिल्कुल दूसरे सत्संग में न जाओ, गुरु खुद तुम्हारा कल्याण करेगा, यह सब दम्भ है और धन लूटने का रास्ता है। इस अन्धकार परस्ती में न किसी की कल्याण हुई है और न ही होगी। बल्कि दीन व दुनियाँ दोनों में जिल्लत व ख्वारी[1] हासिल होती है।

बचन 12. असली गुरु ईश्वर पूजा सिखलाते हैं और लोक सेवा अपनी सेवा समझाकर शिष्यों को लोक सेवा में लगाते हैं और बिलकुल शिष्यों का धन अपने शारीरिक भोगों में इस्तेमाल नहीं करते हैं। बल्कि खुद शिष्यों की सेवा प्रेमपूर्वक करते हैं। ऐसे गुरु धर्म के शिक्षक हैं और जीवों का उद्धार करने वाले हैं। उनका उपदेश असली त्याग सिखलाता है और अन्तर विखे परमानन्द को प्रकाश करता है।

बचन 13. जो गुरु माया इकट्ठी करने की खातिर या अपनी पूजा की खातिर अनेक जादू जन्तर-मन्तर इस्तेमाल करते हैं, और गुरुडम का जाल फैलाते हैं, और शिष्यों को हर वक्त गुरु भगति का उपदेश करते हैं, और हर तरीका की चालाकी करके शिष्यों पर रोब डालकर खूब अपने भोग हासिल

1. अपमान और दुर्दशा

करते हैं, ऐसे कपटी गुरु की सेवा नरक के देने वाली है। यह बिलकुल नादानी है कि कपटी गुरु से कोई कल्याण होवेगी। बल्कि धर्म का निश्चय ही नाश हो जावेगा। ऐसे गुरु का कोई शाप नहीं लगता है। वह खुद अपनी खोटी भावना का फल पाता है। असली गुरु का अगर शरीर भी कोई नाश कर देवे तो वह शाप नहीं देवेगा। यह निश्चय कर लेवें।

बचन 14. गुरु वह ही है जो द्वैत मिथ्या कल्पना से निर्मल होकर ईश्वर सरूप में स्थित हुआ है। हर वक्त संसारी पदार्थों से वैरागवान रहता है। जो ईश्वर भगति में अधिक प्रीति रखता है, अन्तर विखे अपनी सुरति को दृढ़ करके सत् शब्द में लीन करता है, और तमाम अन्तर व बाहर की गति को जानने वाला है और अति पर उपकारी जिसका स्वभाव है, एक आत्मा ही जिसका भोग है, आत्मा ही जिसका आधार है, आत्मा ही को जो सर्व जगत में अनुभव करता है, तमाम द्वन्द्व कल्पना से जो विरक्त हुआ है। समसरूप आत्मा में जो लीन रहता है वह ही तत्तवेत्ता पुरुष असली गुरु है। उसी ने तमाम माया से मुक्ति पाई है। उसकी सिखया भी सर्व कल्याण के देने वाली है।

बचन 15. कपटी गुरु शिष्यों को जो उपदेश करते हैं कि तमाम संसारी पदार्थ गुरुओं के वास्ते हैं इस वास्ते तुम सत् श्रद्धा से गुरु सेवा करो, यह ही तुम्हारी कल्याण है, यह सब पाखण्ड का जाल है। सब चीजें माया के चक्र में उत्पन्न होती हैं और नाश हो जाती हैं। गुरु व शिष्य के जो ताल्लुकात[1] हैं वे रूहानी[2] हैं न कि महज़ संसारी पदार्थों की भेंट लेने का जाल हैं, यह निश्चय होना चाहिये।

बचन 16. शिष्यों को अपने कल्याण की खातिर गुरु की जरूरत है और गुरु को जीव उद्धार की खातिर शिष्य अधिकार देने की जरूरत है। यानी हर दो को अपना अपना फर्ज़ मजबूर कर रहा है। किसी पर कोई ऐहसान नहीं है। यह ईश्वर की माया का नियम है।

1. सम्बंध 2. आत्मिक

बचन 17. शिष्य का फर्ज़ है कि सत् उपदेश द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति करनी कि जिस तरह से गुरु ने अपने आपकी कल्याण की है, वह आदर्श दृढ़ होना चाहिए।

बचन 18. गुरु का फर्ज़ है कि शिष्य को उसकी बुद्धि के मुताबिक उपदेश देकर मार्ग पर-उपकार पर दृढ़ करना और परमार्थ निश्चय परिपक्व कराना, शारीरिक विकारों से निर्बन्ध करके उपदेश देकर ईश्वर विश्वासी बनाना, ऐसा धर्म में निश्चित कर देना कि फिर माया के मोह में न गिरफ्तार होवे। गुरु और शिष्य का यह ही असली सम्बन्ध है।

बचन 19. ऐसे सम्बन्ध में संसारी पदार्थों के लेन देन का कोई झगड़ा नहीं है। गुरु का फर्ज़ है कि प्रथम अपनी कल्याण करनी और शिष्य को निष्काम लोकसेवा की भावना का उपदेश देना। इन भावों के उलट जो गुरु लोकसेवा के बजाय अपनी सेवा करवाते हैं, ईश्वर पूजा की जगह अपनी देह की पूजा करवाते हैं, और शिष्य को खुद अपना अमली जीवन बनाने की बजाय यह दावा करते हैं कि हम तुम्हारी कल्याण करेंगे-यह सब पाखण्ड है। ऐसे गुरु व शिष्य दोनों मूर्ख हैं। दुनियाँ में अंधकार फैलाने वाले हैं।

बचन 20. गुरु का फर्ज़ है कि निष्काम भावना से शिष्य का उद्धार करना और शिष्य से बिलकुल किसी वस्तु की चाहना न करनी। शिष्य का फर्ज़ है कि यथाशक्ति गुरु की सेवा करनी और सत् उपदेश द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति का यत्न करना। जो गुरु लोकसेवा की खातिर शिष्य को हिदायत करते हैं और अपने आप जीवन को निर्मल करने का मुख्य धर्म समझते हैं, वह गुरु कल्याणकारी हैं। इसके उलट जो महज़ अपनी देह का ही स्वार्थ शिष्य से चाहते हैं, वह सब दम्भ है। ऐसा विचार कर लेना चाहिए।

बचन 21. शिष्य को चाहिये कि गुरु की ऐसी तहकीकात[1] करे जिस तरह लोहार लोहे की सार लेता है। असली गुरु जो होता है उसकी तहकीकात करने से धर्म निश्चय दृढ़ होता है और जो दम्भी गुरु होता है उसकी तहकीकात करने से सब जाल का पता लग जाता है। यह जाँच अधिक जरूरी है। नुमायश में नहीं भूलना चाहिए।

बचन 22. गुरु उपदेश का सिद्धान्त यह है कि मिथ्या माया से उपरस होकर ईश्वर प्राप्ति का जतन करे जो आनन्द सरूप है। शिष्य परम श्रद्धा और निर्मल प्रेम से इस मार्ग में कामयाब हो सकता है। जो सत जतन को छोड़कर महज़ कथनी मात्र गुरु के आसरे रहता है वह कभी भी कल्याण को प्राप्त न हो सकता है और न ही गुरु भगत हो सकता है। यानी कथनी निश्चय कोई कल्याण नहीं दे सकता है। साधन से ही सिद्धता प्राप्त होती है। बगैर साधन कोई कामयाबी हासिल नहीं कर सकता है।

बचन 23. गुरु का फर्ज़ है कि शिष्य की कल्याण की खातिर अपना सब कुछ निछावर कर देवे और शिष्य का फर्ज़ है कि गुरु बचन में अपने आपको मिटा देवे। अगर ऐसा प्रेममयी सम्बन्ध होवे तो कल्याणकारी है। इसके उलट जो गुरु अपने दांव में रहता है और शिष्य अपने दांव में, ऐसे निश्चय से कभी भी कल्याण नहीं हो सकती है।

बचन 24. गुरु का फर्ज़ है कि कल्याण की खातिर शिष्य का अधिकार शिष्य को देवे, न कि माया की खातिर शिष्य बनावे। अगर माया के प्रेम की खातिर जो शिष्य बनाता है वह गुरु भी, चेला भी कई जन्म अधम जूनियों को प्राप्त होते हैं।

बचन 25. जो गुरु अधिकारी शिष्य के बगैर परमार्थ का उपदेश देते हैं, या कुंवारी कन्या या छोटे बच्चों को परमार्थ का उपदेश देते हैं, उसका नतीजा गुरुओं की बेइज्जती और धर्म का नाश है। क्योंकि जब तक सही श्रद्धा और समझ न होवे तब तक परमार्थ का उपदेश कल्याण नहीं दे सकता। इसके अलावा स्त्री उपदेश अपने पति के गुरु से, या पति की आज्ञा लेकर पति सहित गुरु से परमार्थ का उपदेश लेवे तो यह दोनों के वास्ते सुखदाई है। अगर पति गुजर गया होवे तो और किसी नज़दीकी के रिश्तेदार को साथ लेकर परमार्थ का उपदेश गुरु से लेवे तो सुखदाई है। इसके उलट अपनी मनमानी करके और बगैर पूरी पहिचान के जो स्त्री किसी गुरु से उपदेश लेती है वह उसके वास्ते सफलता के देने वाला नहीं है, बल्कि अपयशदायक है, और संसारी नीति के बरखिलाफ[1] है। और कुंआरी कन्या

1. खोज

को गुरु धारण करना भी धर्म नीति के विरुद्ध है, और गुरु को कुंवारी कन्या को शिष्य बनाना भी योग्य नहीं है और जगत मर्यादा के प्रतिकूल है। इसका नतीजा धर्म की हानि और पाप का फैलाव है।

बचन 26. जो गुरु स्त्रियों से अपनी आरती करवाते हैं, यह भी धर्म के विरुद्ध है। किसी हालत में भी अकेली स्त्री को नज़दीक न बैठने देवे और ज्यादा अकेली स्त्रियों की संगत में, जिसमें कोई पुरुष न हो, गुरु उपदेश न करे। इन नियमों के विरुद्ध जो गुरु चाल चलते हैं, यानी ज्यादा स्त्रियों को उपदेश करते हैं और अपनी देह की आरती बगैरा करवाते हैं, वे एक दिन कलंक को पावेंगे और गुरु पद को नाश कर देवेंगे। ऐसी उलट धारणा से दुनियां में अधर्म प्रगट हो जावेगा। गुरु का फर्ज़ है कि परमार्थ बुद्धि वाले को परमार्थ का उपदेश करे और स्वार्थ बुद्धि वाले को शुद्ध आचरण का उपदेश देवे, जिससे हर एक जीव को अपनी बुद्धि के मुताबिक धर्म उपदेश सुनकर शांति होवे।

बचन 27. गुरु को ज्यादा उपदेश पुरुषों को देना चाहिये और स्त्रियों को पुरुषों के जरिये हिदायत करवानी चाहिये, या स्त्री पुरुष दोनों को बैठाकर उपदेश करना चाहिये। सार यह है कि खुल्लमखुल्ला स्त्री को उपदेश करना, या याचना किसी वस्तु की करनी गुरु के वास्ते बाइसे[2] कलंक है और धर्म नीति के विरुद्ध है।

बचन 28. जो गुरु जिव्हा की बहुत रसना चाहने वाला है और पहनावे का बहुत शौकीन है, और कामना पूर्ण करने की खातिर बहुरंग के विचित्र उपदेश देता है, और वह उपदेश उसके जीवन में मौजूद नहीं है, ऐसे कपटी गुरु के नज़दीक तक नहीं जाना चाहिये। इसका नतीजा कलंक और क्लेश है।

बचन 29. गुरु पूर्ण रहनी वाला, पूर्ण कहनी वाला, पूर्ण सहनी वाला और दृढ़ आसन वाला होवे तो वह कल्याणकारी है। यानी पूर्ण ज्ञान को वह जानने वाला होवे और जो बचन कहे उस पर पूर्ण अमल करने वाला होवे।

---

1. विरुद्ध 2. कारण

अन्तर बाहिर एक ही भाव वाला होवे। दुःख व सुख में अचल रहने वाला होवे और बैठक जिसकी बहुत होवे और किसी वस्तु की चित्त में कामना जिसको न होवे, वह गुरु धर्म की मर्यादा को कायम करने वाला है और जीवों को कल्याण देने वाला है।

बचन 30. सार निर्णय यह है कि गुरु रहनी वाला अपने उदार आत्मा से शिष्य के कल्याण की खातिर हर वक्त सत्धर्म उपदेश शिष्य को देवे और भली प्रकार करके शिष्य की उन्नति की खातिर जतन करे और चित्त में रंचक भी शिष्य से सेवा का भाव न रखे, यानी दयालु होकर हर वक्त कृपा करे। शिष्य का फर्ज़ है कि अपने ऐसे उपकारी गुरु के बचन में अपने जीवन को मिटा देवे और आज्ञाकारी पद हासिल करे, तब संसार में धर्म का सूरज प्रकाश होता है और सब जीव धर्मवान हो जाते हैं। ऐसी भावना ही कल्याणकारी है। ईश्वर गुरु को गुरुपद का निश्चय देवे और शिष्य को शिष्य का अधिकार बख्शे। सब प्रेमी सत्बुद्धि द्वारा यह विचार निश्चय में धारण करें।

मार्ग–धर्म में गुरु शिष्य सम्बन्ध

मारग धरम का कठिन है, सहजे नहीं नर पाई ।
मत कोई चालो धरम के मारग, यहाँ दखना[1] सीस लगाई ।।

गुरु तो पाया प्रेम आहारी, नित ही प्रेम को खाये ।
अन्न पानी की सेवा करके, शिष गुरु को पतियाये[2] ।।

कह बिद्ध सांझ बने दोनों की, नहीं मोल तोल चुकाये ।
वस्त कहीं ढूंढे कहीं, जतन अकारथ जाये ।।

सीस लिये बिन नहीं गुर पतियाये, कठिन सांझ यह भारी ।
गुरमुख होके रमज़ पछाने, तब लेखा सुखकारी ।।

सन्मुख दर्शन नहीं जन कीजे, पाछे प्रेम लगाये ।
जब खेले तब हार को पावे, मनुआं नित पछताये ।।

समझ सोच के सांझ बनाओ, दोहां धिरां दी मीता ।
लेखा पूरन पूर होवे, तब जीवन हो सुखरीता ।।

सिर सिर बाजी उठके खेलो, ओढ़क[1] जंगल बासा ।
सत्गुरु सेवा नाम की पूजा, कीजे बन्ध खुलासा ।।

गुरमुख जीवन जग में पाओ, सांझ को तोड़ निभाओ ।
'मंगत' कीरत निरमल जग में, लख लख तृपत समाओ ।।

---

1. दक्षिणा 2. प्रसन्न करना 3. अन्त में

आस्तिक व नास्तिकपन का विचार

बचन 1. सत्-सरूप का विश्वासी, अभ्यासी होना आस्तिकपन है। इसके अलावा और कोई साधना करनी नास्तिकपन है।

बचन 2. ग्रहों की पूजा, प्रेत व भूत व पितरों की पूजा, आदर्श के बग़ैर मूर्ति की पूजा नास्तिकपन को प्रगट करती है, यानी ईश्वरीय विश्वास को नाश कर देती है। संशय वहम और भय को प्रगट कर देती है।

बचन 3. जिस पुस्तक में आत्मसरूप यानी ब्रह्म शब्द के बग़ैर संशययुक्त और हालात लिखे हों, वह पुस्तक भी वहम और भ्रम को देने वाली है।

बचन 4. जिस पुस्तक में प्रकृति यानी शरीर और आत्मा का निर्णय नहीं, आत्मा की उन्नति का विचार भी नहीं, इसके अलावा और कई जन्तर, मन्तर लिखे हों, वह पुस्तक भी धर्म को नाश करने वाली है और सत् सरूप से नास्तिक कर देती है।

बचन 5. जिस पुस्तक में ज्ञानी पुरुषों के चरित्र हों और उपदेश हों, वह पुस्तक धर्म को प्रकाश करने वाली है और आस्तिक बनाती है।

बचन 6. जिस धर्मयुक्त पुस्तक का मुतालय[1] किया जावे, विचार और अमल न किया जावे, उससे नास्तिक बुद्धि हो जाती है।

बचन 7. आस्तिक व नास्तिक होना बुद्धि पर मुनहसिर[2] है न कि ज़बानी विचारों से। अगर बुद्धि आत्म-शक्ति को छोड़कर और कई भावों को धारण कर ले, यानी ग्रहों, भूत, प्रेत और कई देवी देवताओं की मोतकिद[3] हो जाये, वह नास्तिक बुद्धि है, यानी हर वक्त भ्रम में गिरफ़्तार रहती है।

बचन 8. शरीर और आत्मा का विचार करना और साधन करनी, आत्म विश्वासी होना, यह आस्तिकपन है। इस निश्चय से देह के विकारों से छूटकर आत्म-स्थिति को प्राप्त होता है।

---

1. अध्ययन 2. निर्भर 3. विश्वासी

बचन 9. आत्म-सम्बन्धी जो विचार होवे वह आस्तिक करने वाला है। मादे यानी जड़ की पूजा या साधना नास्तिकपन को देने वाली है।

बचन 10. आत्मा ही आनन्द है, सत है, सर्व ईश्वर है। घट-घट व्याप रहा है। तीन काल सम सरूप है। इस वास्ते जीवन शक्ति का विश्वासी होना आस्तिकपन है। इसके बग़ैर और ताकतों का मोतकिद होना नास्तिकपन है।

बचन 11. असली गुरु वह ही है जो आत्म विश्वास दिखलावे और आत्म सिद्धि का जतन सिखलावे। असली ज्ञान आत्मा और शरीर का ही है जो सब भ्रम और वहम को नाश करता है। इसके बग़ैर सब भ्रम जाल है।

बचन 12. आत्म विचार सम्बन्धी जो पुस्तक और जो सत्संग होवे और जो साधु महात्मा आत्म विचार, अभ्यास संजुगत होवे वे ही धर्म को प्रकाश करने वाले हैं। इसके अलावा जो जादू, जन्तर, मढ़ी, मसान और अनेक देवी देवताओं का विचार फैलाते हैं, वे सब पाखण्डी, खुदगर्ज़ और धर्म को नाश करने वाले हैं।

बचन 13. जो आत्मा को साखी समझकर सत्कर्म करता है, और सब ईश्वर आज्ञा में देखता है, वह ही आस्तिक है। जो मान मद को धार कर हर वक्त स्वार्थ में मुस्तग़र्क[1] रहता है, और कई तरीका के मन्त्र साधन करता है, वह नास्तिक है और पाखण्डी है।

बचन 14. आत्म तत्त का जानना असली ज्ञान है, और आत्म तत्त से मुनकिर[2] होना असली नास्तिकपन है। जो आत्म उन्नति का जतन करता है वह ही आस्तिक है। जो पुरुषार्थ को छोड़कर देवी देवताओं के आसरे रहता है वह ही नास्तिक और अज्ञानी है।

बचन 15. हर एक महापुरुष की ज़िन्दगी का आदर्श धारण करना आस्तिकपन को देने वाला है। और आदर्श को छोड़कर जो महज़ वजूद[1] की पूजा करता है, वह ही नास्तिक है और माया के चक्र से छूट नहीं सकता।

1. लीन 2. अविश्वासी

बचन 16. आत्मपूजा, आत्मज्ञान, आत्म ध्यान को धारण करना असली आस्तिकपन है। इसके अलावा और धारणा करनी अन्धविश्वास है और मन्द गति के देने वाला है।

1. शरीर

तीर्थ यात्रा सिद्धान्त

बचन 1. तीर्थ वह ही जगह होती है जिस जगह कोई ईश्वर का प्यारा पैदा हुआ हो, या रिहाइश की हो, या प्राणों का त्याग किया हो, या जिस जगह धर्मयुद्ध या धर्म की मर्यादा स्थापित की हो, या ईश्वर का तप किया हो।

बचन 2. तीर्थों पर जाने से सिर्फ इन हालात के मुताबिक विचार करना, गुज़िश्ता[1] ज़माने और गुज़रे हुए बुजुर्गों की ज़िन्दगी से कुछ सबक हासिल करना है।

बचन 3. इन हालातों के बग़ैर जो जाते हैं वे महज़ वक्त और दौलत को बरबाद करते हैं। तीर्थों के स्नान से कोई फ़ायदा नहीं जब तक ऊपर के हालात के मुताबिक विचार न धारण किया जावे।

बचन 4. सबसे बड़ा तीर्थ आत्म सरूप है जो घट घट व्याप रहा है। उसके जानने से सब जलन नाश हो जाती है।

बचन 5. तीर्थों पर दान करने से कोई फायदा नहीं, मुताबिक साधारण जगह के। जिस जगह दान सेवा आदि शुभ गुण बरतते हैं वह जगह ही तीर्थ है।

बचन 6. तीर्थों पर पिण्ड भरवाना और गति करवाना सब मन्द निश्चय है। पिण्ड भराने से गति नहीं हो सकती है। अपनी करनी की हर एक जीव सज़ा पाता है। यह ईश्वर की माया का कानून है।

बचन 7. जो चीज़ देह और मन को ठंडक देने वाली है वह तीर्थ ही समझें। मसलन[2] सत्संग, सत् विचार, सत् सेवा, सत् सिमरण, गुरु उपदेश और तपोभूमि का स्थान और विद्या के निदिध्यास की जगह वग़ैरह तीर्थ रूप जानने चाहिए।

बचन 8. प्रचलित तीर्थ पर जाने की कोई खास जरूरत नहीं है। सत्कर्म और सत्धर्म को धारण करना ही तीर्थ है।

---

1. बीता हुआ 2. जैसे कि

बचन 9. तीर्थ यात्रा का इतना फल नहीं जितना कि अपने मन में सत्कर्म, सत्विश्वास और सत्सिमरण को धारण किया जावे।

बचन 10. जितनी तीर्थ यात्रा की प्रभुता बताई गई है वह सही धर्म के नाशक और धन के लूटने वाले लोगों का प्रचार है।

बचन 11. जब तक ईश्वर विश्वास नहीं तब तक कभी भी सत्कर्म और उपकार को धारण नहीं कर सकता। जब तक कर्म की शुद्धि नहीं कभी भी जीव को शाँति नहीं ख़्वाहे[1] पद पद पर तीर्थों की प्रदक्षिणा करे।

बचन 12. मूल तीर्थ ईश्वर विश्वास है जो आवागवन रूपी घोर जाल से छुड़ाता है।

बचन 13. अपनी बुद्धि को सत्–विचार करके निर्मल करें तो तुमको ज़र्रा–ज़र्रा तीर्थ रूप दिखाई देवेगा।

बचन 14. धरती की सीनरी और जल का प्रवाह तीर्थ नहीं हो सकता जब तक कि सर्वशक्तिमान ईश्वर की कथा का वहाँ प्रचार न होवे।

बचन 15. सबसे ज़्यादा पाखंड, अत्याचार, धर्म की नाश इस वक्त तीर्थ स्थानों में ज़ोर पकड़ रही है। बताओ शाँति कहाँ है ?

बचन 16. लाज़मी यह है कि हर जगह को तीर्थ बना सकते हो अपने नेक विचार और उपकार करके। तीर्थों की गुलामी दु:ख देने वाली है। गुलामी अपने नेक विचार और उपकार की चाहिये जो तीर्थों का मख़ज़न[2] है।

बचन 17. ईश्वर विश्वास को धारण करें। सत्कर्म और लोक–सेवा का साधन करें। तमाम दुनियाँ के तीर्थ तुम्हारे चरणों को नमस्कार करेंगे। तू ही श्रेष्ठ आचार को धारण करके अखण्ड तीर्थ रूप हो जायेगा।

बचन 18. माँ, बाप, बुजुर्गों तथा हमसाया[1] की प्रेम करके सेवा करनी बड़ी तीर्थ यात्रा है।

---

1. चाहे 2. भण्डार

दान का सिद्धान्त

बचन 1. जो फर्ज़ करके दान नहीं करता, गर्ज़ को मद्देनज़र[1] रखकर दान करता है, वह निखिद[2] दान है।

बचन 2. जो पब्लिक उन्नति की खातिर दान नहीं करता और देवी–देवताओं को खुश करने की खातिर लक्ष्मी सर्फ़[3] करता है वह भी निचले दर्जे का दान है।

बचन 3. जो नुमायश को मद्देनज़र रखकर दान करता है वह भी अदना[4] दान है।

बचन 4. यथार्थ यह ही है कि फ़र्ज़ करके यथाशक्ति योग्य सेवा करनी। सबसे बड़ा दान यह है :

(1) विद्या के प्रचार में ख़र्च,

(2) रोग निवृत्ति की ख़ातिर ख़र्च,

(3) देश और धर्म की जागृति की ख़ातिर ख़र्च,

(4) श्रेष्ठ आचार, साधु और विद्वानों के जीवन की ख़ातिर ख़र्च,

(5) ग़रीबों और यतीमों की उन्नति की ख़ातिर ख़र्च,

(6) सत्संग और समाज के एकत्र करने का ख़र्च,

(7) अन्न और वस्त्र का हर एक नदारद[5] की ख़ातिर ख़र्च,

(8) सरायें, तालाब, कुएँ, बावलियाँ, सड़कें, पुल इनके तामीर[6] करने का खर्च, सब दान उच्च कोटि का है। इससे बड़ी कल्याणता प्राप्त होती है।

---

1. दृष्टि में 2. घटिया 3. खर्च 4. निम्न 5. लाचार 6. निर्माण

बचन 5. दूसरे दर्जे का दान अपने कुन्बे की उन्नति की ख़ातिर ख़र्च, अपनी ग़र्ज की ख़ातिर राजा, हाकिम और भाटों की धन से सेवा करनी। देवी-देवताओं और तीर्थों के परसने का ख़र्च निचले दर्जे का दान है। पूर्ण सिद्धान्त यह है, जो ग़र्ज़ करके सेवा की जावे वह अदना[1] है जो फर्ज़ करके सेवा की जावे वह आला[2] है, थोड़ी मिकदार[3] की ख्वाहे बड़ी मिकदार की।

बचन 6. ग़र्ज़ वाली सेवा से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती ख़्वाहे कितनी ही कोशिश करे। फर्ज़ को जानकर जो सेवा करता है वह आत्म उन्नति को प्राप्त होता है। धन, मन और तन की यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनों ज़न्जीरों से छूटने की ख़ातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है। सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लागर्ज़[4] भाव को मद्देनज़र[5] रखकर त्याग करता है वह इन कैदों से छूट जाता है। जो ग़र्ज़ करके त्याग करता है वह बार-बार इन ज़न्जीरों में कैद होता है।

बचन 7. **धन का त्याग :-** ईश्वर निमित्त और लोक-सेवा में जायज़ है। गर्व को त्यागकर जो दान किया जावे वह निजात[6] के देने वाला है।

तन का त्याग :- परोपकार कर्म और सच्ची ईश्वर परस्तिश में शरीर को सर्फ[7] करना। देह अभिमान से निजात मिलती है।

मन का त्याग :- तमाम वासनाओं को ईश्वर निमित्त त्याग करना, होना और न होना उसकी आज्ञा में देखना, दृढ़ निश्चय से ईश्वर सिमरण करना। यह मन का त्याग और परम तप है। इससे निहकर्म रूप परम-आनन्द पार-ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, जो असली मुकाम[8] है।

---

1. निकृष्ट 2. श्रेष्ठ 3. मात्रा 4. निष्काम 5. ध्यान में 6. मुक्ति
7. खर्च 8. मंज़िल

बचन 8. यथार्थ निर्णय यह है तन, धन और मन को निष्काम भाव से दूसरे के निमित्त जो सर्फ़ करता है वह ही परम दानी है और परम भगत है। ऐसे निष्काम भाव और पर-उपकार को साधन करते करते कर्म चक्र से छूटकर निहकर्म सरूप में लीन हो जाता है। फिर सब वासना खत्म हो जाती है, पूर्ण ब्रह्म रूप हो जाता है। दान रूपी त्याग-मार्ग को समझकर हर घड़ी, हर लमह इसके परायण होना चाहिए और अपने जीवन का उद्धार करना चाहिये। यह ही समता-मार्ग का निर्णय है।

मूर्ति पूजा का सिद्धान्त

बचन 1. हर एक जीव माया की गिरफ्तारी में बुत परस्त[1] ही है। यानी नाम, रूप और गुण कर्म के भोगने में हर वक्त मुस्तग़र्क[2] रहता है। किसी हालत में भी तसव्वरे फ़ानी[3] से आज़ाद नहीं होता।

बचन 2. परस्तिश[4] करना मन का काम है। अगर मन असत् नाम रूप के भोग में कैद है तो वह वहदत-परस्त[5] कैसे हो सकता है।

बचन 3. जब तक ख्वाहिशात नफ़सानी[6] मौजूद हैं, तब तक बुत-परस्त ही बना रहता है। जब तक अपनी देह के मद में गिरफ्तार है तब तक बुत-परस्त ही है।

बचन 4. जब तक कर्म का भोगता है तब तक कर्म फल, जो स्थूल विकार है, उसकी कैद में है।

बचन 5. बुत-परस्ती से वहदत-परस्ती की तरफ मन को ले जाना है। जब तक मन वृत्ति के आधीन है कभी भी वहदत-परस्त नहीं हो सकता।

बचन 6. भक्ति-मार्ग में बुत-परस्ती यानी मूर्ति की पूजा सिर्फ इतना ही कल्याण दे सकती है कि सत्पुरुषों के गुण और कर्म का आदर्श उनके सरूप से लिया जावे।

बचन 7. आदर्श के बग़ैर जो मूर्ति पूजा है वह सख्त जहालत[7] है। यानी आगे ही जीव जड़-प्रकृति की कैद में है, बाकी उपासना भी अगर जड़ सरूप की करनी शुरू की तो सब पुरुषार्थ दुःखदाई हो गया, यानी अन्धकार दर अन्धकार बढ़ता गया।

1.मूर्ति पूजक 2.लीन 3.संसार की नश्वरता 4.पूजा 5. ईश्वर परायण
6. इन्द्रिय भोगों की इच्छा 7. अज्ञानता

बचन 8. माया की गिरफ़्तारी में जीव स्थूल की कैद में आ गया। इस कैद से निजात की खातिर उपासना या भगति है। इस वास्ते जिन पुरुषों ने इस प्रकृति से निजात पाई है उनके आदर्श को धारण करके ऐसा ही जतन करना चाहिये जिससे स्थूल यानी मादे की परस्तिश से आज़ाद होकर निराकार-सरूप में प्राप्त हो जावें।

बचन 9. सत्पुरुषों के सरूप को देखकर उनका आदर्श धारण करना लाज़मी है। अगर उनका आदर्श धारण न किया जावे, महज़ नमस्कार, आरती और चरणामृत से ही मुक्ति या आनन्द जो चाहते हैं वे अन्धकार-परस्ती कर रहे हैं। बजाय शान्ति के अशान्ति को प्राप्त होवेंगे।

बचन 10. पीर, पैग़म्बर, गुरु, अवतार सबका वजूद पाँच भूत का ही है, जैसे हर एक जीव की प्रकृति की बनावट है।

बचन 11. सिर्फ उन सत्पुरुषों के अन्दर जो ज्ञान शक्ति है, यानी आत्म-स्थिति है, वह ही तेज पूजने योग है-यानी निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निहचलता आदि दिव्य गुण जो कि ईश्वर सम्बन्धी हैं।

बचन 12. सत्पुरुष अपनी प्रकृति को जीतकर सत्सरूप में स्थित हुए हैं यानी स्थूल विकार से मुक्त होकर निराकार सरूप में लीन हुए हैं। जब तक इस आदर्श को न धारण किया जावे तब तक उनकी देह की पूजा करनी सख्त जहालत है। यानी उन्होंने खुद अपनी देह का जीवन में ही त्याग किया है, दूसरे उनकी देह को पूजकर क्या हासिल कर सकते हैं-यानी सब अकार्थ है।

बचन 13. सत्पुरुषों का ज्ञान सरूप पूजने योग है न कि महज़[1] स्थूल आकार। स्थूल आकार की परस्तिश मुक्ति नहीं दे सकती जब तक उनके सही आदर्श को धारण न किया जावे।

1. केवल

बचन 14. सत्पुरुष अनेक सरूपों में होते आये हैं, यानी उनकी प्रकृति का नाम, रूप गुण और कर्म न्यारा न्यारा होता आया है, मगर उनके अन्दर जो ज्ञान सरूप है वह एक ही धार का है।

बचन 15. इस वास्ते सत्पुरुषों का ज्ञान-सरूप जो उनका सच्चा जीवन था, वह पूजने योग्य है।

बचन 16. जिस तरीके से उन महाशक्तियों ने निजात हासिल की है, यानी स्थूल विकार पर काबू पाया है, उस तरीका को धारण करना-यह उनकी सही पूजा है और कल्याण के देने वाली है।

बचन 17. सत्पुरुषों का आदर्श धारण करने से अन्तःकरण में सत्तता प्रगट होती है, और अज्ञान यानी स्थूल की कैद से त्याग हासिल होता है।

बचन 18. जिस भी बुजुर्ग का चित्त में विश्वास होवे, उस बुजुर्ग के अन्तर ज्ञान को धारण करना, यह उसकी असली पूजा है। यानी जिस तरह से वह माया से अतीत होकर ब्रह्म-सरूप में स्थित हुआ है उसी तरह से उनका ज्ञान ब्रह्म-स्थिति देता है। यानी नाम, रूप, गुण और कर्म आदि प्रकृति विकार से मुक्ति पाता है।

बचन 19. मूर्ति पूजा यानी स्थूल विश्वास कभी भी शान्ति नहीं दे सकता जब तक उसके अन्तर की ज्ञानगति का विश्वास न होवे।

बचन 20. जो भी देह-धारी संसार में आया है, ख़्वाहे शुद्ध माया में, ख़्वाहे मलीन माया में, वह गिरफ़्तारी में है। सत् सरूप यानी जीवन शक्ति, जो चिन्ह, वर्ण, आकार से न्यारी है, उसको प्राप्त होकर के ही उसने मुक्ति आनंद को हासिल किया।

बचन 21. उस आनन्द को जो प्राप्त हुए हैं वे ही पुरुष आदर्श योग हैं। उनका आदर्श उन जैसा ज्ञान देकर उसी आनन्द में लीन कर लेता है। इस वास्ते उनका आदर्श पूजने योग्य है, न कि उनकी स्थूल प्रकृति की पूजा।

बचन 22. मूर्ति पूजा वह ही सुखदाई है जिससे उस मूर्ति का आदर्श धारण करके उन जैसा पुरुषार्थ प्राप्त करें। इसके बग़ैर जो कामना रखकर बहुरंग की पूजा करता है वह बन्धन दर बन्धन को प्राप्त होता है; यानी कभी भी सच्ची खुशी को प्राप्त नहीं होता।

बचन 23. अपना पुरुषार्थ ही सब कामना पूर्ण करता है। इस वास्ते सत्पुरुषों के बचनों के अनुकूल पुरुषार्थ धारण करके इस संसार की बाज़ी को जीत लेना चाहिए।

बचन 24. जो सत्पुरुषों का आदर्श धारण नहीं करता और उनकी महज़ देह की पूजा करता है, वह पुरुषार्थ हीन होकर मार्ग- धर्म से पतित हो जाता है और अन्त को घोर नरक में निवास करता है।

बचन 25. बड़ी-से-बड़ी कोशिश से सत्पुरुषों का ज्ञान-सरूप अनुभव करना चाहिए जिससे अपने अन्तर में वह ज्ञानसरूप प्रगट होकर जीव को अखण्ड शान्ति देवे।

बचन 26. स्थूल की कैद यानी बुत-परस्ती से कोई भी छूट नहीं सकता जब तक वह ख़्वाहिश का गुलाम है। इसलिए इस झूठ अन्धकार से छूटने के वास्ते केवल ज्ञान-मार्ग है। यानी निराकार शब्द-सरूप का विश्वासी और अभ्यासी होना। यह ही ज्ञान-सरूप सब गुरु, पीर, अवतारों का साधन है। इसको धारण करके वह अखण्ड शान्ति को प्राप्त हुए। इस वास्ते उन बुजुर्गों के आदर्श अनुकूल अपना जीवन बनाकर इस माया की कैद से मुक्त होना चाहिये। यह पूजा असली है, बाकी पाखण्ड अन्धकार परस्ती है। शुद्ध चित्त से विचार करना चाहिये।

देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त

बचन 1. पूजा के मानी यह हैं कि किसी की प्रभुता की आराधना करना।

बचन 2. जिसकी पूजा से कामना और कल्पना पैदा होवे वह नाक़िस[1] पूजा है।

बचन 3. जिसकी पूजा से वहम, भय और लोभ पैदा होवे वह भी पूजा नाक़िस है।

बचन 4. जिसकी पूजा से मान, छल और चतुराई पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 5. जिसकी पूजा से ईर्खा, बाद और ममता पैदा होवे, वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 6. जिसकी पूजा से शोक, गुस्सा और गुमान पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 7. जिसकी पूजा से स्वार्थ और मोह पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 8. जिसकी पूजा से द्वन्द–भ्रम बढ़ता है वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 9. जिस पूजा से कर्म–वासना फैलती है वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 10. जो पूजा मुकर्रर[2] स्थान के बग़ैर नहीं हो सकती वह भी नाक़िस पूजा है।

---

1. निकृष्ट या निचले दर्जे की 2. निश्चित

बचन 11. जिसकी पूजा से लोक-परलोक का भ्रम बना रहता है वह भी नाक़िस है।

बचन 12. जिस पूजा से मन, बुद्धि और कर्म में तबदीली बनी रहती है-यानी एक भाव नहीं होता, वह पूजा भी नाक़िस है।

बचन 13. देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा इन विकारों से निजात यानी मुक्ति नहीं दे सकती क्योंकि इन तुच्छ पूजाओं से तृष्णा रूपी विकार नाश नहीं होता। जीव की कल्याण की ख़ातिर पूजा दरकार[1] है। जिस पूजा से बजाय कल्याण के इतने विकार पैदा हो जायें वह पूजा नहीं बल्कि अन्धकार परस्ती है।

बचन 14. जो चीज़ खुद मजबूर है उसकी पूजा सच्ची शान्ति नहीं दे सकती है।

बचन 15. जो चीज़ खुद बनी और बिगड़ी है उसकी पूजा परमानन्द नहीं दे सकती।

बचन 16. जो चीज़ अपने स्वभाव की मुहताज है उसकी पूजा आनन्द के देने वाली नहीं है।

बचन 17. अनेक तरीका की भावना रखकर अनेक देवी-देवताओं, ग्रहों की पूजा करनी सख़्त जहालत[2] और विकार के देने वाली है।

बचन 18. प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदलने वाली नहीं है। इस वास्ते कर्मों के अनुसार दुःख-सुख ज़रूरी मिलता है। कोई रखया[3] नहीं कर सकता। इस वास्ते ईश्वर शक्ति का भरोसा छोड़कर इन वहमों का भरोसा रखना कभी भी सुखदाई नहीं हो सकता।

1. ज़रूरत 2. अज्ञानता 3. रक्षा

बचन 19. अपने कर्मों अनुसार जीव आवागवन में फिरता है। कोई देवी-देवता और ग्रह इस चक्र से छुड़ा नहीं सकता। इस वास्ते इनकी परस्तिश सब दु:खदाई और वहम के देने वाली है।

बचन 20. लाख पूजा की जावे, ग्रहों का असर मिट नहीं सकता क्योंकि वह भी मजबूरी में बिचर रहे हैं। जो चीज़ स्वभाव रखती है वह कभी भी नहीं छोड़ती, क्योंकि उसकी ज़िन्दगी वह ही है। मसलन[1] आग का काम जलाना, पानी का काम बहाना, वायु का काम सुखाना, सूरज का तपिश देना। बताओ, इनकी पूजा करने से यह अपना स्वभाव छोड़ देवेंगे ? नहीं ! अपना स्वभाव कोई चीज़ नहीं छोड़ती, जब तक वह उस सरूप से मिट न जाये। ऐसे ही सब निज़ाम[2] को समझें।

बचन 21. कर्म चक्र से जीव को सज़ा और जज़ा[3] मिलती है। देवी-देवता क्या कर सकते हैं ? इस वास्ते इनकी पूजा भी गिरफ्तारी, अधीरता और भ्रम को बढ़ाने वाली है।

बचन 22. देवी-देवताओं की पूजा उनके गुण और कर्म का ग्रहण करना है-कि जिस शक्ति को धारण करके वे देवी और देवता बने उस शक्ति का विचार करना उनके आदर्श करके, ऐसी पूजा धर्म को प्रगट करती है। जैसे जैसे सत्कर्म और उपकार को उन हस्तियों ने धारण किया है उसी के मुताबिक अपना जीवन बनाना, यह उनकी सच्ची पूजा है। कर्म गति ही देवता बनाती है। कर्म गति ही राक्षस बनाती है। इस वास्ते कर्मों का सुधार ही असली पूजा है। देवी-देवताओं का मार्ग यह ही है।

बचन 23. जो अनेक प्रकार की कामना रखकर देवी-देवताओं को पूजते हैं, उनका गुण और कर्म धारण नहीं करते, वह सब निहफल[4] और दु:खदाई है।

बचन 24. अपने कर्मों के अनुसार ही मन के मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं, कोई देवी-देवता उनको बदल नहीं सकता।

---

1. जैसे कि 2. प्रकृति चक्र, व्यवस्था 3. शुभ कर्मफल 4. निष्फल

बचन 25. मौत, जन्म, दु:ख और सुख सब कर्मों का फल है। कोई ताकत इनसे छुड़ा नहीं सकती। जरूरी भोग भोगना पड़ता है। गुरु, पीर, अवतार, ज्ञानी, नबी और पैगम्बर सबको अपनी करनी का फल मिलता है। यह ईश्वर की माया का खेल है।

बचन 26. इन सब बातों का विचार करके अपनी करनी को सुधारना चाहिये, जो सब तकलीफों से छुड़ाने वाली है।

बचन 27. जो कर्म मन करके, बुद्धि करके, इन्द्रियों करके किये जाते हैं उनका फल ज़रूरी भोगना पड़ता है। कोई छुड़ाने वाला नहीं, ख़्वाहे तन-मन देवी-देवताओं के अर्पण क्यों न किया जावे।

बचन 28. देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा ईश्वरी-विश्वास को और सत्पुरुषार्थ को नाश करने वाली है। इस वास्ते सब पापों की बुन्याद यह ही पूजा है, अगर उनकी ज़िन्दगी का गुण कर्म न विचार किया जावे।

बचन 29. जो देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करने वाले हैं वे कभी भी निष्काम भावना और पर उपकार को धारण नहीं कर सकते। इस वास्ते हर वक्त वहम और भय में गिरफ़्तार रहते हैं और अपना अमोलक जन्म झूटे लालच में गँवा देते हैं।

बचन 30. सत्कर्म ही देवता बनाने वाला है और मलीन कर्म ही राक्षस बनाने वाला है। इस वास्ते हर घड़ी हर लमह सत्कर्म को धारण करना चाहिये।

बचन 31. जो पूजा ग़र्ज़ को धारण करके की जाती है वह सब धर्म के विरुद्ध है और आवागवन को देने वाली है।

बचन 32. इस दुस्तर संसार से सिवाय ईश्वरी-ज्ञान और सही ईश्वर की पूजा के कभी भी निजात नहीं मिल सकती।

बचन 33. जो सर्व शक्तिमान घट-घट व्याप रहा है, देवी-देवताओं और ग्रहों को भी प्रकाशने वाला है, उस परिपूर्ण ईश्वर को छोड़कर नाशवान चीज़ का पूजन करना सब व्यर्थ और भ्रम चक्र के देने वाला है।

बचन 34. अपने साखी-भूत ईश्वर का पूजन कर्म जंजाल से छुड़ाने वाला है।

बचन 35. कर्म जो किये हैं उनका फल ज़रूरी भोगना पड़ता है, मगर ईश्वर की उपासना से उन कर्मों के फल की आसक्ता से मुक्त हो जाता है; यानी निर्द्वन्द अवस्था को प्राप्त हो जाता है। वह ही स्थान असली खुशी का है।

बचन 36. इस माया के अति गुबार से छूटने के वास्ते एक ईश्वर की उपासना लाज़मी[1] है।

बचन 37. तृष्णा रूपी अधिक रोग से छूटने के वास्ते एक अखण्ड अबिनाशी-रूप की उपासना लाज़मी है।

बचन 38. कर्मों के फल भोगने में धीरजवान रहने की खातिर एक ईश्वर की पूजा लाज़मी है।

बचन 39. निर्भय, निर्वास होने की ख़ातिर ईश्वर की उपासना लाज़मी है।

बचन 40. तमाम दुनियाँ के ऐश्वर्य ईश्वर पूजा से प्राप्त होते हैं, जो सर्व शक्तिमान है। इस वास्ते उसकी उपासना लाज़मी है।

बचन 41. ईश्वर को छोड़कर देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी बड़ी जहालत और नास्तिकपन है।

---

1. आवश्यक

बचन 42. सबसे बड़ी ताकत अपना मन है, जो ईश्वर के सरूप में स्थित हो जावे तो वह खुद देवता है।

बचन 43. सत्कर्म को धारण करने वाला, ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखने वाला ही देवता है।

बचन 44. सबसे निकट, तीन काल प्राप्त, घट घट की जाननहार, शुद्ध सरूप, एकरस रहने वाला, अपने आप में सब ताकत रखने वाला, सब संसार जिसके प्रकाश से प्रकाश हो रहा है उसको छोड़कर नाश होने वाले और कामनायुक्त शक्तियों की पूजा करनी सब अकार्थ और अन्धकार है।

बचन 45. जिसकी पूजा देवी-देवते करते आये हैं उसी ईश्वर की पूजा धारण करनी लाज़मी है।

बचन 46. ईश्वर एक है, देवी-देवते अनेक हैं। एक को छोड़कर जो अनेक की पूजा करता है वह किस गति को हासिल कर सकता है ? यानी संशय शोक के बग़ैर कुछ भी हासिल नहीं कर सकता।

बचन 47. इस संसार में विचार को शुद्ध करके, जिस तरीका से देवी-देवताओं ने बुजुर्गी हासिल की है उस तरीका को धारण करके परम पिता परमेश्वर की पूजा करनी चाहिये। यह ही असली पूजा है।

बचन 48. हर घड़ी दुःख में या सुख में ईश्वर की पूजा और उसकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। ईश्वर की भगति से सब देवी-देवते अधीन हो जाते हैं। इस वास्ते परम-शक्ति नारायण शब्द-सरूप, सर्वव्यापक का सिमरण ध्यान, कीर्तन, उपासना विचार करना चाहिए। उसी के निमित्त दान करना चाहिए। यह ही असली पूजा है और कल्याण का मार्ग है।

बचन 49. ईश्वर की महिमा के बग़ैर किसी शक्ति का निश्चय धारण नहीं करना चाहिए। देवी-देवताओं के अन्दर भी ईश्वर का चमत्कार है। ईश्वर ही पूजने योग और सर्व सुखदाता है। ईश्वर-विश्वास, ईश्वर-उपासना से जीव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

बचन 50. अवतार, सिद्ध, ऋखीशर, गुरु, पीर, नबी ,रसूल सब उस परम शक्ति को सिमरते आए हैं और लोगों को भी उसकी महिमा का उपदेश देते आए हैं। मगर बाद में फरेबी लोगों ने ईश्वरी पूजा और महिमा को गुप्त करके ईश्वर के पूजने वालों की परस्तिश करानी शुरू कर दी जिससे उनकी पेट-पूजा और ज़रूरयाते नफ़सानी[1] पूर्ण होने लगीं।

बचन 51. एक जीवन सरूप सर्व-प्रकाशक शक्ति परमात्मा को छोड़कर अनेक देवी-देवताओं की पूजा ने अति खुदग़र्जी, ईर्खा, छल को प्रगट कर दिया है जिससे सब जीव अति क्लेशवन्त हो रहे हैं।

बचन 52. अपनी सही अक्ल से, सही कोशिश से, सही विचार से, एक ईश्वर का विश्वास होना चाहिये। उसी का सिमरण ध्यान करना चाहिये। सब दुनियाँ में उसी का प्रकाश देखना चाहिए। ऐसी धारणा ही असली पूजा है और आनन्द के देने वाली है और देवी-देवता बनाने वाली है। हर वक्त ईश्वर विश्वास और लोक सेवा को धारण करना चाहिये। यह ही परम धर्म, परम पूजा, परम योग और परम सिद्धि है। इसके सिवा सब छल और कपट है। शुद्ध बुद्धि करके विचार करना चाहिए।

बचन 53. जो ईश्वर को छोड़कर देवी-देवताओं को बलि और भेंट देता है वह खुद-गर्ज़ आत्मघाती है। यानी देवी-देवता न कोई बलि लेता है और न ही बलि लेकर कल्याण दे सकता है। यह रिवाज अन्ध-बुद्धि वालों ने जारी किया है, अपनी पेट-पूजा का ज़रिया बनाया है। ईश्वर विश्वास और लोक सेवा ही असली कल्याण का मार्ग है। इसी रास्ते पर चलकर देवी-देवताओं की पदवी को हासिल कर सकता है।

---

1. इन्द्रिय भोग

बचन 54. जो देवी-देवताओं के नाम पर माँस, मदिरा और कई तरीकों के चढ़ावे देता है या लेता है, वे दोनों पाखण्डी असली धर्म को नाश करने वाले हैं।

बचन 55. मानुष के वास्ते ईश्वर-पूजा और लोक-सेवा असली धर्म का मार्ग है। इसके अलावा जो देवी-देवताओं पर बलियाँ चढ़ाते हैं वे मार्ग से पतित होकर कई जन्म अधम जूनियों को प्राप्त होकर दुःख पाते हैं।

बचन 56. समता ही आदर्श देवी-देवताओं का है। समता ही ईश्वरी चमत्कार है; इस वास्ते देवी-देवताओं का जीवन विचार करके समता प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए, जो नित्यप्रकाश आनन्द-स्वरूप है। यह ही साधन असली धर्म है।

(क) भूत प्रेत व पितर का सिद्धान्त

बचन 1. संसार में हर एक चीज़ का वजूद[1] दो ताकतों से बना है, यानी चेतन और जड़ यानी प्रकृति। चेतन शुद्ध सरूप नित दायम कायम और एकरस है, अनन्त है, आगाज़, इख़्ताम[2] के अमल से परे है। उसी ताकत को असली संसार का मूल कहते हैं। तीन काल सत्य है।

बचन 2. प्रकृति यानी फुरना शक्ति–इससे कई अनासर[3] पैदा होकर आपस में तबदील होते रहते हैं। यानी हर एक आग़ाज और इख़्ताम के अमल में मसरूफ़[4] रहते हैं। इन ही तत्तों की तबदीली का नाम पैदाइश, मौत व रंग-रंग की दुनियाँ है।

बचन 3. प्रकृति की गिरफ़्तारी में जो चेतन भासता है, उसी का नाम जीव है–यानी तत्तों की भुगता शक्ति। जीव का सरूप वास्तव में कोई नहीं है। वासना से जैसे-जैसे घट की गिरफ़्तारी में आता है उसी प्रकृति का अभिमानी होकर अपना नाम मान लेता है। इसी का नाम अज्ञानता है।

बचन 4. प्रकृति हमेशा तबदील होती रहती है। जिस वक्त बेहद तबदीली को प्राप्त होती है उसी का नाम मौत है। पैदा होना और मरना प्रकृति की तबदीली का नाम है। प्रकृति का सरूप जीव भ्रान्त है, यानी जीव की कल्पना।

बचन 5. जिस वक्त जीव एक शरीर छोड़ता है, अपनी वासना के मुताबिक दूसरे वजूद[१] को रचता है, यानी धारण करता है। अपनी अज्ञानता ही उसको दूसरे सरूप का अभिमानी बनाती है। इसी तरह वासना की कैद में आकर रंग रंग की प्रकृति को धारण करता है, यानी प्रगट करता है।

---

1. शरीर, स्वरूप 2. जन्म और मृत्यु 3. भौतिक तत्व 4. व्यस्त

बचन 6. जो नाम शरीर सम्बन्धी है वह शरीर के साथ ही नाश हो जाता है। बाकी जीव का वास्तव में कोई नाम नहीं है। इस वास्ते भूत प्रेत व पितर का जो वजूद माना गया है वह सब वहम और भ्रम मात्र है।

बचन 7. जीव अपनी कल्पना के अनुसार जिस नये सरूप को धारण करता है उसी नाम रूप का वह अभिमानी है। पिछले नाम रूप का उसको कोई ज्ञान नहीं है और न ही उसकी गिरफ्तारी में है।

बचन 8. जैसे इधर मानुष देह को छोड़कर अपनी मलीन वासना की गिरफ़्तारी से पशु जूनी को प्राप्त होता है, उस वक्त उसे पशु जूनी का मोह और ज्ञान है। पिछले मानुष जन्म के स्वभाव और नाम रूप को अनुभव नहीं कर सकता।

बचन 9. भूत, प्रेत व पितर का कोई सरूप नहीं है। केवल मन का भ्रम है। जीव अपनी वासना अनुसार एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता है। जिस वजूद में जाता है उसका वह ही नाम हो जाता है। दायमी[1] उसका नाम कोई नहीं है, जैसी-जैसी तबदीली में आया वैसा ही नाम रूप कल्पना को धारण किया। इसी चक्र को आवागवन कहते हैं।

बचन 10. जिस वक्त माया यानी प्रकृति को असत् मानता है और सत्सरूप अपनी सत्ता मात्र को पहिचान लेता है, उस वक्त यह तबदीली का अमल यानी पैदाइश और मौत की कैद से छूटकर अपने सरूप में लीन हो जाता है। जैसे बर्फ पिघल कर पानी हो जाती है, भूखन[2] पिघलकर स्वर्ण हो जाता है, घट नाश होकर माटी रूप हो जाता है। यह ही गति इस जीव की है। जिस वक्त अहंकार यानी कारण पैदाइश नाश हो जाता है उस वक्त वह नित सरूप में स्थित हो जाता है। इसी का नाम मोक्ष है।

बचन 11. फर्ज़ किया[3] प्रेत, पितर का सरूप अगर हो भी तो भी जीव की अपनी कल्पना अनुसार है। उसको उस हालत से छुड़ाने वाला कोई नहीं है जब

1. स्थायी 2. भूषण 3. मान लिया

तक कि वह अपने कर्मों का फल भोग न ले। इस वास्ते जो गति कराने का हक रखता है वह महज़ पाखण्ड है। यानी जीव को अपनी करनी की सज़ा जरूर मिलती है, कोई गति नहीं दे सकता।

बचन 12. बुद्धि, मन, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आठ तत्तों से स्थूल शरीर यानी कालिब बनता है। यह तत्त जीव की कल्पना है। इसको प्रकृति कहते हैं। जो देह को धारण करता है, इन आठ तत्तों को ही कल्पकर धारण करता है। जब तक यह आठ तत्त आपस में न मिलें तब तक पूर्ण सरूप की शक्ल में नहीं आ सकता।

बचन 13. चूँकि भूत, प्रेत और पितरों का कोई सरूप नहीं है इस वास्ते महज़ कल्पना है। प्रकृति में इनकी असलियत नहीं मिलती है। क्योंकि प्रकृति आठ तत्तों से मिली हुई है और स्थूल रूप में भासती है, और जीव का वास्तव रूप कोई नहीं है, इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर पाप कर्म का भय है, वजूद कोई नहीं है। सार विचार यह है कि चार प्रकार की कुल दुनियाँ की पैदाइश है यानी जेरज, अण्डज, स्वेदज, अद्भुज। इसके सिवा और कोई वजूद मानना तोहमात[1] परस्ती ही है।

बचन 14. जो अति दुराचारी है वह ही इन नामों से पुकारा जाता है और नीच जूनी को प्राप्त होकर नीच कर्म करता है। वह ही मलीन भाव वाला एक किस्म का प्रेत है। भूत प्रेत व पितर एक नीच जूनी का आदर्श है और अहंकार है। वास्तविक कोई सरूप नहीं है।

बचन 15. हर वक्त एक ईश्वर का विश्वास रखना चाहिये। अपने कर्मों को श्रेष्ठ करना चाहिए। ईश्वर के ही नाम दान देना चाहिये। भूत प्रेत व पितर की कल्पना को दूर करना चाहिये। जीव अपनी करनी के अनुकूल कई जूनियों को प्राप्त होता है मगर वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भी होवे तो भी दृश्य में आ सकता है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर जो नीच जूनी का महज़ कल्पित सरूप है, उसका

1. अंधकार

एहसास करना या पूजा करनी निहायत ही नीच गति को देने वाली है। इसलिए इन सब वहमों को छोड़कर एक ईश्वर को आधार मानकर सत्कर्मों को धारण करना चाहिए। ऐसी धारणा से ही ऊँच गति को प्राप्त होता है, यानी मोक्ष आनन्द को।

बचन 16. इस माया के जाल से छूटने के वास्ते महज़ ईश्वर भगति और सत्कर्म की धारणा है। इसके सिवा जो भूत, प्रेत व पितरों की पूजा करता है वह कभी भी ऊँच गति को प्राप्त नहीं हो सकता।

बचन 17. हर एक जीव को अपने कर्मों के अनुकूल सज़ा मिलती है। इस वास्ते अपने सुधार का जतन करना चाहिये न कि खुद अन्धकार में जावे और दूसरों को गति देवे। अपनी करनी का सुधार हर वक्त मद्देनज़र रखकर ईश्वर विश्वास सिमरण और ध्यान करना चाहिये। यह ही असली गति है।

बचन 18. जो ईश्वर भगति और ईश्वर निमित्त दान और सत्कर्म को छोड़कर भूत प्रेत तथा पितरों की पूजा में मसरूफ़[1] रहता है, वह अन्ध बुद्धि है, और धर्म के सही भेद को नहीं जानता है। महज़ तोहमात[2] में समय अनर्थ खो रहा है।

बचन 19. हर एक प्राणीमात्र को अपनी गति का विचार करना चाहिए। अगर खुद कैद में है तो दूसरे को कैसे गति दे सकता है। यह बिलकुल नामुमकिन[3] है। हर घड़ी हर लमह अपना सुधार करना लाज़मी है।

बचन 20. जब तक जीव अपनी करनी को खुद साफ नहीं करता तब तक उसको कैद से रिहाई मुश्किल है। इसलिए सत्पुरुषों के जीवन अनुकूल अपना जीवन बनाकर अपनी गति करनी चाहिये, जिससे माया की कैद से रिहाई पाकर परमानन्द सरूप को प्राप्त हो जावे।

1. लीन 2. अंधकार, वहम 3. असम्भव

बचन 21. जब तक अपनी करनी खुद साफ़ नहीं करता तब तक कोई तीर्थ, कोई देवता, कोई मन्त्र गति नहीं दे सकता। इसलिए अपनी करनी का सुधार ही परम गति है। जो ज़िन्दगी में कुछ नहीं करते और मरने के बाद अपने अय्याल[४] से गति चाहते हैं वे सख़्त धोखे में हैं।

बचन 22. जो करेगा सो पायेगा। एक आदमी दूसरे पर कोई हक नहीं रख सकता, जब तक कि वह खुद अपने जीवन को पवित्र न करे। इस वास्ते हर घड़ी अपने आचार को दुरुस्त करना चाहिये, जिससे गति नसीब होवे।

बचन 23. जो प्राणी इन वहमों में फँसा रहता है वह कभी भी शाँति हासिल नहीं कर सकता, जब तक कि सब वहमों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा न लेवे।

बचन 24. अपनी अपनी गति करना हर एक का हक है। दूसरे के भरोसे रहना सख्त गलती है इसलिए ज़िन्दगी में अपने कल्याण के निमित्त जतन करना चाहिए।

बचन 25. संसार में वह ही जीव गति को प्राप्त होता है जो इन भूत, प्रेत, पितर आदि वहमों को छोड़कर एक ईश्वर का भरोसा लेवे। हर वक्त सत्कर्म को धारण करे। पाप कर्म की तरफ भूल के न जाये। दृढ़ निश्चय एक ईश्वर के सिमरण में रखे। कर्त्ता हरता महाप्रभु जानकर सब कुछ उसकी आज्ञा में देखे। लोक सेवा और निर्मान भाव चित्त में धारण करे। तब निष्काम सरूप परम आनन्द को प्राप्त हो जाता है फिर मिथ्या चक्र माया में नहीं आता। यह ही जीव की गति है। ऐसा निश्चय धारण करना चाहिए।

4. संतान, परिवार

(ख) भूत प्रेत पर विचार

बचन 1. बीमारियाँ तीन प्रकार की होती हैं:-

(क) आधि - जो मन की कल्पना से उत्पन्न हुई हों ।

(ख) व्याधि-जो शरीर के तत्वों के बिगड़ने से प्रगट हों। जिनको आम बीमारियाँ कहते हैं ।

(ग) उपाधि-जो बाहिर से शरीर पर कष्ट प्राप्त होवें, कोई ज़ख्म आ जावे या गिर पड़े या किसी बैरूनी ताल्लुक[1] से खेद प्राप्त होवे ।

आधि रोग यानी मन की कल्पित जो बीमारियाँ हैं; बहुत ग़म, बहुत भय, बहुत गुस्सा और बहुत खुशी से मन बुद्धि अपने असल उसूल को छोड़ कर ग़शी में चली जाती है और हालते ग़शी[2] में तरह तरह के वाक्यात ब्यान करती है। उस बेहोशी हालत को जिन्न, भूत, पिशाच, देव, परी आदि नामों से लोग पुकारते हैं। दरअसल[3] अति पाप कर्मों का जब अन्दर ज़ोर हो जाता है उस वक्त वे पाप कर्म ही भय देने वाले हो जाते हैं। ज्यादा ग़म, ज्यादा भय, ज्यादा गुस्सा, ज्यादा खुशी से ये हालतें होती हैं। उनका इलाज भी यह ही है कि जिस तकलीफ़ से यह हालत हुई हो वह दूर होवे। बाकी जो जिन्न वग़ैरा निकालना है वह भी एक ढंग है जिससे बीमार की बुद्धि पर अच्छा असर पड़े और उस भय से निर्भय हो जावे। ये कई एक तरीके हैं। मगर ये सब मन के तोहमात[4] हैं और पाप कर्मों की हालत है। इन सबका बड़ा इलाज सत्कर्म और ईश्वर नाम सिमरण है। इन तोहमात पर मोतकिद[5] होने से बुद्धि ज़्यादा कमज़ोर हो जाती है और उल्टी भ्रमों में फँसकर ईश्वर हस्ती से मुनकिर[6] हो जाती है और ज़्यादा ऐसे अज़ाबों[7] में गिरफ्तार हो जाती है[8]। इस वास्ते बिल्कुल इन वहमों को दिल में जगह न देनी चाहिए, जिससे कभी भी ऐसी हालत तारी न होवे[9]। महापुरुषों ने इस मन के आधि रोगों की खातिर केवल उपाय शुद्ध आचार बतलाया है और कभी भी इन तोहमात की कथा प्रसंग

---

1. बाहिरी सम्बन्ध 2. बेहोशी की हालत 3. वास्तव में 4. वहम 5. विश्वासी 6. अविश्वासी 7. दु:खों 8. घिर जाती है 9. छा न जाए

श्रवण न करें जिससे बुद्धि बलवान रहे। ऐसी बीमारियाँ मन के भ्रम से होती हैं। अपनी अनर्थक कल्पना जिन्न, भूत के सरूप में दिखलाई देती है। कोई खास सरूप नहीं है। जो इन तोहमात को ज़्यादा तसव्वुर[1] में लायेगा ज़्यादा तकलीफ़ पायेगा। इस वास्ते हर घड़ी ईश्वर विश्वास और नेक कर्म धारण करने चाहिये। जब ऐसी हालत किसी पर तारी हो जावे उस वक्त सत्पुरुषों के नाम की दोहाई के मन्त्र वगैरह भूत के निकालने वाले पढ़ते हैं और कुछ धूप वगैरह देते हैं जिससे बुद्धि फिर निर्भय हो जाती है। यह निश्चय करें कि सत्पुरुषों के नाम की इतनी बरक़त है जिससे बुद्धि फिर अपने असली सरूप में आ जाती है। आखिरी फैसला यह है कि पाप कर्मों से बुद्धि कमज़ोर होकर ऐसे रोग में मुब्तिला[2] हो जाती है। कई नामों से लोग इन बीमारियों को पुकारते हैं। तमाम शारीरिक मानसिक बीमारियों का इलाज ईश्वर विश्वास और नेक कर्म हैं। हर वक्त धर्म परायण होना चाहिए जिससे मन में कभी भी खौफ़ पैदा न होवे और न ही बुद्धि ऐसी हालत में मुब्तिला होवे। यह निश्चय कर लेवें। जिन्न, भूत वास्तव में कोई चीज़ नहीं है। यह अपने मन की विपरीत कल्पना का सरूप है। गाह-बगाह[3] कोई जीव ऐसी हालत में मुब्तिला होता है। शारीरिक रोग जो इस किस्म के होते हैं वे सत्पुरुषों के नाम की दवाई और धूप दीप सत्संग से जाते हैं। यह कोई अहम मसला[4] नहीं है। अपनी बुद्धि के मुताबिक कुछ न कुछ लोग समझते हैं, मगर यथार्थ निर्णय यह ही है कि मन का भयभीत हालत में हो जाना। हर वक्त धर्म परायण जीवन जो रखने वाले हैं और इन तोहमात को दिल में जगह नहीं देते हैं, वे कभी भी इस भयंकर हालत को प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

1. ध्यान 2. ग्रस्त 3. कभी-कभी 4. बड़ी समस्या

धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत

बचन 1. धर्म का सही सरूप जानना और उसको अमल में लाना उपदेशक का परम धर्म है।

बचन 2. जब तक अपना अन्तःकरण बिल्कुल शुद्ध न होवे यानी वासना रूपी विकार से निर्मल न हो चुका होवे, किसी को कोई उपदेश करने का कोई हक नहीं।

बचन 3. धर्म की जागृति की खातिर उपदेश करना तथा लोगों के दुःख को महसूस करके और निष्काम भाव को धारण करके उपदेश करना, सत्य उपदेश है।

बचन 4. जो ज़ाती ग़र्ज की खातिर उपदेश देता है, यानी अपनी रोज़ी की गुज़रान की खातिर या बड़ाई की खातिर, या लोगों को नाजायज़ वरग़लाने की ख़ातिर, वह उपदेशक दुराचारी है। देश और धर्म को नाश करने वाला है।

बचन 5. सत्य, सादगी, सेवा, सत् विश्वास, सत्‌सिमरण और प्रेम आदि गुणों के बग़ैर जो उपदेशक है वह भी दुराचारी और पाखण्डी है; ख़्वाहे कितना ही विद्वान होवे।

बचन 6. जिस उपदेशक का लिबास, खुराक और बचन साधारण नहीं है, यानी प्रेम और निर्मान भाव नहीं रखता वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

बचन 7. जो उपदेशक बहुत विद्या का मद रखता है और आचार विचार में सादगी नहीं रखता वह भी उपदेशक विकारी है।

बचन 8. और कोई भी नशा पीने वाला, नुमायश को देखने वाला, ताश, चौपट और जुआ खेलने वाला, मांस खाने वाला अगर चतुर्वेदी पण्डित भी होवे तो वह दुराचारी है। उसका उपदेश धर्म को नाश करने वाला है और पाप को फैलाने वाला है।

बचन 9. जिसके अन्दर यतीम, अनाथों और ग़रीबों का प्रेम नहीं, धन और मद की आस रखकर उपदेश देता है वह भी दुराचारी उपदेशक है।

बचन 10. जो विचार सादा नहीं करता और गहरे गहरे वाकयात सुनाता है और बहुत ज़बान दराज़ है वह भी पाखण्डी है।

बचन 11. जिसका मन खुद भोगों में ग्रसा हुआ है वह उपदेशक दुनियाँ को कभी भी रास्ता नहीं दिखला सकता।

बचन 12. जो बिल्कुल पुस्तकों का कीड़ा है और कुदरती अनुभव नहीं रखता वह कभी भी यथार्थ धर्म को न ग्रहण कर सकता है और न ही दूसरों को आगाह कर सकता है।

बचन 13. जो बहुत इतिहास विचार करके लोगों को सुनाता है और खुद एक का भी अमल नहीं करता वह पाखण्डी है।

बचन 14. जिसके उपदेश से ईर्खा और बाद प्रगट होवे वह धर्म के नाश करने वाला उपदेशक है।

बचन 15. जो ब्रह्मज्ञान से हीन है और छोटे विश्वास वाला है वह उपदेशक भी तुच्छ है।

बचन 16. जिसके अन्दर खुद सत्य, निर्मानता, निष्कामता, उदासीनता और प्रेम नहीं है वह बड़े से बड़ा विद्वान भी मूर्ख है। उसका कभी भी उपदेश ख़ालिस धर्म प्रगट नहीं कर सकता।

बचन 17. जिसके अन्दर ईश्वर विश्वास और पर-उपकार और उदारता नहीं है वह उपदेशक पाखण्डी है। दुनियाँ को अन्धकार की तरफ ले जाने वाला है।

बचन 18. जिसके अन्दर देह अभिमान और कुल ज़ात अभिमान और विद्या अभिमान है वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

बचन 19. जिसके अन्दर मौत का भय नहीं और ईश्वर से प्रेम नहीं वह कभी भी न पाप से छूट सकता है और न ही लोगों को रास्ता दिखला सकता है।

बचन 20. जो मान की ख़ातिर उपदेश देता है और खुद प्रेम नहीं रखता वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

बचन 21. जो स्वार्थ की ख़ातिर उपदेश करता है वह उपदेशक धर्म को नाश करने वाला है।

बचन 22. जिसका हिरदा पूर्ण सीतल नहीं हुआ तत्व ज्ञान से वह दुनियाँ को रास्ता नहीं सिखला सकता ख़्वाहे तमाम दुनियाँ की विद्या का व्याख्यान क्यों न करे।

बचन 23. जो सिर्फ़ विद्वान ही है और अपने अन्दर ईश्वरी प्रेम और निष्कामता नहीं रखता वह विद्वान नहीं बल्कि बोझ उठाने वाला ढोर है।

बचन 24. जिस क़ौम में धर्म विश्वास वाला न होवे और विद्वान बहुत होवें, एक दिन वह क़ौम को नाश कर देवेंगे। क्योंकि साधन के बग़ैर विद्या नाश कर देती है, ऐसा निश्चय करें।

बचन 25. जिसका मन खुद संशय और वहम वाला है, कितना भी विद्वान होवे वह शान्त अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता और न किसी को आगाह कर सकता है।

बचन 26. लोक दिखावे की ख़ातिर जो आरज़ी[1] धर्म रखता है और मान गुमान में मुस्तग़र्क़[2] रहता है, वह उपदेशक पाखण्डी है।

बचन 27. जिसके अन्दर एक ईश्वर का विश्वास नहीं, एक ईश्वर की उपासना नहीं और दुनियाँ से चित्त जिसका आज़ाद नहीं, और परहित, पर उपकार नहीं रखता, वह कितना भी विद्वान क्यों न होवे, वह दुराचारी ही जानो।

---

1. दिखावटी 2. डूबा

बचन 28. जो प्रेम के बग़ैर है, एकता को नहीं चाहता और खुदग़र्ज है, वह उपदेशक चंडाल का सरूप जानें।

बचन 29. जो अपनी विद्या का बहुत गुमान रखता है और हर एक के साथ अन्दर से नफरत रखता होवे, और इन्द्रियों के भोगों में डूबा हुआ होवे, वह विद्वान न समझो बल्कि स्वान है। दुनियाँ को काट-काट कर खाने वाला है।

बचन 30. जो ज़्यादा स्त्रियों को उपदेश देने वाला होवे, और धन का लोभी होवे, और बहुरंग की चाल चलने वाला होवे, वह उपदेशक मानिन्द[1] कौवा के है। धर्म कर्म को नाश करने वाला समझो।

बचन 31. जिसके अन्दर और है और बाहिर से और कहता है वह चालबाज़ और फरेबी है। दुनियाँ की तबाही करने वाला समझो।

बचन 32. जो बहुत राग का शौकीन है और बैजन्तर बहुत ताल से बजाता है, कभी नाचता है, कभी हँसता है वह उपदेशक भी पाखण्डी है।

बचन 33. जिसके मन में उदासी नहीं है, और पापों से डरता नहीं है और जीवों से मन करके प्रेम नहीं रखता, वह कभी भी धर्म को पहचान नहीं सकता है, और न ही लोगों को रास्ता सिखला सकता है।

बचन 34. उपदेशक के वास्ते विद्या और निदिध्यास दोनों लाज़मी हैं। निर्मानिता और निष्कामता को धारण करने वाला होवे वह उपदेशक दुनियाँ को सुखदाई है।

बचन 35. जिसने खुद अपने मन को पापों से आज़ाद किया है, ईश्वरी प्रेम और विश्वास को दृढ़ किया है, हर वक्त ईश्वर सिमरण को जिसने जाना है, दुनियाँ के तमाम सामान से आज़ाद होकर एक ईश्वर का ही भरोसा रखता है, तमाम जीवों को ईश्वर का ही रूप जानकर उनको सुख देना अपना परम धर्म जानता है, वह उपदेशक धर्म का प्रकाश करने वाला है।

---

1. तरह

बचन 36. जिस सोसाइटी का जो उपदेशक होवे वह उस सोसाइटी को सोशल ज़िन्दगी और रूहानी ज़िन्दगी के सुधार का उपदेश करे, वह उपदेशक सुखदाई है।

बचन 37. जो उपदेशक तत्व ज्ञान को प्राप्त हो चुका होवे, धैर्यवान होवे, दुखियों के दुःख को महसूस करने वाला होवे, पाखण्ड को त्याग करने वाला होवे वह उपदेशक धर्म को प्रकाश करने वाला जानो।

बचन 38. जिसके अन्दर असली त्याग आया है और ईश्वरी आनन्द को प्राप्त हुआ है, तमाम जीवों के सुख की चाहना करने वाला है वह उपदेशक धर्म का अवतार जानना चाहिए।

बचन 39. जिसने अपने मन और इन्द्रियों को काबू किया है और निष्काम चित्त को धारण किया है, दुःख-सुख में धैर्य वाला है वह उपदेशक धर्म का सरूप जानो।

बचन 40. जिसने समता तत्त को धारण किया है और समता ही के साधन में रहता है और हर एक को समता की हिदायत करता है वह उपदेशक ममता रूपी घोर जाल से छुड़ाने वाला है और सत्यवादी है।

बचन 41. जो हर घड़ी निहकर्म अवस्था को अनुभव करता है, यानी आत्म स्थिति वाला है, प्रेम और वैराग में पूर्ण है वह उपदेशक खुद निजात को हासिल कर चुका है और लोगों को रास्ता सिखलाने वाला है। वह ही जगत गुरु है।

बचन 42. जिसने शरीर के विकारों से जीत पाई है और ब्रह्म शब्द को प्राप्त हुआ है, और हर वक्त ईश्वरी प्रेम में मग्न रहता है वह तत्तवेता पुरुष सच्चा उपदेशक है।

बचन 43. जिसके अन्दर ब्रह्म प्रकाश हुआ है और माया के विकार से मुक्त हुआ है, वह उपदेशक परम सिद्धि देने वाला है।

बचन 44. जिसने सब संसार के अंजाम[१] को जाना है, यानी माया की प्रवृत्ति और निवृत्ति को अनुभव किया है वह उपदेशक आनन्द दाता है।

बचन 45. जिसने पहले सही जाना है और फिर व्याख्यान किया है वह उपदेशक गुणकारी है।

बचन 46. जिसने पहले अपने मन को उपदेश देकर काबू किया है उसका उपदेश दुनियाँ को निजात देने वाला है।

बचन 47. अपने सत्बचन पर जो अटल रहने वाला है, तन के नाश होने पर भी जो प्रण नहीं छोड़ता, वह उपदेशक धर्मवादी है।

बचन 48. जिसने अपना तन मन धन ईश्वर अर्पण किया है और दृढ़ निश्चय वाला है वह ही सच्चा उपदेशक है।

बचन 49. जो हर वक्त दुखियों की सेवा करने वाला और अपना सुख न चाहने वाला, ईश्वर का प्रेम अधिक रखने वाला वह उपदेशक धर्म का सूरज है।

बचन 50. जो खुद अमल करता है सत्कर्मों पर और हृदय से सेवक रूप है सब जगत का, हर एक जीव का कल्याण चाहने वाला चित्त है जिसका, अपने और ग़ैर के साथ एक जैसा प्रेम रखने वाला सत्बचन और मन का सुशील, परम भगति ईश्वर की धारण करने वाला, निर्मान भाव और सर्व दयालु उत्साह रखने वाला उपदेशक सब संसार को कल्याण देने वाला है और वह ही धर्म अवतार है।

1. नतीजा, परिणाम

राम राज्य का सरूप

बचन 1. ज़रूरतों की मुनास्बित[1] यानी ज़्यादा नुमायशी, अय्याशी ज़िन्दगी से परहेज़।

बचन 2. तमाम जनता को आत्म निश्चय की दृढ़ता यानी तोहमात[2] से छुटकारा प्राप्त हो।

बचन 3. राज सेवक तथा जनता में परस्पर प्रेम हो।

बचन 4. राज सेवक निर्पक्ष, निर्लोभ और शुद्ध आचारी हों।

बचन 5. विद्या का आचरण सदाचारी यानी ब्रह्मचर्य और सादगी सहित हो।

बचन 6. स्त्री जाति की आज़ादी एक मर्यादा तक होनी चाहिए। आध्यात्मिक विद्या में स्त्रियों को अधिक दृढ़ता होनी चाहिये।

बचन 7. तमाम नशे और नाक़िस ग़िज़ाओं[3] पर पाबन्दी होनी चाहिए।

बचन 8. कारोबार के तमाम सिलसिले मर्यादा और समय की पाबन्दी सहित होने चाहिये।

बचन 9. विद्या निदिध्यासन में लड़के-लड़कियाँ के स्कूल अलहदा अलहदा होने चाहिये एवं सदाचारी जीवन अनुकूल विद्या का प्रबोधन होना चाहिये।

बचन 10. हर किस्म की विद्या का जो जो मुस्तहिक[4] होवे उसको वैसी ही सिखलानी चाहिये।

---

1. मर्यादा 2. वहम, अंधविश्वास 3. तुच्छ आहार 4. पात्र

बचन 11. राज का बढ़ता हुआ धन ज़्यादा से ज़्यादा विद्या निदिध्यासन में खर्च करना चाहिये।

बचन 12. सब जीवों को अपनी सही उन्नति की आज़ादी और सहायता होनी चाहिए।

बचन 13. सत् असूलों का ज़्यादा से ज़्यादा प्रचार होना चाहिये, यानी सादगी, सत्, सेवा, समानता और प्रेम आदि महागुणों का।

बचन 14. राज-सेवक निहायत उच्च और पवित्र कर्त्तव्य आचारी हों।

बचन 15. अधिक त्याग, अधिक आध्यात्मिक निश्चय, पूर्ण शुद्धाचार, ईश्वर-भगति और देश भगति में अधिक विश्वास, सब जीवों में समानता भाव, राजसेवक और जनता में इन गुणों का होना ही असली राम-राज है।

स्त्री पुरुष जीवन सम्बन्ध
पतिब्रत धर्म

पतिब्रत के धरम को, जो तिरिया[1] पाले नीत ।
पूर मनोरथ तिसके, जो धारे सत परतीत ।।

प्रभु सरूप सम जान के, निज पति पूजे जो नार ।
सत आज्ञा नित पालन करे, नित राखे सत आधार ।।

पति कुटुम्ब की दासी होवे, प्रेम से सेव विचारे ।
शरम पत पूरन चित राखे, नित निरमल बचन उचारे ।।

ग्रह धरम का पालन करे, अति प्रीती को धार ।
सत संगत से प्रीत करे, नित राखे चित उपकार ।।

सत् धरम का जीवन पावे, सो सतवन्ती नार ।
अधिक सुख परापत होवे, देव पाये परिवार ।।

नित सत्वादी नित परउपकारी, नित सादा रहनी धारी ।
पति आज्ञा में मन तन अरपे, पावे पतीबरत सो नारी ।।

जग जीवन होये देव समाना, यश कीरत बहु पाई ।
'मंगत' माता जगत की, सो नारी नाम धराई ।।

---

1. स्त्री

पुरुष धर्म

सदाचारी मन सुशील, गुरु भगत नित होये ।
एक प्रभु का राखे विश्वासा, नित निर्मल करम परोये ।।

गृहस्त धरम का पालन करे, नित साची नीती धार ।
गुरु बचन में प्रीत रक्खे, निरमल सुने विचार ।।

अपनी देह का अंग नित, निज नारी को जाने ।
धरम युक्त होए सेवा करे, यह नीती सार पिछाने ।।

पर नारी सम मात पिछाने, नित संगत साची धारे ।
आहार पवितर विचार नित निर्मल, नित साचा करे ब्योहारे ।।

मात पिता की आज्ञा माने, नित चित से सेवा कीजे ।
पर उपकारी जीवन राखे, सरब जियाँ सुख दीजे ।।

सादा जीवन नित ही राखे, प्रभु चरनी प्रीत विचारे ।
आज्ञा प्रभु में सब कुछ देखे, दृढ़ निश्चा यह धारे ।।

धरमयुक्त परिवार बनावे, नित साची रहनी रहाये ।
दीन दु:खी की सेवा कीजे, जग जीवन सार लखाये ।।

कठिन मारग यह गृहस्त का मीता, जो धरम सहित नित धाई[1] ।
'मंगत' देव सरूप सो जग में, नित पावे सुख अधिकाई ।।

---

1. धारण करना

आध्यात्मिक पत्र

जब तक तू अपने कल्याण के लिए स्वयं सोचेगा, समझेगा, मानेगा और उसी के माफिक चलेगा नहीं तब तक साक्षात् ब्रह्मा भी अगर आ जाये तो तेरा कुछ भी नहीं बन सकता।

ये शरीर अपूर्ण है, इसके भोग अपूर्ण हैं, यह संसार अपूर्ण है, इस अपूर्ण शरीर और अपूर्ण संसार में पूर्णताई की तलाश करनी महज़ मूर्खता है। यह बात तू आज समझ ले, दस साल बाद समझ ले या चार जन्म बाद समझ लेना, आखिर यह ही समझना पड़ेगा। क्यों अपने सफर को लम्बा करता है। उठ जाग और अपने कल्याण के मार्ग पर बढ़ चल।

गुरुदेव मंगतराम जी

जीवन सम्बन्धी पत्र

1. सत् परायणता का निश्चय दृढ़ करने का आदेश

इस भयानक नास्तिकवाद के ज़माने में जबकि आम मानुषों ने जीवन कर्त्तव्य केवल शारीरिक भोग ही समझ रखा है, और अति भोग वासना में आरूढ़ हुए-हुए अधिक भोग पदार्थ प्राप्त करने के यत्न में दिन रात परेशान रहते हैं; न ही शरीर की विनाश निश्चय आती है, न अति भोगों की प्राप्ति दु:ख रूप प्रतीत होती है, और न ही सत् कर्त्तव्य जीवन का अनुभव होता है।महज़ पशु समान ही जीवन यात्रा को व्यतीत करके अति खेद सहित काल के मुख में जा रहे हैं। ऐसे अधिक तमोगुणी के फैलाओ के ज़माने में जिसको सत् परायणता का निश्चा दृढ़ हो रहा है वह दुर्लभ कर्मचारी पुरुष है।सो प्रेमी जी, मानुष जन्म का उत्तम कर्त्तव्य तो यह ही है कि नाशवान शारीरिक भोग वासना से निवृत्ति प्राप्त करके अविनाशी तत्व की खोज में अधिक दृढ़ता धारण करें और पूर्ण सत् यत्न द्वारा तमाम मानसिक विकारों से पवित्रता हासिल करके अखण्ड अविनाशी तत्व निज स्वरूप के बोध को प्राप्त होवें, जो परम स्थिति और परम शान्ति है। ऐसे जीवन के सही भेद को समझ करके नित ही निर्मान भाव को धारण करके अपने आपको सत् ग्रह में दृढ़ करें यानी सत् विश्वास, सत् अनुराग और सत् निध्यास में पूर्ण निश्चय से कारबन्द (स्थित) होवें। तब ही नाशवान भोगों से वैराग को प्राप्त करके सत्नाम में निश्चलता दृढ़ होगी जो तमाम सुखों का भण्डार है। ऐसी स्थिति वाला पुरुष अपने तमाम शारीरिक सुखों के राग को त्याग करके निमित्त मात्र शारीरिक कर्मों में विचरता हुआ सत् स्वरूप आत्मा में नि:चल रहता है। वह ही परम भगत और परम ज्ञानी है। ऐसी अवस्था ही दुर्लभ है। प्रभु नित ही परम अनुराग और निर्मल सत् यत्न अपनी जीवन उन्नति का देवे।

----

2. अमली जीवन बनाने की प्रेरणा

आशीर्वाद पहुंचे! पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, निगाह दूर की पैदा करें तब पता लगेगा कि समता की तालीम (शिक्षा) रूहानी आज़ादी (आध्यात्मिक स्वतंत्रता) और असली खुशी का सरूप है। और आजकल मादे (भोगों) की आज़ादी जो वास्तव में तबाही का हाल है, उसका अधिक प्रचार हो रहा है। किसी वक्त यह सूरत बदलकर समता के स्वरूप में आ जावेगी। इस वास्ते तुम अपना जीवन बाअमल बनाकर अपने असूल पर कारबन्द रहें। जो कुछ होता है वह प्रभु हुक्म (आज्ञा) से ही होता है। समय पर अक्सर कई गुरमुखों की कुरबानियां (बलिदान) देश को जीवन देती हैं। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। तमाम प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी। सत्संग में अगर हाज़री कम है तो भी कोई हर्ज नहीं। तुम अपना असूल (नियम) मुकम्मिल (पूर्ण) रखें। ईश्वर की कृपा दृढ़ निश्चय से बाअमल होने से ज़रूरी होती है। अपनी कुशल पत्रिका लिखते रहा करें। कुछ समय तक एक एकान्त जगह मुकीम (ठहरे) हैं, इस जगह का नाम समयाला है। यह बैजनाथ (जिला कांगड़ा) से छः मील के फासले पर है। साढ़े पांच हज़ार फुट की बुलन्दी (ऊंचाई) है। तमाम प्रेमी अपनी-अपनी कुशल पत्रिका लिखते रहा करें। ईश्वर सत् विश्वास देवे। और देश के वास्ते एक आलातरीन (बहुत बढ़िया) जीवन बनाने में हर वक्त प्रभु परायणता धारण करें। ईश्वर गुरु बचन का विश्वास देवे।

(समयाला)

----

3. केवल विचारों द्वारा मानसिक संग्राम से विजय कठिन

यह जीवन का संग्राम अधिक कठिन है। यह जानते हुए भी अपनी कल्याण के यत्न में कायरता धारण करके समाँ निरर्थक हर एक गुणी खो देता है। और अन्त को अधिक पश्चाताप करता है। मगर उस वक्त कुछ बन नहीं सकता है। इस वास्ते अपने जीवन उन्नति के भाव को अधिक प्रतीत करते हुए निहायत स्वतन्त्र बुद्धि धारण करके कल्याण के मार्ग में पूर्ण निश्चय से दृढ़ होना चाहिये, ताकि तमाम यत्न प्रयत्न कल्याण के निमित्त ही

धारण करके इस शरीर की विनाश से पहले-पहले निर्भय शान्ति में नि:चलता प्राप्त हो जावे। ऐसा परम पवित्र निश्चय ही तमाम सत्पुरुषों का हुआ है। सो प्रेमी जी, केवल विचारों की धारा में अपने आपको ग़मगीन करना (लगाए रखना) कोई यथार्थ उन्नति के देने वाला निश्चय नहीं है। इससे समाँ अकार्थ व्यतीत हो जाता है। आख़िर वैसे का वैसा ही मूढ़पना अन्तर में बना रहता है। ऐसी मजबूरी के निश्चय से जाग्रत हो करके परमानन्द सत्य स्वरूप के अनुभव करने का यथार्थ यत्न इखत्यार (धारण) करना चाहिये जिससे महालाभ प्राप्त होवे।

इस संसार की यात्रा शरीर के अन्त होने से पहले-पहले संपूर्ण हो जावे, क्योंकि मन इन्द्रियों की चेष्टायें अधिक संकट रूप हैं। और किसी वक्त भी हो सकता है कि सत्य विचारों को नष्ट करके विपरीत भावनाओं को प्रगट कर देवें, और तमाम जीवन यात्रा की सफलता नष्ट हो जावे। इस वास्ते अधिक से अधिक सत्य यत्न द्वारा सत्य मार्ग में अपने आपको दृढ़ करके यथार्थ अध्यात्म उन्नति का साधन इख्त्यार (अपनाना) करना चाहिये जिससे मानसिक दोषों की निवृत्ति होनी शुरू हो जावे और पवित्र विश्वास की दृढ़ता प्राप्त होवे। ऐसे सत्य यत्न से तमाम मानसिक खेद नाश को प्राप्त हो जाते हैं और परम सिद्धि को गुणी अनुभव कर लेता है। मन इन्द्रियों की चेष्टाओं से असंग होना ही परम सिद्धि है। सो ऐसी अवस्था यथार्थ दृढ़ विश्वास और यथार्थ मार्ग सत् साधन के प्राप्त होने से ही होती है। महज़ विचारों से इस मानसिक संग्राम से विजय हासिल करनी अति कठिन है। अगर कोई गुणी अपनी सही उन्नति करना चाहे तो उसके वास्ते लाज़मी है कि किसी कामिल सत्पुरुष की शरणागत होकर के यथार्थ यत्न धारण करे। जो परम सफलता के देने वाला होवे। यह ही सार नीति सत्पुरुषों की है। जब तक अपने अन्तर में सत् स्वरूप अविनाशी तत्व का बोघ न होवे तब तक मानसिक संसार का अभाव नहीं होता है और न ही परम तृप्ति प्राप्त होती है। जब बुद्धि तमाम मन इन्द्रियों की चेष्टाओं से असंग होकर के एक परमानन्द स्वरूप में अन्तर विखे निहचल होती है तब निर्भय सुख को अनुभव करती है, जो अकथ और अगोचर है। यह ही स्थिति परम बोध, परम सूझ, परम ठौर और परम विज्ञान स्वरूप है, जिसको अनुभव करके वासना रूपी अगन से बुद्धि पूर्ण शान्ति को प्राप्त हो जाती है। वास्तव में इसी परम शान्ति की सबको चाहना है। और यह ही निर्भय सुख निज

स्वरूप है। अधिक सत् यत्न द्वारा ऐसी परम स्थिति को प्राप्त होना ही महाकारज है, और सत्पुरुषों का यथार्थ आदर्श है। इस वास्ते इस कल्याणकारी मार्ग में अपने आपको निहचल करें। इस सत् यत्न से ही जीवन का महालाभ परमानन्द शान्ति प्राप्त होती है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें। ईश्वर सत् बुद्धि, सत् अनुराग देवे।

----

4. परमार्थ पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा

स्वार्थ और परमार्थ दो रास्ते हैं। एक बन्धनकारी है और एक कल्याणकारी है।

अगर स्वार्थ में ज़्यादा (अधिक) समां खर्च करे ख़्वाहे (चाहे) अपनी मरज़ी से ख़्वाहे किसी की मजबूरी से, सो इसका इलाज क्या हो सकता है, सिवाय अपनी बदकिसमती के? यह तो तमाम संसार की उलझनों से बड़ी शूरवीरता से कुछ आज़ादी हासिल करके परमार्थ की तरफ कदम बढ़ाया जा सकता है। ऐसे दलीलों से समां व्यतीत करके अन्त को पछताना ही पड़ता है। अपने हालात को खुद समझें। वक्त निकालकर परमार्थ की तरफ जल्दी जल्दी कदम उठाना चाहिये ताकि जीवन यात्रा में कुछ कल्याण प्राप्त हो सके। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

5. सत् परायणता में दृढ़ता धारण करने का आदेश

श्री सत् गुरुदेव जी महाराज आशीर्वाद फरमाते हैं, आप स्वीकार करें जी और घर में सब परिवार को आशीर्वाद फरमावें। आपके प्रेम से तहरीर कर्दा (लिखा हुआ) पत्र द्वारा दर्शन हुऐ। आपने जो संशय लिखा है उसके जवाब में श्री मुख वाक् सेवा में लिखे जा रहे हैं। प्रेम पूर्वक बारम्बार विचार करके कृतार्थ होवें। श्री महाराज जी फरमाते हैं :-

''कि अहंकार की अधिक दृढ़ता से आम मनुष्य अपना जीवन कर्त्तव्य केवल भोगमयी बनाकर अति भयानक स्वार्थ की अग्नि में जल रहे हैं और तमाम दुनियाँ में जो परेशानी छाई हुई हैं वह महज़ अहंकार की अधिकता का ही कारण है। इस वास्ते इस अधिक तपिश से बचने का

उपाय केवल सत् परायणता की दृढ़ता ही है यानी अपना जीवन प्रकाश जो परम तत्व परमेश्वर है उसका आधार और निर्मल विश्वास धारण करके इस नाशवान् शरीर के मद को त्यागकर केवल अपने जीवन को सत् कर्त्तव्याचारी बनाना और सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरन आदि सत् नियमों को पूर्ण निश्चय से पालन करने का सत् यत्न धारण करना। ऐसे शुद्ध प्रयत्न से ही बुद्धि निर्मल होकर तमाम मलीन वासनाओं पर विजय पाकर सत् शान्ति को प्राप्त हो सकती है। सब प्रेमी इस निर्मल विचार को विचार करके अपनी जीवन उन्नति के मार्ग में दृढ़ होने का यत्न करें। तब ही अधिक स्वार्थ की अग्नि से ठन्डक प्राप्त करके अपना जीवन केवल सत् परायणता में दृढ़ करते हुए सही उन्नति परम शान्ति को प्राप्त कर सकेंगे। ईश्वर सत् अनुराग देवे।''

श्री महाराज जी दुबारा आशीर्वाद फरमाते हैं, स्वीकार करें। गाहे वगाहे (कभी-कभी) कुशल पत्र द्वारा दर्शन देते रहा करें। श्री महाराज जी की दया दृष्टि नित अंग संग जानें। ईश्वर अधिक सत् श्रद्धा और निर्मल भक्ति की दृढ़ता वख्शें। ईश्वर नित सहायक होवें।

----

6. ज़िन्दगी का कमाल प्रभु परायण होने से प्राप्त होता है

आशीर्वाद पहुँचे! पत्र मिला, ईश्वर सत् बुद्धि देवे। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् अनुराग देवे। प्रेमी जी वाजय (ज्ञात) होवे कि ज़िन्दगी का कमाल एक प्रभु परायण होने से प्राप्त होता है। संसार में कई प्रकार की मानसिक लहरें उत्पन्न होती हैं मगर समय पर सब लय हो जाती हैं। इस वास्ते एक ईश्वरीय नियम की जो लहर है और हर ज़माने में हरएक जीव के वास्ते कल्याणकारी है उस पर दृढ़ निश्चय से कारबन्द होना (अमल करना) अपनी कल्याण और देश की कल्याण भी है, इस वास्ते ज़रूरी अभ्यास किया करें और सत्संग का प्रोग्राम भी दृढ़ रखें। पत्रिका लिखते रहा करें। पवित्र ज़िन्दगी तुम्हारी देखना चाहते हैं। ज़माने की हरकत दिन व दिन गिरावट की ओर जा रही है, इस वास्ते अपने आपको समता के असूलों द्वारा बचाओ और दूसरों के मुहाफिज़ (रक्षक) बनो। ईश्वर गुरुवचन का

विश्वास देवें। अपनी वापसी राय लिखनी कि सालाना (वार्षिक) सम्मेलन जो गंगोठियाँ होता है वह होना चाहिये, क्या तुम्हारी हाज़री होवेगी? तमाम संगत का भाव पूछकर जल्दी पता देना क्योंकि और जगह के प्रेमी इसके मुतालिक (विषय) पूछ रहे हैं। अपनी संगत का पता देना जरूरी। ईश्वर सत् अनुराग और सत् परायणता देवें।

(समयाला २१.७.४६)

----

7. जीवन में मर्यादा को धारण करने का आदेश

श्री सत् गुरुदेव जी महाराज आशीर्वाद फरमाते हैं। आप स्वीकार करें और श्रीमान भाई साहब परमार्थी जी, मलिक भवानी दास जी, सरदार संतसिंह जी, देवी दित्तामल जी, परषोत्तम लाल जी व दीगर (अन्य) सब माताओं बहनों को आशीर्वाद फ़रमावें। आपके सत्संग समाचार द्वारा आगाही (जानकारी) हुई। उम्मीद है पहला पत्र भी आपको मिल गया होगा। ईश्वर हम सब संगत के प्रमियों को अधिक प्रेम प्रीति सब जीवों के साथ वख्शें ताकि सत् सेवा के साधन द्वारा अपनी सफलता प्राप्त कर सकें। सत प्रण धारण करने द्वारा ही कल्याण होगा जिससे कुटिल भाव दूर होते हैं। सत् असत् के भावों को समझने के वास्ते प्रभु जी निर्मल बुद्धि देवें जी। श्री मुख वाकों को प्रेम पूर्वक विचार करके सत सोझी प्राप्त हो सकती है। श्री महाराज जी फ़रमाते हैं कि सत् परायणता को छोड़कर केवल असत् परायण होना यानी पूर्ण निश्चय से भोगमयी जीवन की ही स्थिति धारण करनी, उसका नतीजा यह ही होता है कि अधिक वासना के जाल को फैलाकर नाना प्रकार के सुख भोग प्राप्त करके भी मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं होती जैसा कि आजकल के समय का चक्कर चल रहा है, न राजा को शान्ति है न प्रजा को । बल्कि दिन व दिन अपने अधिक लालच के फैलाव में आकर तकरीबन (लगभग) हर एक मानुष एक दूसरे का बाधक हो रहा है। ऐसे भयानक समय को विचार करके गुणी पुरुषों का फ़र्ज है कि अपने मानसिक भाव को सत् परायणता में पूर्ण दृढ़ करने का यत्न करें यानी अपने बढ़े हुए लालच को त्याग करके जीवन धारा की मुनास्बत (मर्यादा) को धारण करें। मन बचन और कर्म द्वारा सब जीवों की कल्याण का निश्चय

दृढ़ करें। तब ही सत् भावना की दृढ़ता से मानसिक शान्ति प्राप्त हो सकती है जो कि हर एक जीव की अन्दरूनी चाहना है और ऐसा यत्न ही मानुष जीवन का परम कर्त्तव्य है।

इस अन्धकार के समय में जबकि चारों तरफ अशान्ति ही अशान्ति है सत्पुरुषों की सत् सिखया (शिक्षा) द्वारा ही धीरज और सन्तोष की प्राप्ति सब जीवों को हो सकती है अगर विचार करके सत् नियम धारण किये जावें। श्री महाराज जी दोबारा आप सब संगत को आशीर्वाद फ़रमाते हैं, स्वीकार करें जी। ईश्वर नित सहायक होवें जी।

----

8. गुणी पुरुषों का जीवन

तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी एक-एक करके। हर वक्त प्रभु परायण होकर संकट का मुकाबला करें। प्रभु सत् शान्ति देवेंगे। प्रेमी मूलराजजी को आशीर्वाद लिखनी। हर वक्त इस नाशवान् संसार की यात्रा में अपने आपको सत् परायण बनावें। दु:ख सुख प्रभु की इच्छा में देखते हुये धीरजवान (धैर्यवान) रहें, यह ही जीवन गुणी पुरुषों का होता है। अभ्यास और सत्संग में अधिक प्रेम रखें। अपना कर्त्तव्य ही सर्व कल्याण के देने वाला होता है। सब समय के हालात एक जैसे नहीं रहते हैं। कुछ न कुछ तबदीली (परिवर्तन) बनी रहती है। इसी का नाम दुनियाँ है। ईश्वर सत् विश्वास देवे। तमाम प्रेमियों को दुबारा आशीर्वाद कहनी। हर वक्त हमको हृदय में देखें। अपने आपको निहायत (अति) श्रद्धावान् बनाकर नाम में दृढ़ होवें। ज़िन्दगी की खोज ही असली मौज है। ईश्वर गुरु वचन का विश्वास देवे। ईश्वर नित ही रखियक (रक्षक) होवे और गुरु आशीर्वाद अंग संग जानें। ईश्वर सब जनता में धीरज और धर्म देवे। बचन विचार करें।

बन्धन हरे निज पद लेवे, जो गुरु की सीख विचारे।
परम सखा गुन ज्ञान का दाता, एको सत्गुरु नित बलिहारे।।
मन की भरमन सब नाश हुई, ज्यूं सिखया सार कमाई।
नाम आधार नित जीवन पाया, घट अवगत जोत दरसाई।।
परम ठौर तत आतम सूझा, सब दुरमति छाया नासी।
''मंगत'' कृपा परम पुरुष से, सब भरमन मिटी चौरासी।।

----

9. परम शान्ति देने वाला बोध

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला, ईश्वर सत बुद्धि देवे। प्रेमी जी, इस संसार में हर एक जीव अपनी बुद्धि अनुसार विचर रहा है। कोई संसार में फैलाव फैलाकर असली खुशी चाहता है। कोई खास शुद्ध विचार वाला ही त्याग के मार्ग को समझकर असली निर्वाण शान्ति को प्राप्त होता है। इस वास्ते इस ज़िन्दगी के भेद को सही समझना ही कठिन है। फिर अमल करना उससे भी कठिन है। जब सही मायनों में आत्म विश्वास को जो प्राप्त होता है तब ही परम शान्ति को समझ सकता है। हर वक्त सत्य की खोज करनी और दुनियाँ की तबदीली को दृढ़ निश्चय से जानना ही परम शान्ति के देने वाला बोध है। ईश्वर ऐसा निर्मल विश्वास देवे ताकि अपनी ज़िंदगी को सही समझ सकें और बना सकें। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें। हर वक्त गुरु बचन विश्वास दृढ़ करें, इसमें परम कल्याण है।

----

10. फकीरी या ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश अपनी शक्ति अनुसार

आशीर्वाद पहुंचे! पत्र मिला, ईश्वर सत श्रद्धा देवें। संगत को आशीर्वाद कहनी। हर वक्त प्रभु चरणों की प्रीति प्राप्त होवे। प्रेमी जी, फकीरी या गृहस्त आश्रम में दाखिल होना अपने दिल की ताकत पर मुनहसर (निर्भर) है। चूंकि आजकल के फ़कीर गृहस्तियों से बढ़कर विकारी हैं इस वास्ते ऐसी हालत से बेहतर (उत्तम) है कि गृहस्थी होकर सत् धर्म का पालन करे। अगर चित्त में प्रभु चरण की प्रीत होवे तो गृहस्थ आश्रम में जल्दी कामयावी हो सकती है। यह तुम खुद विचार कर लेवें । अपनी ज़िन्दगी को एक नमूना बनावें, न कि नाकारा होकर अपने आप को तबाह कर लेवें। ईश्वर निर्मल बुद्धि देवे। तमाम प्रेमियों को दुबारा आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् चिन्तन देवे।

----

11. विश्वास की दृढ़ता से गृहस्थ में रहकर धर्म का पालन हो सकता है

पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवें। प्रेमीजी, जो कुछ होना है वह होकर ही रहेगा। इस वास्ते प्रभु इच्छा में निश्चित रहना चाहिए। और जो हालात पूछा है उसके मुतालिक (बारे में) तुम खुद मुनासिब (उचित) विचार कर लेवें। अगर माता जी का हुक्म है और दुनियावी मजबूरियाँ तुमको मजबूर कर रही हैं तो फिर इनकारी (मना) करना मुनासिब नहीं है। हाँ, अगर अपनी ज़िन्दगी को असली मार्ग की तरफ ले जाना चाहो तो फिर आज़ादी की ज़रूरत है, मगर संसारी पाबन्दियाँ तुमको इस तरफ राग़िब (बढ़ने में) होने में मुश्किलात पेश करेंगी। और न ही तुम्हारा इतना प्रबल निश्चय है। वक्त गुज़ार देने के बाद अगर फिर पछताना हो तो माता जी के हुक्म को तस्लीम (स्वीकार) कर लेना। प्रेमी जी, यह तुम्हारे मन का जज़्बा (भाव) है, ख्वाहे (चाहे) जो भी बात करो हमारी तरफ से तुमको आज़ादी है। जो मुनासिब होवे वह विचार कर लेवें। ईश्वर बुद्धि देवे। प्रेमी जी, गृहस्थ में रहकर भी धर्म की पालना हो सकती है अगर विश्वास दृढ़ होवे तो। वैसे जो मन का संकल्प है वैसा करो। अगर तुम आज़ाद रहना चाहो तो बहुत बेहतर है। मगर तमाम तकलीफों का मुकाबला करना पड़ेगा। अगर ऐसी जुर्रत (साहस) है तो अपने बल पर खड़े रहो। नहीं तो माता का हुक्म तसलीम कर लो। ईश्वर प्रेम भावना देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी।

----

12. सत् कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा

ईश्वर सत् बुद्धि देवे। प्रेमी जी, हर वक्त अपने आहार, व्यवहार और संगत की पवित्रता रखें। इससे जीवन उन्नति करता है। और अभ्यास भी ज़रूरी किया करें। ईश्वर सत् विश्वास देवे। असली खुशी आत्म परायण होने से है, यानी अपनी खुदी (अहंकार) को अबूर करके (छोड़कर) हर वक्त निर्मान भाव से सर्व हितकारी होकर जीवन को व्यतीत करना। हर वक्त सत् श्रद्धा से अपनी शारीरिक अन्तिम दशा को विचार करते हुये नित्य सत् कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। बाहोश होकर संसार के सही नतीजे

को समझते हुए समता के असूलों को दृढ़ करें। दीन व दुनियाँ के वास्ते अपनी ज़िन्दगी रोशनी वाली बनावें। ईश्वर सत् अनुराग देवे। तमाम सदाचारी गुरुमुखों को आशीर्वाद कहनी। हर वक्त हमको हृदय में देखें।

----

13. मानसिक दोषों से निवृत्ति

श्री महाराज जी फ़रमाते हैं कि इतने समय नज़दीक रहते हुये फिर तुम बचपन वाले विचार लिखते हैं। प्रेमी जी, गर्ज़ और फ़र्ज़ के मसले (विषय) को समझें। और फ़र्ज़ अदायगी में (कर्तव्य परायणता) शूरवीरता धारण करें। यह ख़ाकी जिस्म (नश्वर शरीर) देश और जनता की सेवा के वास्ते समझें और अभ्यास में समय निर्मल प्रेम से दिया करें, तब मानसिक दोष विनाश को प्राप्त होंगे। ईश्वर सत् अनुराग देवे। देहरादून के प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी और जो सेवा का कारज शुरू किया है वह अच्छी तरह से सरेअन्जाम (पूर्ण) होता जा रहा होगा। सत्संग के हालात से मुतला (सूचित) करते रहा करें। ग्रन्थ के मुतालिक (बारे में) भी छपवाने का बन्दोबस्त (प्रबन्ध) कर लिया होगा। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

14. सही जीवन उन्नति का आदेश

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् बुद्धि देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् उद्धार की शक्ति देवे। प्रभु आज्ञा को दृढ़ निश्चय से अपनायें और खुशी व ग़मी के तवाज़न (सन्तुलन) को बराबर जानें, तब ही ज़िन्दगी के असली भेद को पायेंगे। दीगर (अन्य) जो प्रश्न लिखे हैं उनका तहरीर (लिखित) द्वारा उत्तर नहीं मिल सकता। यह बच्चों का खेल नहीं है। जब कभी हाज़िर दर्शन करें तब मुनासिब (उचित) हालात का विचार कर लेना। तुम अपनी अवस्था के मुताबिक मुतालया (अध्ययन) किया करें। जिन-जिन असूलों से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है उनको धारणा में लावें और अपनी उन्नति करें। यह जो सिद्ध अवस्था के शब्द हैं अभी तुम्हारे समझने में नहीं आ सकेंगे। इस वास्ते समां ज्यादा ईश्वर भक्ति और सेवा के असूलों को ग्रहण करने में खर्च करें जिससे सही उन्नति प्राप्त

होवे। बार-बार स्वाध्याय में वाणी का ग़ौर करें और फिर अमली जीवन बनायें। तब ही असली सार प्राप्त होवेगी। वाणी का मुतालया इस वक्त तुमको वह ही गुणकारी है जिसमें वैराग, भक्ति, सेवा, सत् विश्वास और उच्च आचरण का प्रसंग आया होवे। जिससे तुम खुद समझकर अपने आपके बोधक हो सकें। निहायत प्रयत्न करते हुए अपनी ख्वाहिशों का दमन करें और प्रभु विश्वासी होकर प्रभु इच्छा को मन में दृढ़ करें। तब ही इस भयानक अन्धकार कर्मजाल से मुखलसी (छुटकारा) हासिल करके सत् आनन्द आत्मा को अनुभव कर सकोगे। ईश्वर नित ही गुरु-वचन विश्वास और सत् परायणता बख्शें ताकि अपनी सही उन्नति कर सकें। तमाम प्रेमियों को दुबारा आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

15. संसार यात्रा का ध्येय

आशीर्वाद पहुंचे, पत्र मिला। आगे प्रेमी जी पत्र लिखा गया है। तुम अपनी सत श्रद्धा द्वारा हर वक्त हमको हृदय में रखें। नित ही जीवन आला (श्रेष्ठ) पवित्र बनावें। यह संसार बड़ा कठिन है। अन्तर हृदय से प्रभु परायण होकर अपना जीवन निहायत शुद्ध स्वरूप वाला बनावें। अविनाशी परमेश्वर का अनुभव करने का मकसद (उद्देश्य) है। मगर शारीरिक विकारों में भूलकर हर एक जीव दु:खी हो रहा है। अब प्रेमी जी, अपनी ज़िन्दगी के सही कर्त्तव्य को पालन करने का पुरुषार्थ करें, यानी मानसिक शान्ति की प्राप्ति करें। नित्य ही मन में नाम स्मरण का भाव बनाये रखें। तमाम विकारों से अपने आपको पवित्र करें और नित ही सत्पुरुषों के जीवन आदर्श को विचार करते हुये अपनी कल्याण करें। यह ही गुरु का आशीर्वाद है, प्रभु सहायक होवें। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें। अधिक तुम्हारी ज़िन्दगी प्रेममयी, धर्ममयी और कल्याण स्वरूप वाली चाहते हैं। प्रभु नित ही तुमको सत् आचरण प्रबलता देवें। हर वक्त हमको हृदय में देखें। ऐसे ज़िन्दगी बनाओ जो सर्वानन्द स्वरूप होवे। प्रभु सत् परतीत देवें।

----

16. दु:ख को सहन करने का आदेश

आशीर्वाद पहुंचे, पत्र मिला। ईश्वर सत् विश्वास देवें। तमाम प्रेमी, जो उस जगह मौजूद हों, आशीर्वाद कहनी। सबको बाजय (सूचित) होवे कि इस भयानक समय में, जो चारों तरफ आग प्रचण्ड हो रही है, उस एक प्रभु का ही भरोसा रखें। पहले भी उसकी कृपा से जीवन व्यतीत हुआ और आगे भी वह कल्याण का सबब (साधन) बनावेंगे। अपना विश्वास पूर्ण होना चाहिए। देखो प्रभु आज्ञा से कुछ राजनीति की इसलाह (सुधार) हो जावे तो तमाम मुल्क में शान्ति हो जावेगी। फिर उन्नति का भी कोई न कोई सबब बन जाता है। उस दीनदयाल की कृपा संजुगत (साथ) रहना चाहिये। जिसने उजाड़ा है वह ही आबाद भी करेगा।

मानुष की कोई शक्ति नहीं है। वह ही परम पिता सबको शांति देने वाला और नेकी वदी की रहनुमाई (मार्गदर्शन) करने वाला है। इस वास्ते उसकी दयालता से सब कुछ बेहतर हो सकता है। जमाने के चक्कर से बड़े-बड़े धीरजवान घबरा जाते हैं। फिर भी बस किसी का नहीं चलता है। समय खुदबखुद ही जब प्रभु इच्छा से पलटा खाता है तो सुख के भी सब सामान पैदा हो जाते हैं। तमाम प्रेमियों को धर्मवान् होना चाहिये। बड़े-बड़े क्लेश दुनियाँ में महापुरुषों को भी उठाने पड़े हैं तो और जीवों की क्या दशा हो सकती है। सिर्फ प्रभु की तरफ से किसी का इम्तहान (परीक्षा) होवे ही नहीं। नहीं तो दुनियाँ एक बड़ा अज़ाब (दु:ख) और घोर नर्क है। फ़कीर लोगों की क्या राय हो सकती है। ऐसे चक्कर में मासवाए (सिवाय) धीरज और धर्म के मुसीबत के दिन काटने बहुत मुश्किल होते हैं। हर वक्त प्रभु का भरोसा रखें और राजनीतिक चाल को देखें। प्रभु शायद अपनी कृपा से कृपा ही कर देवें। वैसे जीवों के अमल और कर्म तो शायद इस काबिल न ही होवें जो शान्ति को दुबारा प्रगट कर सकें। ईश्वर भरोसा रखें। तमाम लोगों के साथ यह बिपदा बनी है। पहले भी प्रभु आज्ञा से सब कुछ दुनियाँ का चक्कर देखा और आगे भी उसकी आज्ञानुसार ही देखेंगे। इस वास्ते दृढ़ विश्वास होना चाहिये। तमाम प्रेमियों को दुबारा आशीर्वाद कहनी। सब हालात फ़कीरों को रोशन हैं मगर चाला (वश) कुछ नहीं है। प्रभु की ही कृपा होनी चाहिए। जब जीवन में पहले ही प्रभु की लीला को विचार करके जो अपने आपको मुसाफिर समझकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनका सच्चा

उपदेश यही है कि दुःख को बर्दाश्त करें और संसारी सुखों का मोह त्याग करें। अपना जीवन प्रभु परायण बनावें और मरने से पहले मौत को कबूल करके असली ज़िन्दगी को हासिल कर लेवें। यह ही मानुष जन्म का धर्म है। इसके उलट जो सुख की रचना यह जीव रचता है वह अक्सर नाश हो जाती है। तो फिर पछताना पड़ता है। इस वास्ते पहले ही दुःख और सुख को प्रभु की आज्ञा समझकर नित्य ही निष्काम कर्म को धारण करना चाहिये जिससे जीवन निर्भय हो जावे और परम पद प्राप्त होवे। ईश्वर परमार्थ बुद्धि देवे और सत् सन्तोष प्राप्त होवे। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें। ईश्वर संकट नाश करें अपनी कृपा दृष्टि से।

----

17. प्रभु का निश्चय शान्ति प्राप्ति का साधन है

आशीर्वाद पहुंचे, तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। प्रेमी मंजू राम को आशीर्वाद पहुंचे, ईश्वर कृपा करें और सत्धर्म विश्वास देवें। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, जरूरतें बढ़ाने से अकसर दुःख होता है, इस वास्ते हर वक्त सादगी को अपनाएं। अपना ज़्यादा समय ईश्वर परायणता में सर्फ (खर्च) करें। यह दुनियाँ का बहाव अधिक कठिन है। सत् असूलों से ही अपनी रखिया (रक्षा) करें। प्रभु ने कृपा की है जो सच्चा हुक्म समता तुमको पहुंच गया है। उसको अब अपनाएं। ईश्वर बल बुद्धि देवे। तमाम दुनियाँ का फैलाव दुख रूप जानें। इससे गैर जानबदार (बेलगाव) होने की कोशिश करें यानी प्रभु स्मरण का निश्चय पैदा करें। यह खुलासी (मुक्ति) देने वाला रास्ता है। हर वक्त सही विश्वास करके चलो और अपने जीवन में शान्ति प्राप्त करो। ईश्वर सहायक हों।

----

18. समर्पण बुद्धि से निर्मल संकल्प और निर्मल यत्न प्रकट होता है

सुपुर्दगी यानी समर्पणता और यत्न का यह बल है कि समर्पणता के बल से केवल यथार्थ यत्न ही हृदय से उत्पन्न होता है जोकि जीवन उन्नति का सहायक है, और मलीन वासनाओं का अभाव हो जाता है।

समर्पण बुद्धि के बगैर जो भी यत्न किया जाता है वह बन्धन दर बन्धन और वास्तविक अशान्ति के देने वाला होता है यानी समर्पण बुद्धि से निर्मल संकल्प और निर्मल यत्न प्रगट होता है जोकि परम सुख का स्वरूप है। समर्पण बुद्धि की दृढ़ता शुद्ध प्रयत्न को प्रकाशने वाली है और नित स्वरूप आत्मा के आनन्द में स्थिति के देने वाली है। सत्पुरुषों का प्रथम सार साधन समर्पण बुद्धि की दृढ़ता ही है।

----

19. गुरु आज्ञा को अपनाना ही गुरु भक्ति है

ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। ईश्वर आज्ञा से काला में स्थित हैं। अभी कोई मौजूँ (अनुकूल) जगह नहीं मिली। देखिये नारायण की क्या आज्ञा होती है।प्रेमी जी, हर वक्त हमको हृदय में समझें। प्रभु आज्ञा से डेढ़ माह से जो अलील (नाजुक) हालत में रावलपिंडी ठहरे हैं और प्रेमियों ने अपनी सत् श्रद्धा से हर एक किस्म की सेवा की है प्रभु इसकी सफलता देवें और निर्मान भाव बख्शें। वह ही बड़ा खुशनसीब होता है जिसको जीवन में कुछ सेवा का मौका मिलता है। प्रेमी जी, हर वक्त अपने चित्त में निर्मल उपकार धारण करें। इसी में कल्याण है। तमाम प्रेमियों को वाज़य (सूचित) होवे कि अपनी सच्ची कुरबानी से समता के मार्ग पर चलकर असली शान्ति हासिल करें, जो मानुष जीवन का सार है। तुम्हारा पवित्र जीवन और कुरबानी का जज़्बा हर वक्त चाहते हैं। ईश्वर समर्थ देवे। अपनी कुशल पत्रका द्वारा आशीर्वाद तलब (हासिल) करते रहें। बड़ी जरूरत है इस वक्त उपकारी जीवन की। तुम प्रेमियों को अपनी ज़िन्दगी सुफल करनी चाहिए। हर वक्त यह भाव चित्त में दृढ़ करें। गुरु हुक्म को अपनाना ही असली गुरु भक्ति है। सत्संग का प्रोग्राम दृढ़ करें। अभी प्रेमियों के अन्दर असली धर्म के जज़्बात कम हैं इस वास्ते अगर तुम अपनी कल्याण चाहो तो पूरन निश्चय से समता के असूलों पर कारबन्द (अमल करना) हो जाओ फिर देखो क्या खुशी चित्त को प्राप्त होती है। तुमको वाज़य (सूचित) होवे कि जितना लिट्रेचर तुम्हारे को हासिल हुआ है इसको सही तरीका से मुताल्या (अध्ययन) करके अमल में लावें और दूसरों के वास्ते आदर्श सरूप बनें। अभी तुम्हारे बड़े इम्तिहान होने हैं। इस वास्ते हर वक्त मार्ग धर्म में दृढ़ता हासिल करें। प्रभु

सत् विश्वास देवे। सत्संग की कमजोरी को दूर करें और अपने जीवन को नित ही पवित्र करें। तमाम प्रेमियों को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् अनुराग देवें।

----

20. परोपकारी जीवन तथा आपस में प्रेम हेतु प्रेरणा

आज्ञाकारी सती सेवक रतन चंद जी व तमाम समता समाज दौरांगला!

आशीर्वाद पहुँचे। ईश्वर आज्ञा से आज काला पहुँच गए हैं। कल इस जगह से रवाना हो जावेंगे, क्योंकि उस जगह से प्रेमी लेने के वास्ते आज पहुँच गया है। आइंदा जो पत्रिका आवे मार्फत (द्वारा) सरदार तुलसासिंह बमकाम (गांव) जंड महलू, तेहसील गुज़रखान, ज़िला रावलपिंडी के घर देनी। प्रेमी जी! तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सबको सत्संग प्रीति बख्शे। हमको दूर न समझें, बल्कि अपने हृदय में हर वक्त समता के भाव को धारण करते रहें। दुनियाँ में परहित और परोपकार ही जीवन है। सो तुम तमाम प्रेमी सच्चे दिल से जगत सेवक बनने की कोशिश करते रहें। गुरु का आशीर्वाद तभी प्रफुल्लित होता है कि उनका बचन तन मन करके पालन करें। तुम्हारे जैसे सुपुत्र देश सेवा का भाव रखने वाले और हरेक के साथ सच्ची प्रीति रखने वाले, खोजते-खोजते तुम्हारे दौरांगला पहुँचे जिससे कुछ प्रेमियों को हासिल पाया। कृपा करके अपने मन में जगह देनी और हर वक्त सत् वचन धारण करने की कोशिश करते रहना। सत्संग के हालात लिखते रहें। हमारी प्रसन्नता तभी हो सकती है जब तुम प्रेमी सच्चे अधिकारी के स्वरूप में देखने में आओगे। प्रेमी जी! तुम लोग बहुत खुशनसीब हो, जिससे उस उस्ताद की नज़र के नीचे आए हो जिसके अंदर ईश्वर ने आकर खुद आगाही (प्रेरणा) तुम्हारी सेवा के वास्ते की। हर वक्त यह विश्वास धारण करें। किसी वक्त तुमको यह पता लगेगा कि हमारे रहबर (गुरु) का जीवन कैसा है। ईश्वर तुमको श्रद्धा देवें। तमाम संगत दोरांगला को दोबारा एक एक करके आशीर्वाद कहनी - मुताबिक सन्मुख के (जैसा कि सामने बैठकर) ईश्वर सबको सत्सेवा और मानुष जन्म की सफलता देवे और समता बुद्धि बख्शे। ईश्वर का निश्चय धारण करते रहें। यही परम खुशी है। प्रेमी दौलतराम, ज्ञानचंद, ओमप्रकाश, बैजनाथ, छज्जूराम,

करम चंद, अमरनाथ व रत्न चंद तुम्हारे वास्ते खास हिदायत (शिक्षाएँ) यह हैं, इन पर पूरा अमल करना :-

1. हर एक प्रेमी अपनी कुशल पत्रिका अलैहदा-2 (अलग-अलग) लिखा करें।
2. अभ्यास ज़रूरी किया करें।
3. सत्संग का नियम प्रकाश करने का यत्न करें।
4. समता की रोशनी को धारण करना और लोगों को आगाह (प्रेरणा) करना तुम्हारा पहला फर्ज़ है।
5. जो प्रश्न होवे पत्रिका द्वारा पूछ लिया करें।
6. तुम्हारा आपस में जीवन ऐसा होवे जैसे पानी और मछली।
7. हर एक प्रेमी सत् नियमों को धारण करने का पूरा यत्न करे।
8. ख्वाहे (चाहे) कुछ भी होवे तुम समता धर्म के पालन करने वाले बनें।
9. अपनी ज़िन्दगी को एक नमूना बनाकर दिखाएँ।
10. तुम खुशकिस्मत भी हो और बदकिस्मत भी हो। खुशकिस्मत इस वास्ते हो कि सही उस्ताद की पनाह (सच्चे गुरु की शरण) में आए हो। बद किस्मत इस वास्ते हो कि तुम्हारा इम्तहान हर वक्त नए से नया होगा। ईश्वर तुमको सामर्थ्य देवे। तमाम नौजवान, वृद्ध माताओं और बच्चों सबको आशीर्वाद कहनी एक एक करके। प्रेमी बंसीलाल, त्रिलोकनाथ, मनीराम-दीगर (शेष) प्रेमियों के नाम हमें याद नहीं, बल्कि श्रद्धा याद है। इस वास्ते उनको आशीर्वाद कहनी। और कभी-कभी पत्रिका द्वारा जरूरी दर्शन दिया करें। ईश्वर लोकसेवा और सत्संग प्रीति बख्शे। वापसी जवाब देना। ईश्वर तुमको श्रद्धा देवे।

आज्ञाकारी पंडित गौर प्रसाद जी!

आशीर्वाद पहुँचे। ईश्वर आपको सेवा भाव अधिक देवें। कभी कभी पत्रिका द्वारा आनन्दित भी किया करें। अपनी बहिन जी को आशीर्वाद कहनी। दूसरी माताओं को भी आशीर्वाद कहनी। तमाम कुन्बा (परिवार) को आशीर्वाद पहुँचे। रतनचंद जी, यह पत्रिका सुनाकर हर एक को अपना अपना फर्ज़ जतला देना। वापसी पत्र भी लिखना।

(मंगतराम - अज़ जंड महलवां डाकखाना ऐज़ान)
मार्फत सरदार तुलसासिंह, तहसील गुजरखाँ
ज़िला रावलपिंडी (पाकिस्तान)

----

21. सही जीवन कल्याण मार्ग

जब तक इस जीवन भेद को न जाना जावे तब तक सही कल्याण के मार्ग को समझना या इस पर चलना अधिक दुशवार है। अज्ञानमयी जीवन या भोगमयी जीवन की तो सिर्फ ऐसी ही स्थिति जन्म से लेकर शरीर के विनाश होने तक बनी ही रहती है कि बड़े से बड़े ऐश्वर्य भोग प्राप्त करो और नित ही जीवन बना रहे। ऐसे भोग विकारों की चेष्टा जैसी भी जिसके अन्दर अधिक दृढ़ होती है मसलन (जैसे) अधिक लोभ या अधिक मोह या अधिक क्रोध या अधिक अंहकार या अधिक काम प्रबल रूप में एक ना एक औगन (अवगुण) हरएक के अन्दर मौजूद रहता है और इसी औगन की कैद में बुद्धि अपना संसार कायम करती है यानी अधिक लोभ मौजूद हो तो धन माल को संचित करने में अधिक चतुर होता है। अधिक मोह हो तो वह मानुष अधिक परिवार की वृद्धि में लवलीन रहता है। अधिक क्रोध जिसके अन्दर हो तो वह नाना प्रकार की तजवीज़ें (तरकीवें) दूसरों की हानि की सोचता है। बहुत फरेबी और जल्लाद तबीयत (हिंसक वृत्ति) का होता है। अधिक अंहकार मौजूद हो तो वह मानुष अपनी सरदारी कायम करने की खातिर अधिक यत्न करता है। ऐसे ही अधिक काम चेष्टा जिसके अन्दर बलवान होती है तो वह मानुष अधिक भ्रष्टाचारी और स्त्रियों का मुरीद होता है। ऐसे ही पशु भी इन विकारों की अग्नि में जलते रहते हैं। यह ही मादावाद और प्राकृतिवाद का जीवन चक्कर है। ऐसे ही

भोगमई जीवन को धारण करके जो यह कहे कि मैं दूसरों की कल्याण करूंगा वह महज़ (केवल) एक पशु ही है। क्योंकि उसने कल्याण तो अपनी पहिले की नहीं है और मानसिक विकारों के ज़ेर असर (आधीन) होकर अपनी आदात को पूरा करना चाहता है। उससे दूसरों की कल्याण होनी महज़ एक ढोंग है जैसा कि आजकल के कई प्रकार के लीडर बनकर अपनी दर पर्दा आदात को पूरा करने की खातिर दूसरों को सबज़ बाग (लुभावने दृष्य) दिखाकर अनर्थ कर रहे हैं। यही जीवन असुरमई है। इस किस्म के विकारमई जीवन में कभी भी संसार में शान्ति नहीं हो सकती है। यह तो अपने-अपने कपट को एक दूसरे पर ठोंसने का यत्न करते हुये अपने आन्तरिक दोषों में अधिक जल रहे हैं। शान्ति कहां है और किस तरह हो सकती है? अच्छी तरह से विचार करें। इस भयानक खेदमई जीवन के उल्ट आस्तिकवाद और सत्वाद का मार्ग है, जिस तरफ यत्न करने से प्रथम अपनी कल्याण होती है फिर दूसरों की भी। उसी कल्यान का सरूप यह है कि जो बढ़ते हुए विकार अन्तर बाहिर जला रहे हैं उनमें संतोष प्राप्त होता है और बुद्धि बलवान होकर अपने अन्तर निष्काम त्याग को हासिल करती है जो सरब कल्याण का स्वरूप है। ऐसे विकारमई जीवन से जाग्रित होकर के आत्ममई जीवन की दृढ़ता धारण करनी चाहिए। ज्यों-ज्यों बुद्धि देह मद को त्याग करके आत्म सत्ता के परायण होती है त्यों-त्यों आन्तरिक सब दोष नाश को प्राप्त होते हैं, तब बुद्धि निर्दोष और निर्वास हो करके अपने नित सरूप में स्थिर होती है। फिर निष्काम रूप में सर्व जगत की कल्याण करने वाली होती है, यह ही देव मार्ग शान्ति के प्रकाशने वाला है। पहिले अपनी कमज़ोरियों और कामनाओं से पवित्र होना चाहिए, तब दूसरे की कमज़ोरियां और कामनायें पूरन करने में यह धीर पुरुष बलवान हो सकता है। यह थोड़ा-सा विचार लिखा जाता है, अच्छी तरह से समझ करके अपने आप को सही उन्नत करने का यत्न इख्तियार (धारण) करें। यानी भोगवाद और नास्तिकवाद से पवित्र होकर के सत्वाद और आत्मवाद के परायण होवें जो सरब कल्याण सरूप है। अच्छी तरह से पुस्तकों का मुताल्या (अध्ययन) करें। तुम्हारे जैसे नौजवानों का जीवन बुनयादी देश व धर्म उन्नति के वास्ते होना चाहिए जोकि आइन्दा और हाज़रा (वर्तमान) के अन्धेरे में एक रोशनी का काम देवे। ईश्वर सत् वुद्धि अनुराग देवे।

----

22. उद्देश्यपूर्ण जीवन की प्रेरणा

ईश्वर सदाचारी जीवन बख्शें। प्रेमी जी, हर वक्त अपने जीवन को बुलन्द करने की कोशिश करते रहें। ईश्वर के दृढ़ विश्वासी होकर अपने जीवन को नित पर-उपकारी बनावें और समता की रोशनी को फैलायें जिससे सब जीव सुख पावें। तमाम प्रेमियों का फर्ज़ है कि अपना जीवन बाअसूल बनाकर दूसरों को एकत्र होने की प्रेरणा किया करें और सत्संग का नियम बहुत आला (श्रेष्ठ) बनावें, जिससे दूसरों को भी सबक आवे और धर्म की उन्नति होवे। अगर तुम अपने रहनुमा (मार्गदर्शक) के बचन को आनन्ददायक समझ चुके हो तो प्रेमी जी, फिर आगे ही आगे होते जावेंगे। और अपने जीवन को लामिसाल बनावें। तुम प्रेमियों की कुरबानी से ही धर्म जाग्रित होगा। हर वक्त हमको हाजिर समझें। समता की रोशनी हर एक के दिल में कायम करें। जिधर भी जावें समता की तलकीन (प्रेरणा) करते रहा करें। इस वक्त बड़ा अन्धकार फैला हुआ है। हर वक्त सत् पुरुषार्थ धारण करें। ईश्वर अधिक गुरु वचन का विश्वास देवे। बाल सत्संग के बारे में उन बच्चों की अच्छी तरह निगरानी करनी। कुछ वक्त के बाद वह ही समता को प्रकाश करने वाले होंगे। तमाम प्रेमियों को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर एक जीवन सबका कर देवे ताकि एक लक्ष कायम कर देवें। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

----

23. उच्च जीवन बनाने की प्रेरणा

प्रेमी जी, अपने जीवन को अब देव मार्ग में निश्चित करने का पूरा यत्न करें। जो समा गुज़र चुका है उसमें जैसा भी जीवन का तजुरबा किया है उस पर गहरी गौर करते हुए, और जीवन यात्रा का सही मकसद (उद्देश्य) समझते हुए अपने आप को जाग्रित करें और गुरु वचन को पूर्ण निश्चय से हृदय में जगह देवें। ऐसी भावना में ही सर्व कल्याण है। मानुष जन्म की उच्चता यही है कि सत्पुरुषों के आदर्श को धारण करके अपने आप को सत् परायणता में दृढ़ किया जावे, जो तमाम दोषों से पवित्रता के देने वाली है। प्रेमी जी, गुरु आज्ञा को पालन करते हुए अपने आप को सत् विश्वासी और सत् निदिध्यासी बनावें और सत् नियमों को अपने जीवन में

श्रंगारित करें तब सहज ही निर्भय शान्ति अविनाशी पद प्राप्त कर सकेंगे। हर समय गुरु बचन को हृदय में निश्चित करें। सादगी के पूर्ण अनुयाई बनें। तमाम फजूल हरकात से परहेज़ रखें। समता सत्संग को उन्नत करें। अपने कारोबार में पूर्ण सत्य धारण करें। तमाम प्राणी मात्र से प्रेम रखें। अभ्यास में पूरा पूरा समां दिया करें। प्रभु कृपा के हर वक्त प्रार्थी होवें। ऐसी निर्मानता और सरलता की भावना को धारण करते हुए अपने जीवन को पूर्ण पवित्र करें। यह ही साधना सत्पुरुषों का मार्ग है।ईश्वर दृढ़ विश्वास देवे।

----

24. अन्तिम वासना और संग दोष का असर (पुनर्जन्म)

जैसे-जैसे अच्छे या बुरे कर्म मनुष्य करता है अन्त के समय की वासना के मुताबिक (अनुसार) उसको दुबारा शरीर मिलता है। अगर अन्त के समय तमोगुण प्रधान होवे तो मानुष का जीवन जड़ जूनी को धारण करता है। अगर रजोगुण प्रधान होवे तो पशु जूनी को प्राप्त होता है। अगर सतोगुण प्रधान होवे तो मानुष शरीर को धारण करता है। ऐसे ही दूसरी जूनियों के भी जीवों की दूसरे शरीरों की तबदीली होती है यानी अन्तिम वासना के अनुसार तो आईन्दा का शरीर धारण करता है और उस शरीर में बाकी के जो कर्म पिछले शरीरों में किये हुये हैं, वहां भोगता है। और संग दोष से नये भी आरम्भ करता है। यही सिलसिला अनेक जूनियों में भरमाता है। जब तक कर्म वासना के भयानक जाल से छुटकारा नहीं मिलता है अपनी वासना के अनुसार ही नये से नये शरीर को धारण करता हुआ दुख सुख द्वन्द्व में नित्य ही खेदवान रहता है। यह ही जीवन यात्रा वास्तव में परम संकट रूप है। मानुष जन्म में आकर के इस कर्म वासना के द्वन्द्व रूपी जाल को सत् स्वरूप के बोध के विवेक से नाश करके नित स्वरूप में स्थिति हासिल करना ही परम उच्च कर्त्तव्य है। कोई महागुणी ही इस दुस्तर माया से निरबन्ध होकर के सत् स्वरूप में निहचलता हासिल करता है। उसका जीवन अति दुर्लभ है और परम कीर्ति योग है। अपनी निर्मल अध्यात्म उन्नति करना सब मानुषों के वास्ते ज़रूरी है क्योंकि मानुष जन्म बड़ा दुर्लभ है। इसमें छुटकारा हासिल हो सकता है। ईश्वर सुमति देवे।

----

25. मनुष्य की आयु

प्रेमी जी, आयु कर्म के अनुसार है। कर्मों से शरीर बनता है और कर्मों के बिगड़ने से नाश हो जाता है। शरीर कर्म रूप ही है। आयु कोई मुकर्रर नहीं है। और न ही हो सकती है। सिर्फ अन्दाज़न 125 वर्ष इस जमाने की आयु है।

उम्र का घटना और बढ़ना कर्मों के अनुसार है। शरीर मिसल मशीन (मशीन के समान) के हैं। अगर बा हिफाजत काम लिया जावे तो ज्यादा वक्त चल सकती है और बेहूदा तरीका से इस्तेमाल की जावे तो जल्दी बिगड़ जाती है। इस वास्ते नेक कर्म आयु को बढ़ाने वाले हैं और बुरे कर्म आयु को घटाने वाले हैं। बाकी ऐसे वैसे रोग कर्म संस्कारों से लग जाते हैं जो आयु को छिन्न कर देते हैं। आखिरी निर्णय यही है कि शरीर की पैदाइश, स्थिति और नाश कर्म संस्कारों पर है। ईश्वर की कोई मदाखलत (हस्तक्षेप) इसमें नहीं है। जितना बाहिफाज़त एमाल (कर्म) होकर जिन्दगी बसर करोगे उतना ही ज्याद अरसा जीवन रहेगा। जितना पाप कर्म के जाल में लपेट खाओगे उतना ही जल्दी शरीर नाश हो जावेगा, यह अच्छी तरह से विचार कर लेवें। ईश्वर सत्संग प्रीति बख्शें और अपने जीवन को नमूना बनावें। प्रेमी जी, शूरबीर होकर अपनी ज़िन्दगी को दूसरों के वास्ते सुखदायी बनाओ। ईश्वर समर्थ देवें।

----

26. पवित्र आचरण से स्वार्थ और कामना के अन्धकार का नाश होता है

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् अनुराग देवे। प्रेमीजी, नित्य ही सच्ची खुशी की तलाश करनी चाहिये। जो हर समय पूर्ण और गैर तबदीली है वो एक जीवन शक्ति आत्मा ही है। जब तक मन अन्तर से दृढ़ विश्वासी उस मालके कुल का न होवे तब तक सही कदम ज़िन्दगी में उठाना और असली ज़िन्दगी को हासिल करना अति मुश्किल है। इस वास्ते अपने आप में पहले पवित्रता धारण करनी ही सर्व उन्नति है, क्योंकि मन पवित्र होने से ही उच्च कार्य करने के लिए दृढ़ हो

जाता है। उच्च कार्य वह ही होता है जो महज़ (केवल) प्रभु आज्ञा में निश्चित किया जाये और अपनी गर्ज़ को छोड़कर बिलकुल सही फर्ज़ करके अमल में लाया जावे। ऐसी धारणा ही सर्व कल्याण का स्वरूप है। ऐसा कार्य करो जो तुम्हारी ज़िन्दगी और आखरित के वास्ते निर्भय खुशी के देने वाला होवे। ऐसा कार्य करो जो तमाम दुनियाँ में सुख की रोशनी प्रकाश करने वाला होवे। ऐसा यत्न करो जिससे मन की नारवा (अनुचित) खुशियां खत्म हो जावें और सही तसल्ली जीवन में हो जावे। ग़मी को हर वक्त नज़दीक करके सही खुशी की तलाश करो। यह ही सत्पुरुषों के जीवन का राज है। हर वक्त आला (श्रेष्ठ) हौसला होकर ज़िन्दगी के अंजाम की तहकीकात (खोज) करें। ये जीवन विकारों के वास्ते नहीं है, बल्कि विकारों की जड़ को उखाड़ने के वास्ते है। प्रभु बल, बुद्धि देवे और गुरु वचन का विश्वास प्राप्त होवे। तमाम माताओं और बच्चों को आशीर्वाद कहनी। तमाम प्रेमियों को ये पत्रका सुनानी और गाहे बगाहे (कभी-कभी) पत्रका द्वारा सत् उपदेश हासिल कर लिया करें। अपना प्रोग्राम दृढ़ करते रहें। मालिक की मौज सुख के देने वाली है। ईश्वर सत् अनुराग देवे और गुरु भक्ति प्राप्त करें। अपनी ज़िन्दगी एक पाकीज़ा रूप में पेश करें। बड़ी जरूरत है इस वक्त पवित्र आचरण की। दुनियाँ में खुद़गर्जी और अति कामना का अन्धकार छा रहा है इस वास्ते कोशिश करो अपने आपको पवित्र करने की। प्रभु बुद्धि बल देवें। प्रभु सहायक होवें । अभ्यास जरूरी किया करें।

----

27. सदाचारी जीवन और ईश्वर भक्ति को धारण करने का अनुरोध

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। इन बातों को हर वक्त याद रखना चाहिए। दुनियाँ में सदाकत (सच्चाई) पसन्द बहुत थोड़े होते हैं। आम जनता माया की गिरफ्तारी, झूठ, अन्धकार को पसन्द करती है।

(2) सदाकत (सच्चाई) पसन्द लोग अपने रास्ते को साफ करते हैं। उनको दूसरे लोगों से मतलब नहीं।

(3) जिस वक्त मुस्तकिल (पक्का) होकर सच्चाई के मैदान में जो कोशिश करता है उस वक्त दूसरी जनता खुद उसके पीछे चलती है। किसी को सुधारने की ख़ातिर अपना खुद सुधार किया जावे तब बेहतरी हो सकती है। तुम तमाम प्रेमियों को समता के असूल अपनाने की कोशिश करनी चाहिये जिससे तुम्हारी ज़िन्दगी बहुत आला (श्रेष्ठ) बन जावे और दूसरे लोगों को भी सुख मिले। प्रेमी जी, सत्संग का प्रोग्राम दृढ़ रखें। ईश्वर खुद-बखुद तरक्की देवेंगे। सच्चाई के रास्ते में चलने में बेशक तकलीफ तो बहुत होती है मगर उसका समर (फल) परम सुख के देने वाला है। इस दुनियाँ में ब़गैर सत्मारग के चलने के कभी भी असली खुशी को हासिल नहीं कर सकता। हर वक्त दूसरे की भलाई करनी चाहिए और अपने सच्चे धर्म समता में हर वक्त कुर्बान होने की कोशिश करो। इस वक्त धर्म की जो ज़ाहिरी (बाहरी) हालत देखते हो वह असली धर्म से बहुत पीछे है। यानी खुदगर्ज़ उपदेशकों ने असली तालीम को अलोप कर दिया है। खुद भी अन्धकार में अत्याचार करने लगे और जनता के लिए भी पापकर्म का रास्ता खुला कर दिया है। ऐसे नाजुक ज़माने में बहुत सी कुर्बानी से जागृति होवेगी। तुम सच्चे धर्मपुत्र होकर ज़रूरी सेवा का सबूत देवें। प्रेमी जी, जिस इन्सान के अन्दर असली धर्म का विश्वास नहीं और अपने देश की सेवा का भाव नहीं, वो इन्सान मत जानें बल्कि हैवान है। अपनी खुदी में ग़ल्तान (स्वार्थ में लीन) है। हर वक्त कोशिश करनी चाहिए नेक कर्मों की। सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरन, इन नियमों को हर वक्त अपनाते रहें। आत्म विश्वासी बनें। अपनी ज़िन्दगी में देशभक्ति हासिल करें। ये चाम का शरीर आखिर अकारथ ही जावेगा। प्रेमी जी, नित ही असली ज़िन्दगी को हासिल करो। अपनी आदत को काबू करके पर उपकारी बनाओ। समता की रोशनी को फैलाओ जिससे लोगों को शांति मिले। ईश्वर विश्वास, देश सेवा, सदाचारी जीवन और ईश्वर भक्ति को हर वक्त धारण करते रहें। इन्हीं सत्नियमों से मन शुद्ध होकर आत्म परायण हो जाता है और इस संसार से असली खुशी लेकर जाता है। तमाम जनता को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सबको सत्बुद्धि देवे और समता का जीवन बख्शे।

----

28. वाद-विवाद करना उचित नहीं

आशीर्वाद पहुँचे, पत्रका मिली, तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। बहस मुबाहसे (वाद-विवाद) करने अच्छे नहीं। तुम अपने सुधार का विचार करें। आखिरी जवाब यही है कि हम सबको मानते हैं। अपने आचार-विचार का दुरुस्त करना परम धर्म समझते हैं। जो बुजुर्गों की आड़ लेकर पाप करते हैं वह कभी भी समता के धर्म को पालन नहीं कर सकते। इस वास्ते तुम अपनी बेहतरी करें। खाहे (चाहे) दो आदमी हों सत्संग जरूरी किया करो। इसी से बरकत (तरक्की) होवेगी।

----

29. अपने फर्ज़ को समझ लेने से अशान्ति नाश हो जाती है

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सबको सत्बुद्धि देवे। हर वक्त समता के प्रचार की कोशिश करें। इस वक्त दुनियाँ की शांति इसी ही तरीका से हो सकती है, ईश्वर का हुक्म ही ऐसा है। प्रेमी जी, अगर हर एक इन्सान अपने जायज़ फर्ज़ को समझ लेवे तो फिर अशान्ति नाश हो जाती है, मगर खुदगर्ज़ी के दामन में आकर हर एक जीव धर्म में पतित हो जाता है, तब दुनियाँ में अशांति फैल जाती है। गुणी पुरुष अपने जायज़ फर्ज़ को समझकर अपने जीवन को रास्ती (सच्चाई) की तरफ रागि़ब करते रहते हैं और लोगों की भी सेवा करते हैं, ऐसा ही निश्चय तुमको होना चाहिए। ईश्वर सबको सत्बुद्धि देवे। प्रेमी जी, ऐसा निश्चय हर वक्त धारण करें, गुरुबचन की पालन करनी, सत्संग प्रीति, पर उपकार सेवन, आत्मक उन्नति की खातिर रोजाना अभ्यास। तुम्हारी श्रद्धा तुमको अधिक प्रताप देवे जिससे दुनियाँ में एक आश्चर्य जीवन को धारण करें। ये संसार मन की कल्पना में स्थित है इस वास्ते जिसकी कल्पना शुद्ध है उसको हर पहलू से सुख नसीब है। बहुत सी देश सेवा तुम प्रेमियों के सिर पर है, हर वक्त कोशिश रास्ती (सच्चाई) की करें। तमाम अपने गुरु भाइयों को तम्बीह (सूचित) करनी कि तुम लोगों ने एक मुश्किल जीवन वाले के साथ ताल्लुकात (सम्बन्ध) पैदा किये हैं, अब सोने का वक्त नहीं है बल्कि जागने का वक्त है। सत्संग की प्रीति पैदा करो। तुम प्रेमियों की ज़िन्दगी बहुत सी कुर्बानी वाली होनी चाहते

हैं। ईश्वर विश्वास, लोक सेवा और मौत की याद को कभी भी न भुलाना। प्रेमीजियो, तुम धर्म के रख्यक और देश सेवक बनो। तमाम प्रेमियों को वाज़्या (पता) होवे कि अभी भी तुम भूले हुए हो, तुमने अपनी ज़िन्दगी की बागडोर एक मुसाफिर के हाथ दी है। अब मुश्किल को बरदाश्त करो। अब जिस मैदान समता की तरफ आये हो उसमें मर मिटो तब अबदे हयाती (हमेशा का जीवन) को पाओगे। ईश्वर समर्थ देवे, सत्बुद्धि देवे, सत् विश्वास देवे।

----

30. जीवन की रक्षा

ईश्वर सत् बुद्धि देवे। जीवन शक्ति ही नारायण का रूप है। जो जानबूझ कर जीवन हलाक (मारे) किये जाते हैं उनकी सज़ा मिलती है और जो लाइलमी (अनजाने) में नाश होते हैं, उनका कोई पाप नहीं। नीज़ दीगर (अन्य) जो बनास्पति है वह जिन्दगी का आधार है, इस वास्ते महान पुरुषों ने नीति कायम की है कि जो खून वाली और स्वांस लेने वाली चीज़ है उसकी रक्षा जरूरी है। जीवन शक्ति का कभी नाश नहीं होता सिर्फ जिस कालब (शरीर) में जो अहंकार सरूप जीव है, उसकी रक्षा करने का विचार है। स्वांस वाली चीज़ की रक्षा जरूरी है। ईश्वर सत् बुद्धि देवें। जो ख्वाहिश करके कर्म किया जाता है उसका बन्धन है। जो लागर्ज़ (निष्काम) होकर कर्म किया जाता है उसका कोई पाप नहीं। निष्काम कर्म और सकाम कर्म का विचार कर लेवें। तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे।

सत्संग सम्बन्धी पत्र

31. सत्संग कायम करने का उपदेश

(1) आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् धर्म विश्वास देवे। ईश्वर आज्ञा से अच्छा हो गया है जो सत्संग कायम कर दिया है। इससे प्रेम बढ़ता है। नीज (तथा) तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, एक तो जल्दी सत्संग की जगह तबदील न करें।

(2) सत्संग अभी तुम्हारे ही यहां होवे तो ठीक है। तुमको तजुरबा ज्यादा है।

(3) पहले अपने तमाम प्रेमी एकत्र होकर सत्संग करें फिर दूसरों को मुतला (खबर) करना। बच्चों वाला खेल न बनाना, जो बात करो मुस्तकिल (पक्के) तरीका पर करो। अभी मकान किराया वगैरा पर लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। आगे जिस तरह संगत विचार करे। रावलपिंडी में सत्संग पूर्ण भाव से होवे तो जागृति ज्यादा हो सकती है। और प्रभुदयाल अच्छी कारवाई समझता है, इस वास्ते उस पर भी जिम्मेदारी डालें और इधर से भी पत्रिका लिखी जावेगी। नीज प्रेमी जी, ऐसी सत्संग की बुनियाद कायम करें जिससे तमाम नाम जीवित हो जावे। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। ये एक बड़ी ज़िम्मेवारी और सेवा का काम है। तुम खुद प्रेम करोगे और सत्संग में समता के असूल सुनाओगे तो कई लोगों का भला हो जावेगा। और एक महावारी सत्संग आला दर्ज़े का रखें जिसमें गोलड़ा के प्रेमियों को खबर कर दिया करो। प्रभु दयाल को पता ही है। इससे ज़्यादा प्रेम और वाकफियत (परिचय) बढ़ती है। इस काम को शुरू किया है तो प्रेमी जी, आला (उत्तम) तरक्की करें। ईश्वर तुम सबको धर्म की प्रीति देवे। रावलपिंडी समता समाज के प्रेमियों को वाज़्या (सूचित) होवे कि शहर में ऐसी धर्म की भावना को प्रगट करें जिससे समता का असर सबके अन्दर होता जाये। बच्चों वाली कारवाई न करनी। हर वक्त धर्म के मैदान में दृढ़ रहें। तुम्हारा समता का लिट्रेचर (साहित्य) इतना है कि कोई मुकाबला नहीं कर सकता है। हर एक बात का विचार पूर्ण हो चुका है। सिर्फ तुमको जागृत करना है। देखो फिर कितने लोगों के अन्दर प्रकट हो जावेगा। ईश्वर सबको अधिक प्रेम समता का देवे और तमाम असूलों को दोहराया करें।

----

32. सत्संग में सादगी की ज़रूरत

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सबको मार्ग धर्म में स्थिति देवे। प्रेमी जी, किसी के सुधार की ख़ातिर खुद कुरबानी करे तब ही दूसरे को कुरबानी का चाव पैदा होता है। आहिस्ता-आहिस्ता अपना सत्संग सम्मेलन बनाये रखें। इसी से प्रेम और समता बढ़ती है। ईश्वर विश्वास में परिपक्क होना चाहिए। और दिल व जान से लोक सेवा में निश्चित होना चाहिये। इसी से अन्त:करण शुद्ध होता है और प्रभु की महिमा चित्त में प्रगट होती है। हर वक्त नारायण आज्ञा को दृढ़ करना चाहिये। गोलक वगैरा सत्संग में बिल्कुल नहीं रखनी। इसका असर अच्छा नहीं होता है। जैसा मुनासिब होवे आपस में विचार करके कर लिया करें। सादगी की ज़रूरत है। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। इस न रहने वाली दुनियाँ में अपने आपको एक मुसाफिर जानकर सर्व सुखदायी जीवन धारण करना चाहिए। इसी में असली भक्ति है। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

33. सत्संग प्रेम और अभ्यास से धर्म की जागृति

आशीर्वाद पहुंचे। जमाने की गरदिश अकसर दुखदायी है। मगर अपना शुभ कर्म सब हाल में सहायता करता है।

(1) तमाम प्रेमी अभ्यास ज़रूरी किया करें। और रोज़ाना घर में सत्संग भी पवित्र वाणी का किया करें।

(2) हफ्तावारी सत्संग में सब एकत्र हुआ करें। प्रभु का भरोसा रखें। वो ही शान्ति करने वाला है। तमाम देश में अग्नि प्रचण्ड हुई है। ऐसे समय में जब चारों तरफ अन्याय ही अन्याय का स्वरूप प्रगट हो जावे उस वक्त समता के असूल अपनाने ही शान्ति के देने वाले होते हैं। ईश्वर रख्या करे और शान्ति देवे। हर वक्त धर्म का विश्वास प्राप्त होवे। पाप कर्म का जब खात्मा होवेगा तब शान्ति होवेगी। इस वास्ते अपने आपको ईश्वर परायण बनावें। और एकता, प्रेम धारण करें। धर्म को साथी बनावें। इसी से कल्याण होवेगी। ईश्वर शुभ भाव प्रकाश करें। सब संगत के दर्शन का अभी समय नहीं है। प्रभु आज्ञा होवेगी तो हाज़िर दर्शन हो जावेंगे। वैसे ज्ञान रूप में हर वक्त हाज़िर जानें।

----

34. सत्संग में हाज़िरी की आवश्यकता का उपदेश

श्री महाराज जी फरमाते हैं कि तुम्हारे विचारों को अनुभव किया गया, सो वाज़य (सूचित) होवे के समता मार्ग में ऐसा उच्च कर्त्तव्य धारण करना हर एक प्रेमी के वास्ते जरूरी है कि जिस करके सही धर्म की जागृति हो और सर्व का कल्याण होवे। जब समता में दुःख को प्राप्त करके दूसरों को सुख देना, निरादर को प्राप्त करके दूसरों को आदर देना, खेद को प्राप्त करके दूसरों से प्रेम करना, दूसरों के मानसिक दोषों का परित्याग करके अपने पवित्र आचरण से दूसरों की कल्याण चाहनी, अपनी अधिक विचारशील बुद्धि होते हुए भी दूसरे मन्द बुद्धि वालों से अधिक नम्रता प्रेम से बरताव करना, अपने से दूसरों को नित ही श्रेष्ठ जानना और उनके गुण की धारणा करनी, अपने नित्य स्वभाव करके दूसरों से हित रखना और शत्रुपन के मुकाबला में अधिक मित्रता से पेश आना ही निर्मल समतावादी पुरुषों का धर्म है सो प्रेमी जी, ऐसे मार्ग में निश्चित होते हुए तुमने किस भावना से सत्संग का त्याग पत्र लिखा है?

ऐ श्रेष्ठ बुद्धि वाले प्रेमी, तुम्हारे वास्ते ऐसा योग्य नहीं है कि ऐसे तुच्छ और मन्द विचारों को अन्तःकरण में जगह देवें। बल्कि बशश (विशाल) चित्त हो करके सत्संग के प्रोग्राम को ऐसा दृढ़ करें जिससे राजधानी जैसी जगह में समता का स्वरूप प्रकाशक हो करके बहुत सज्जनों को लाभ होवे। प्रेमी जी, जब स्वार्थ में तमाम अवस्था गुज़र गई, आप खुद महसूस करते हैं, तो अब परमार्थ का एक विशेष नियम जो सत्संग है उसको निरमान और निष्काम भाव से अपनायें। इससे अपने आप का भी उद्धार है और संगत का भी उत्साह बढ़ता है। बाकी यह विचार अपने चित्त से बिलकुल निकाल देवें कि मेरी हाजरी या विचार संगत को कुछ अच्छे नहीं लगते। यह तुम्हारा अपना भ्रम है। संगत के वास्ते तुम एक अधिक शिरोमणी प्रेमी हैं और संगत ऐसा निश्चय करती है कि तुम अपने निश्चय से सब प्रेमियों से अधिक हित करें। किसी के मुत्तलिक (बारे में) कोई भ्रम धारण न करें। सब प्रेमी तो तुम्हारे जैसे शिरोमणी प्रेमियों के उत्साह के चाहतक हैं। तुमने यह भ्रम कैसे धारण कर रखा है? तुम्हारे वास्ते ऐसा विचार बिलकुल योग्य नहीं है। बाकी जिस प्रेमी की गलतियों के बारे में लिखा है उसका उद्धार भी संगत के प्रेम द्वारा ही हो सकता है, न कि नफ़रत से। सो इन विचारों को अच्छी तरह ग़ौर करके मुताल्या (समझें) करें। तो फिर अपने श्रेष्ठ कर्त्तव्य

को पालन करने का यत्न करें। गुनी पुरुषों का धर्म है कि श्रेष्ठ गुन की धारणा में अपना आप सब कुछ बलिदान दे देवें। तब ही निर्मल धर्म प्रकाश करता है। तुम एक श्रेष्ठ कुल के सुपुत्र हो और श्रेष्ठ बुद्धि होते हुये तुम्हारे वास्ते बिलकुल ऐसा योग्य नहीं है कि सत्संग से अलैहदगी इखत्यार (धारण) करें। बल्कि इस प्रोग्राम को ऐसा दृढ़ बढ़ावें कि आम ममता की अग्नि में जले हुये मानुष ठण्डक को प्राप्त कर सकें। ऐसा प्रयत्न तमाम प्रेमियों के वास्ते अधिक ज़रूरी है। आगे तुम अपने स्वभाव के मुताबिक जैसा चाहें वैसा करें। इधर से जो प्रेमियों के वास्ते खास चेतावनी है वो सिख्या रूप में पेश कर दी है। आगे तुम खुद अपनी सही उन्नति और फर्ज़ को समझें। गुनी पुरुष तो अपने वास्ते संगत के जोड़ों (जूते) की धूल साफ करनी भी खुशनसीबी जानते हैं। ऐसी नम्रता की धारणा ही सर्व कल्याण के देने वाली है। ईश्वर सुमति देवे।

----

35. सत्संग के लिए प्रेरणा

संगत आपस में प्रणाम या ब्रह्म सत्यम् कहकर बैठ जाया करे। पुस्तक को बिलकुल माथा टेकना मना है। और सिर्फ पुस्तकों को थोड़ी ऊंची जगह रखकर पाठक साधारण जगह ही बैठकर विचार करें। और किसी किस्म की नुमायश या गद्दी लगाने की ज़रूरत नहीं है। इससे कमजोर बुद्धि वालों के अन्दर अक्सर अभिमान आ जाया करता है। इस वास्ते निर्मान भाव से ही पाठक बैठ करके पाठ या विचार किया करें। ये सबको बाज़य (सूचित) कर देवें कि अगर आसन लगाना होवे तो सिर्फ पाठक के वास्ते कुशा या ऊन का आसन लगाना चाहिये। हर एक काम में सरलता और सादगी होनी अधिक जरूरी है। नुमायशों से परहेज़ करना चाहिये। इससे अन्तःकरण की शुद्धि प्राप्त नहीं होती है बल्कि ईर्खा और अभिमान पैदा होने का खतरा हो जाता है। ऊंच नीच का भेद सत्संग में नहीं होना चाहिए। बल्कि हर एक प्रेमी छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा सेवा का कार्य सरेअंजाम देते हुये अपने आपको एक अनुयाई होने का वो अधिकारी हो सकता है, तब ही सही धर्म की जाग्रति अपने आप में और दूसरों में हो सकती है। इस वास्ते आइन्दा आज्ञानुकूल ही सब कारज किया करें। ईश्वर सुमति देवे।

धर्म सम्बन्धी पत्र

36. ईश्वर विश्वास और धार्मिक जीवन अपनाने का अनुरोध

आशीर्वाद पहुंचे। प्रेमी जी, शायद तुमको याद होवेगा कि पिछले साल यह तुच्छ सेवक आपके चरणों में कुछ वक्त ठहरा था और कुछ प्रार्थना भी की थी कि सत्संग का प्रोग्राम दृढ़ करके धारण करें। आप कारोबार के सिलसिले में यह प्रार्थना भूल गये होंगे। मगर फिर दुबारा अर्ज़ की जाती है कि ज़रूरी एकत्र होकर सत् धर्म विचार किया करें। तुम्हारी कुर्बानी से आइन्दा की नसलें जीवित होवेंगी। महज़ (केवल) दुनियाँ के कारोबार की खातिर यह जीव नहीं आया, बल्कि अपनी कल्याण की खातिर जीव का संसार में आने का कारण है। इस वक्त चारों तरफ देश में आग लगी हुई है। तुमको चाहिए कि नारायण का खौफ़ करके कुछ वक्त संगत में दिया करें जिससे नौजवानों के दिल में देश भक्ति और पर उपकार की लहर बढ़े। प्रेमी जी, तुम्हारी बेहतरी के लिए यह अर्ज़ की थी और अब भी की जाती है। बड़ी-बड़ी कुर्बानियां तुम्हारे पुरातन बुजुर्गों ने कीं। अब तुमको भी लाज़िम (जरूरी) है उनके नक्शे कदम पर चलना। दोरांगला निवासियों को भी प्रार्थना करनी कि ज़रूरी हफ्तावारी एकत्र होकर आपस में सत् विचार से लाभ उठावें। हिन्दू कौम की बदनसीबी कि खुदगर्जी ने उसको शिकार कर लिया है। अब चारों तरफ से इसको काल चक्र फिरा रहा है, मगर फिर भी गहरी नींद से जाग नहीं आती। प्रेमी जी, अब जागने का वक्त है। अपने आप पर खड़े होने का समय है। क्योंकि हमारे अन्दर कुछ जनता उद्धार का उत्साह है इस वास्ते दुबारा अर्ज़ की जाती है। उम्मीद है ईश्वर विश्वासी होकर सत् संगत में ज़रूरी वक्त दिया करेंगे। और वापसी पत्र भी लिखना। कोई तो होश संभालकर अपने जीवन को पवित्र करे और दूसरों को सुख देवे। प्रेमी जी, यह समय नहीं आयेगा। इस वास्ते वक्त की कदर करनी चाहिए। ज़िन्दगी वही है जिसमें ईश्वर विश्वास और धर्म का उत्साह होवे। तमाम गांव के चीदा दीगर (अन्य श्रेष्ठ) प्रेमियों को इस प्रार्थना से आगाह करना। आगे नसीब उनके। ज़रूरी अपनी कल्याण करो, पाप कर्मों से अपने आपको बचाओ। जमाना नाजुक आ रहा है, जरूर ही सत्संग का प्रोग्राम बनावें।

ईश्वर सत् मत देवे। सब प्रेमियों को आशीर्वाद पहुंचे। अपने तमाम कुनबे को आशीर्वाद कहनी।

न किसी की बनी रही, गये राज सिंहासन छोड़ ।
मन नहीं धीरज पाया, जो सम्पत लाख करोड़ ।।

बाल जवानी जरा परापत, जीवन नित नहीं पाये ।
टूटी माल प्रान की, देही राख समाये ।।

उठ ग़फलत मनों त्याग के, सत संगत पधार ।
नाम सिमर भगवान, ये लाभ जीवन विचार ।।

चलन की नौबत बाजती, नित साची रास सम्भाल ।
समां गंवाए रोवना, जब सर आवे काल ।।

साचा नाम प्रभ सिमरिये, मिल संगत प्रेम कमाइए ।
'मंगत' सुफला जीवना, जो रहनी सांची पाइये ।।

(अज़गोलड़ा)

----

37. धार्मिक जीवन बनाकर देश व धर्म की रक्षा करें

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। तमाम अपने कुनबे को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत्धर्म में प्रतीत देवे। प्रेमी जी! हम को जुदा न समझें, बल्कि तुम्हारी सत् श्रद्धा से तुम्हारे हृदय में मौजूद हैं। प्रेमी जी! तुम प्रेमियों को बाज़या (मालूम) होवे कि गुरु बचन को दृढ़ निश्चय से धारण करें। अपनी ज़िन्दगी को खुशगवार बनायें और दूसरों के लिए एक नमूना बनकर दिखलायें। इस वक्त धार्मिक सामाजिक उन्नति बिलकुल ग़रुब (अस्त) हो गई है। तुम प्रेमियों को चाहिये कि बअसूल (नियमानुसार) जीवन बनाकर देश व धर्म की रक्षा करें। सत्संग का प्रोग्राम बहुत मुकम्मिल करें, और तमाम प्रेमियों को शामिल होने के लिये प्रेरणा करें। नहीं तो

तुम प्रेमी ज़रूरी एक जीवन बनकर दिखलाएं। हर वक्त गुरु आशीर्वाद से सफलता प्राप्त करें। शिष्यों का फर्ज़ है कि गुरु उपदेश को अपनाकर (धारण कर) मानसिक शान्ति हासिल करनी। प्रेमी जी! तुम होनहार हो। तुमसे बहुत सी सेवा चाहते हैं, बल्कि तुम्हारी सत् श्रद्धा से तुम्हारे हृदय में मौजूद हैं। ईश्वर तुमको निर्मान भाव और सत्सेवा का जीवन बक्शे, जो कि सदाचारी पुरुषों का लक्षण है। ज़रूरी अपने रहनुमा के दर्द को दिल में जगह देनी और सही मानों में अपना जीवन पेश करें। तुम्हारे सिर पर धर्म का बड़ा बोझ है। ईश्वर तुमको सत् बुद्धि देवे। हर वक्त बुलन्द ख्याली (उच्च विचार) हासिल करें। वैर-बुग्ज़ (ईर्ष्या-द्वेष) को मिटाने की कोशिश करें। हर एक से सांझ पैदा करें। ईश्वर विश्वास पूर्ण रखें। गुरु को हर वक्त सहायक देखें। प्रेमी जी! अपने अंदर पवित्र जज़्बा पैदा करना चाहिए और बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत् असूलों को धारण करना चाहिए। अभ्यास ज़रूरी किया करें। इससे बुद्धि प्रकाश होती है। तमाम प्रेमी समता का जीवन हासिल करें। ईश्वर बल बुद्धि देवे। हर वक्त हमको हृदय में देखें। प्रोग्राम अभी इस जगह का है, शायद एक हफ्ता तक, क्योंकि प्रेमी मजबूर कर रहे हैं। ईश्वर आज्ञा से जल्दी ही कहीं तप की खातिर एकान्त जगह में जायेंगे। चलती दफा मुतला (सूचना) कर दी जायेगी। ईश्वर सत् भावना देवे और गुरु बचन का अटल विश्वास बख्शे। हर वक्त नाम प्रीत बनी रहे।

----

38. धर्म हर जगह सहायता करने वाला है

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। जिस जगह भी जाओ ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें। अपने पवित्र ख्याल को दृढ़ करते रहें। यह संसार बड़ा कठिन मार्ग है। बहुत सी कुर्बानी से शान्ति प्राप्त होती है। अभ्यास जरूरी किया करें। सत्संग का भी विचार करें। और प्रेमियों को भी सदाकत (सच्चाई) की तरफ रजूह (प्रेरित) करते रहें। समता की तालीम को खुद धारण करें और दूसरों को भी आगाह (सूचित) करते रहें। हमको हर वक्त अपने हृदय में समझें। ईश्वर कल्याण बुद्धि देवे। ईश्वर आज्ञा से आजकल गंगोठियां आये हुए हैं। एक हफ्ता तक स्थान पर ठहरेंगे फिर बाहर चले जावेंगे। वापसी कुशल पत्र गंगोठियां तहरीर (लिखें) करें। प्रेमी जी, शूरवीरों वाली जिन्दगी हासिल करो। हर एक से प्रेम रखो। दुखियों की सेवा का विचार किया करो। धर्म हर जगह

सहायता करने वाला है, खाहे (चाहे) घर पर हो, खाहे बाहर हो। प्रेमी जी, परदेस कोई चीज़ नहीं। अपनी आदत को हरदिल अज़ीज (सबका प्रिय) बनावें। ईश्वर सत्बुद्धि देवे। सादगी, सेवा, सत्य, सत्स्मरण, सत्संग आदि गुणों को याद रखना। ईश्वर हर जगह खुशी देवेंगे। कुशल पत्रका लिखना जरूरी।

बाल धर्म सम्बन्धी पत्र

39. बालकों के लिए शिष्टाचार पर ज़ोर

ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। संगत के तमाम बाल मैम्बरान को आशीर्वाद कहनी। वाज़्या (सूचित) होवे कि हर वक्त आला (श्रेष्ठ) दिमाग लोगों की ज़िन्दगी का तरीका मुताल्या (अध्ययन) करें और उसके मुताबिक अपना जीवन बनायें। अपनी खुराक, लिबास, संगत को नित ही पवित्र करें। ईश्वर तुम बच्चों को होनहार बनावें जिससे अपने आपका और दूसरों का सुधार कर सकें। हर वक्त समता के असूलों का विचार करें और अपनी उन्नति करें। तमाम दीगर (अन्य) प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी। हर वक्त नेक अमल धारण करें। हर एक का अदब करें। फ़ज़ूल ख़र्ची का बिलकुल त्याग करें। ग़रीब यतीमों की मदद करें। ईश्वर बल, बुद्धि देवें। गाह बगाह (कभी-कभी) पत्र लिखा करें, ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

----

40. समता के बाल मैम्बरों का धर्म

आशीर्वाद पहुंचे। ईश्वर तुम्हारे अन्दर धर्म का जज़्बा (शौक) पैदा करे। तुम बच्चों ने ही देश और धर्म की रक्षा करनी है। तमाम बच्चों को महामन्त्र, मंगलाचरण, आरती और समतामंगल याद होना चाहिए और हर बाल मैम्बर सुबह पवित्र होकर पच्चीस मिनट तक महामन्त्र का जाप दिल में करें और फिर और कारवाई करें। प्रभु सिमरन से बुद्धि तेज़ होती है और असली सुख प्राप्त होता है। मुनश्शी (नशीली) चीज़ और मांस से परहेज़ करना चाहिए, हर एक बाल मैम्बर का धर्म है। ईश्वर तुमको अधिक प्रेम और श्रद्धा देवे। पुस्तकें खुद भी पढ़ो, मगर अभी तुम बच्चे हो इसलिए तुम सही मतलब नहीं निकाल सकते। बड़े मैम्बरों से सुनें भी और उनसे अर्थ पूछ लिया करें। तुम्हारे वास्ते यही बड़ी भक्ति है कि सदाचारी जीवन धारण करें। आपस में एकत्र होकर बैठें। और महामन्त्र का जाप किया करें। ईश्वर पवित्र जीवन बख़्शे।

योग सम्बंधी पत्र

41. शारीरिक कामना ही अभ्यास में बाधक होती है

प्रेम पूर्वक चरण बन्दना स्वीकार करें। श्री सत्गुरुदेव जी महाराज आशीर्वाद फरमाते हैं। आप स्वीकार करें और सुखदेव जी व दीगर (अन्य) घर में सब परिवार को आशीर्वाद फ़रमाना। आपके प्रेम पत्र द्वारा दर्शन हुए। श्री महाराज जी की दयादृष्टि से आपकी मानसिक और शारीरिक शुभ कुशलता चाहता हूं। सेवा में अर्ज़ यह है कि श्री महाराज जी फ़रमाते हैं कि जो-जो विचार तुमने लिखे हैं यह अकसर अभ्यास में नमूदार (प्रकट) होते हैं। मानसिक दोष फिर ग़लबा (प्रभाव) पाकर स्थिति से गिरा देते हैं। इस वास्ते दृढ़ सत् परायणता और प्रभु आज्ञा में निश्चय रखते हुए सत् सिमरण की धारणा को दृढ़ करते रहना चाहिए। इस तरह पूर्ण मानसिक शान्ति प्राप्त करके सत्स्वरूप अविनाशी शब्द में निहचलता प्राप्त हो सकती है। शारीरिक कामना ही अभ्यास में बाधक होती है। उनको दृढ़ प्रभु अनुराग और शरीर की विनाश के निश्चय के बल से जीतना चाहिए। ऐसा यत्न करते-करते एक दिन सत् स्थिति प्राप्त हो जाती है। ईश्वर निर्मल सोझी प्रकाश करें। दुबारा श्री महाराज जी आशीर्वाद फरमाते हैं, स्वीकार करें। श्रीमान भाई सुखदेव जी को दास की तरफ से ब्रह्म सत्यम् कहना। अपना दृढ़ सत् विश्वास ही हर जगह सहायक होता है। श्री महाराज जी की दयादृष्टि नित अंग संग जानें। दुबारा आपको भी श्री महाराज जी आशीर्वाद फरमाते हैं, स्वीकार करें। दीनदयाल नित दयालता करें। सत् श्रद्धा देवें। और पढ़ाई में पूरी-पूरी कोशिश करें ताकि सही मकसद हासिल हो सके।

----

42. श्रद्धा और समर्पण बुद्धि से सिमरन में सफलता

संसारी उलझनों से अक्सर मन अभ्यास से उक्ता जाता है। इस वास्ते सत् यत्न को धारण कर रखना चाहिए। और अधिक से अधिक कोशिश करके प्रभु आज्ञा में अपने आप को निहचल करना चाहिये। जब तक समर्पण बुद्धि दृढ़ न होवे तब तक मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त नहीं होती है। और जब तक पवित्रता से अभ्यास न बन पड़े तब तक निहचल शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते प्रभु आज्ञा में तमाम कर्मों को समर्पण करने का भाव दृढ़ करना

चाहिये, और वासना के वेग को प्रभु प्रेम की धारणा से नाश करके नित्य ही सत्नाम के स्मरण में दृढ़ करना चाहिए। ऐसी श्रेष्ठ श्रद्धा ही सत पद के देने वाली है। ईश्वर निर्मल सुमति देवें।

\-------------

43. निष्कर्म अवस्था में स्थित रहने की प्रेरणा

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। हर वक्त अपने सही जीवन को प्राप्त करते रहें। यह संसार बड़ा कठिन है। जब तक खालिस प्रीत प्रभु चरणों की न प्राप्त होवे तब तक शान्ति मुश्किल है। इन भावों को हर वक्त विचार करना चाहिए कि सुख व दुख शारीरिक धर्म है और आते जाते रहते हैं। आखिर देह विनाश के वक्त सब दुःख ही दुःख हो जाता है। इस वास्ते जीवित में ही साखी स्वरूप की प्राप्ति का जतन करना ही लाभकारी है। इन्द्रियां बड़ी ज़बरदस्त हैं मगर मन को जब सत्नाम में लगाया जावे और बारम्बार प्रभु इच्छा में कर्मों को सौंपा जावे तब मन अन्तर्मुख होकर सत् आनन्द को ग्रहण करने लगता है और वासना रहित हो जाता है। सब कुछ होना और न होना प्रभु इच्छा में देखना और अपने आप को बिलकुल धूड़ समान समझना और बारम्बार नाम में सुरती को दृढ़ करना ही असली योग है। प्रेमी जी, मार्ग धर्म का बेशक कठिन है मगर फल आनन्द है। इसके मुकाबले में संसारी पदार्थ त्रिकाल अशान्ति के देने वाले हैं। ऐसा निश्चय दृढ़ होना चाहिये। प्रभु परायण होना ही असली जीवन है। यह ही समता ज्ञान है। जब तक कर्मों के फल में समता न प्राप्त होवे तब तक वासना रूपी अग्नि नाश नहीं होती। हर वक्त जतन परयत्न यह ही होना चाहिये कि प्रभु इच्छा में दृढ़ता प्राप्त होवे। ईश्वर सत् विश्वास देवे। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें। ईश्वर निर्द्वन्द्व शांति देवे। हर वक्त गुरु बचन का विश्वास दृढ़ होवे। शूरबीर होकर अपने आपको निःकर्म अवस्था में स्थित करें जो असली तत्व स्वरूप है। ईश्वर सत् अनुराग देवे, मास्टर जी और ब्रह्मप्रकास जी को आशीर्वाद कहनी। अपनी कुशल पत्रका गाहे बगाहे (कभी-कभी) लिखते रहा करो, ईश्वर सत् आनन्द देवे। वापिसी अपनी कुशलता का हालात लिख दिया करें, अगर कोई पत्रका में ऐसे प्रेम में लफ्ज लिखा गया तो तुम्हारे वास्ते मुबारिक है। बिल्कुल फिक्र न करें। ईश्वर सत् भावना देवे। हर वक्त हमको हृदय में देखें। प्रभु सत् आचरण और निःचल बुद्धि देवें।

\-------------

44. क्या आत्मा परमात्मा है

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, इसका उत्तर दिया जाता है। आप गौर करके विचार कर लेवें, क्या आत्मा परमात्मा है। वाज्या (सूचित) होवे, जब तक बुद्धि शरीर के अहंकार में खड़ी है यानी शरीर के परायण बनी हुई है तब तक शरीर के दुख सुख, इच्छा भोग और राग द्वेष में जलती रहती है। और उस अहंकार के ज़ेर असर (वशीभूत) कई जन्मों को धारकर कष्ट उठाती रहती है। और जब यह ही बुद्धि जीवन शक्ति जो अविनाशी तत्व है उसके परायण होने का यत्न करती है, किसी सत्पुरुष की सिखया (शिक्षा) द्वारा, उस वक्त उन विकारों से ऊंची हो जाती है यानी सत्, सील, संतोख, दया, खिमा (क्षमा), श्रद्धा और प्रेमादि महागुण बुद्धि के अन्तर प्रगट हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों उन गुणों के सहित प्रभु चिन्तन और प्रभु आज्ञा पालन करने में दृढ़ होती है यानी अपने शारीरिक सुखों को दूसरे के सुखों में निर्मान भाव और जीवन कर्त्तव्य समझकर त्याग करती है त्यू-त्यूं इस दुख और सुख की महसूसात से ऊंची होकर परम शान्ति जो अविनाशी तत्त्व है उसकी तरफ एकाग्र होती है। यह ही साधन परम भक्ति और परम तपस्या है। इस पवित्र अनुराग के बल से शारीरिक सुख, जो तबदील होने वाले और दुःख स्वरूप हैं, प्रभु आज्ञा में समर्पण करके और गुरु बचन को अटल विश्वास सहित अपनाकर हर वक्त निर्भय शान्ति जो जीवन शक्ति है उसके सिमरन में दृढ़ होती है। ऐसा अभ्यास करते करते किसी वक्त अविनाशी शान्ति जो पूर्ण स्वरूप है उसको प्राप्त हो जाती है। यह ही यत्न मानुष जन्म का उच्च कर्त्तव्य है। प्रेमी जी, वाज़्य होवे (सूचित होवे), शारीरिक मद को त्याग करके नित ही निर्मल विचार द्वारा अपने पूर्ण निश्चय को सत् परायणता में दृढ़ करें। जब ऐसी शुद्ध भावना प्राप्त होगी तब उस परम सुख अखण्ड शान्ति के पास पहुंच जावेंगे। ईश्वर ऐसी समर्थ देवे। ज़िन्दगी का मकसद (ध्येय) ज़िन्दगी की तलाश है, जो इन तमाम अनासरों (तत्त्वों) से पवित्र और निर्बन्ध है। उसी को ईश्वर, परमात्मा, अल्लाह, गाड आदि नामों से पुकारा जाता है। सो तुम अपने पूर्ण भाग्य सहित इस ज़िन्दगी की तलाश में दृढ़ हो जावें, यह ही यत्न सत्पुरुषों के जीवन आदर्श का स्वरूप है। अपने गुज़रे हुये वक्त को भूल जावें और आइन्दा पवित्र आहार, पवित्र व्यवहार, पवित्र आचार में अपने आप को दृढ़ करके अपनी जीवन यात्रा के सही मकसद को प्राप्त करें। यह ही यत्न भाग्यशाली है। ईश्वर सत् बुद्धि अनुराग देवे।

----

45. आत्मज्ञान में न कोई देश है न कोई काल है

सेवा में अर्ज़ यह है कि आपने जो योग वशिष्ठ का विचार तहरीर (लिखा) फ़रमाया है उसके उत्तर में श्री महाराज जी फरमाते हैं कि इस विचार पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि यह रोचक विचार है और बाद में दर्ज किये गये हैं। क्योंकि आत्मदर्शी पुरुष हर एक देश में हए हैं मसलन (जैसे कि) ईसा, मूसा, इब्राहिम, बुद्ध, महावीर वगैरह, और भी कई हुए हैं और होवेंगे। उनके मुतल्लिक कोई पेशीनगोई (भविष्यवाणी) नहीं की गई है। क्या उन्होंने कोई थोड़ी कुर्बानी पेश नहीं की है? क्या महज़ (केवल) भारतवर्ष का ही मजमून (विषय) आत्म सत्ता में अनुभव किया गया है, और देशों में जो आत्मदर्शी हुए हैं उनके मुतल्लिक (बारे में) कोई विचार नहीं है। यह सिर्फ बाद के आचार्यों ने राम कृष्ण के तईं श्रद्धा बढ़ाने के वास्ते तहरीर (लिखे) किये हैं। आत्मज्ञान में न कोई देश है, न कोई काल है, न कोई स्थूल प्रकृति का लिबास है। वह सत्ता निराकार स्वरूप सर्वज्ञ है, उसमें न कुछ हुआ है न होगा, यह स्थूल प्रकृति महज़ तीन गुणों का अचम्भा है। आत्मदर्शी पुरुष इसके मुतल्लिक कुछ नहीं कहते। गुणों में गुण बर्तते हुए अनन्त प्रकार की सृष्टि का स्वरूप उत्पत प्रलय होता रहता है। इसके मुतल्लिक यथार्थ और मुकम्मल (पूर्ण) कुछ नहीं कहा जा सकता है। सिर्फ गुणों के चक्कर का अन्दाज़ा ही लगाकर कुछ कहें तो कह सकता है। ख्वाहे (चाहे) यह बात मुकम्मल दुरुस्त (पूर्ण सही) हो या अधूरी हो अच्छी तरह से विचार कर लेवें। आइन्दा ऐसे विचार अपनी डायरी में नोट कर लिया करें, जब हाज़िर होने का मौका मिले तब उत्तर पूछ लिया करें। इधर ऐसे विचारों को उत्तर देने के वास्ते और तहरीर करने के वास्ते इतना समय नहीं होता है। ऐसे ग्रन्थों में कई किस्म के ऐसे हालात दर्ज हैं जो महज़ रोचक रूप हैं, यथार्थ नहीं है। इस वास्ते आइन्दा ऐसे विचार लिखने की इधर ज़रूरत नहीं है। हाज़िरी के वक्त तबादला विचार (विचार विमर्श) कर लेना चाहिए।

----

46. अभ्यास में स्वांसों की गति और बैठक सम्बन्धी विचार

ईश्वर सत् बुद्धि देवे और अपने जीवन कर्त्तव्य में सही रखिया करे। अभ्यास के मुतल्लिक (बारे में) सीधा बैठना चाहिये, शरीर ढीला रखना चाहिए।

स्वांस न ज्यादा तेजी से लेने चाहिये और न ही ज्यादा रोकने चाहिये। बल्कि दरमियानी (मध्यम) हालात में। सिर्फ नाम का शुद्ध उच्चारण अन्तर सुरती में करना चाहिये। नाम के जाप से खुद ब खुद ही स्वांस अपने हालात मुताबिक चलेंगे। तुमको सिमरन में तवज्ज़ा (ध्यान) लगानी चाहिये न कि वक्त की मर्यादा विचार करते रहें। और कोई पुस्तक शकूक (संशय) वाली न पढ़ें। अंग्रेजों को किधर आत्मविद्या का पता है, वह तो सिर्फ शारीरिक तन्दुरुस्ती का विचार सोचते रहते हैं। मन की शान्ति का उनको किधर से इल्म (ज्ञान) है। आइन्दा कोई ऐसी पुस्तक न मुताला (अध्ययन) करें। बच्चों के खेल को तर्क (त्याग) करें। फकीरों के साथ लगाव रखना है तो उनके सही हुक्म अनुकूल चलें। यह नहीं कि तीन माह तक पत्र लिखकर माफ़ी (क्षमा) मांग लेनी। अपने आचार, संगत और भावना को दुरुस्त करें। जो पत्रका लिखी जावे उसको संभाल रखें और अपनी ज़िन्दगी के साथ निभावें और अब ज्यादा पत्रका लिखनी बन्द की हुई हैं। जो कुछ लिखा जाता है उसको ईश्वर हुक्म समझकर अपनाओ। पहली पत्रका में तमाम ज़िन्दगी की सार तुमको लिखी गई थी, उसको विचार किया करें। बाहोश, बाइखलाक (सदाचारी) और सही श्रद्धा युक्त बनें तब ही इस संसार की अग्नि से कुछ ठण्डक मिलेगी। जो जो असूल तुमको समझाये गये हैं उन पर पूर्ण कारबन्द (कायम) होवें। अपनी ज़िन्दगी को एक नमूना बनावें। इस वक्त दुनियाँ एक गहरे अज़ाब (दु:ख) की तरफ दौड़ रही है, वह है नुमायशी ज़िन्दगी (दिखावटी जीवन)। हर वक्त बुद्धि को मुनव्वर (रोशन) करें, नेक लोगों की सोहबत (संग) करें। ईश्वर गुरु वचन विश्वास देवें। सही जवांमर्द होकर गुरु आज्ञा का पालन करते हुए अपने आप पर फतह (विजय) पावें और दूसरों के वास्ते एक मिसाल बनें। ईश्वर सत् अनुराग देवें और नित्य सहायक होवें।

नोट: अभ्यास फ़िलहाल आध घंटा कम से कम, एक घंटा ज्यादा से ज्यादा होना चाहिये। स्वभाव पकते पकते खुद ब़खुद समय ज़्यादा लेवेगा। ईश्वर सत् बुद्धि देवें।

----

47. अभ्यास यानी ईश्वर सिमरण आध्यात्मिक खुराक है

ईश्वर सत् बुद्धि देवे। अपने तमाम सम्बंधियों को आशीर्वाद कहनी। अपनी ज़िन्दगी को सत्मार्ग में दृढ़ करते हुए संसारी चक्कर से अबूर (छुटकारा) पाना हो सकता है, इसके बगैर संसार अग्नि स्वरूप है यानी निहायत रंजोग़म का मुकाम (स्थान) है। हर वक्त ईश्वर विश्वासी होकर गुरु उपदेश को अपनाते हुए रोज़ाना ज़िन्दगी के तजरबे (अनुभव) से पवित्र रूप में विचरें। यह ही जीवन गुणकारी है, जो हर वक्त सादगी का मुजस्सम (प्रतिमा) स्वरूप है। ईश्वर सिमरण में भी समय दिया करें। यह रूहानी खुराक है, इससे रोशन ज़मीरी (आत्म विश्वास) बढ़ती है। अपने ख्यालात पर काबू पाने की शक्ति प्राप्त होती है। सत् उपदेश को ही ज़िन्दगी का परम आधार बनावें। इससे दुनियावी मुसीबतों से छुटकारा मिलता है। संगत हमेशा नेक लोगों की करें । रोज़ स्वाध्याय रूहानी उस्तादों (सत्पुरुषों) की पुस्तकों का किया करें। जीवन निर्वाह के वास्ते जैसा भी साधन मिल सके उसको पवित्र भाव से स्वीकार करके अपनी गुजरान बनानी चाहिए। सार विचार यह है कि दुनियाँ के आगाज़ (प्रारंभ) को देखा, अब आखरत (अन्त) को देखते हुए अपने आप सुर्खरुई (सफलता प्राप्त करना) करें। और सही शान्ति जिन असूलों से प्राप्त होती है उन पर हर बक्त दृढ़ रहें। अपने आपको सत् असूलों का निहायत मुख्तार (पाबन्ध) बनावें, यानी मुस्तकिल मिजाज (दृढ़ स्वभाव) होवें। ज़िन्दगी की सही तहकीकात (पड़ताल) के रास्ते अपने आपको खड़ा करें और दूसरों की भलाई के वास्ते अपना जीवन बनावें। यानी निर्मल और सदाचारी और निर्मल पर उपकारी अपने आपको बनावें। यही एक रास्ता ज़िन्दगी का सही है। इसके बगैर सब अज़ाब (दुख) और ग़फ़लत है यानी खुद्दारी, खुद पसन्दी, खुदगर्ज़ी की जो तलाश का रास्ता है। हर वक्त गुरु भगत होकर अपने आप की कल्याण करें तब ही देश, समाज और धर्म के वास्ते रोशन मिनार (प्रकाश स्तम्भ) हो सकेंगे।

थोड़ा पढ़ो ज़्यादा समझो। सही समझ को हर वक्त कायम करो, तब ही इस बहरे बे किनार (तट रहित सागर) से अबूर (छुटकारा) पाओगे। असली रोशनी तुम्हारे अन्दर है उसकी जूस्तजू (प्राप्ति की इच्छा) करो। वह ही तुम्हारी असली रहनुमाई (पथ प्रदर्शन) करने वाली है और तुमको राहत अबदी (स्थायी शांति) के देने वाली है। ईश्वर सत् विश्वास देवे। काहनूवान जाना होवे तो

सबको आशीर्वाद कहनी। अपनी कुशल पत्रिका लिखते रहा करें। ईश्वर नित ही निर्मल त्याग, प्रेम और सेवा भाव बख़्शे और तुमको सही याचना इन उच्च असूलों की बनी रहे। हर वक्त हमको हृदय में देखें। ईश्वर ज़िन्दगी के सही नियम में दृढ़ करे।

----

48. अभ्यास के लिए मार्गदर्शन

पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। प्रेमी जी, अभ्यास के मुतल्लिक (बारे में) इन बातों को हर वक्त याद रखो।

(1) अभ्यास को कुव्वते बरदाश्त (सहनशक्ति) के मुताबिक करें। यानी हर वक्त ख्याल को बेशक नाम स्मरण में लगाये रखें मगर सुबह व शाम जो अभ्यास करें वह जितना तबीयत बरदाश्त करे उतना ही करें और आहिस्ता-आहिस्ता तरक्की करें।

(2) स्वास को ज्यादा रोकना नहीं बल्कि शान्ति से जितना आवे जावे उतना ही ठीक है। सिर्फ नाम स्मरण को न भूलें। बहुत जागना भी नहीं चाहिये। ऐसी एहतयात (सावधानी) ज़रूरी रखा करें। आहिस्ता-आहिस्ता मन खुदबखुद आदी हो जावेगा और शान्ति को पकड़ेगा। ईश्वर सत् श्रद्धा देवें और बुद्धि प्रकाश करें। अपनी कुशल पत्रिका लिखते रहा करें। प्रेमी जी, नित्य सत् विश्वास द्वारा अपने आपकी जो उन्नति करता है वह आख़िर सही शान्ति को प्राप्त होता है। नारायण सत् अनुराग देवे। दृढ़ निश्चय से नाम स्मरण में मन को लगाये रखें। हर वक्त हमको हृदय में देखें। ईश्वर निर्मल प्रेम देवे।

----

49. आत्म सिद्धि प्राप्ति का सही निर्णय

पत्र मिला। ईश्वर सत्बुद्धि अनुराग देवे। प्रेमी जी, अध्यात्म उन्नति के बारे में तुम्हारी बड़ी भावना रही मगर नतजुर्बेकारी (अनुभव हीनता) की वजह से कई जगहों में रहनुमाई हासिल की है, जिसका नतीजा यह हुआ कि सही रहनुमाई (मार्गदर्शन) न होने के कारण तमाम समां अकार्थ गुज़र गया। अब जो सही रहनुमाई हासिल की है यह ही साधन तमाम सिद्धों का मार्ग है। इस पर निश्चय से चलने का प्रयत्न करें। और तमाम तोहमात (अन्ध विश्वास) का

त्याग कर देवें। नाम सिमरण की दृढ़ता की खातिर कर्म योग, भक्ति योग की भावनायें दृढ़ करते हैं। जितनी जितनी बुद्धि समर्पण भाव को प्राप्त होगी उतना ही अभ्यास में आनन्द प्राप्त होगा। प्रेमी जी, आत्म सिद्धि की खातिर प्रथम संसारी भोगों से वैराग को प्राप्त करना है फिर सत् सरूप का अनुराग प्रकट होता है। तब अभ्यास की प्राप्ति और कामयाबी में बुद्धि दृढ़ होती है। पूर्ण अभ्यास के बल से तमाम मानसिक दोषों से असंग होकर के आन्तरिक सत् सरूप में बुद्धि एकाग्र होकर के निर्वास आनन्द आत्म अनुभवता को प्राप्त होती है, यानी आन्तरिक अबिनाशी शब्द का बोध होता है। फिर उस शब्द के आनन्द को प्राप्त होकर के उसी में ही ध्यानमई होती है और लीनताई हासिल होती है। ऐसी अवस्था को ही परम सिद्धि कहा गया है। दृढ़ निश्चय से अभ्यास में यत्न करते जावें और साथ ही बाधक विकारों का त्याग करते जावें जो सत् अनुराग का नाश करने वाले हैं। इनके मुतल्लिक (बारे में) थोड़ी सी कैफियत (हाल) नीचे लिखी जाती है। अनुभव करके अपने आप को सत् मार्ग में निश्चल करें यानी जो अवस्थायें आत्म सिद्धि की तहरीर की (लिखी) जाती हैं इनको अच्छी तरह से विचार करके अपने आप को पूर्णत: पवित्र करने का यत्न करें।

आत्म सिद्धि विचार : 1 संसार से वैराग, 2 आत्म बिरह, 3 आत्म अभ्यास, 4 आत्म अनुभवता, 5 आत्म स्थिति, 6 आत्म लीनताई (नोट: पहली पांच अवस्थाओं में अपने आप को गुप्त रखना चाहिये)

(1) वैराग की नाश - इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा उत्पन्न होना।

(2) आत्म बिरह का नाश - लोक यश कीर्ति चाहना।

(3) आत्म अभ्यास में असिद्धि - आहार, व्यौहार, विचार का अशुद्ध होना।

(4) आत्म अनुभवता का नाश - सिमरन-तप-ध्यान का अभिमान होना। और विद्या के मद में आकर लोगों को प्रभावित करके आडम्बर रचना।

(5) आत्म स्थिति से गिरावट - लोक यश के मद में आकर वर या सराप देना और रिद्धि सिद्धि को प्रकट करना।

(6) आत्म लीनताई - यह अवस्था मुकम्मिल है यानी गुनातीत अवस्था में बुद्धि नि:चल होकर के ब्रह्म स्वरूप में लीन हो जाती है।

----

50. ब्रह्म और जीव का भेद

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, जो पत्र लिखे हैं वो पत्रिका द्वारा ज़वाब नहीं तहरीर (लिखना) किये जा सकते हैं और यह निकम्मे लोगों का विचार है। अपने मानसिक दोषों की निवृत्ति करनी चाहिए। बातूनी जीवन असली नादानी है। जिसने यह सवाल किया है 'ब्रह्म जीव का क्या भेद है' उससे पूछें कि ब्रह्म क्या चीज़ है और किसने तसव्वर (अनुभव) में लाई है। जिस जगह ब्रह्म अनुभव किया गया उस जगह अनुभव करने वाले की क्या दशा है। ब्रह्म में जीव और माया का कोई स्वरूप है? अगर नहीं, तो सर्वज्ञ किसने जाना है और किस कारण सर्व शक्तिमान है? प्रेमी जी, पहले तो जीव का स्वरूप सवाधान (निर्णय) करना चाहिए, तो फिर ब्रह्म की खोज करें। यह सब झगड़ा नासमझी में है। और कुतर्कों से कुछ हासिल नहीं होता। अगर किसी ने ब्रह्म को आलेप या परवर्त देखना है तो अभ्यास द्वारा देखे। बातों से कुछ तसल्ली नहीं होती। जिस तरह दूध में घृत की मिसाल है। पहले अपनी खोज करें कि मैं क्या हूँ। आया जिसम(शरीर) हूँ या जान। अगर जान हूँ तो कैद किस करके हूँ। जिसम की बनावट क्या चीज़ है? जब अमली जीवन द्वारा इन बातों की अच्छी तरह समझ आ जावेगी तब फैसला हो जावेगा। जान की असलियत पहचानने से जिसम की कैद नाश हो जाती है। जिसम की जब कैद नाश हुई तब दुरमत भेद नाश हो गया। संसार की विचरत हालत में तीन ताकतें मालूम होती हैं। वास्तव में एक ही ताकत का सब जलवा है। प्रेमी जी, बातों से यह फैसला नहीं होता बल्कि अपने अनुभव द्वारा पहले जीव की असलियत पहचान करे तब ब्रह्म जीव की एकता का पता लग जाएगा। ब्रह्म की खोज जीव ने ही की है और ब्रह्मस्वरूप हो करके की है, जिस तरह से दरियाओं का पानी समुद्र की पूर्णता की कहता है अपने आप समुद्र में गरक (डूब) करके। इतना भी कहना एक दूसरे के वास्ते सबक देना है।

नहीं तो यह हालत बयान से बाहर है। यानी केवल स्वरूप ही हो जाता है। प्रेमी जी, ये विचार कर लेवें। ख्वाहे (चाहे) कोई जितना भी विचार करे ये मसला अमली अभ्यास करके फैसला हो सकता है। इस मसले को कई तरीकों से सिद्धों ने बयान किया है मगर निश्चय अभ्यास से ही होता है, बातों से नहीं। इस वास्ते सत् स्वरूप की तहकीक़ात (खोज) में हर वक्त ही लगा रहना चाहिए।

जब सत् प्राप्त हुआ तब झूठ का मुकाम (ठिकाना) नहीं रहेगा। अपने आपकी बनावट का विचार करें कि किस तरह से और किस कारण हुई है। प्रेमी जी, जो सही तरीका तुम्हें मिला है कि हृदय में नाम सिमरण और कर्मों का कर्त्तापन ईश्वर आज्ञा में समर्पण करना, यही साधना असली प्रकाश के देने वाली है। दृढ़ निश्चय से लगे रहें। द्वैतवाद भी ठीक है किसी हालत तक, अद्वैतवाद भी ठीक है किसी हालत में, यह सब बुद्धि की तहकीक़ात की अवस्था है। समता तत्त असली जो कुछ है वो बयान से बाहर है, यानी निर्वाच और अनाम है। वो ही परम धाम है। यानी तहकीक़ात (खोज़) से बाहर है। अभ्यास से इन अवस्थाओं का पता लगता है। किताबों के पढ़ने से कुछ तसल्ली नहीं होती। ईश्वर खाहे (चाहे) कर्त्ता करके सिमरो तो भी ठीक है, खाहे अकर्त्ता करके सिमरो तो भी ठीक है। कर्मों से मुक्त दोनों प्रकार की भावना से हो जाता है, पीछे जो कुछ पाया वो अपना आप प्रकाश समता स्वरूप है। अभ्यास द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हो सकता है। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी।

----

51. ब्रह्म स्थिति की व्याख्या और सत्मार्ग सम्बन्धी आज्ञाएं

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर आनन्द देवें। प्रेमी जी, हर वक्त अपने जीवन को सुधारने की कोशिश करते रहा करें। मानुष ज़िन्दगी का यह ही फल है। तुम हमारी हिदायत (आज्ञा) को स्वीकार करोगे, ईश्वर तुमको हर तरह से सुख देवेगा। हमको दूर ना समझें। अगर तुम हमारी आज्ञा का पालन करोगे तो हम हर वक्त तुम्हारे हृदय में हैं। इस वक्त घोर कलयुग का पहरा है। प्रेमी जी, कुछ धर्म के सरूप को जगाना। हमारी प्रसन्नता तभी है कि तुम नेक बनो और हर एक दुखी दीन की सेवा करो। और अपने बुजुर्गो के कदम बोस करो। सुबह वा शाम ज़रूर ही दो घड़ी ईश्वर सिमरण करें। और अपनी आनन्द पत्रका लिखा करो। सत्संग को बनाये रखो। एक-एक बात परम आनन्द देने वाली है। इनको धारण करें। तुमको भी कामिल गुरु की कृपा का पता लगे और गुरु को भी सत् विश्वासी शिष्य पर प्रसन्नता होवे।

ईश्वर की बड़ी कृपा आप पर है जिसकी औलाद ऐसी नेकचलन है। ईश्वर तुम्हारे खानदान को दिन दुगुनी रात चौगुनी तरक्की देवे। आपको भी

सत्मार्ग में विश्वास होवे। प्रेमी जी, तुमको जगह अपने हृदय में दी है इस वास्ते फिकर न करें । हमने अपने शिष्यों को कलेजा निकाल दिया है, इस वास्ते मंहगे भाव का व्यापार है। तुम्हारी खुशकिस्मती। ज़रूरी देश और धर्म की लाज रखनी और हमारे वचन पर विश्वास करना। ईश्वर आनन्द देवे। श्लोक का अर्थ यह है

गंगा, जमना, सरस्वती का मेल।
त्रिबेनी मज्जन करे सत्ब्राह्मण का खेल।।

गंगा-दाहिनी स्वर, और जमना-बायीं स्वर और सरस्वती सुखमना। ब्राह्मण के हालात में ये श्लोक आया है कि ब्रह्म के हालात जानने वाला जो है वो ही ब्राह्मण है। ब्रह्म का स्थान दोनों नेत्रों और मस्तक के बीच में है। वहां ये तीनों नाड़ियां इकट्ठी हो जाती हैं इस वास्ते उस जगह का नाम त्रिवेणी है यानी प्राग (प्रयाग) करके संतों ने पुकारा है। जब नाभी से शब्द उठता है तब त्रिकुटी यानी त्रिवेणी में भी टंकोर लगती है। तब मन माया से एलैहदा होकर पारब्रह्म में स्थिर हो जाता है। ऐसी स्थिति में जो ब्राह्मण स्थित है वो ही असली ब्राह्मण कहलाने का हकदार है। करनी प्रवाण है, फ़कीर मसनूई (बनावटी) जात नहीं मानते।

जब मुश्किल विचार होवे पूछ लिया करो। ईश्वर आज्ञा से तीन या चार मघर को बाहर तप की ख़ातिर जावेंगे। अभी जगह मुकर्रर (निश्चित) नहीं हुई। जिस जगह भी गये तुमको खबर दी जावेगी। संसार में इन बातों का हर वक्त ख्याल रखें। बुरी सोहबत से, नुमायश देखनी, अमानत में ख्यानत, शराब नौशी, चोरी, फिजूल खर्ची से, चुगली, झूठी गवाही, तमाकू नौशी, मांस खोरी, बेजबानी ये बड़े दीर्घ पाप हैं। रूह को स्याह (काला) कर देते हैं। दीन दुनियाँ की तरक्की का दरवाजा बन्द हो जाता है। और सब ज़िन्दगी गहरे अज़ाब (दुःख) में रहती है। गुरु की हदायत (आदेश) यही है, इन पापों को छोड़ना। इनके बरअकस (उलट) ऐसा अमल करना चाहिए सत्संग, सादा गिज़ा, कम खर्च करना, सादा लिबास, सत्पुरुषों के स्थान देखने चाहिए। कौल (वायदा) का पक्का होना, मुंह पर सच कह देना, अपनी चीज़ पर संतोष करना या मांग लेना यह बेहतर है। दूसरे का हक ज़हर समझना, गवाही से परहेज़। इन पापों से बचो। साबित कदम होकर धर्म के मार्ग पर चलो तब हमको बड़ी खुशी होगी। ईश्वर आनन्द देवे।

----

52. ब्रह्म ज्ञानी की पहिचान

प्रेमी जी, ब्रह्म ज्ञानी के सिर पर सींग नहीं होते। जिसने अपनी आत्मा का साक्षात किया है वही ब्रह्म ज्ञानी है, और उसे अवतार कहते हैं। समय-समय पर ऐसे महापुरुष का चोला प्रगट होता है। मगर उनके दुनियाँ से अलोप हो जाने के बाद उनकी ज़िन्दगी का पता लगता है। अगर तुम जवाब किसी को नहीं दे सकते हो तो सत्गुरु क्यों लिखवाते हो। मूर्ख को क्या पता है कि ब्रह्म ज्ञानी किसे कहते हैं। जिसने शरीर के होते-२ शरीर के भोगों से निजात पाई है और अपनी आत्मा में लीनताई हासिल की है वही ब्रह्म ज्ञानी है। आप खुद विचार कर लेवें। तमाम प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी। हर वक्त ईश्वर विश्वास धारण करें। दु:ख सुख में धीरजवान रहें। यही असली भक्ति है। बगैर विचार के और ईश्वर विश्वास के इस दुनियाँ से कोई अबूर (पार) नहीं पा सकता। इस वास्ते सब कुछ उसकी आज्ञा में जानकर सच्ची भक्ति को धारण करना चाहिए। ईश्वर आनन्द देवेंगे। हर वक्त ध्यान में लगे रहें। ब्रह्म ज्ञानी वही है जो अपनी कमाई वरताने (बांटने) वाला है। दूसरे की जूठ को स्वीकार नहीं करता । ये तमाम लिट्रेचर क्या विचार सिखाता है? अपने ज़माने में जो ज्ञान, ध्यान, त्याग वगैरह सबमें पूर्ण होवे, वे उस वक्त का पाप उद्धारने वाला महापुरुष है। ईश्वर जिसको दात करे। बाद-मुबाद की ज़रूरत नहीं। अपनी ज़िन्दगी बनानी चाहिए। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे।

----

53. नाम परायणता ही परम सिद्धि और शान्ति का मूल है

परमार्थ मार्ग में दृढ़ निश्चय से सत्नाम की धारणा को दृढ़ करते रहना चाहिये। यानी कर्त्ता-हर्त्ता सर्व जीवन रूप एक अखण्ड आत्मा को जानकर के अधिक श्रद्धा युक्त होकर के सिमरण में दृढ़ होना चाहिये। चूंकि अन्त:करण में कई जन्मों के विकार भरे होते हैं इस वास्ते दृढ़ सिमरण उपासना के बल से बुद्धि अंहकार की मलिन को त्याग कर शुद्ध स्वरूप के बोध को प्राप्त होती है। इस वास्ते अभ्यास का प्रोग्राम दृढ़ रहना चाहिए। प्रेमी जी, ऐसी साधना में तुच्छ मात्र भी समा लगता जावे तो भी अन्त:करण की शुद्धि होती जाती है और मानसिक तपश से ठंडक प्राप्त होती है। अधिक से अधिक कोशिश करके नाम

सिमरण में दृढ़ता धारण करनी चाहिये। और तमाम शकूक (शक) तोहमात (अंधविश्वास) का त्याग करके एक गुरु वचन के परायण होना चाहिये। पिछले तमाम करूर कर्म निश्चय करके गुरु चरणों में त्याग के जो आइन्दा निर्मल कर्त्तव्य पालन करने का यत्न करते हैं वो जल्द ही सत् शान्ति को अनुभव करने लगते हैं। ऐसा ही सत्पुरुषों का सिद्धान्त है। जिज्ञासु का निश्चय गुरु चरणों में अटल होना चाहिए तब ही मन तमाम कल्पना को त्याग करके एक नाम के परायण हो सकता है, जो परम सिद्धि और शान्ति का मूल है। अपने पवित्र निश्चय से अभ्यास में मन लगाते रहें। आगे कल्याण प्रभु खुद करने वाले हैं। ईश्वर सत् बुद्धि देवे, सत् अनुराग देवे। तमाम परिवार, तमाम संगत को आशीर्वाद पहुंचे।

----

54. आत्म सिमरण की दृढ़ता और जीवन निर्वाह की प्रेरणा

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् बुद्धि और सत् शान्ति देवे। तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर संकट के समय में उदारता बख्शे। ये समय का चक्र अकसर आत्म निश्चय को दृढ़ करने वाला होता है। इस वास्ते प्रभु परायण पुरुष ऐसे दौर में शान्तमयी रहते हैं। हर वक्त जीवन का जो परम लाभ आत्म सिमरण ध्यान है उससे अधिक दृढ़ता धारण करें। और जो जीवन निर्वाह का विचार लिखा है सो प्रभु इच्छा को मद्दे नज़र (सामने) रखकर बिलकुल सादगी रूप में वैदिक साधन इख्तयार (धारण) कर लेवें तो कोई बाधा न होगी। जैसा कि तुम्हारा निश्चय है सिर्फ नियम अनुकूल धारणा होनी चाहिये। यानी वक्त मुकर्रर में कुछ सेवा कर दी और ज्यादा समय ईश्वर चिन्तन में गुजारना चाहिये। इससे लोक सेवा भी हो जाती है और अपना भी निर्वाह हो जाता है। अक्सर महात्माओं के साथ यह साधन भी होता चला आया है। भलाई ज्यादा करनी और इव्जाना (धन) निर्वाह मात्र लेना। यह भी एक बड़ी सेवा है। मगर यह खास दृढ़ता रखनी कि बहुत पसार न बढ़ाया जाये। इससे गो (यद्यपि) आमदन काफ़ी हो जाती है मगर सरदर्दी के सिवा कुछ हासिल नहीं होता। परमार्थ बिलकुल बिगड़ जाता है। आगे तुम बुद्धिमान हो जैसा भी विचार होवे

प्रभु इच्छानुसार धारण करें।अक्सर शारीरिक यात्रा को किसी बहाने गुजारना, प्रभु परायणता अनुकूल निर्वाह मात्र को मद्दे नजर रखकर, ऐसे कार्य कल्याण के मार्ग में निर्बाधक होते हैं। सिर्फ अपना विश्वास निर्मल और मर्यादा में परिपक्वता वाला होना चाहिये। ईश्वर सत् नियम में दृढ़ता बख्शे और समता के सत् असूलों में प्रण बख्शे यानी निश्चय में सर्व आत्मभाव, मनन में सर्व कल्याण भाव और कर्त्तव्य में सर्व सेवक भाव को दृढ़ करते हुए निमित्त मात्र सत्कर्म में वर्तते हुए जो गुरुमुख अपना जीवन व्यतीत करते हैं वह ही परम शान्ति निर्वाण को प्राप्त होते हैं। इस वास्ते अपनी जीवन यात्रा को महज़ (केवल) कल्याणकारी बनाकर दृढ़ आत्म चिन्तन में अपने आप को निश्चल करके निर्वाह मात्र सत्कर्म को धारण करते हुए पर सेवा में जो विचरते हैं वह ही परम पुरुष हैं उनका जीवन लोक शिक्षक है। ईश्वर सत् अनुराग देवे। अपनी कुशल पत्रका माह व माह लिखते रहा करें। जो मिलें उनको आशीर्वाद कहनी।

----

55. कथा कीर्तन का निर्णय

श्री महाराज जी फरमाते हैं कि जो कबीर के दोहे कथा कीर्तन के लिखे हैं वह रुचि बढ़ाने के वास्ते रुचिकारक शब्द हैं। इसका सार यह है कि जिस समय भी किसी को कथा कीर्तन में रुचि हुई उस समय उसको किसी पूर्ण गुरु की पहले ज़रूरत पड़ेगी, जो कथा कीर्तन का भेद समझावे। अगर गुरु के बगैर वैसे ही देखा देखी कथा कीर्तन को धारण कर लेता है, वह पुरुष वैसे ही समझें जैसे कि प्यासा आदमी स्नान से प्यास बुझाना चाहता है यानी सब यत्न उसका अधूरा है। इस वास्ते कथा-कीर्तन के समझने के वास्ते पहले पूर्ण गुरु की ज़रूरत है जो यह भेद समझावे। कथा का सार निर्णय यह है कि सत्ग्रही पुरुषों के सत् इतिहास का गहरा विचार करना, जो सत् मार्ग में दृढ़ता के देने वाला होता है।

और कीर्तन का निर्णय यह है कि गुरु उपदेश द्वारा अन्तरमुख नाम का निदिध्यासन करके उस परम तत्व की महिमा का अनुभव किया जावे। यह असली कीर्तन है जिसको प्राप्त करके संसार का तमाम राग द्वेष नाश हो जाता है और बुद्धि निज स्वरूप में निःचल होती है। इसके अलावा जो गाना बजाना लोगों ने कीर्तन समझ रखा है यह महज़ (केवल) एक आरज़ी दिलचस्पी का ही

प्रोग्राम है। खास कल्याण इसमें कुछ नहीं है जब तक कि अन्तर में सत् स्वरूप का बोघ प्राप्त करके निर्मल कीर्ति परम तत्व की न जानी जाये। अच्छी तरह से विचार कर लेवें। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

56. अभ्यास और वैराग की दृढ़ता को धारण करने का आदेश (कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की व्याख्या)

दृष्यमान संसार की विनाश का निश्चा होना–यह एक अधिक उत्तम जीवन की अवस्था है। मगर इससे ज्यादा उत्तम अपने शरीर की विनाश को दृढ़ प्रतीत करना है। अपने शरीर की दृढ़ विनाश को निश्चय करके बुद्धि सत् परायण होने का यत्न करती है। तमाम नाम रूप संसार जो प्रतीत हो रहा है उसकी विनाश को निश्चय करके तमाम दुखदाई और सुखदाई पदार्थों की प्राप्ति और अप्राप्ति के ग्रहन और त्याग की कामना से पवित्र होना यानी असंग होना ही परम स्थिति है। हर वक्त शरीर की विनाश को निश्चय करके तमाम शारीरिक भोगों से निर्बन्धन हो करके मन बुद्धि का निश्चल ध्यान एक नाम में दृढ़ करना चाहिए ऐसी दृढ़ता से ही निःकल्प स्थिति प्राप्त होती है। यानी बुद्धि कर्त्ता, कर्म और कर्म फल द्वन्द से निर्मल हो करके केवल सत् सरूप में निःचल होती है।शरीर की कामना का अधिक भयानक रोग इस बुद्धि को प्रतीत करने पर भी शारीरिक भोगों की आसक्ति से निबन्र्धन नहीं हो सकती है। यानी शरीर की विनाश को निश्चय नहीं करती है और न ही भोग वासना से असंग होने का यत्न करती है। यह मोह रूपी जाल बड़ा दुस्तर है। इस वास्ते हर वक्त शरीर की विनाश को निश्चय करके तमाम इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति से निर्बन्धन होकर एक नाम के परायण अचल ध्यान से होना ही इस दुर्मत जाल से छुटकारा देने वाला और जीवन सरूप परम तत्व में निःचलता की प्राप्ति देने वाला सत् यत्न है यानि तमाम शारीरिक सुखों से उपरस होकर के केवल नाम चिन्तन में बुद्धि को बार–बार एकाग्र करके तमाम शारीरिक कर्मों के द्वन्द्व सरूपी फल दुख–सुख को प्रभु आज्ञा में समर्पन करके होना और ना होना से अचिन्त हो करके नित आनन्द अविनाशी शब्द में अन्तर में निःचल होना ही सत् स्थिति है। और यही योग आरूढ़ अवस्था है। सो इस भयानक सृष्टि के जाल से छुटकारा हासिल करने की

खातिर केवल एक नाम का चिन्तन करना और तमाम शारीरिक सुख और दुख को प्रभु आज्ञा में समर्पन करते हुये अपने कर्त्तापन का त्याग करके अपने आप को निर्मान, निष्काम और निर्मोह अवस्था में दृढ़ करके निःचल होना ही परम स्थिति है। इस वास्ते तवज्जह (सुरति) को ज्यादा मुन्तशिर (बिखेरने) करने की बजाये अधिक से अधिक सत् यत्न करके नाम में दृढ़ करना चाहिए क्योंकि नाम की दृढ़ता से सत् विश्वास और सत् अनुराग की दृढ़ता होती है जो इस विनाश शरीर की कामना से पवित्रता के देने वाला है। जिस वक्त मानसिक धारा गहरे विचारों की तरफ जाये तो सरब मिथ्या निश्चा दृढ़ करके सत् नाम में अखंड तवज्जह लगानी चाहिए। ऐसी अखण्ड जाप की दृढ़ता से बुद्धि निःचलता को प्राप्त करके सत् शब्द अविनाशी तत्व को अन्तरिक में बोध करती है जो इसका अपना निज सरूप है। ज्यादा सोचने और विचारने से ज्यादा नाम में सुरति का दृढ़ करना परम कल्याणकारी है।

इस वास्ते अभ्यास और वैराग की दृढ़ता को धारण करके तमाम मिथ्याकार संसार से असोच और अबोध होने का यत्न करें। अपने सत् यत्न से तमाम मानसिक वृत्तियों का निरोध सहज हो जाता है, और बुद्धि तमाम शारीरिक कामना से पवित्र हो करके यानी दस इन्द्रियों की आसक्ति से निर्बन्धन हो करके नाम परायणता में निश्चल होती है, और निज सरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करके तमाम दुर्मत के जाल से असंग हो जाती है, यानी अपने निश्चल निर्मल चैतन सरूप में स्थित होती है। यह ही परम धाम अवस्था है। जब आत्मा को कर्त्ता जान करके बुद्धि तमाम कर्मों के फल दुख-सुख से असंग होती है यानी लमह ब लमह (प्रति क्षण) तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पन करती है तब राग और द्वेष से निर्मल हो करके अविनाशी शब्द सम पद में स्थित होती है, इसी भावना को ही कर्मयोग कहते हैं यानी कर्मों के द्वन्द्व फल का त्याग करना प्रभु आज्ञा में।जब बुद्धि आत्मा को अन्तर में बोध करके तमाम शरीर की वासना से निर्मल हो जाती है तब अपने आपको साक्षी सरूप आत्मा, अकर्ता, अकर्म, अखण्ड, निर्वास, निर्वान समझ करके स्थित होती है-ऐसी स्थिति को ज्ञान योग कहते हैं। कर्म योग और ज्ञान योग का सरूप एक ही है। जब देह अभिमान और देह कामना में बुद्धि मलीन रहती है तब कर्मयोग यानी प्रभु आज्ञा में सरब कर्म फल समर्पन का निश्चा ही कल्याण के देने वाला है। इसको भक्ति योग भी कहते हैं ।अच्छी तरह से विचार कर लेवें और नित सत् यत्न से अपने मानसिक दोषों

से पवित्र हो करके अपने अखण्ड शान्तमई निज सरूप को बोध करें। संसार की नापायेदारी (नश्वरता) को समझने से केवल सत् शान्ति प्राप्त नहीं होती है। कुछ समय के बाद यह भावना संसारी मोह की अधिकता से नष्ट हो भी जाती है। इस वास्ते संसार की नापायेदारी को समझते हुये सत् सरूप की प्राप्ति का अधिक यत्न करना कल्याण का देने वाला है। यानी नाम सिमरन के अभ्यास में दृढ़ होना चाहिये और अपने आपको बैठने का आदी भी बनावें। बैठने से ज्यादा एकाग्रता और निःचलता प्राप्त होती है, इस वास्ते आसन की दृढ़ता अधिक जरूरी है। वैसे हर हालत में चिन्तन करना कल्याणकारी है मगर विशेष रूप में बैठक से ही अभ्यास में खास दृढ़ता प्राप्त होती है। इस वास्ते सत् नियम अनुकूल ही यत्न करें तब ही निर्मल सफलता प्राप्त हो सकेगी।

----

57. प्रभु प्रेम कब प्रकट होता है

ईश्वर सत् बुद्धि देवे। प्रेमी जी, दुःख व सुख ईश्वर की आज्ञा से होता है। हर एक को सहन करना पड़ता है। तुम्हारा फर्ज़ है सेवा करनी। आगे कामयाबी उसका नसीब। ईश्वर आइन्दा बेहतरी करें। प्रेमी जी, प्रेम जल्दी प्रगट नहीं होता। हर वक्त सत् श्रद्धा से सिमरण करते जावें। जब देह का सही मालिक उस परम पिता को जान लेवेंगे तब प्रेम प्रगट होवेगा। घबराने का मकाम नहीं बल्कि शूरवीरों वाला जीवन धारण करना चाहिए। जो मालिक की रज़ा (मर्जी) वो ही ठीक है। ईश्वर की भावी पर क्या-क्या कष्ट महापुरुषों ने उठाये । तुम किस बात से घबराते हो, हर वक्त लोक सेवा धारण करें। हर एक से प्रेम करें, सेवा करें, अन्तर चित्त अभ्यास करें। दृढ़ निश्चय से ईश्वर को मालिके कुल जानें। ऐसी भावना से ही मन में प्रेम की लहर प्रगट हो जावेगी। प्रेमी जी, ज़िन्दगी को गर्ज़ वाली न बनावे बल्कि फर्ज़ वाली। हर वक्त विचार आज़ाद रखें। परिवार भी ईश्वर का ही समझें। अपने आपको सेवादार जानें, तब ये मन सत् विश्वास को पकड़ेगा। दुनियाँ एक गहरा जाल है। बड़ी साबत कदमी (मजबूती) से महापुरुषों ने पार पाया है। होना और ना होना सब मालिक की मर्जी देखें। अपने आपको एक बिलकुल अदना (तुच्छ) जानें, तब मन की शान्ति होवेगी। ईश्वर सत् बुद्धि देवें। हर वक्त अपनी आखरत को देखकर महाप्रभु का सिमरण किया करें। ईश्वर शान्ति देवे।

----

58. ओ३म् अक्षर की व्याख्या

ईश्वर सत् बुद्धि देवे, जो कुछ होता है सब (ईश्वर) इच्छा में होता है। ईश्वर की आज्ञा में नि:चल रहना चाहिए। तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सबको सत् धर्म प्राप्त करें। हर वक्त धर्म परायण जीवन इखत्यार करें। जो अर्थ पूछ भेजा है उसका विचार करें। ओ३म् अक्षर के तीन जुज़्ज़ (हिस्से) हैं। आकार, ऊकार, मकार, यानी ज़ेर जबर, पेश के मिलाप से ओ३म् अक्षर बना है। आकार उत्पत करने वाला, ऊकार पालन करने वाला, मकार नाश करने वाला। इन तीनों ताकतों का जो मालिक है वो नाद स्वरूप ओ३म् है। ये ओ३म् अक्षर की तशरीह (व्याख्या) है। इनको त्रैमात्रिक शब्द कहते हैं। अडंज (अण्डों से पैदाइश), ज़ेरज (वजूद स्वरूप की पैदाइश), स्वेदज (पसीने की पैदाइश), औद्विज (वनस्पति) ये चार प्रकार की पैदाइश, चारखानी भी इन को ही कहते हैं। ईश्वर की शक्ति सबमें पूर्ण तरीकों से प्रकाश कर रही है। इस वास्ते उसको सर्वज्ञ कहा गया है। स्थूल विकार त्रैगुण माया का स्वरूप है। बीच कारीगर आप ईश्वर ही है। ऐसा निश्चय करके ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। हर वक्त जीवन शक्ति नारायण का विश्वास होना चाहिये। परउपकार में चित्त को लगाना चाहिए। तमाम प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी। समता की तालीम हर एक को समझायें जिससे सबको शान्ति प्राप्त होवे। ईश्वर सत् विश्वास देवे। अपने जीवन का सुधार करते रहें।

गुरु शिष्य सम्बन्धी पत्र

59. गुरु कृपा और जीवन सम्बन्धी संशयों की निवृत्ति

श्री महाराज जी कृपा दृष्टि करके फरमाते हैं कि-

(1) सत्गुरु को हर शिष्य के हालात का इल्म (ज्ञान) हो सकता है अगर मालूम करना चाहे तो। बाकी शिष्य अपने सत् विश्वास के बल से ही गुरु कृपा हासिल कर सकता है और अपने हालात को दुरुस्त कर सकता है। शिष्य अगर अपने सत् यत्न को छोड़ देवे तो वह फिर कैसे गुरु कृपा का पात्र हो सकता है, अच्छी तरह से समझ लेवें।

(2) सत् विश्वास का यत्न मनुष्य को कुव्वते बर्दाश्त (सहन शक्ति) बख्शता है और देव वृत्तियों द्वारा रहनुमाई (मार्गदर्शन) भी करता है।

(3) फर्ज़ की अदायगी हमेशा शक्ति पर इनहसार (निर्भर) रखती है जिसमें कोई रंज (दुख) का मुकाम नहीं है, हां अल्बता (लेकिन) गर्ज़ का मामला बड़ा दुश्वार (कठिन) है जिसको पूर्ण करने में खुद भी खत्म होना पड़ता है। इस वास्ते गर्ज़ और फर्ज़ के मसले को अच्छी तरह से समझें। तलकदारों (सम्बन्धियों) में तो गर्ज़ का ही दौर चलता है, जो जीव का वास्तविक स्वभाव है। फर्ज़ शनासी (कर्त्तव्य परायणता) और फर्ज़ अदायगी का मामला उस जगह समझना चाहिये जिसमें अपना निजी स्वार्थ हासिल करने की उम्मीद न कायम की जावे। इस विचारधारा को अच्छी तरह से समझ करके फर्ज़ अदायगी में रंज वा गम से बालातर (मुक्त) रहना चाहिए और हसब तौफीक (यथाशक्ति) यत्न करना चाहिए। बाकी गर्ज़ का मामला खुद ही समझकर अमल में लावें।

(4) कामिल पुरुष के मिलने पर साधारण पुरुष को कामिल पुरुष की सत् शिक्षा में अपने आपको मिटाना होगा तब ही कुछ कामयाबी हो सकती है।

(5) ज़िन्दगी न रहमत (कृपा) है ना ज़हमत (अभिशाप) है बल्कि ख्यालात का मज़मूहा (समूह) है। जैसे-जैसे ख्यालात के ज़ेर असर (प्रभावित)

होकर मानुष कर्त्तव्य करता है इसके नतीजे को हासिल करके अपने आप में खुशी या गमी के तूफान को पाता है। यह ही ज़िन्दगी बेकरारी की है और जब ख्यालात की धारा को ही सत् सरूप के प्रेम में खत्म कर दिया जावे तब असली ज़ावेद (शान्ति) ज़िन्दगी हासिल होती है, जो सही मानों में ज़िन्दगी है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें।

ईश्वर सत् बुद्धि देवे। श्री महाराज जी दुबारा आपको आशीर्वाद फ़रमाते हैं, स्वीकार करें। ईश्वर नित सहायक होवें।

(दास बनारसीदास)

----

60. गुरु शिष्य अन्तर तथा समर्पण बुद्धि का निर्णय

श्री महाराज जी फ़रमाते हैं कि अपने प्रश्नों का उत्तर विचार कर लेवें। आत्मा सर्वज्ञ व्याप रहा है। गुरु ने तो आत्मा का बोध किया है और शिष्य बोध प्राप्त करने के यत्न में लगा हुआ है। सही गुरु और शिष्य में इतना ही फ़र्क है। गुरु की अवस्था में शिष्य कोई दूर नहीं है बल्कि उसका अपना आप ही है। शिष्य के नज़दीक गुरु काफी दूर है जब तक कि सही गुरु के तत्व को शिष्य जान न लेवे।

(2) सुपुर्दगी यानी समर्पणता और यत्न का यह मेल है कि समर्पणता के बल से केवल यथार्थ यत्न ही हृदय से उत्पन्न होता है जो कि जीवन उन्नति में सहायक है और मलीन वासनाओं का अभाव हो जाता है। समर्पण बुद्धि के बग़ैर जो भी यत्न किया जाता है वह बन्धन दर बन्धन और वास्तविक अशान्ति के देने वाला होता है। यानि समर्पण बुद्धि से निर्मल संकल्प और निर्मल यत्न प्रकट होता है जो कि परम सुख का सरूप है। समर्पण बुद्धि की दृढ़ता शुद्ध प्रयत्न को प्रकाशने वाली है और नित सरूप आत्मा के आनन्द में स्थिति के देने वाली है। सत्पुरुषों का प्रथम सार साधन समर्पण बुद्धि की दृढ़ता ही है।

(3) खूबसूरती का निर्णय यह है कि संसारी विचरत हालत में वासना की गिरफ्तारी में जिन पदार्थों में मन अति लोभित होता है उसके वास्ते वह ही खूबसूरत हैं ख्वाहे (चाहे) बदसूरत और दुर्गन्ध सहित क्यों न होवें और असली खूबसूरती वह ही है जो न बदलने वाली हो और जिस करके तमाम बदसूरतें सूरतमंद प्रतीत हो रही हैं। वह एक परम तत्व आत्मा ही है जिसके प्रकाश से

तमाम जड़ प्रकृति प्रकाशवान हो रही है। वह ही परम सूरत, परम प्रकाश और परम प्रसन्नता का भंडार है। ऐसा निश्चय होना चाहिये। अच्छी तरह से विचार कर लेवें। ईश्वर सत् बुद्धि अनुराग देवे। बाकी दीबाचा (सूची पत्र) एक ही होना चाहिये, दरम्यान (बीच) में और दीबाचों की ज़रूरत नहीं है। तुम्हारा विचार ठीक है। इसके मुताबिक ही करें। श्री महाराज जी दोबारा आशीर्वाद फरमाते हैं, स्वीकार करें। ईश्वर नित सहायक होवें ।

(दास बनारसी दास)

----

61. गुरु बचन विश्वास में दृढ़ता

पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवें। तमाम परिवार को और तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् अनुराग देवें। प्रेमी जी, गुरु शिक्षा का निर्णय ये ही है कि कई किस्मों के मनमाने निश्चय जो न सिद्धि और शांति के देने वाले हैं, उनसे छुटकारा हासिल करके एक तत्व वस्तु में मन को लगाया जावे जिससे मेहनत सफल हो जावे। ईश्वर चिन्तन जो अन्तरमुख धारणा से किया जाता है उसका जल्दी ही असर मन पर होने लगता है और ईश्वर प्रेम की शक्ति के बल से अपने आप पर काबू पा लेता है, मगर गुरु बचन का विश्वास अटल होना चाहिए। यह मन एक बड़ा कठिन शत्रु है, इसके दमन करने के वास्ते सत् मार्ग, सत् पुरुषार्थ और निर्मल प्रेम का बोध ज़रूरी होना चाहिए, तब ही बुद्धि नाम चिन्तन के बल से मन पर ग़ालब (काबू) आ जाती है और सत् स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। ईश्वर अधिक विश्वास और प्रेम देवें जिससे अपने मानसिक दोषों को पवित्र करके निज स्वरूप आत्म आनन्द को अनुभव कर लेवें। ईश्वर नित सहायक होवे।

----

62. गुरुदेव की अपने शिष्यों से अपेक्षा

आशीर्वाद पहुंचे, पत्र मिला। ईश्वर समता बुद्धि देवें। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, समता की रोशनी को फैलाना तुम सब गुरुमुखों का परम धर्म है। और हर वक्त हमको अपने हृदय में समझें। यह

हर वक्त याद रखें कि तुम प्रेमियों का जीवन अपने देश और धर्म के लिए अति सुगन्धित होवे। उम्मीद है कि तुम होनहार बच्चे ज़रूरी अपनी सादत-मन्दी (आज्ञाकारिता) का सबूत देवेंगे। ईश्वर आज्ञा से हम भी तुम्हारे जैसे सच्चाई के मुतलाशियों (जिज्ञासुओं) की ख़ातिर घर-घर फिर रहे हैं। प्रेमी जी, जो कुछ हिदायत (आज्ञा) तुमको मिली है उस पर हर वक्त कारबन्द (कायम) रहें। यह संसार एक बड़ा अंधकार है इस वास्ते हर वक्त सत् असूल को धारण करते रहें। कुर्बानी से ज़िन्दगी मिलती है, तुम्हारी ज़िन्दगी बहुत ही कुर्बानी वाली चाहते हैं। इस वक्त ईर्खा द्वेष की आग प्रचण्ड हो रही है, इसको बुझाने के लिए समता की रोशनी तलूह (प्रकट) हुई है। तुम गुरुमुख ज़रूर इस रोशनी की किरणें बनकर अपने जीवन और देश को ज़रूरी प्रकाश करें। हिन्दू कौम की बिखरी हुई हालत को तुमने टांका लगाना है, इस वास्ते इस महाकार्य का बोझ तुम्हारे सिर है। हर घड़ी हर लमहा अपनी इखलाकी (व्यवहारिक) ज़िन्दगी का सुधार, अपनी आत्मिक उन्नति रोज़ाना अभ्यास करके प्राप्त करें।

सत्संग एक महाकारज है इसको हर वक्त हर एक प्रेमी तन, मन, धन करके धारण करे। सत्संग एक जीवन है, राज स्वराज की बुनियाद यह सत्संग ही है। हर वक्त तुम्हारे अन्दर यह तड़प होनी चाहिए कि हमारे जीवन से लोगों को सुख मिले। यह ईश्वर का हुक्म है कि जो जीव पर-सुख और परहित का विचार करता है वह ही परम आनन्द को प्राप्त होता है। इस वास्ते हर वक्त कोशिश करो समता के मेहराज (मंज़िल) को हासिल करने की। समता ही आखिरी मुकाम है जहां यह जीव अपनी अनानियत (कर्त्तापन) से मुखलसी (आज़ादी) पाकर अपने नित स्वरूप में लीन हो जाता है। हर एक सोसाइटी को समता की तबलीग (फैलाना) करें और आपस की कशमकश जाहलाना (निरर्थक वाद-विवाद) से मुखलसी हासिल करें। प्रेमीजियो, तुम्हारी नेक सीरत (स्वभाव) हर वक्त चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर पर उपकार और देश सेवा की तड़प चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर दुखियों के दु:ख का अहसास चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर एकता सत्संग चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर अपने सच्चे प्राचीन बुजुर्गों का आदर्श चाहते हैं। तुम्हारे अंदर समता के लामहदूद (असीम) दायरे की रोशनी

चाहते हैं। तुम्हारे अंदर गुरुभक्ति और ईश्वर परायण जीवन चाहते हैं। तुम क्या प्रेमी सच्चे अधिकारी इस हमारी प्यास को पूर्ण करोगे? ज़रूरी, अगर तुमने अपना सच्चा रिफारमर माना है तो जरूरी अपनी कुरबानी का सबूत देवेंगे। ईश्वर तुमको सामर्थ देवेंगे। ईश्वर सबको सत्संग प्रीति बख्शें। गाह बगाह (कभी-कभी) सत्संग की कारवाई लिखते रहना। ईश्वर तुमको सत् सेवा का भाव बख्शे। और हर वक्त हमको अपने हृदय में समझें। जो उपदेश तुमने ग्रहण किया है उसको हर वक्त दृढ़ करें। इस दुनियाँ में बड़े आला मेहराज (श्रेष्ठ मंज़िल) को प्राप्त करोगे। अपने गुरु भाईयों से और तमाम जनता से अधिक से अधिक प्रेम बढ़ायें। सब प्रेमियों को आपस में मिलकर सेवा करनी चाहिए। यह तुम्हारी अव्वल ड्यूटी है। ईश्वर उस पर खुश होता है जो ईश्वर के नियम पालन करने वाला है। तुम हर वक्त उस महाप्रभु के विश्वासी बने रहो। दुनियाँ में शान्ति को पाओगे। हमको दूर मत समझें बल्कि अपने हृदय में। पत्रका द्वारा आशीर्वाद हासिल करते रहा करो। सत्संग में दृढ़ता रखनी। ईश्वर सत् श्रद्धा देवें।

----

63. गुरु उपदेश द्वारा मानसिक शान्ति हासिल करो

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् श्रद्धा देवें। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सबमें धर्म प्रतीत देवें। प्रेमी जी, हमको जुदा न समझें बल्कि तुम्हारी सत् श्रद्धा से तुम्हारे हृदय में मौजूद हैं। प्रेमी जी, तुम प्रेमियों को वाज्या (पता) होवे कि गुरु बचन को दृढ़ निश्चय से धारण करें और अपनी ज़िन्दगी को खुशगवार बनायें और दूसरों के लिए एक नमूना बनकर दिखलायें। इस वक्त धार्मिक, सामाजिक उन्नति बिल्कुल गरुब (समाप्त) हो चुकी है। तुम प्रेमियों को चाहिए कि बाअसूल जीवन बनाकर देश धर्म की रक्षा करें। सत्संग का प्रोग्राम बहुत मुकम्मल करें और तमाम प्रेमियों को शामिल होने के वास्ते प्रेरणा करें, नहीं तो तुम प्रेमी ज़रूरी एक जीवन बनकर दिखलायें। हर वक्त गुरु आशीर्वाद से सफलता प्राप्त करें। शिष्यों का फर्ज़ है कि गुरु उपदेश को अपनाकर मानसिक शान्ति हासिल करें। प्रेमियों से बहुत सी सेवा चाहते हैं। ईश्वर तुमको निर्मान भाव और सत् सेवा का जीवन बख्शे जो कि सदाचारी

पुरुषों का लक्षण है। ज़रूरी अपने रहनुमा के दर्द को दिल में जगह देनी और सही मानों में अपना जीवन पेश करें। तुम प्रेमियों के सिर पर धर्म का बड़ा बोझ है। ईश्वर तुमको सत् बुद्धि देवें। हर वक्त बुलन्द ख्याली हासिल करें। वैर, बुग़ज (द्वेष) को मिटाने की कोशिश करें। हर एक से सांझ पैदा करें। ईश्वर विश्वास पूर्ण रखें और गुरु को हर वक्त सहायक देखें। प्रेमी जी, अपने अन्दर पवित्र जल्वा पैदा करना चाहिए और बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत् असूलों को धारण करना चाहिए। अभ्यास जरूरी किया करें, इससे बुद्धि प्रकाश होती है। तमाम प्रेमी समता का जीवन हासिल करें। ईश्वर बल बुद्धि देवें। हर वक्त हमको हृदय में देखें। ईश्वर आज्ञा से जल्दी ही कहीं तप की ख़ातिर एकान्त में जावेंगे। ईश्वर सत् भावना देवे और गुरु बचन का अटल विश्वास बक्शे। हर वक्त नाम प्रीत बनी रहे।

----

64. अन्दर के हालात बताने की मनाही

प्रेमी जी, घबराने की ज़रूरत नहीं। फिर कोशिश सही करते रहें। प्रभु शायद दयालु होकर फिर अन्तःकरण को रोशन कर देवें। इसमें ज़ोर किसी का नहीं चलता। उसी की दया होनी चाहिए। तुमको पहले जब यह समझा दिया गया था मगर फिर तुमने महफ़िल लगानी शुरू की तो अब पछताने के बजाय अपनी लगन को दृढ़ करते जावें। प्रभु की ज़रूरी कृपा होवेगी। छोटी अक़ल हाज़मा कहाँ से लावे। **अब अपनी ग़लती को समझकर आइन्दा ज़्यादा अभ्यास में प्रेम धारण करें। और ज़बान पर मोहर लगा देवें ग़ैब के हालात की, तब ही प्रभु जी क्षमा करके फिर सत् शान्ति की झलक शायद अपनी अपार दया से दिखलावें।** ईश्वर सत् विश्वास देवें। प्रेमी जी, बासमझ होकर पूर्ण ज़ब्त (दृढ़ता) से इस मार्ग में चलें, तब ही सत् शान्ति को हासिल कर सकोगे।

गुरु दीक्षा (नाम दान) के संबंध में मार्गदर्शन

65. गुरु आज्ञा के उलंघन पर दण्ड

आज्ञाकारी संगत अबोहर,

आशीर्वाद पहुँचे। सब प्रेमियों को वाजया होवे (सूचित होवे) कि एक मामला प्रेमी बन्सीलाल और प्रेमी किशोरीलाल की धर्मपत्नियों का दरपेश (सामने) है। जिसके मुतल्लिक (बारे में) चेतावनी दी जाती है कि प्रेमी बन्सी लाल की धर्मपत्नी ने कुछ अरसे से समता की तालीम (समता सिद्धान्त) का आसरा लेकर गुरु बनकर कई स्त्रियों को उपदेश दिया है। और ये मामला उपदेश वाला प्रेमी किशोरीलाल के घर रायज (आरम्भ) हुआ है। उसकी धर्मपत्नी की इमां (उकसाहट) पर, बाकी आपस की नाराज़गी होने से यह खबर प्रेमी किशोरीलाल ने गुरु-दरबार में दी। जैसे के हालात मालूम हुए हैं।

इनके मुताबिक इस अधिक दूषित कर्म के आरम्भ करने का जो सिलसिला इन देवियों ने रचा है इसके वास्ते गुरु-दरबार से ये ही आज्ञा है -

''कि आइन्दा इन देवियों को किसी वक्त भी गुरु दर्शन की आज्ञा नहीं दी जावेगी और न ही जगाधरी सम्मेलन पर इनको हाजिर होने की आज्ञा दी जाती है। तमाम संगत के वास्ते एक कलंकित कर्म किया है और गुरु दरबार में जो प्रतिज्ञा की थी उसको भंग किया है। और ना ही इन देवियों को गुरु उपदेश की कुछ सफलता प्राप्त होगी। ख्वाहे लाख यत्न क्यों न करें। अगर ऐसे हालात होने पर भी गुरुडम को बन्सीलाल की धर्मपत्नी त्याग न करे तो तमाम प्रेमी इसकी पूरी-पूरी मुखालफत (विरोध) करें और तमाम समता की तालीम (समता सिद्धांत) की पुस्तकें इनसे ले लेवें और दूसरे (अन्य) लोगों को वाज्या (सूचित) करें कि इनको इस अनुचित कर्म के करने से गुरु-दरबार से खारिज कर दिया गया है (निकाल दिया गया है)। कोई इनकी बनावट पर न भूलें और ना ही खराब होवें। प्रेमी किशोरीलाल और बन्सीलाल को चूंकि इस मामले का पता नहीं है इस वास्ते वह इस दोष की लपेट में नहीं आ सकते हैं। और प्रेमी दयालचन्द ने बन्सीलाल की धर्मपत्नी की सफाई की चिठ्ठी लिखी है। हालांकि उसकी औरत ने खुद

उपदेश उससे लिया है। सो ऐसा गुरु-दरबार में झूठ बोलना, इसके वास्ते वह खुद ही ऐसी सजा को प्राप्त होगा जो कि गुरु-दरबार में झूठ बोलने से मिलती है।"

आइन्दा (आगे के लिए) सब प्रेमियों को चेतावनी दी जाती है कि कोई भी समता की तालीम (समता सिद्धांत) के विरुद्ध कार्यवाही सुने तो उसकी पेशबन्दी (रोकथाम) करे। आगे ही इस गुरुडम ने भारतवर्ष का नाश किया है और समता की तालीम इस दुरुस्ती के वास्ते प्रगट हुई है। इस वास्ते तमाम प्रेमी समता की तालीम को अपनाने वाले और रख्यक (रक्षक) बनें। ऐसी एहतियात (सावधानी) में रहना चाहिए। आइन्दा इन देवियों के मुतल्लिक (बारे में) कोई पत्रिका इधर लिखने की कोई जुर्रत (हिम्मत) न करें और न ही इधर से कोई जवाब दे सकते हैं।

ऐसे महा अपराध कर्म के करने वाले को कई जन्म सजा भुगतनी पड़ती है और जिन देवियों ने उपदेश लिया है वह ऐसा ही समझें जैसे कि कागज़ पर रोटी का लफ़ज (शब्द) लिखा हुआ पढ़ लेने से भूख की निवृत्ति नहीं होती। सब यत्न नेहफल (निष्फल) ही जानें।

ये पत्रिका प्रेमी किशोरीलाल और प्रेमी बन्सीलाल को बुलाकर सुना देवें। ऐसा निश्चय तो नहीं था कि इन प्रेमियों के घर से ही समता की तालीम के विरुद्ध कार्यवाही होगी। ईश्वर आइन्दा (आगे के लिए) कृपा करें और सबको सुमति देवें, जिस करके निर्मल सेवक रूप में निश्चित होकर अपनी जीवन-यात्रा को पवित्र कर सकें।

ये थोड़ा लिखना ज्यादा समझें। ऐसा अनर्थ कारज कहीं भी सुनने में नहीं आया है कि गुरु की मौजूदगी में शिष्य रूप में कोई गुरु बनें। ये इन देवियों ने एक खिलौना समझकर ऐसी रचना शुरु की है।

प्रेमी किशोरीलाल और बन्सीलाल की ज्यादा जिम्मेदारी है कि इनके जरिए ही इनकी धर्मपत्नियों को इनकी बड़ी प्रार्थना पर उपदेश मिला था जिसका नतीजा ये निकला। ईश्वर आइन्दा सबको गुरु वचन पालने की श्रेष्ठ बुद्धि देवें। दोबारा सबको आशीर्वाद पहुँचे।

----

66. बिना गुरु आज्ञा के दूसरों को नाम दान करने से हानि

आज्ञाकारी सती-सेवक परसराम जी, आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर सत्-श्रद्धा देवें। प्रेमी राम लाल को आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, जो कुछ प्रभु-इच्छा से होता है वह सत् है, मगर यह याद रखना चाहिये कि मार्फ़त (रूहानियत की मंज़िल) का मुकाम बहुत दूर है, यानि तमाम ख़्वाहिशों से मुबर्रा (स्वतन्त्र) होकर उस ज़िन्दगी के जलाल (प्रकाश) को देखना है और तुमने एक अधूरी हालत में ही रहबरी करके (रास्ता दिखाकर, गाइड बनकर) अपने रास्ते में रुकावट डाल ली है। ख़ैर, इसका नतीजा कुछ पता लग जावेगा।यह तो मंज़िल ऐसी है कि पूर्ण प्राप्ति वाले भी जल्दी-जल्दी रहनुमाई (मार्गदर्शन) नहीं करते। यह एक बड़ी ज़िम्मेवारी है। ख़ैर उस प्रेमी को कुछ हासिल हो या न हो मगर तुमको अपनी रुकावट के भंवर में ज़रूरी फिरना पड़ेगा। तुमको पहले ही यह समझाया गया था। ईश्वर आइन्दा के वास्ते सत्-मत (सद्-बुद्धि) देवें।

प्रेमी जी, केवल रास्ते के सुन लेने से कुछ हासिल नहीं होता, जब तक कि कामिल उस्ताद की आशीर्वाद हर लम्हा (हर पल) साथ न हो। ऐसा अगर हो सके तो कोई भी लाल की लाली से ख़ाली न रहे। यह तो शिष्य का सत्-यत्न और गुरु की आशीर्वाद साथ होती है तब वासना के समुन्दर से पार होकर निज-आनन्द को प्राप्त कर सकता है। बड़ी श्रद्धा तुम्हारी जो एक साल तक पत्र लिखने का मौका मिला। बचपन वाले ख़्याल छोड़कर सही श्रद्धावान होकर अपनी जीवन उन्नति करें। जो कुछ कर बैठे हो इस पर पछताओ और आइन्दा के वास्ते पोशीदा रहो (गुप्त रहो)। हर एक सत्संग में जा सकते हो मगर किसी की चापलूसी पर भूल नहीं जाना। कई गुरु मुरदार फ़रोख़्त कर रहे हैं (मुर्दा बेच रहे हैं)। ज़िन्दगी फ़रोख़्त करने वाला (राजदां फ़कीर) कोई विरला ही होगा।

प्रेमी रामलाल को वाज़े (सूचित) होवे कि कभी दर्शन हुए तो तुम्हारी सब सेहत हो जावेगी। ईश्वर भावना श्रेष्ठ देवें।

30.5.44

ह० मंगतराम
अज़ जंगल फ़ैलां
रियासत कश्मीर

----

67. नाम के सम्बंध में गुरुदेव का निर्णय

नाम का असली निर्णय यह है कि जो खास बीज मंत्र किसी सिद्ध पुरुष से प्राप्त हुआ होवे और अन्तर्गति व बाहिर्गति में पूर्ण रूप से चिन्तन किया जा सके, और पल पल विखे सत्गुरु शरणागत धारण करके एक नाम के आधार पर ही अपनी तमाम की तमाम मनोवृत्तियों को निहचल करके बुद्धि को एकाग्र किया जावे। ऐसे साधन को ही नाम चिंतन और योग कहा गया है।

जो नामुकम्मिल (अपूर्ण) साधु के उपदेश को धारण किया होवे, जिसने खुद अपने अन्धकार को दूर नहीं किया हो, तो उस उपदेश में सफलता होनी कठिन है। क्योंकि इस योग मार्ग में गुरु करनी वाले के वग़ैर सत् पद की प्राप्ति होनी अति कठिन है। जैसा कि आम बनावटी गुरु घर-घर उपदेश देते फिरते हैं, उसका नतीजा महज़ (केवल) एक व्योहार है, न कि कल्याण है। नामुकम्मिल साधु का उपदेश न यथार्थ कल्याण दे सकता है और न ही बुद्धि उस पर पूर्ण निश्चयगत हो सकती है। ऐसा अच्छी तरह से समझना चाहिए।

(ग्रंथ श्री समता विलास प्रष्ठ सं० 556, वचन 94, 95)

विविध पत्र

68. समर्पण कर्म और नाम सिमरन द्वारा अन्त:करण की शुद्धि

जो भी आकार वाली चीज़ है, मानुष, पशु और जड़ योनि आदि, वह सब जीव अपनी-अपनी फाइलियत यानी कर्त्तापन की मजबूरी में अपने-अपने शरीरों में कर्मफल द्वन्द का दुख-सुख रूपी डण्ड भोग रहे हैं और सदा अपने आप में दुखित, परेशान और भयवान रहते हैं। यह ही पूर्ण संसार का स्वरूप है। जैसा-जैसा दृढ़ कर्त्तापन यानी अहंभाव जिसके अन्तर दृढ़ है वह उसी के मुताबिक अपनी शारीरिक यात्रा को व्यतीत करता है और उसी स्वभाव के मुताबिक ही कर्म के दुख और सुख को प्राप्त होता है। यह ही सब जीवों की विचरत हालत है। इसमें बस किसी का नहीं चलता। बाहर के संगदोष से गो (यद्यपि) स्वभाव में तब्दीली आ जाती है। एक आदमी पवित्र संगत से जड़ता से स्वतन्त्र हो जाता है और एक आदमी मलीन संग से अपनी पवित्रता को खो देता है। इस वास्ते संगदोष का असर ज़रूरी तब्दीली के देने वाला होता है, बाकी खास ऐसे जीव भी होते हैं जो बिल्कुल ही अपने स्वभाव को तब्दील नहीं कर सकते हैं यानी अपने पुरातन कर्मों का इस कदर वेग धारण किया हुआ है जो जज़ा सज़ा की नौबत तक जरूरी पहुँचाता है। अपनी ज़िन्दगी को असली खुशी की तरफ ले जाने के वास्ते निहायत साबित कदमी (दृढ़ निश्चय) की ज़रूरत है। क्योंकि यह आरज़ी (नाशवान) शारीरिक भोग सत् परायणता के मार्ग में बाधक हैं इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश अपने आपको सुधारने की करनी चाहिए। तमाम संसारी खुशियों को आरज़ी (अस्थायी) और गम व रंज के देने वाली समझना चाहिए। अपनी जीवन शक्ति की गहरी तहकीकात (खोज) करनी चाहिए। वह ही सत् आनन्द और पूर्ण है। इस मानव जीवन की असली खोज ये ही है कि नाशवान शारीरिक दुखों से छूटकर अविनाशी आनन्द को प्राप्त कर लिया जावे। मगर इस मंज़िल को मुकम्मल करने की ख़ातिर बड़े उत्तम उत्साह की ज़रूरत है, सो अपने निश्चय को हर वक्त सत्-परायण बनायें और शारीरिक ग़म और खुशी प्रभु आज्ञा में समर्पण करें और नाम

सिमरन में अधिक प्रेम उत्पन्न करें। नाम सिमरन ही सर्व वासना के खेद से पवित्र करने वाला है। हर वक्त सत् विश्वास, सत् अनुराग, नम्रता, पर उपकार आदि महागुणों से अपने अन्तःकरण को पवित्र करते रहें। शारीरिक सुखों की मुनासबत (मर्यादा) को धारण करें यानी अय्याशी और नुमायशी ज़िन्दगी का पूर्ण त्याग करते हुए सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् सिमरन के असूलों में अपने आपको निश्चल करें। ऐसे जब मुनासबत में जीवन यात्रा को कायम कर लिया जावे तो फिर मनोवृत्ति सत् सिमरन में पूर्ण निश्चय से दृढ़ होती है। और प्रभु आज्ञा में ज्यों-ज्यों बुद्धि सन्तुष्ट होती है यानी अपने कर्त्तापन को समर्पण करके उस परम तत्व को कर्त्ता-हर्ता जान करके सिमरन ध्यान में दृढ़ होती है त्यों-त्यों अन्तःकरण से वासना का भयानक जाल नाश को प्राप्त होता है और अकर्त तत्व अविनाशी शब्द का अन्तर में बोध होता है। यह अवस्था परम सुख और निष्पाप की है। असली गुरमुख होकर अपने आपको सत् परायण बनावें। नम्रता, प्रेम, सिमरन, सेवा का भूषण पहन करके अपने जन्म-जन्म के अंधेरे को दूर करें और निज आनन्द सरूप आत्मा को अनुभव करके परम शान्ति को प्राप्त करें। ईश्वर गुरु बचन विश्वास देवे।

----

69. कर्त्तापन से कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति

वास्तव में बुद्धि खुद ही कर्त्तापन को धारण करके कर्म और कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति को धारण करती है और दुख व सुख में चलायमान होती रहती है। ये ही संकलित (संकल्प) रूप संसार है। इससे छूटने के वास्ते केवल प्रभु आज्ञा में कर्म समर्पण करने और कर्मफल उसकी आज्ञा में देखना एक उत्तम निश्चय है, जिससे बुद्धि कर्त्तापन की आसक्ति से निर्मल होकर के निर्वाण स्वरूप आत्मा में लीन हो जाती है। वास्तव में प्रभु न कुछ करता है न कराता है, यह सब त्रिगुण अहंकार जो बुद्धि में कर्त्तापन स्वरूप से स्थित है उसका खेल है। इसको माया भी कहते हैं। इस अंहकार के नाश करने के वास्ते केवल उपाय कर्त्तापन और कर्मफल द्वन्द सब प्रभु आज्ञा में समर्पण करना है। ऐसे निश्चय से बुद्धि निर्मल होकर के अकर्त स्वरूप अविनाशी आत्मा में लीन हो जाती है। इसको मुक्ति या परम पद कहा गया है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें।

कर्त्तापन सहित जो कर्म है वह बन्धन रूप है। कर्त्तापन रहित जो कर्म है वह ही मुक्त स्वरूप है यानी अकर्त बुद्धि से जो कर्म किया जावे वह कर्म निर्बन्धन स्वरूप है। इस वास्ते इसको अकर्म कहते हैं। और जो कर्त्तापन सहित कर्म है वह कर्मफल द्वन्द की वासना में आसक्त करने वाला है, इस वास्ते उसको कर्म और विकर्म कहते हैं यानी शुभ या अशुभ कर्म, जो बन्धन स्वरूप हैं। ऐसे जो कर्म में अकर्म स्थिति को अनुभव करता है और उसमें नि:चल रहता है यानी कर्त्तापन से बिल्कुल शुद्ध रहता हुआ शारीरिक कर्म में विचरता है वह कर्म में अकर्म स्थिति को जानने वाला यानी बन्धन में निर्बन्धन तत्व को अनुभव करने वाला पूर्ण विद्वान है।

जिस जगह अर्जुन को मान अपमान की एकता समझायी है उस जगह परम योगी का लक्षण बयान किया है कि तत्ववेत्ता पुरुष की ऐसी निर्द्वन्द स्थिति होती है और जिस जगह अर्जुन को जंग त्यागने की अपकीर्ति समझायी है उस जगह अर्जुन को अपनी स्थिति के मुताबिक उपदेश दिया है कि तुम कीर्ति के चाहने वाले हो, इस वास्ते ऐसे हालात में मैदान जंग को छोड़ना तुम्हारे वास्ते अपकीर्ति है और तुम उसको बरदाश्त नहीं कर सकोगे, इस वास्ते बेहतर है कि अपने क्षत्री धर्म का पालन करें। अच्छी तरह से विचार कर लेवें।

----

70. जीव की गति

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिले। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी बमह (सहित) बच्चों के। ईश्वर धर्म का निश्चय देवे। प्रेमी जी, जो गति का विचार लिखा गया है उसका निर्णय यह है कि मन अपनी करनी से कैद में आ जाता है और अपनी करनी से रिहाई (मुक्ति) पाता है। जो ज़िन्दगी में नेक और बद कर्म करता है उसका अभिमानी होकर खुद ही दुख या सुख पाता है। दूसरा कोई तसल्ली नहीं दे सकता है जब तक कि खुद अपना कल्याण न करें। जिस तरह कि अपने खाने-पीने से ही तृप्ति होती है दूसरे के खाने से आप तृप्त नहीं हो सकते हैं, ये ही विचार हर एक कर्म और अमल का है, जिस तरह भी होवे जीव खुद ही भलाई इख्तयार (धारण) करेगा तब ही शान्ति होगी। कानूने कुदरत ये ही है यानी

मसला कर्म का चक्कर इसी तरह हर एक जीव को भोगना पड़ता है। कोई आज़ादी नहीं दे सकता है जब तक कि खुद बाअमल नेक न होवे। यह निश्चय कर लेवें। तमाम संगत को दोबारा आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे, सदाचारी जीवन बख्शे। इसी तरह गाहे वगाहे (कभी-कभी) पत्र लिखा करें। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

71. कर्म विज्ञान

इस जगह के अच्छे या बुरे कर्मों का असर हर एक जीव पर पूरा सफलतायुक्त प्रतीत नहीं होता है। जैसा कि अच्छे कर्म करने वाले दुखित और बुरे कर्म करने वाला सुख सरूप में बिचरता हुआ मालूम होता है। सो कई जन्मों के कर्म मौका व मौका फल देते हैं। इस वास्ते जो बुरे कर्मों में सुख प्राप्त कर रहा है उसको किसी पिछले जन्म के अच्छे कर्मों का फल मिल रहा है। ऐसे ही अच्छे कर्म में दुख प्राप्त पिछले जन्म के मलीन कर्मों के अनुसार ही है। यह कर्म चक्कर का खेल है। मौका पर हाज़िर (वर्तमान) कर्म अच्छे या बुरे भी पूरा फल देवेंगे। ऐसा निश्चा होना चाहिये। गुणी पुरुष पूरी कोशिश करके अच्छे कर्म करे ताकि बिगड़ी हुई सुधर जावे और आइन्दा के वास्ते सुखदाई होवे। यह यत्न कल्याणकारी है।

----

72. ईर्ष्या के बदले प्रेम का आदेश

प्रेमी जी, प्रेम भाव को दिल में रक्खें। अगर तुम्हारे साथ कोई ईर्ष्या करता है तो उसके साथ दिलोजान से मुहब्बत करें। इससे सब झगड़े टूट जाते हैं। खैर समाँ देखकर सदाचारी जीवन को धारण करें और अपने जन्म का सुधार करें। जहाँ तक हो सके इन झगड़ों में कमी करें। ईश्वर सर्व शक्तिमान तुम्हारा सहायक हो, निश्चय कर लेवें। वह जीव कल्याण को प्राप्त होता है जो महापुरुषों के बचन को तन, मन करके मानता है। दुनियाँ के ऐश्वर्य और मान की कोई हस्ती नहीं, यह सब धूल की तरह उड़ जाते हैं, मगर सत् यत्न और परउपकार हमेशा के वास्ते लाभदायक हैं। जहाँ तक

हो सके अपने कीमती वक्त को ईश्वर भक्ति में लगायें जो दुनियाँ में महाकारज है और परम धाम को प्राप्त करें। मानुष जन्म ही है जिससे कुछ लाभ हासिल किया जा सकता है। खाक का पिंजरा आख़िर खाक में ही समायेगा। दुर्लभ यह ही है कि जीव खाक से पाक वस्तु तत्व प्रकाश को हासिल कर लेवे। ईश्वर तुमको सदा आनन्द और शान्ति देवे। हमारा मूल भाव यह ही है:-

माटी केरा पिंजरा, माटी जाये समाये।
माल मुल्क सब छाड के, जीव निमाना जाये।।
सत स्वरूप खोजन करो, सन्तन करी पुकार।
संशय सकले मिट गये, परस लियो सुखसार।।
इस मिरतक संसार में, एको रूप अपार।
खोज करो नित तिसकी, मिट जाये करम कराल।।
जीव दया उपकार नित, आतम में विश्वास।
सतनाम सिमरत रहे, जब लग देह में आस।।
सत असत संसार में, एक रूप अपार।
खोज करो नित तिसको, मिट जाये करम कराल।।
देह संग आपा हो गया, बिसरे साखी भूत।
जन्म-जन्म भरमत फिरे, तृष्णा धार रसूत।।
चेत लियो नित चेत लियो, आनन्द तत्व परकाश।
जां के पाये भरम मिटे, पद पाये अविनाश।।
कहत सुनत बहु दिन गये, सरया ना कुछ काज।
हाड मांस का पिंजरा, छोड़ चला सब साज।।
ऐसा ही एह चक्कर है, उपजे बिनसे मीत।
कूड़ी रचना जगत की, त्यागो मन से प्रीत।।
परमारथ तत सार है, सब जीवों का धाम।
जतन-जतन से ले गये, जिन सिमरा सतनाम।।
गरब गुबार मन में घना, संशय अधिक अपार।
किस जीवन लालसा में, अपने पांव पसार।।
नित उठ धायो प्रेम में, संगत साध पछान।
दुर्लभ घड़ी ये जान लो, जो चित लागे नाम।।

आस आस में मर मिटे, लाख करोड़ी मीत।
पलक में सब छाड़ गये, चले निरासे चीत।।
नाम सिमर नाम सिमर, एक तत्त जग में सार।
सत्गुरु की सत दीख्या, घर में खोल किवाड़।।
अन्तर बाहिर चानन होया, नौबत बजे नफीर।
खाट चले सत वस्तु को, कामिल सो ही फकीर।।
पलक-पलक में याद कर, संग स्वांस की डोर।
'मंगत' तत में तत मिले, अलख शब्द घनघोर।।

-"मंगतराम"

----

73. समता साहित्य का स्वाध्याय करने की प्रेरणा

आशीर्वाद पहुंचे, पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम परिवार को, तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर नित ही सत् धर्म देवें। हर वक्त प्रभु कृपा को अपनाते हुए अपने जीवन को सत् परायण बनावें। यह मानुष जन्म अति दुर्लभ है। जितनी जिसको प्रभु बुज़ुर्गी देवे उतनी ही उसके वास्ते बड़ी कुरबानी करनी होती है। ऐसा भाव दृढ़ करके अपने जीवन को सत् परायण बनाने का यत्न करना चाहिये। ईश्वर नित रक्षक होवें। तमाम प्रेमियों को एक-२ करके दोबारा आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, पुस्तकों का अच्छी तरह से स्वाध्याय करें तो आपको पता लग सकेगा कि ज़माने में किस निर्मल रोशनी की झलक को अनुभव कर रहे हैं। यह तालीम, निर्मल और सरल तमाम वेद शास्त्रों का निचोड़ प्रभु आज्ञा से आप लोगों के सामने आयी है। इसको अच्छी तरह से विचार करें और अपनी आइन्दा नसलों के वास्ते सही ज़िन्दगी का आदर्श कायम करें। प्रभु नित ही सहायक होवें।

----

74. समता के असूलों पर खुद चलें और दूसरों को आगाह करें

प्रेमी जी, दुनियाँ में सही कोशिश से बड़ा आनन्द मिलता है। इस वक्त देश की बड़ी नादार (खराब) हालत है। प्रेमी जी, समता की तालीम ईश्वरी हुकम से प्रगट हुई है। इस वास्ते इसको तन, मन, धन करके अपनाना ही कल्याणकारक है। ईश्वर समर्थ देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। पुस्तकें एहतयात (सावधानी) से तकसीम (बाँटना) करनी जिससे रिकार्ड भी बचा रहे। और संगत को बहुत फायदा पहुँचे। लिट्रेचर की हिफाज़त (सुरक्षा) करना ही तरक्की का मकाम है। हर वक्त सत्संग द्वारा समता का प्रचार करते रहा करें। इससे जनता को आनन्द प्राप्त होगा। प्रेमी जी, इन बातों को हर वक्त याद रखें। समता के असूलों पर खुद चलने की कोशिश करें, दूसरों को आगाह करें। कभी-कभी बड़ा सत्संग भी किया करें, और संगत को प्रचार करके सुख दिया करें। और भी कोई प्रेमी इस लायक होवे तो उसको पुस्तकों द्वारा लाभ देकर समता का सेवादार बनायें। इस दुनियाँ में कुछ फर्ज़ के वास्ते यह जीव आया है। पहले खुद नेक रास्ते पर चलना फिर दूसरों की सेवा करनी। प्रेमी जी, ये वक्त बड़ी जदोजहद (पुरुषार्थ) का है जिससे अपनी ज़िन्दगी को कामयाब बनावें और देश भक्ति का सबूत दें। असली खुशी हासिल करो। दूसरों की सेवा करके असली बन्दगी प्राप्त करो। गुरु के बचन पर चलके असली कमाल की हर वक्त तलाश करो, जो इस मनुष्य ज़िन्दगी का लुबे लुबाब (सार) है। पुस्तकों का अच्छी तरह विचार किया करें। इस विचार से तमाम वहमात दूर हो जावेंगे। वाणी बड़ी दिलकश है, इसकी मुनादी ज़रूर करें जिससे जनता को लाभ प्राप्त हो। इतना लिट्रेचर पब्लिक की उन्नति की खातिर है। इस वास्ते अधिकारी होकर इसको जाग्रित करें। हर वक्त प्रेमपर्वूक अपना जीवन बनायें। अभ्यास ज़रूरी किया करें। ईश्वर अधिक सेवा भाव बख्शे। हर वक्त कोशिश करो नेक बनने की। हर वक्त देश भक्ति का सबूत देवें। प्रेमी जी, जवांमर्द बनने की कोशिश करो। मानव ज़िन्दगी को सफल करो देश सेवा करके। ईश्वर सत् बुद्धि देवें।

----

75. देह परायणता का त्याग और आत्म परायणता का निश्चय धारण करना

प्रेमी जी, जो प्रश्न लिखा है उसका मुखतिसर (संक्षिप्त) जवाब दिया जाता है, अच्छी तरह से अनुभव कर लेवें। वैसे तो इस उत्तर के लाखों ग्रन्थ बने हुए हैं, अपने-अपने अनुभव द्वारा सिद्धों ने रचत किये हैं। आखिर सबकी सार लिखी जाती है, अच्छी तरह से विचार कर लेवें। बुद्धि शारीरिक सुखों को पूरण करने के यत्न में इन्द्रियों द्वारा नाना प्रकार के योग अयोग भोग भोगती है। मगर तमाम भोग छिनभंगुर होने के कारण इसको निर्भय शान्ति प्राप्त नहीं होती। यही संसार का मोह स्वरूप है। जो चीज़ बनने और बिगड़ने वाली है उसका लगाव निर्मल शांति नहीं दे सकता है। इस वास्ते जो कुछ भी देखा जा रहा है वो सब बनने बिगड़ने वाला जाल है, यानी कालचक्र है। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों में कभी भी शांति प्राप्त नहीं होती चाहे लाख वर्ष आयु प्राप्त हो जावे और तमाम ब्रह्माण्ड की सम्पदा हासिल हो जावे।यह सब महज़ (केवल) जीव के दुख और अशांति का ही कारण है। इस वास्ते अति निर्मल बुद्धि वाले महापुरुषों ने इस संसार की विचरित हालत में जो सुख प्रतीत हो रहा है वह दुख का स्वरूप बयान किया है, क्योंकि संयोग वियोग का चक्र है। इसके उलट जो असली सुख है वह परम तत्व जीवन स्वरूप आत्मा है, जो कि तमाम विश्व को प्रकाश कर रहा है और अपने आप में पूर्ण है। उसको जानना ही दुखों की निवृत्ति और परम शान्ति है। उस परम तत्व को जानने के वास्ते लाज़मी (जरूरी) है कि कामिल (पूर्ण) रहनुमा (गुरु) की शरणागत प्राप्त होवे। और उनके जीवन आदर्श करके आत्म स्वरूप का विश्वास प्राप्त करे। आत्म तत्व की पूरणताई और अखण्ड शान्ति अच्छी तरह से गुरु वाक करके निश्चय करे और तमाम शारीरिक सुखों को दुख रूप जानकर इनसे त्याग करने का यत्न हासिल करें। ज्यों-ज्यों शारीरिक सुखों से वैराग प्राप्त होता है त्यों -त्यों बुद्धि अन्तरमुख होकर परम तत्व अविनाशी शब्द आत्मा के आनन्द को पान करती है, जो तीन काल निःकर्म, निर्वास और सर्वज्ञ है। यानि शरीर के सुखों की कल्पना त्याग करके एक आत्म स्वरूप के परायण होना और गुरु उपदेश को अखण्ड प्रीत से हृदय में चिन्तन करना ही दुःखों की निवृत्ति है। जब बुद्धि शारीरिक सुखों को दुख निश्चय करके जानती है उस वक्त अन्तर सत्

शान्ति होकर दृढ़ अनुराग प्रगट होता है। उस अनुराग के बल से बुद्धि तमाम इच्छा संयुक्त संस्कारों को नाश करके एक अविनाशी तत्व आत्मा के परायण हो जाती है। ऐसी श्रेष्ठ भावना जिस वक्त प्राप्त होती है उस वक्त तमाम संसार उसको नाश स्वरूप भासता है और एक आत्म स्वरूप ही सर्व प्रकाश नित्य आनन्द स्वरूप अनुभव हो जाता है। ऐसी स्थिति जिस गुनी पुरुष को प्राप्त होती है असली सुख को उसी ने ही जाना है, जो काल से परे है। यानि शरीर के नाश होने से भी उसकी शान्ति नाश नहीं होती, वो ही परम पद है। उसको जानना, उसके परायण होना और सत् विश्वास द्वारे अपने आप को उस सत् स्वरूप में निःचल करना ही मनुष्यों के वास्ते कल्याणकारी साधन है। उसके लिए जब तक अनात्म पदार्थों में निश्चय है तब तक अशान्ति ही अशान्ति है। इस वास्ते सत् पुरुषों की संगत करके शरीर और शरीरों के भोगों से अपने आप को निरबन्ध करके अन्तरमुख नित्य ही एक परम तत्व का चिन्तन करना ही परम शान्ति और कल्याण के देने वाली है। चूंकि इन्द्रियों के भोगों की आसक्ता एक पल भी शान्त नहीं होने देती इस वास्ते आहिस्ता-आहिस्ता अंहग भाव जो मूल अन्धकार और दुख रूप है उसका त्याग करते-करते अपने अन्तर विखे निःसंग स्वरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करना ही परम योग और परम सिद्धि है। यही साधन तमाम गुरुओं का, सिद्धों का, पैगम्बर, अवतारों का मार्ग है। और साधारण जीव निश्चय करके इस निर्मल भावना को धारण करें तब ही परम कल्याण स्वरूप आत्म तत्व को अनुभव कर सकते हैं। यही मनुष्य जन्म का सही कर्त्तव्य है। शारीरिक सुखों से न्यारा होकर आत्म सुख में दृढ़ होना ही असली जिज्ञासु का कर्त्तव्य है। इस मार्ग में अटल विश्वास गुरु बचन पर और अति बैराग शारीरिक भोगों से और अधिक प्रेम सत् स्वरूप अविनाशी परमेश्वर से और हर घड़ी हर लम्हा तमाम वृत्तियों का त्याग करके एक नाम का अन्तर चिन्तन करना और कर्म द्वन्द के जाल को प्रभु इच्छा में समर्पण करना ऐसे परम विवेक को धारण करके जो गुनी पुरुष विचरता है वो तीन काल आन्तरिक आनन्द में मग्न रहता है। उसने ही तमाम संसार की यात्रा को पूर्ण किया यानि इच्छा जो शान्ति की लेकर जन्म में आया था उसने अपने सत् विवेक के बल से परम तत्व आत्मा को अनुभव करके इच्छा को पूरण कर लिया। उसका जन्म दुर्लभ है। वो ही धाम जीव का असली ठिकाना है। जब तक उसको प्राप्त न होवेगा तब तक कर्म वासना से

रिहाई पानी अधिक कठिन है। इस वास्ते अपने जीवन का उद्धार करना हर एक मनुष्य का परम धर्म है। प्रभु सत् श्रद्धा देवे। इस निर्मल प्रसंग को अच्छी तरह विचार करें और देह परायणता को त्याग करके एक आत्म परायणता का निश्चय धारण करें जो निर्मल शान्ति का मार्ग है। तमाम शारीरिक दुख व सुख प्रभु इच्छा में त्याग करें। दृढ़ निश्चय से गुरु उपदेश द्वारा आत्म स्वरूप का निदिध्यास करें जिससे तमाम कर्म जाल की वासना से निवृत्ति प्राप्त होवे। कर्म वासना की निवृत्ति से सत् शान्ति आत्म तृप्त की अनुभवता प्राप्त होती है, जो परम आनन्द स्वरूप है।

----

76. लोक सेवा तथा निर्मानता ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। सत्संग का हाल मालूम हुआ। आज जवाब दिया गया है। प्रेमी जी! अपनी ज़िन्दगी को नमूना बनावें। संसार में आने का यथार्थ लाभ प्राप्त करें। ईश्वर सिमरण और लोक सेवा असली ज्ञान का मार्ग है। इस बिखरी हुई हालत को समता के धागे से परोने की कोशिश करें। सत्पुरुषों का यही जीवन है। तमाम संगत धारीवाल को आशीर्वाद कहनी। हर घड़ी सम्मेलन का विचार किया करें। दौरांगला के समता समाज को तरक्की देने की कोशिश करें। सत्संग का नियम दृढ़ करें। अपनी ज़रूरतों को कम करके दूसरों की सेवा में प्रवृत्त हो जाओ। बारीक बुनने की कोशिश करें। ईश्वर की प्राप्ति का मुख्य साधन निर्मानता है। शरीर नाश रूप है, आत्मा अविनाशी है। शरीर अभिमान से मुखलसी (छुटकारा) पाने से आत्मिक उन्नति होती है। आत्मिक उन्नति ही असली कोशिश है, असली खुशी है, असली अंजाम है। इस वास्ते हर वक्त अपने जीवन सुधार, एकता, प्रेम और पर सेवा को धारण करें। प्रेमी जी! तुम खुशनसीब हो। तुम्हारे अंदर देश का दर्द है। ज़रूरी समता के भाव को प्रकाश करोगे। कोशिश करते जाओ, ईश्वर नेक समर (फल) देवेंगे। दूसरी पत्रिका प्रेमी को दे देनी। सत्संग का प्रोग्राम दृढ़ करें। इससे बेहतरी हो सकती है। वापसी जवाब दिया करें। ईश्वर परम आनन्द परोपकार बक्शें।

----

77. देह की आधार शक्ति ही मालिके कुल है

प्रेमी जी, ईश्वर विश्वास को धारण करके दुख सुख को बर्दाश्त करना चाहिए, इसी का नाम समता है। अभ्यास में दृढ़ निश्चय रखें और लोक सेवा का पूरण प्रेम रखें। अपनी ज़िन्दगी को नित्य ही रोशन करें। प्रेमी जी, आत्मिक उन्नति असली खुशी है और जीव को पूरण करने वाली है। हर वक्त विश्वास धारण करना चाहिए कि देह की जो आधार शक्ति है वो ही मालिके कुल है। उसकी आज्ञा में देह की तमाम क्रिया को देखें और अपनी अनानियत (कर्त्तापन) को त्यागने की कोशिश करें। ऐसी धारणा से आत्म शक्ति प्रज्जवलित होकर जीव को शान्त कर देती है। सत्कर्म की धारणा ही मनुष्य ज़िन्दगी का असली लुब्बेलुबाब (सार) है। जो आदमी अपने कर्मों को सुधारने की नित्य ही कोशिश करता है वो ही एक दिन फरिश्ता हो जाता है।

----

78. समता के असूलों पर कायम होने की प्रेरणा

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् विश्वास देवे। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। तुम्हारी ज़िन्दगी नमूना होने की बहुत ज़रूरत है। प्रेमी जी, दुनियाँ के खिदमत (सेवा) करने वाले तुम सही माइनों में बनोगे तब समता की रोशनी फैलेगी। सत्संग द्वारा अपने जीवन का सुधार करें। हर एक को आगाह करें। नुमायशी ज़िन्दगी को तर्क (त्याग) करें। अपने कारोबार में हकशनासी को धारण करें। दूसरे का हक खाना असलियत में अपना ही नाश है। यह निश्चय करके जान लेवें। फ़ज़ूल खर्ची को त्याग करने की कोशिश करें। जब तक तुम अपनी आदत पर काबू न पाओगे कभी भी किसी पहलू में कामयाब नहीं हो सकोगे। अपने अन्दर शूरवीरता धारण करनी चाहिए। किधर तुम्हारे पेशवाओं की ज़िन्दगी दलेराना-आज़ादाना, प्रेम सम्बंधी किधर तुम्हारा जीवन, विचार कर लेवें। अपने बुजुर्गों के नुकता निगाह (पद चिन्हों) पर चलें। वाहशयाना (राक्षसी) ज़िन्दगी को तर्क कर देवें। तुम्हारे लोगों की ज़िन्दगी पर ही देश और धर्म है। अगर तुम सच्चे सुपुत्र बनोगे तब बाजी जीत लोगे। वक्त की पाबन्दी निहायत ही ज़रूरी है। धर्म की जाग्रति की खातिर हर लम्हा कुर्बानी

दरकार है। अपने सुधार यानी नेक असूलों का धारण करना अति जरूरी है। सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत्स्मरण इन पाँच हथियारों से कमरबस्ता (धारण करना) होना चाहिए। दीन दुनियाँ की जीत इसी में है। हर एक से मुहब्ब्त करो। दुखी का दुख दूर करो। असली ज़िन्दगी का सामान खरीद करो। क्या बनेगा जब वजूद नाश को प्राप्त हुआ। ज़िन्दगी में अपने सुधार और देश भक्ति को धारण करो। समता यानी एकता पैदा करके खिदमत में मसरूफ रहो (सेवा में लगे रहो)। यही साधन महापुरुषों का है। किसी के बुरा भला कहने से खिमा (क्षमा) करनी चाहिए।

जो भी गल्ती करता है वह अपनी आदत का मजबूर है। अनाथों की सेवा करें। समता धर्म की असलियत को अच्छी तरह विचार करें, इससे तुम्हारा कल्याण है।

----

79. कर्त्तव्य पथ की याद (समता हिन्दू धर्म की जड़ है)

आज्ञाकारी सती सेवक रतन चंद व समता समाज दौरांगला! आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला। ईश्वर सत श्रद्धा देवे। तमाम प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी एक एक करके। प्रेमी जी! हमको अपने हृदय में ही समझें। जो सत् उपदेश तुमने सुने हैं उनको अपने अमली जीवन में प्रकट करें। समता की रोशनी को फैलाने की कोशिश करें जिससे ममता का अंधकार नाश हो जावे। बड़ी कुर्बानी की मंज़िल है। मगर आखिर समर (फल) हमेशा की खुशी है। यह संसार एक तिलिस्म (माया जाल) है। जब एक मर्कज़ (केन्द्र) का अकीदा (विश्वास) धारण न किया जावे तब तक ख्वाहिशात (इच्छाओं), लज़्ज़ात (मनोविनोद / स्वाद) और महसूसात (अनुभूतियों) की गिरफ्तारी मौजूद रहती है, जो उस जीव को गहरा अज़ाब (दुःख) है। इस अस्चर्ज अंधकार से छूटने के लिए जो रास्ता तुमने स्वीकार किया है वह ही आसान से आसान है, यानी दिन व दिन आत्मिक उन्नति करनी और लोक सेवा को धारण करना। परोपकार को धारण करने से खुदग़र्ज़ी जो गहरा अज़ाब (दुख) है नाश हो जाता है। प्रेम जो असली जीवन और खुशी है हासिल होता है। दुनियाँ एक कोशिश की जगह है। हर वक्त सत् पुरुषार्थ धारण करके असली खुशी को हासिल करें, जो तुम्हारा

असली स्वरूप है। तमाम कायनात (प्रकृति) एक आत्म शक्ति के इर्द गिर्द चक्कर लगा रही है। इस वास्ते उस चक्कर से खुलासी (मुक्ति) पाने की खातिर मर्कज़ (केन्द्र) की तलाश करें, जो अभ्यास तुमको हासिल हुआ है। दीगर (शेष) तमाम कसबे के प्रेमियों को आशीर्वाद कहनी । ईश्वर सबको समता बुद्धि देवे। तमाम शहर के निवासियों को यह प्रार्थना करनी कि हमारा दर्शन हर वक्त अपने चरणों में ही करें। और सत्संग में एकत्र होकर ज़रूरी देश और धर्म की रक्षा का विचार करें। ईश्वर का हुक्म जो इस कालब (शरीर) से आ रहा है वह ही सेवा में अर्ज़ की जाती है। इसको धारण करके अपने जीवन को सफल कर लेवें। प्रेमी देसराज, मुन्शीराम, अमरनाथ, मंगतराम शाह, गौरी शाह, केशोराम, छांगा, साईदास, पं० गौर प्रसाद और दीगर तमाम बुज़ुर्गों को आशीर्वाद कहनी और यह प्रार्थना करनी कि हर एक प्रेमी अपने जीवन का सुधार करे। सत् सेवा को धारण करें, हमारी यही भीख है और इसी से प्रसन्नता है। और आइंदा हाज़र कालब (मौजूदा शरीर का) दर्शन ईश्वर आज्ञा पर मुनहसर (निर्भर) है। खबर नहीं एक पलक की। समता हिन्दू धर्म की जड़ है। इसको पूरा-पूरा पानी देवें। तब फिर सूखा हुआ द्रख्त (पेड़) समर (फल) लाएगा। ईश्वर सबको समता बुद्धि देवें। दोबारा आशीर्वाद पहुँचे। पत्रिका लिखते रहा करें। अगले हफ्ते में शायद इस जगह से चले जायेंगे। ईश्वर सत्सेवा देवे।

(मंगतराम - अज़ जंड महलूवां)

----

80. समता ही असली खुशी है

ईश्वर सत् बुद्धि देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। दीगर (अन्य) प्रेमियों को वाज़ह (सूचित) होवे कि जो इकत्तर होकर सत् विचार किया है, ईश्वर तुम्हारे जीवन को बलवान करे। देश भक्ति और धर्म विश्वास देवे। प्रेमी, जो काम दृढ़ निश्चय से किया जाता है उसका समर (फल) ज़रूरी लगता है। तुम जैसे नौजवान जिस बात पर आमादा (तैयार) हो जावें ज़रूरी कामयाबी हासिल करेंगे। इस भारतवर्ष की बिखरी हुई हालत ने सख्त मुसीबत में तमाम जनता को डाल रखा है। ऐ इस पवित्र भूमि के होनहार सुपुत्रों! तुम्हारा फर्ज़ है कि एकता की तालीम को खुद

ग्रहण करना और दूसरे के कानों तक पहुँचाना। जमाना बड़ा भयंकर आ रहा है। इस वास्ते ज़रूरी कुछ वक्त निकालकर सत्संग में हाजिर होकर अपने गुज़रे हुये बुजुर्गों के जीवन का विचार किया करें और इनकी कुरबानी को मद्देनज़र (ध्यान में) रखकर अपने जीवन को भी देश और धर्म की खातिर बनायें। तुमको सिर्फ सदाचारी जीवन और जनता के प्रेम पर ज़ोर देना है। अच्छे-अच्छे वाकयात (घटनाएं) सत्संग में विचार किया करें और कुछ वक्त नारायण का सिमरन भी किया करें, जिससे बुद्धि बलवान होवे। अपने जीवन को नमूना बनावें तब खुद व खुद लोग मुतासर (प्रभावित) हो जावेंगे। समता का लिटरेचर बेशुमार है। हर एक पहलू पर अच्छी तरह से तशरीह (विचार) हुई है। खुद विचार भी किया करें और दूसरों पर पहुँचाने की कोशिश करें। अगर पुस्तकों की ज़रूरत होवे तो मँगवा लिया करें। माताओं के अन्दर भी इस तालीम का जज्बा प्रगट होवे तब अच्छी तरह बेहतरी हो सकती है। प्रेमीजियो! रामचंद्र, कृष्ण चंद्र, नानक, बुद्ध, ईसा आदि सब महात्माओं का मिशन समता ही है मगर हिन्दू इस तालीम से बहुत दूर चले गये हैं। तुमको चाहिये फिर नये सिरे से उसको प्रकाश करें और तमाम जनता का मिशन समता ही हो जावे। इस संसार में आकर कुछ वक्त धर्म की उन्नति की खातिर निकालना चाहिये। जिस जगह भी जाओ समता का प्रचार करो और लोगों के टूटे हुये दिलों को टांका लगाओ। कोई फिरका (सम्प्रदाय) भी होवे उसको समता की तरफ रगबत (लगाव) दिलाओ। यह ही असली खुशी और भक्ति है। ईश्वर तमाम प्रेमियों को सत् विश्वास और बल बुद्धि देवे। हर वक्त हमको अपने हृदय में देखें। पत्रका लिखते रहा करें। तमाम कस्बा निवासी संगत को आशीर्वाद कहनी।

----

81. समता की तालीम संगठन पैदा करती है

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला, ईश्वर सत् बुद्धि देवे। प्रेमी जी, पत्रका गाह बगाह (कभी-कभी) लिखा करो। इससे कल्यान होती है। जनता की तबाही का कारन पहिला यह ही है कि इकट्ठे ना होना। सो समता की तालीम का मुख्य नियम सत्संग ही है। तुम प्रेमियों को जरूरी तड़प होनी चाहिये। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। पुस्तकों का विचार किया करें। इससे ज्यादा

सीरी (तसल्ली) होती है। हर वक्त समता की तालीम को जाग्रित करने में कोशिश किया करें। तुम्हारी जिहानत (बुद्धि) जरूरी देश सेवा में खर्च होनी चाहिये। महज़ (केवल) दुनियाँ की ऐश व इशरत (आराम) की खातिर ज़िन्दगी नहीं है, बल्कि कुछ उपकार के वास्ते है। ईश्वर का नाम सिमरन ज़रूरी किया करें। इससे अन्तःकरण में शुद्धि प्रगट होती है। तुम्हारी जिम्मावारी तब ही उतर सकती है जब खुद समता की तालीम को अपनाओ और दूसरों को भी कोशिश करके इस तरफ रागिब करो (लगाओ)। इससे मिलाप प्रगट होता है। किसी वक्त ज़रूरी देश का भला हो जावेगा। तमाम लिटरेचर से वाकफीयत (जानकारी) हासिल करें। ईश्वर आनन्द देवे।

----

82. समता की तालीम को अपनाकर देश और धर्म को जागृत करो

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। प्रेमी जी, तुम सत्संग का प्रोग्राम मुकम्मल बनाये रखें। ईश्वर करेगा तो कामयाबी हो जावेगी। इस खतरनाक जमाने में ईश्वर ही देश को ख्वाबे ग़फलत से जगा सकता है। तुम जिधर भी जाओ इन पुस्तकों का विचार किया करें। आहिस्ता आहिस्ता सब ठीक हो जावेगा। देश बहुत मुद्दत से सोया पड़ा है, जल्दी जागना मुशकिल है। इतना ज़रूरी है कि प्रेमियों की ज़िन्दगी में कुरबानी का मादा आ जावे तो फिर ईश्वर सफलता बख्शेंगे। यहाँ घबराने का मुकाम नहीं है बल्कि प्रेम द्वारा सबकी सेवा करके सबको ज़िन्दा करें। कई महात्माओं की ज़िन्दगियां तबाह हो गई हैं अभी तक समता का जीवन प्रगट नहीं हुआ है। चालाकी और खुदगर्जी ने सबको घेरा हुआ है। इसका खम्याजा (नुकसान) उठा भी रहे हैं मगर फिर भी जागृत नहीं हो रहे हैं। इसका असली कारन यह ही है कि असल तालीम खुदगर्ज़ आलिमों (विद्वानों) ने अलोप कर दी है जिससे जनता संशे और वहमों में फंसकर असली पुरुषार्थ त्याग बैठी है। आप फिर कोशिश करते चलो, मत (कहीं) दीन दयाल की कृपा से सूखी हुई बेल हरी हो जावे। सत्संग में अच्छे अच्छे वाकयात का विचार किया करें। बिलकुल बेफिकर रहें। ईश्वर तुम्हारी कुरबानी को फल लगायेंगे। कोशिश करते चलो। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

तमाम प्रेमियों को देश और धर्म की जागृति में कोशिश करनी चाहिए। हर वक्त हमको अपने हृदय में देखें। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। अब करीब (जल्दी) ही इलाका पुन्छ में जाने वाले हैं, पत्रका इसी पते पर लिख दें। पहुँच जावेगी। तमाम प्रेमी समता के लिटरेचर का अच्छी तरह विचार करें। ईश्वर शान्ति देवेंगे। अपने तमाम कुनबा को आशीर्वाद कहनी। हर वक्त मार्ग धर्म में दृढ़ रहो। जो आदमी खुद मुस्तकिल मिज़ाज (दृढ़ निश्चय) होता है वह दूसरों पर काबू पा जाता है। समता की तालीम एक समुद्र है कोई आलिम फाज़िल (विद्वान) इन्कारी नहीं कर सकता। तुमको खुद पहिले इसको अपनाना चाहिये, फिर दूसरों की सेवा करनी चाहिये। ईश्वर विश्वास देवे। हर वक्त कोशिश धारण करें।

----

83. मानसिक भाव को निर्मल करना ही असली शूरवीरता है।

आज्ञाकारी सती सेवक, रतनचंद जी!

आशीर्वाद पहुँचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर नित ही सत् धर्म अनुराग देवे। प्रेमी जी! रूहानी आज़ादी की तहकीकात (खोज) करें। वही समता का स्वरूप है। दुनियाँ में कई रंग के आन्दोलन आते रहते हैं मगर गुणी पुरुष अपनी जीवन यात्रा को प्रभु परायणता हासिल करके मुकम्मिल करने का यत्न करते हैं और आइन्दा के वास्ते एक आदर्श स्वरूप हो जाते हैं। प्रेमी जी! अपने मानसिक भाव को निर्मल रखना ही असली शूरवीरता है। अभ्यास ज़रूरी किया करें, इससे बुद्धि बलवान होती है और पापों से मुखलसी (छुटकारा) हासिल करती है। तमाम प्रेमियों को एक एक करके आशीर्वाद कहनी। तमाम कुन्बे (परिवार) को आशीर्वाद कहनी। शुरू जौलाई तक किसी दूसरी जगह का प्रोग्राम मुकम्मिल होवेगा। अभी पता नहीं कि किधर प्रभु का हुक्म होता है। सत्संग का प्रेम बनाए रखें। इससे अक्सर प्रेम और एकता पैदा होती है। ज़माने की गर्दश खुदबखुद (स्वयं) सबक दे रही है और देवेगी। यह याद रखना चाहिए कि आखर सत् धर्म की ही विजय है। हर

वक्त हमको हृदय में देखें। अपनी कुशल पत्रिका लिखते रहा करें। ईश्वर सत् बुद्धि देवें।

(मंगत - अज़ समियाला)

----

84. परमार्थवादी पुरुष का परम यत्न

प्रेम पूर्वक ब्रह्म सत्यं स्वीकार करें जी। श्री सतगुरुदेव जी महाराज आशीर्वाद फ़रमाते हैं, आप स्वीकार करें। घर में परिवार को आशीर्वाद फरमावें। काफी अर्सा के बाद आपके प्रेम पत्र द्वारा दर्शन हुए। श्री महाराज जी की कृपा दृष्टि से आपकी मानसिक और शारीरिक शुभ कुशलता चाहता हूँ। श्री महाराज जी फरमाते हैं कि तुम्हारा पत्र मिला। तुम अपने पवित्र निश्चय के अनुकूल हर वक्त गुरु दरबार में हाजिर ही हैं। वाज़ह (सूचित) होवे कि जो स्वप्न तुमने ब्यान किया है यह एक पवित्र अन्तःकरण की चेतावनी है जो कि आइन्दा ज़िन्दगी में परमार्थ की तरफ दृढ़ करने वाली है। प्रेमी जी, अपने आप को सत् के परायण बनाने में सत् यत्न करना ही इस मानुष जीवन का उच्च कर्त्तव्य है। ईश्वर ऐसा ही तुमको पवित्र निश्चा बख्शे और हर वक्त गुरु कृपा अंग-संग जानें। हर वक्त समता के सत् असूलों में अपने आप को दृढ़ करने का सत् यत्न करते रहें ताकि मानसिक पवित्रता प्राप्त करके अपने आप में नित आनन्द को अनुभव कर सकें। यह जीवन यात्रा अति कठिन है। बुद्धि अंहकार में दृढ़ हुई-हुई नाशवान शारीरिक सुखों में अति आसक्त होकर अविनाशी सरूप को भूल गई है और शारीरिक सुखों की अधिक कामना को धारण करके परम दुख को प्राप्त हो रही है। यह ही अन्धकारमयी जीवन संसार का स्वरूप है। परमार्थवादी पुरुष के वास्ते परम यत्न यह ही होना चाहिये कि शारीरिक सुखों में मुनासबत (मर्यादा) धारण करके आत्म चिन्तन जो परम सुख है उसमें अपने आप को निहचल करें और अपने अन्तर में सत् श्रद्धा, सत् सेवा, सत् अनुराग और गुरु आज्ञा में परम दृढ़ता धारण करके नित ही अपनी आध्यात्मिक उन्नति करें जो जीवन का महाकारज है। हर वक्त उच्च कर्त्तव्य आचारी होना चाहिये यानी निर्मान भाव को धारण करके सत् स्मरण और सत् सेवा में अपने आपको दृढ़ करना चाहिये। ऐसे सत् यत्न के बल से

अन्तःकरण के तमाम दोष निर्मल हो जाते हैं और बुद्धि सत् स्वरूप को अनुभव करके अपने आप में तृप्त होती है। यह उच्च कर्त्तव्य सत्पुरुषों का आदर्श जीवन है। हर वक्त अधिक से अधिक उत्साह सत् मार्ग में रखना चाहिए। तुम सही गुरु बचनों को अपनायेंगे तो प्रभु कृपा तुम्हारी सहायक होगी, ऐसा निश्चय रखना चाहिए। ईश्वर तुमको अधिक विशाल बुद्धि देवे जिससे अपने जीवन को सही समझ सकें और अपनी निर्मल उन्नति करते हुए समता की रोशनी की किरण बनकर दूसरों के वास्ते एक आदर्श स्वरूप बनें। ईश्वर नित सहायक होवें। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें। तमाम परिवार और तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर तुमको गुरु बचन में विश्वास देवें।

----

85. दृढ़ विश्वास के लिए प्रेरणा

ईश्वर बल बुद्धि देवे। प्रेमी जी, ज़माने की गर्दिश गो (यद्यपि) कठिन है मगर विश्वास के बल से जीव कल्याण को प्राप्त हो सकता है। इस वास्ते दृढ़ विश्वास से प्रभु परायणता धारण करें और सत् नियमों द्वारा अपने आपको पवित्र करें, यही सुधार का रास्ता है। अपने प्रण को पूर्ण रखना चाहिए। दुनियाँ कभी भी एक ख्याल की नहीं होती सिर्फ नेक अमल लोगों का अपना अमली जीवन ही कल्याण स्वरूप होता है। ईश्वर सत् भावना देवें। दुनियाँ में एक दिन रहना नहीं है इस वास्ते अपनी मानसिक उन्नति अधिक से अधिक कर लेनी चाहिए। ईश्वर सत् अनुराग देवे।

----

86. शांति और अशांति अन्दर से प्रकट होती है

ईश्वर नित्य ही सत् विश्वास देवें। हर वक्त नाम सिमरण में अपनी तवज्जो (ध्यान) कायम करते रहें। इस धारणा से शान्ति प्राप्त होती है। यानी शान्ति भी अन्दर है और अशान्ति भी अन्दर से प्रगट होती है। इस वास्ते ईश्वर परायणता के नियम को दृढ़ करना और नाम सिमरण में अधिक प्रेम रखना ही सब तापों के नाश करने वाला है। जिस तरह प्रभु की सर्व कृपा आप पर है उसी तरह आप भी सर्व कृपालु होकर एक प्रभु नाम

के परायण होवें, जिससे मानुष जन्म सफल हो जावे। हर वक्त हमको हृदय में देखें और कुशल पत्रका लिखते रहा करें। ज़िन्दगी की सही तहक़ीक़ात (खोज) ही मानुष जन्म का मिशन है। प्रभु कृपा से जो मौका आपको मिला है उसका फल प्राप्त करना है, यानी सही पुरुषार्थ करके ज्यादा समां उस दीनदयाल के सिमरण ध्यान में लगाते रहें जिससे और भी आनन्द प्राप्त हो जावे। ईश्वर गुरु बचन का विश्वास देवे।

----

87. जीव की शान्ति का उपाय

ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। प्रेमी भंजु राम को आशीर्वाद कहनी और तमाम संगत को आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, यह संसार मन की लहरों का स्वरूप बाहर भासता है और कामनावश होकर दुख व सुख में जीव हर वक्त मुबतला (गृसित) रहता है। किसी हालत में भी निर्भय नहीं होता। जीव को शान्ति के वास्ते सिर्फ एक उपाय यही है कि सब कुछ परमेश्वर का जानना और उसकी रज़ा के मुताबिक जीवन व्यतीत करना और दृढ़ निश्चय से नाम स्मरण करना। ऐसी धारणा करने वाला पुरुष आत्म साक्षात्कार को प्राप्त होकर समता आनन्द में लीन हो जाता है, जिस जगह खुशी और ग़मी का मुकाम नहीं है। हर वक्त धर्म परायण होना चाहिए। संसार की हालत बहुत कुछ देख चुके हो और देख रहे हो। इस मार्ग धर्म में दृढ़ता इख्तयार (धारण) करके अपने मानुष जन्म को सफल करना चाहिए। ईश्वर सत् बुद्धि देवें जिससे अपने आपको सही मार्ग में लगाकर कल्याण को पावें। तमाम बच्चों को आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सत् सन्तोख देवे। ईश्वर आज्ञा से चार माघ को काहनूवान जावेंगे। सत्संग में जरूरी सेवा करनी, इससे सबका कल्याण है। ईश्वर सत् अनुराग देवें।

----

88. भय

श्री महाराज जी फरमाते हैं कि भय के बारे में जो कुछ लिखा है उसका विचार समझें :-

भय से भाव और भाव से भक्ति और भक्ति से प्रेम प्रगट होता

है। जिस तरह से राज दण्ड का भय होने से तमाम कुरीतियों का नाश होता है उसी तरह से ईश्वर का भय रखने से तमाम मानसिक विकारों पर विजय हासिल होती है। ईश्वर का भय रखते-रखते तमाम मानसिक विकारों से जब पूर्ण पवित्रता प्राप्त होती है तब असली निर्भयता को अनुभव कर सकता है। गुरु का भय व ईश्वर का भय रखने से सरब सिद्धि और शान्ति प्राप्त होती है। सार निर्णय यह है कि गुरु और ईश्वर के भय से ही तमाम मानसिक दोष नाश होते हैं और असली निर्भयता प्राप्त होती है। विकारों की धारणा से ही भय पैदा होता है। इस वास्ते विकारों के नाश करने के लिये ईश्वर और गुरु का भय रखना चाहिए। जब असली रूप में गुरु और ईश्वर का भय अन्तःकरण में प्रगट होता है तब बुद्धि तमाम विकारों से पवित्र हो जाती है और प्रेम के सरूप को अनुभव करती है, जो असली निर्भयता का सरूप है। अच्छी तरह से इस विचार को पढ़ें और समझें।

----

89. परम शान्ति के साधन

(1) धन का त्याग, (2) तन का त्याग, (3) मन का त्याग

ऐसी भावना जिस पुरुष को प्राप्त होती है यानी जो अपने तन, मन, धन की आसक्ति को त्यागकर अपने आप को हर घड़ी हर लमह प्रभु परायण बनाता है वह ही परम ज्ञानी आत्म आनन्द अर्थात् अविनाशी सुख को पाता है जिस सुख की वास्तव में चाहना हर एक जीव को लगी रहती है।

(1) **धन का त्याग :-** धन के बगैर जीव का निर्वाह होना कठिन है और धन का ज्यादा होना भी जीव को कलेश के देने वाला है। इसलिये महापुरुषों ने कल्याण का मार्ग यह तजवीज़ फरमाया कि जो सम्पत्ति अपनी पवित्र कमाई से प्राप्त होवे उसका कुछ हिस्सा अपनी जीविका में खर्च करे और कुछ हिस्सा निष्काम भाव से अधिकारी जीवों की सेवा में लगावें। ऐसा निश्चय करने वाला जो पुरुष है वह नाजायज़ तरीका से कभी धन के मोह में आसक्त न होवे। यह साधन पापों के नाश करने वाला है।

(2) **तन का त्याग :-** जो इस रीति को धारण करता है वह अपने जीवन को परम शान्ति की तरफ ले जाता है, अर्थात् जो दूसरों के दुखों को मिटाने के लिये अपने शारीरिक सुखों का त्याग करता है वह ही परम भगत (भागवान पुरुष) शरीर के तमाम विकारों से छूटकर आत्म निश्चय को प्राप्त होता है।

(3) **मन का त्याग :-** यह है कि मिथ्या संकल्प जो अन्त:करण में उदय होते रहते हैं उनके नतीजा को प्रभु इच्छा में समर्पण करके हर वक्त अपने आपको ईश्वर परायण बनाये और सत् पुरुषार्थ को धारण करके हर एक जीव को सुख देना अपना परम धर्म जाने।

----

90. समतावादी पुरुषों का धर्म

समता मार्ग में ऐसा उच्च कर्त्तव्य धारण करना हर एक प्रेमी के वास्ते अधिक ज़रूरी है कि जिस करके सही धर्म की जागृति होवे और सरब का कल्याण होवे। समता में दुख प्राप्त करके दूसरों को सुख देना, निरादर को प्राप्त करके दूसरों को आदर देना, खेद को प्राप्त करके दूसरों से प्रेम करना, दूसरों के मानसिक दोषों का परित्याग करके अपने पवित्र आचरण से दूसरों की कल्याण चाहनी, अपनी अधिक विचारशील बुद्धि होते हुए दूसरे अन्धबुद्धि वालों से अधिक निम्रता, प्रेम से बरताव करना, अपने से दूसरों को श्रेष्ठ जानना और उनके शुभ गुणों की धारना करनी, अपने नित स्वभाव करके दूसरों से हित रखना, और शत्रुपन के मुकाबला में अधिक मित्रता से प्रेम करना ही निर्मल समतावादी पुरुषों का धर्म है।

----

91. ईश्वर विश्वास की दृढ़ता

प्रेमीजियो,

आप लोग इतना कष्ट उठाकर इस कठिन जगह में पधारे हैं जिस जगह एक नाजुक आदमी का पहुँचना मुश्किल है। यह ही अपनी सच्ची श्रद्धा का सबूत दिया है। ऐसी जगह में हाज़िर होकर जो विचार हासिल किया है उसको अच्छी तरह बार-बार चित्त में विचारने से ज़िन्दगी

के असली मकसद का पता लग जाता है कि हर पहलू में एक ईश्वर विश्वास सरब सुख को देने वाला है, यानी ग़मी में खुशी का प्राप्त होना, कठिन में सहज भाव का हो जाना, नाउमीदी में पुरउमीदी प्राप्त होनी और संसार की विचरत हालत में विनाश का निश्चय होना। एक प्रभु विश्वास ही सब सिद्धि के देने वाला है और यही करामात सत्पुरुषों की है। सब संसार का विस्तार होना एक प्रभु शक्ति से ही है। इसलिए जिसने एक प्रभु विश्वास प्राप्त किया है वह सरबाजीत पुरुष है।

किसी को अपनी चतुराई पर विश्वास है, किसी को अपनी प्रभुता पर विश्वास है, किसी को अपनी शारीरिक शक्ति पर विश्वास है, किसी को अपने सुन्दर जीवन पर विश्वास है, किसी को अपने मित्र पर विश्वास है तथा अपनी अपनी कल्पना के मुताबिक कुछ न कुछ भरोसा लिये हुये हर एक जीव बिचर रहा है और अन्तर से नित ही भयभीत रहता है। केवल सत्पुरुषों के अन्तर एक सर्व शक्तिमान परमेश्वर का ही विश्वास है जिसके बल से तमाम दुनियाँ इनके पीछे मारी-मारी फिर रही है। जिस जगह भी वह दृढ़ निश्चय वाला गुणी पुरुष विराजमान होता है उस जगह तीन लोक की सम्पदा आकर चरण को चूमती है, यह ही आदर्श एक परमेश्वर की शक्ति का सबूत है। ईश्वर विश्वास से मन निर्भय और अतृखत (प्यास रहित) हो जाता है यानी सरब आनन्द को प्राप्त होता है। यह ही निर्भय अवस्था हर एक जीव अन्तर से चाहता है। इस वास्ते गहरी गौर करके बिचार करें और एक ईश्वर विश्वास का प्रसाद फकीरों की संगत से हासिल करें। यह ही सरब सिद्धि और सरब शान्ति के देने वाला है। बगैर ईश्वर विश्वास के कभी भी तृश्ना रूपी अन्धकार नाश नहीं होता। जब तक तृश्ना में जीव बँधा हुआ है तब तक चक्रवर्ती राजा भी एक दलिद्री के मानिन्द (तरह) है। इस वास्ते मानुष जीवन की प्रभुता को विचार करके और कर्म के संग्राम से विजय हासिल करने की खातिर एक प्रभु विश्वासी होकर सरब शक्ति शारीरिक, मानसिक और सांसारिक जो धारण की हुई है पर सेवा में उसका त्याग करना ही असली आनन्द के देने वाला है। यह ही निर्मल ज्ञान की सार है। ज्यों ज्यों प्रभु विश्वास प्राप्त होता है त्यों त्यों अनात्म पदार्थों से उपरसता यानी त्याग हासिल होता है। ओढ़क (अन्त में) अनन्य प्रीत प्रभु चरणों की जब हृदय में उदय होती है तब सरब आनन्द हो जाता है। इस भव-दुस्तर मार्ग में एक प्रभु विश्वास और पर सेवा ही कल्याण का मुख

साधन है। इस वास्ते इस परम विवेक को धारण करके सब मन की अग्नि को शान्त करना चाहिये। करोड़ों ग्रन्थों के विचार सुनने और अनेक तीर्थ ब्रत और यज्ञों के करने का सार फल यही है कि एक प्रभु विश्वास और प्रभु आज्ञा में मन स्थिर होवे। जिससे कर्मफल द्वन्द का नाश होकर सत् सरूप आनन्दघन आत्मा अनुभव हो जावे, जो अखण्ड शान्ति है।

यह जो सार विचार श्रवण किया है उसको निर्मल बुद्धि से धारण करके अपनी कल्याण करनी चाहिये। इस संसार की यात्रा में परम फल प्राप्त करने की खातिर एक प्रभु विश्वासी होकर नित ही सत् सिमरन में मन को लगाकर और शरीर से सब जीवों की सेवा की भावना को धारण करके अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिये। ऐसी साधना जब अन्त:करण में दृढ़ हो जाती है तब परम अनुराग केवल परमेश्वर का चित्त में प्रकाश करता है जो तापों के नाश करने वाला है। ईश्वर निर्मल बुद्धि देवे और सत् विश्वास प्राप्त होवे और नित ही अपने जीवन कल्याण की खातिर इस मार्ग संसार में प्रवीन रहें। जो सत्संग इस जंगल में श्रवण किया है उसको अच्छी तरह से चित्त में धारण करें। प्रभु नित ही कल्याण देवेंगे। सब प्रेमियों को ईश्वर निर्भय जीवन बख्शे।

(ह० मंगतराम – अज जंगल फैलाँ)

नोट :- यह सत् उपदेश रियासत कश्मीर में फैलाँ नामक जंगल में क्याम (निवास) के दौरान वहाँ पर दर्शनों की भावना लेकर हाजिर होने वाले प्रेमियों को अपने कर कमलों से लिखकर दिया था। यह जंगल सतह समुद्र से काफी बुलन्दी पर पहाड़ के शिखर पर वाकिह (स्थित) है, जिस जगह पहुँचने का रास्ता बड़ा ही दुश्वार गुज़ार (कठिन) था।

----

92. गृहस्थ जीवन या विरक्त जीवन

आज्ञाकारी सती सेवक.... जी,

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला, ईश्वर सत शान्ति देवे। तमाम परिवार और गुणवन्त राय को आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, बलवन्त राय की पत्रका खास तौर पर पढ़ी नहीं गई और तुम्हारी पत्रका के कुछ हालात अनुभव करके उत्तर दिया जाता है।

प्रेमी बलवन्त राय जी को वाज़य (सूचित) होवे कि मनुष्य जीवन के वास्ते दो रास्ते हैं। एक बाकायदा (नियम अनुसार) गृहस्थी होकर जीवन का समय गुज़ारना। चाहे इसमें दुख ही है मगर मानसिक वासना का जाल जीव को कहीं स्थिर नहीं होने देता, इस वास्ते गृहस्थ की सूरत में मर्यादा सहित विचरते हुये सत् भावना से जीवन समाँ व्यतीत करना कुछ शान्ति के देने वाला है, जैसी कि आम जीवों की जीवन यात्रा चल रही है। दूसरा रास्ता त्याग का है, यानी मानसिक वासना का निरोध करके केवल सत् परायण होकर जीवन व्यतीत करना और एक प्रभु सरूप में ही अपने आपको समर्पण कर देना। सो प्रेमी जी, तुम्हारी चंचल वृत्ति इस त्याग मार्ग में स्थित होनी मुश्किल है और हालात जमाना भी अधिक असत् भ्रम के गहरे अन्धकार में गुज़र रहा है। इस वास्ते अपने अन्तःकरण में विचार करके ठीक-ठाक फैसला कर लेवें कि कौन सा मार्ग इखत्यार (धारण) करना चाहिये। चूंकि त्याग का ब्रत पालन करना अधिक कठिन तुम्हारे लिये मालूम होता है इस वास्ते बाकायदा गृहस्थ का मार्ग धारण कर लेवें। अब तुमको शारीरिक अवस्था के मुताबिक जीवन व्यतीत करने का फैसला कर लेना चाहिए कि कौन से मार्ग में मानसिक दृढ़ता हो सकती है। सो दोबारा ताकीद (प्रेरणा) की जाती है कि बच्चों वाला खेल न बनावें, बल्कि अन्तःकरण में ठीक-ठीक प्रेरणा करके एक मार्ग में दृढ़ हो जावें। दोनों रास्तों का थोड़ा-थोड़ा सा भेद लिखा जाता है। आगे तुमको जो पसन्द आवे उस पर दृढ़ हो जावें। फिर गौर से विचार कर लेवें कि त्याग का ब्रत तुमसे सम्पूर्ण हो सकेगा।इस वास्ते पूर्ण निश्चय से फैसला करके गृहस्थी का सरूप धारण करें या त्यागी का। चूंकि त्याग का अपनाना कठिन है इस वास्ते गृहस्थ के सरूप में ही प्रवेश कर लेवें। आगे जो प्रभु आज्ञा और जैसा तुम्हारा कर्म। प्रेमी जी, पूर्ण फैसला करके अपने बुजुर्गों को सुना दें। ईश्वर नित सहायक होवे। प्रेमी मनीराम जी, बलवन्त राय की ख्वाहिश के मुताबिक ही हो सकता है कि वह अपने आपको कौन से मार्ग में दृढ़ करना चाहता है। जो विचार लिखा गया है उसको अनुभव करके फिर जैसी उसकी मर्जी और ईश्वर इच्छा होवेगी वैसा ही होगा। ईश्वर सत् विश्वास देवे। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें।

(मंगतराम-श्रीनगर)

----

93. सिनेमा सदाचार का नाशक

आज्ञाकारी सती सेवक.... जी,

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। तमाम परिवार को आशीर्वाद पहुँचे, और गुणवन्त राय को आशीर्वाद कहनी।

प्रेमी बलवन्त राय जी, तुम्हारी पत्रका से बड़ी हैरानी मालूम हुई कि तुमने क्या लिखा है? किधर तुम्हारी बुद्धि गृहस्थ मार्ग में इन्कार करने वाली और किधर अब यह मूर्खताई कि आचारहीन लोगों के दिखलाये हुए तमाशे देखें। इधर से ऐसी इजाज़त बिलकुल नहीं हो सकती है। इस संसार का प्रत्यक्ष सिनेमा देखकर केवल अपने आपको प्रबोधित करें और मानुषों के बनाये हुये तमाशों से परहेज़ करें। इस सिनेमा आदि तमाशों ने तमाम हिन्दोस्तान के इखलाक (सदाचार) को मिट्टी में मिला दिया है। अब तुम ऐसे संतों के शिष्य होकर नेत्रों द्वारा इन तमाशों के ज़हर को पान करना चाहते हो। इधर से बिलकुल इजाज़त नहीं हो सकती है और तुम्हारी इस नादान भावना को पत्र द्वारा अनुभव करके निहायत हैरान हुये हैं कि इस मूर्खताई के भूत ने किधर तुम्हारे अन्तःकरण में आकर प्रवेश किया है। प्रेमी जी, बिलकुल बनावटी तमाशों को देखने की इजाज़त नहीं है। इस वास्ते अपनी प्रतिज्ञा को अगर तुम भंग करेंगे तो इधर से खुशी न होगी और शायद तुम्हारे वास्ते भी कोई विशेष कल्याणकारी तरीका न होगा, आगे जैसी तुम्हारी मर्ज़ी। इस दुनियाँ की निहायत दुराचार की गन्दगी से बचने की कोशिश करें। यह तुम्हारे वास्ते एक अमोल शिक्षा है, आगे तुम्हारी मर्ज़ी। तुम्हारी इस याचना से तुम्हारे मानसिक हालात को विचार किया कि अभी बच्चों के ख्याल से कोई ज़्यादा तरक्की नहीं की है। तमाम समां रायेगाँ (व्यर्थ) कर दिया, जो अब ऐसी रुचि को धारण किये हुये हैं। तुम्हारी आज्ञाकारी भावना से निहायत शक पड़ रहा है। इस वास्ते अगर गुरु चरणों की सच्ची प्रीत रखने वाले हैं तो वापसी पत्रका द्वारा अपनी प्रतिज्ञा को दृढ़ रखने का विचार लिखें। यह ताकीद (आदेश) है। अगर नेत्रों ने इस विश्व को, जो प्रत्यक्ष तमाशा चल रहा है, देखकर कुछ सबक नहीं लिया तो बनावटी तमाशों से कभी तृप्ति नहीं होगी बल्कि तमाम आचार बिगड़ जायेगा। इस विचार को अच्छी तरह से विचार करके अपने आपको पवित्र करने की कोशिश करें। इस खोटी भावना को त्याग देवें। तुम्हारे वास्ते यह

निर्मल उन्नति का नियम है। आगे जो प्रभु आज्ञा और तुम्हारी मर्ज़ी। जब तक तुम्हारी प्रतिज्ञा पालन की पत्रका न आवेगी तब तक तुम्हारी गुरुमुख भावना में शक ही बना रहेगा। इस वास्ते अपनी मानसिक पवित्रता का पत्र लिखें। प्रेमी मनीराम जी, आप भी बलवन्त राय को समझा देवें, आगे इसकी मर्ज़ी। ईश्वर सत् भावना देवे।

(मंगतराम)

----

94. शिव भक्ति का स्वरूप

आज्ञाकारी सती सेवक.... जी।

आशीर्वाद पहुंचे। प्रेम पत्र मिला। ईश्वर नित रखयक होवे। तमाम परिवार को आशीर्वाद कहनी। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद पहुँचे। ईश्वर सरब काल सहायक होवे। हर वक्त अपनी सत् श्रद्धा द्वारा गुरु कृपा अंग संग जानें। ईश्वर निर्मल गुरु भक्ति देवे, जिससे अपने तमाम मानसिक दोषों से निवृत्ति हासिल करके मानुष जन्म और ब्राह्मण जाति के सही गौरव को प्राप्त कर सकें। ईश्वर अधिक श्रद्धा प्रेम देवे। प्रेमी जी, आगे भी प्रभु कृपा से सब कारज सुकृत होते रहे हैं और आगे भी उसकी परम दयालता से होते जावेंगे। यह निश्चय रखें। हर वक्त गुरुमुख बुद्धि को धारण करें। यानी सत् कर्त्तव्य करते जावें और उसका फल प्रभु आज्ञा में देखें। ऐसा निश्चय ही परम कल्याण के देने वाला है। प्रभु परायण होने से सब अनुकूल कारज खुद ब खुद ही होते जाते हैं। गुणी पुरुष को विश्वास होना चाहिये। आगे जो समां ज़िन्दगी का व्यतीत किया है उसमें जैसा अपना निश्चय आया ऐसा कर्म करना शुरू कर दिया, ख्वाहे (चाहे) उसका नतीजा गलत हुआ या सही। अब प्रभु कृपा से अपनी सत् श्रद्धा से सत्गुरु प्राप्त हुये हैं। उनके सत् बचनों अनुकूल चलकर अपनी ज़िन्दगी को नित ही पवित्र और आनंदित करें। जो विचार आपने शिव भक्ति के बारे में लिखा है उसका निर्णय सुनें।

शिव शब्द का अर्थ कल्याण है। सो कल्याण सरूप एक आत्म शक्ति को ही जानें, जिसकी महिमा अनन्त ग्रन्थ और शास्त्र ब्यान कर रहे हैं और हर एक शरीर आकार का वास्तविक जो जीवन सरूप है। उसी का

सिमरण, ध्यान आपको गुरु दरबार से प्राप्त हुआ है। यह दृढ़ निश्चय कर लेवें। ऐसे शिव सरूप अविनाशी शब्द को जिसने पहिचान लिया है वह ही सत्‌गुरु सरूप सरब पूजने योग्य है यानी आत्मज्ञानी पुरुष ही शिव सरूप है। उसके दर्शन और आज्ञा पालन करने से सरब कल्याण प्राप्त होती है। श्री रामचन्द्र के जमाने में चूँकि शिव सरूप ही आत्मज्ञानी प्रसिद्ध थे इस वास्ते गुरु रूप करके उनकी सत् आज्ञा पालन करने की हिदायत की गई थी। अब अपने ज़माने में जो सत्गुरु आत्मदर्शी आपको प्राप्त हुये हैं वह ही शिव पद कल्याण जानने वाले हैं और तुम अपनी भी कल्याण इनके सत् बचनों पर दृढ़ विश्वासी होने से ही जानें। ऐसा निश्चय कर लेवें। सार निर्णय यह है कि शिव पद कल्याण सरूप एक आत्मदर्शी पुरुष ही है। अगर किसी को ऐसे सत्‌पुरुष का मिलाप हो जावे और सत् शिक्षा भी प्राप्त हो जावे तो उस पुरुष के दुर्लभ भाग जानने चाहियें, अगर सत् विश्वास करके सत्गुरु आज्ञा का पालन करने में जो दृढ़ रहे। ईश्वर सत् बुद्धि देवे। इस विचार को गौर करके अनुभव करें और हाज़िर सरूप शिव पद के ज्ञाता सत्गुरु के बचन को अपनायें, इसमें सरब कल्याण है। स्वाध्याय के वास्ते पुस्तकें पहुँच जावेंगी। इनका विचार करें और असल ज़िन्दगी को समझकर हर वक्त अपने आपको गुरु बचन परायण बनावें, यानी सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत् सिमरण में दृढ़ता धारण करें। हर वक्त गुरु की आन्तरिक देह शक्ति को सहायक जानें। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे।

प्रेमी जी, सत्‌पुरुष ही शिव रूप होते आये हैं और उनके तप, त्याग और सेवा से ही जीवों का उद्धार होता आया है। ऐसे ही निश्चा करें और सत्गुरु बचन को अपनाने का यत्न करें और समता की रोशनी को जाग्रित करें।

यह ही तुम प्रेमियों का परम धर्म है। प्रेमी जी! जीवों के कल्याण की खातिर यह सेवक शरीर प्रगट हुआ है। और सब जीवों की उन्नति के वास्ते जो-जो अनुभव उस परम पुरुष की आज्ञा से प्रगट होने थे वह प्रगट हुये हैं। आप गुरुमुख भी इस परस्पर विचार की रोशनी से अपने आपको रोशन करें। यह ही शिव का सरूप जानें। ईश्वर सत् कर्त्तव्य में निश्चा देवे। हर वक्त अपनी मानसिक धारा को सत्गुरु उपदेश में लगाते जावें। यह प्रभु की परम कृपालता जानें जो ऐसा अपनी उन्नति का समां प्राप्त हुआ है। ईश्वर गुरु बचन में विश्वास देवे। सत्संग का प्रोग्राम दृढ़ निश्चा से धारण

करें। इसमें सरब कल्याण सरूप श्रद्धा की जागृति होती है। सब प्रेमियों को दोबारा, सहबारा आशीर्वाद कहनी। अपनी कुशल पत्रका लिखते रहा करें। और अपने आइन्दा जीवन का समां सुफल करें। ईश्वर सत् स्मृति और सत् अनुराग देवे।

आन्तरिक अभ्यास में सिर्फ एक गुप्त सत्गुरु उपदेश ही बीज मंत्र को आराधन साधन करना चाहिये। यह ही उपासना परम पद आत्म कल्याण के देने वाली है। सुबह व शाम दोनों वक्त अभ्यास किया करें। और हर वक्त भी बुद्धि को उठते बैठते इस बीज मंत्र में लगाते रहें। ऐसी निर्मल भक्ति से तमाम पाप जल्दी ही नाश हो जाते हैं। इसके अलावा और जो कोई भी दुनियावी शुभ कारज करना होवे तो पाँच दफा महामंत्र (महामंत्र वह ही है जो सत्संग में पहिले उच्चारण होता है) का उच्चारण करके उस कारज को आरम्भ करें, प्रभु सफलता देवेंगे। इस निश्चा के बगैर और कोई जो बनावटी देवी देवता कल्पत करके पूजा या याचना करनी यह महज़ (केवल) रिवाज है। और यह ही असली नास्तिकपन और अज्ञान भी है। इस अन्धेरे से अपने आपको बचायें और सही रोशनी की तरफ यानी सत् कर्त्तव्य में कदम उठावें। रोज़ाना गुरु वाणी जो समता सिद्धान्त है उसका पाठ किया करें। इससे बुद्धि निर्मल होकर सब दुखों से छूट जाती है। यह विचार गौर करके पढ़ें और फिर धारण करें। इससे असली शान्ति प्राप्त होगी। कुशल पत्रका लिखते रहा करें। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे।

----

95. एक प्रेमी को पत्रिका द्वारा सत् उपदेश

श्री महाराज जी फरमाते हैं कि पहिले समता के सही सरूप को समझना फिर उस पर मुकम्मिल अमली जीवन बनाना ऐसे सत् यत्न से ही दूसरे मानुष भी सही समतावादी हो सकते हैं। प्रेमी जी, समता व ममता दो हालतें बुद्धि की हैं। समता निर-अहंकारवाद और ममता अहंकारवाद का सरूप है। इनका नीचे थोड़ा सा मुकाबला लिखा जाता है, अच्छी तरह विचार कर लेवें। समतावाद में सेवा, त्याग, प्रेम, अपने आप पर जब्त (काबू), शारीरिक दुख सुख में बराबरी, देह परायणता का त्याग, आत्म परायणता में दृढ़ता, अपने सुखों में संतोष और दूसरे के दुखों की निवृत्ति का

यत्न, निर्मानता, निष्कामता, ईश्वर सरूप में निश्चलता आदि श्रेष्ठ गुण जब बुद्धि धारण करे तब सही समता के तत्व को अनुभव करके नि:खेद सरूप हो जाता है। यह ही असली मानुष जीवन का उच्च साधन और कर्त्तव्य है। आगे ममतावाद का निर्णय यह है कि देह के अंहकार में ग्रस्त होकर के नाना प्रकार के शारीरिक सुखों की गिरफ्तारी को धारण करना, अति मान, अति लोभ, अति ईर्खा और अति स्वार्थ वासना अन्त:करण में धारण करते हुए बाहिर से समता के सरूप को पेश करके लोगों का एहतमाद (विश्वास) हासिल करना यानी ऐसे सूक्षम कपट में बिचरना ही ममतावाद का लक्षण है। अच्छी तरह से विचार कर लेवें। समतावाद का फैलाना तब ही हो सकता है जब ऐसे सही भिक्षु समता के अपनाने वाले प्रगट होवें और अपने अमली जीवन द्वारा दूसरों के ममता के अन्धकार को दूर करें। और तालीम भी ऐसी हो जिससे बच्चों को उच्च आचरण और समता का बोध प्राप्त होवे।

दूसरा प्रश्न आर्थिक हालत की दुरुस्ती - सो वाजह (सूचित) होवे कि हर एक जीव शारीरिक कैद में अपनी-अपनी आर्थिक हालत में लगा हुआ ही रहता है। इसमें कोई ज़्यादा गौर की ज़रूरत नहीं है, स्वभाववश होकर के मानुष को ऐसा ज़रूरी करना पड़ता है। ग़ौर इस बात की करनी चाहिये कि आर्थिक तरक्की किस हद तक होनी चाहिये। और उस आर्थिक उन्नति में मानुष का क्या फर्ज़ होना चाहिये जिससे वह आर्थिक उन्नति को प्राप्त करके महज़ वैश्चायारी ही न बन जावे। सो इसके मुतल्लक (बारे में) अभी न ग़ौर करने का किसी बुद्धिमान को मौका मिला है और न ही कोई ज़रूरत समझते हैं। आम लोग तो महज़ (केवल) आर्थिक तरक्की करके अपने आप को वैश्याचारी (विषयाचारी) बनाने के यत्न में लगे हुये हैं जो थोड़े ही समय में तमाम उन्नति को नाश के सरूप में देखेंगे। यह प्रकृति का खेल है। खास निर्णय यह है कि अध्यात्मवाद के सहित आर्थिक तरक्की कल्याणकारी है, इस वास्ते इन सब हालतों को विचार करके सही आर्थिक उन्नति करना जिससे अध्यातमवाद परम पवित्रता का निश्चय बना रहे। ऐसी आर्थिक उन्नति असली कल्याण के देने वाली है और समता के अनुकूल है। चूँकि यह विचार बड़ा गम्भीर है इस वास्ते थोड़ा सा लिखा जाता है। इस पर विचार करके अपने जीवन चरित्र को समझें कि क्या करना चाहिये और क्या कर रहे हैं। ईश्वर सुमति देवें।

वाणी
ग्रंथ श्री समता प्रकाश से

ईश्वर महिमा

सत साजन संसार में, एक परमेश्वर जान।
'मंगत' निश्चय राखके, पल पल सेव पछान।।

करनेहार तूँ ठाकर मेरा। पल पल राखें चरनी केरा।।
तूँ दुःख हरता मंगलकारी। तोरी महमा अपर अपारी।।
खलबुद्धी मैं अनमत मूढ़ा। कह बिध सिमराँ तुद नाम हज़ूरा।।
अधिक विकार भरे दुखदाई। तुद बिन मेरा नहिं कोई सहाई।।
बुद्धीहीन मन अती मलीना। तुम बिन रखयक नहिं कोई दरसीना।।
अत ही नीच औगन को धारी। तुद बिन मेरा नहिं कोई रखवारी।।
दुष्ट विकार चित्त धरे घनेर। आवागवन फिरावें फेर।।
कह बिध छूटाँ प्रभ दीनदयाला। ना कोई जतन ना ज्ञान विशाला।।
ना कोई मारग सोझी आवे। तुद बिन थाओं नहिं कोई दिखलावे।।
बारमबार ये किया विचारा। बन्ध छुड़ावे तुद नाम अपारा।।
बुद्धीहीन नहिं उस्तत पाऊँ। कह बिध प्रीत तोरे चरन कमाऊँ।।
शेष सहँसमुख जो नित गाई। पल पल विरंच मन ध्यान लगाई।।
शिव सनकादिक विषन विचारी। लोमस जुग जुग प्रीत निहारी।।
तेरी महमा का पाया नहिं पार। अनमत मूढ़ा क्या करे विचार।।
साची प्रीती प्रभ चरनी दीजो। साची कीरत प्रभ मन में सीजो।।
अपना तेज आपे परगासो। पल पल चरनी करूँ अरदासो।।
ना तप बल ना विद्या कोए। ना विचार चित्त घना लखोए।।
केवल किरपा तोरी विचाराँ। पल पल तेरा नाम निहाराँ।।
अपनी मेहर आपे वरताओ। मूड़े कीट को सूझ लखाओ।।
धुरू प्रहलाद गुनी बहु तारे। नामदेव रविदास उद्धारे।।
पीपा सैना की प्रीत बढ़ाई। कबीर दादू नानक तराई।।
कोटाँ कोट प्रभ किये उद्धार। गिनती लेख नहिं पाऊँ शुमार।।
सिद्ध रिखीशर जुग जुग गायें। पततपावन करके नित ध्यायें।।
सच्चिदानन्द तू नित किरपाला। मूरख जन्त का तूँ रखवाला।।

सरब जगत को छाडके, तुद दर धूड़ रमाऊँ।
'मंगत' दीनदयाल प्रभ, मत कित दर्शन पाऊँ।।

मानव जीवन का उद्देश्य

मानुष ताँ को आखिए, जाँ का शुद्ध विचार।
पाप पुन्न पहचान के, सँभल सँभल पग धार।।

करम करूर त्याग करे, सत करम में चित्त लगाए।
जतन परयतन मन में धरे, कपट बिकार हटाए।।

मान मध और मसखरी, परधन पर की नार।
इन पाँचों को जो तजे, सो मानुष करो विचार।।

परहित चित्त में धारना, सब सों अधिक पियार।
हिरदे से सेवा करे, बाँछे फल नहिं सार।।

कोमल बचन मन सुशील, अन्त का करे ध्यान।
छल कपट को दूर करे, मानुष सोई सुजान।।

जप तप सिमरन धारना, और साचे नाम पियार।
गुरमुख जीवन पायके, जीत लियो संसार।।

खाना पीना सोना, और विषय विकार।
चारखानी के जीव सब, भरमें बीच अन्धकार।।

मानुष तन दुरलभ है, सरब खानी के बीच।
सुफल करो इस देह को, भाव भगत जल सींच।।

अपनी उन्नति नित करो, लखो जनम की मौज।
बार बार ना आओगे, हरो भरम का बोझ।।

पीर पैग़म्बर औलिया, सिद्ध मुनी अवतार।
परगट होए जगत में, मानुष की देह धार।।

रंग तमाशे छाड तूँ, जीवन करो विचार।
दुरलभ समे को पायके, जीव का करो उद्धार।।

कहाँ से आया कहाँ नर जाए, कौन तेरो मुक़ाम।
'मंगत' सार विचारना, मानुष जनम का काम।।

मानुष जनम सुफल होवे, जब प्रभ दाता चित्त आये।
प्रभ के सिमरन कारने, ये दुरलभ जीवन पाये।।

लाख चौरासी जन्त सब, करम भोग के माहीं।
मानुष देह की ऊँच गत, जो मारग मुकत लखाई।।

इस जामे को धार के, प्रभ संग मेला पायो।
सिद्ध पीर अवतार सब, मानुष देह धर आयो।।

करम करे चण्डाल के, गहरा धरे अभिमान।
छूट कभी ना नर मिले, बिन सत करम पहचान।।

करनी साची नित करो, रख सतगुर की टेक।
मन की मैल उतारियो, साधन ये सत एक।।

कपट विकार त्याग के, सत सील चित्त धार।
दुर्जन का संग त्याग के, सत संगत विचार।।

पर-निन्दया पर-हान को, मन से कीजो दूर।
परहित जीवन धरम में, मन कीजो मख़मूर।।

प्रेम के रंग में रंग लो, ये चोला चतर सुजान।
बार बार नहिं पाओगे, उठ मारग खरा पहचान।।

जीवन जग दिन चार है, ओढ़क सब अंधकार।
इक दिन सम्पत छाड के, करें भूमी पाय पसार।।

माल धन परिवार सब, इक दिन जाये छूट।
चलें निमाना जगत से, जम देवे सिर कूट।।

कूड़ भरोसा क्यों धरा, जप लो सरजनहार।
'मंगत' कहे विचार के, ये जीवन सुख सार।।

जीव उद्धारक नियम

जीव उद्धारक करम ये, निश्चय करो स्वीकार।
जीवन को इस्थिर करें, मिटें सकल विकार।।

प्रभात सन्ध्या काल दो, दृढ़ नीयम ये राख।
दो घड़ी हरि सिमरन कीजो, प्रेम प्रीत के साथ।।

शुद्ध करो ब्यौहार को, नफ़ा लियो समान।
थोड़ी लियो ब्याज नित, धन ना पावे हान।।

लक्ष्मी करे निवास वहाँ, जाँ साचा ब्यौहार।
मेहनत थोड़ी फल पायो बहुता, ऐसा सुनो विचार।।

खेती और चाकरी में, पर-हक़ करे पछान।
शुद्ध कमाई जानिये, जो ऐसा निश्चय मान।।

निसदिन देवे अन्न जो, दुखी दीन अनाथ।
अघट लक्ष्मी परगट होवे, कभूँ ना छोड़े साथ।।

यथाशक्त सेवा करे, साधू गुरू आचार।
मन बाँछत फल पाये, सो हरा होये परिवार।।

भूल कर ना बेचिये, इक कन्या दूजे भूम।
तिनकी सेवा करन से, अधिक फल मालूम।।

निसदिन राखो प्रेम, सतसंगत के माहीं।
अधिक होये ब्यौहार जो, तो पख पख को नित जाईं।।

जीवन की उन्नति करे, मन में दे विशवास।
सत करम की सुध मिले, सब कारज पावे रास।।

आहार करे नित शुद्ध, बासी अन्न ना खाए।
बुद्धी होवे सुतन्तर, रोग व्याध सब जाए।।

नफ़ा समान खर्च करे, बच्चत कीजे नित्त।
लक्ष्मी का आदर करे, फ़ज़ूल ना त्यागे मित्त।।

पहनावा सादा करे, जो होवे देश की चाल।
सबसे प्रीती उपजे, तन मन होये निहाल।।

थोड़ा समय निकाल कर, वृद्ध का कीजे संग।
अनेक गुन तिनसे मिलें, सुन साचो परसंग।।

बहुता रूप जो नित करे, सो बद-आचारी जान।
धन जोबन को नष्ट करे, जीव पाये नित हान।।

बूढ़ा बाला जो होये, सबसे रक्खे प्यार।
दुर्जन बचन ना चित्त धरे, सुख पावे आपार।।

चोरी जूआ कपट छल, चौपट ताश शतरंज।
सिनेमा थेटर ज़ामनी, नित देवे जीव को रंज।।

भंग तम्बाकू मदरा, चण्डू गाँजा जोए।
चरस अफयून रिश्वत तजे, सो ही शूरा होए।।

झूट गवाही और अमानत, जहर सरीखा जान।
मूरख मित्तर बेवाह नारी, देवे गुनी को हान।।

बिना कारन और बिना समय, जो दूजे घर जाये।
मिटे लज्या जावे कीरत, दाग़ देही को लाये।।

औगन को नित देत है, घर को करें उजाड़।
बुद्धीमान सो आखिये, जो इनका तजे पियार।।

सच बोले पर-दु:ख हरे, नित साचा करे ब्यौहार।
गुनी पुरख का संग करे, ना बैठे कभूँ बेकार।।

सत करम में धन को अरपे, निश्चय रख भरपूर।
फल बान्छे ना तिसका, सहजे मिले हज़ूर।।

सत लेख सत करम ये, जो गुनी चित्त धार।
अधिक होए तिस कान्ती, शोभा करे संसार।।

परम आनन्द तिसको मिले, जो निर्मल करे विचार।
नित ही पावे जीत को, कभूँ ना होये हार।।

सत उपदेश सुन गुनी, पावे जीव कल्यान।
'मंगत' ये तत्त सार है, मारग मुकत निधान।।

वैराग्य वाणी

प्रभ का सिमरन सार है, संताँ करी पुकार।
एक घड़ी ना विसरे, सो आनन्द भण्डार।।

छाया बादल की जियों, ऐसे जग का खेल।
दुरलभ नाम कमायो, कर साचे गुर संग मेल।।

एह जग भरम गुबार है, केवल मन तुरंग।
सिमरो साचे नाम को, सब मनसा होवे भंग।।

लख चौरासी जन्त में, मानुष देह परवान।
सिमरन साचे नाम का, इसमें मिले निधान।।

पलक पलक औधी गई, ज्यों नदी का नीर।
बिन सिमरे हरि नाम के, आठ पहर दिलगीर।।

साचे सुख को खोजते, बीत गये वरख हज़ार।
मिली न पलक की शान्ती, जो भोगे भोग आपार।।

खाली हथ्थीं आया, अंत जाये खाली हाथ।
जो सम्पत सो छाडनी, रंचक चले ना साथ।।

जैसे नीर तुरंग का, छिन में रूप वटाये।
ऐसे जीवन जगत में, जान लियो गुनि राये।।

नदी किनारे तरवर, कब लग बाँधे धीर।
एक लहर की धार से, जाये बिखर शरीर।।

काठ अगनी में पड़ा, पल पल होये अंगार।
'मंगत' जीवन जगत का, एह बिध कियो विचार।।

सत्पुरुषों की समानता

सब सिद्धन की सार सुन, सब गुनियाँ दा ज्ञान।
सतसरूप प्रभ एक ही, सबमें भया परवान।।

जैसे जिसने प्रीत करी, पायो सरजनहार।
बन्धन से मुक्ता भये, जग के भये आधार।।

समाँ देश विचार के, नीती करें बखान।
भेद भाओ कछु नहीं, केवल सार निधान।।

होये मसीह जापता, प्रभ पिता रूप सम प्यार।
अनन भगत घट उपजी, दरसा रूप आपार।।

जान जिसम निरना किया, जिसम से भया अतीत।
जान तत्त पछान के, सदा रहे रमनीक।।

राग द्वेष संशा गया, करम विकार विनास।
सतसरूप से मेला भया, जीव भया निरवास।।

ऐसे जापे नाम को, गुनी मौहम्मद नीत।
मित्तर सम प्रभु जान के, राखे दृढ़ परतीत।।

बीच रज़ाई त्यागया, सकलो करम बकार।
दीन आजज़ी में रमा, नफ़स दा किया शिकार।।

बीच रियाज़त नित रहे, साहब पर विशवास।
अधिक प्रेम परगट हुआ, आये मिला अबनाश।।

परम त्यागी बुद्ध भया, सो तत्त जापे निरवान।
काल करम संशा गया, बुद्ध निश्चल परवान।।

दुःख सुख प्राकिरत के, व्यापे नाहीं कोए।
सार कला परगट भई, करम बन्ध सब खोए।।

सबसे परे आनन्द रूप, जाना इक परकास।
तिसमें ही विरती लगी, पाया मोख निवास।।

सार तत्त सत जान के, नित रहे परवीन।
ऐसे रूप भगवान का, गुनी बुद्ध लियो चीन।।

परमारथ को सोधता, रिखवदेव इस भाँत।
मन करम और वासना, सकले द्वन्द भरान्त।।

तिससे परे इक वस्त है, नित ही शूनियंगकार।
सकल से न्यारा सो रहे, अखण्ड तत्त निरंकार।।

तिसमें बुद्धी जब गई, तब पावे बिसराम।
जैनमत परगट कियो, दे साचा पैग़ाम।।

ज़रोदशत विचारया, अगनी रूप भगवान।
काल करम को भसम करे, बुद्धी दे कल्यान।।

तिसमें ही नित मगन रहे, आशा बिघन निवार।
केवल अगनी ब्रह्म को, नित राखे मन धार।।

अगन पुजावे जगत में, कियो ये विचार।
मत पारसी परगट किया, देके ज्ञान आधार।।

सब रिषियन की सार सुन, अध्यातम विचार।
वस्तू एक ही पूजते, नाना जुगत मन धार।।

सबकी सार को सुनके, दृढ़ कीजे विशवास।
'मंगत' विचरे नाम में, कटे करम की फाँस।।

संगत समतावाद द्वारा महाराज जी की
शिक्षा पर आधारित ग्रंथ एवं पुस्तकें

क्रम सं०	नाम	
1.	श्री समता प्रकाश ग्रन्थ	हिन्दी
2.	श्री समता विलास ग्रन्थ	हिन्दी
3.	जीवन गाथा भाग-1	हिन्दी
4.	जीवन गाथा भाग-2	हिन्दी
5.	मेरे गुरूदेव	हिन्दी
6.	गुरूदेव ने कहा	हिन्दी
7.	ऐसे थे गुरूदेव हमारे	हिन्दी
8.	ऐसी करनी कर चलो	हिन्दी
9.	अनन्त की खोज	हिन्दी/English
10.	संस्मरण	हिन्दी
11.	समता ज्ञान दीपक	हिन्दी
12.	समता आध्यात्मिक पत्र	हिन्दी/उर्दु
13.	समता ज्ञान पुष्पमाला	हिन्दी
14.	समता निति	हिन्दी
15.	अनन्त शान्ति की ओर	हिन्दी
16.	दी रिडिएन्ट सेमनेस (The Radient Sameness)	English
17.	संक्षिप्त जीवन परिचय	हिन्दी
18.	प्रार्थना व वैराग्य वाणी	हिन्दी
19.	जीवन परिचय (समतावाद)	हिन्दी
20.	समता संदेश-मासिक पत्रिका (Monthly Magazine)	हिन्दी/English/उर्दु
21.	अमर वाणी	हिन्दी
22.	प्रकाश पुण्ज	हिन्दी
23.	महामंत्र का ओडियो कैसेट (Audio Cassette)	हिन्दी
24.	महामंत्र की सीडी (CD)	हिन्दी
25.	जीवन परिचय की सीडी (CD)	हिन्दी

भारतवर्ष में, अन्य स्थानों पर भी संगत समतावाद के आश्रम व सत्संग शालाएँ है जिनके बारे में जानकारी व अन्य किसी भी प्रकार की जानकारी निम्नलिखित आश्रमों से ली जा सकती हैं।

HEAD OFFICE :
SANGAT SAMTAVAD
SAMTA YOG ASHRAM
CHACHHRAULI ROAD
JAGADHARI - 135003
PH. NO. : 01732-244882

मुख्य ऑफिस:
संगत समतावाद
समता योग आश्रम
छछरौली रोड
जगाधारी-135003
फोन न0-01732-244882

DELHI OFFICE :
SAMTA YOG ASHRAM
ANSAL PALAM VIHAR
FARM NO. 45
VILLAGE SALAH PUR
HUDA, GURGAON
OPP. SECTOR-21
NEW DELHI-110061
PHONE NO. 28061518, 28061519

दिल्ली ऑफिस:
समता योग आश्रम
अंसल पालम विहार
फार्म नं0-45
गाँव सलाह पुर
हुड्डा गुडगाँव, सेक्टर-21
के सामने
नई दिल्ली-110061
फोन न0-28061518, 28061519

Web Site : www.sangatsamtavad.org
Email : india@sangatsamtavad.org